

॥ श्री मीन पुराण भाषा टीका सहित ॥

(प्रथम स्कन्ध)

प्रकाशक—
अखिल भारत वर्षीय मारण क्षत्रिय महासभा
जंभा रामगढ़ (जयपुर राजपूताना)

समस्त मारण क्षत्रियों को विदित हो कि, चारण भाट और अपने अपने जागाओं को पूछ कर वह अपने २ पूर्वजों की वंशावलियें, पीढियां, और कुर्शीनामा पूरे २ पते गाम नाम ठाम दान मान गोत्र प्रसिद्धी और गुण गीत आदि सम्पूर्ण हकीकत शुद्ध हिन्दी अक्षरों में लिख कर मेरे पास शीघ्रातिशीघ्र भेजने की कृपा करें। मीन पुराण भाषा टीका में उनका विशेष विवेचन किया जावेगा। शास्त्र सम्पूर्ण छप जाने के बाद कोई सरदार ऐसा नहीं कह दें कि हमारे पूर्वजों का तो इसमें कहीं नामोल्लेख ही नहीं आया।

लेखक—मुनि मग्नसागर

मूल्य ॥=)

मिलने का पता:—
श्री मग्नसागर जैन पुस्तकालय
मु० उखलाना पोष्ट अलीगढ़ (टोंकराज)

मुद्रक— जयपुर इलैक्ट्रिक प्रिंटिंग वर्क्स चौड़ा रास्ता, जयपुर।

॥ ओ३म् ॥

॥ नमोभगवतेवासुदेवाय ॥

अथ श्रीमद्भागवत्मीन पुराण भाषाटीका सहित प्रारंभः

तमजं विश्व कर्माणं शाश्वतं शिवमव्ययम्।
महादेवं महात्मानं व्रजामि शरणं जिनम्॥ १ ॥

भा० टी०—मैं उस महादेव का आश्रय लेता हूं जो कि काम क्रोधादि अभ्यन्तर और धर्म कर्म में विघ्न करने वाले बाह्य शत्रुओं को नष्ट करता है और स्वयँ महान, आत्मस्वरूप, विश्वकर्त्ता, जन्मरहित, शाश्वत, मंगलमय और अविनाशी है॥ १ ॥

धर्मक्षेत्रे महातीर्थे गंगा कालिन्द्रि संगमे। प्रयागे नैमिशारण्ये ब्रह्मलोकस्य वर्त्मनि ॥ २ ॥ मुनयः शंसितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः। महौजसो महाभागाः महासत्रं वितेनिरे ॥ ३ ॥

भा० टी०—ब्रह्मलोक के मार्ग स्वरूप, नैमिषारण्य धर्म क्षेत्र प्रयाग महातीर्थ में, गंगा यमुना के संगम पर। सत्यव्रत परायण, निश्चित आत्मा वाले, महान् दीप्तिमान्, बड़े भाग्य शाली, शौनकादि ८८००० मुनिगण सन्तसमागमरूप यज्ञ करते हुए॥ २-३ ॥

तत्रसत्रं समाकर्ण्य तेषा मक्लिष्ट कर्मणाम्। साक्षात्सत्यवतीसूनोर्वेद व्यासस्य धीमतः ॥ ४ ॥ शिष्योमहात्मा मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः। पंचावयवयुक्तस्य वाक्यस्य गुण दोषवित् ॥ ५ ॥ उत्तरोत्तर वक्ता च ब्रुवतोऽपि बृहस्पतेः। मधुरः श्रवणानां च मनोज्ञपद पर्वणाम् ॥ ६ ॥ कथानां निपुणो वक्ता कालविज्ञयविस्कविः। आजगाम सतं देशं सूत पौराणि कोत्तमः ॥ ७ ॥

भा० टी०—उन अक्लिष्ट कर्मा ऋषियों के महायज्ञ को सुन कर सत्यवती जी के पुत्र बुद्धि मान्वेदव्यास जी के प्रधान शिष्य, तीनों लोकों में प्रसिद्ध महात्मा सूत जी प्रसन्न हो गये और सकल मुनि मण्डली सहित उस महायज्ञ में पधारे। कैसे हैं वे सूत जी ! प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण आदि न्याय शास्त्रोक्त पंचावयवयुक्त वाक्य के गुण और दोषों को ठीक २ जानते हैं। फिर कैसे हैं सूत जी! श्रोता जनों की श्रवणेन्द्रिय को अति मधुर और मनोज्ञ पद तथा सन्धि समास आदि युक्त पुराण सम्बन्धी उत्तम कथाओं के कहने वालों में बृहस्पति जी से भी उत्तरोत्तर वक्ता हैं। फिर कैसे हैं सूत जी! त्रिकालज्ञ तथा देश काल के जानने वाले, न्याय नीति निपुण और अच्छे कवीश्वर हैं ॥ ४-७ ॥

तंदृष्ट्वा सूत मायान्तं मुनयो हृष्ट मानसाः ।
तस्मैसाम च पूजां च यथावत्प्रत्यपादयन् ॥ ८ ॥

भा० टी०—उन सूत मुनिजी को सपरि कर यज्ञ स्थल में आते हुए देख शौनकादि सब मुनि बड़े सन्तुष्ट हुए और सन्मुख जाकर स्वागत पूर्वक सभा में लाएँ, तथा आसन देकर मृदु वचनादि से पूजा सत्कार करते हुए ॥ ८ ॥

प्रतिगृह्य सतां पूजांमुनिभिः प्रतिपादिताम् ।
उद्दिष्टमासनं भेजे नियुक्तो युक्त मात्मनः ॥ ९ ॥

भा० टी०—मुनिजनों की प्रतिपादन की गई पूजा को स्वीकार करके, योग युक्त आत्मा वाले सूतमुनि जी, ऋषिप्रदत्त आसन पर बैठ गये ॥ ९ ॥

ततस्तत्संगमादेव मुनीनां भावितात्मनाम् । सोत्कंठमभवच्चित्तं श्रोतुं पौराणिकीं कथाम् ॥ १० ॥ तदा तमनुकूलाभिर्वाग्भिः पूज्यमहर्षयः । अतीवाभिमुखंकृत्वा वचनंचेद मब्रुवन् ॥ ११ ॥ रोमहर्षणसर्वज्ञ भगवान्नोभाग्य गौरवात् संप्राप्तोद्यमहा भाग वीतराग महामते ॥ १२ ॥

भा० टी०—योग्य सत्कार होने के पश्चात स्वस्थ हुए सूतजी के संगम से शुद्धात्मा मुनियों का चित्त, सूतजी के मुख से मीन पुराण की कथा सुनने के लिये उत्कंठित होता हुआ। और वे महर्षिलोग अनुकूल वाणि से सूतजी को संतुष्ट करते हुए यों बोले। हे निष्पक्ष, महामते, सर्वज्ञ, भगवान लोमहर्षण जी के पुत्र, सूत जी! हमारे बड़े भाग्य से ही आज इस यज्ञ में आपका आना हुआ है ॥ १०-१२ ॥

पुराणविद्यामखिलां व्यासात्प्रत्यक्षमोयिवान् । तस्मादाश्चर्यं भूतानां कथानां त्वंहि भाजनम् ॥ १३ ॥ रत्नानामुरुसाराणां रत्नाकर इवार्णव : यच्च भूतं यच्च भव्यं यच्चान्यद्वस्तु वर्तते ॥ १४ ॥ न तवा विदितंकिंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते । त्वमदृष्टवशादस्मद्दर्शनार्थ मिहागत: ॥ १५ ॥

भा० टी०—अपनी सुयोग्यताही के कारण आपने अखिल पुराण विद्या अपने गुरु श्री वेदव्यास जी से प्रत्यक्ष प्राप्त की है। अतएव आप मीन आदि अवतारों की अद्भुत २ कथाओं के भंडार हैं। जैसे अमूल्य रत्नों का खजाना समुद्र होता है। क्योंकि त्रिकालवर्तिनी कोई भी वस्तु आप से छुपी हुई नहीं है। हमारे भाग्योदय से ही सन्त समाज के दर्शनार्थ इस यज्ञ में आप आये हैं ॥ १३-१५ ॥

ब्रूहि न: श्रद्दधानानां ये नात्मा संप्रसीदति । अकृत्वेन्किमपिश्रेयोनवृथा गन्तु मर्हसि ॥ १६ ॥ कथं ससर्ज भगवांल्लोकनाथश्चराचरम् । कस्माच्च भगवान्विष्णुर्मीन रूपत्वमाश्रित: ॥ १७ ॥ आद्यिवंश्यमनुष्याणां सत्कथांमीनसंहिताम् वेदान्त सार सर्वस्वं पुराणं श्रावयाशुन: ॥ १८ ॥

भा० टी०—लोकनाथ भगवान विष्णु ने चराचर इस जगत को कैसे उत्पन्न किया, किस कारण से मीनावतार हुआ, आदि स्वायंभुवमनु के वंश में उत्पन्न होने वाले मीन जाति के मनुष्यों की सच्ची कथा वाली, वेद वेदान्त का सार स्वरूप, ब्राह्मणों का सर्वस्व, मीन पुराण व मीन संहिता, आप हमें अवश्य सुनावें। जिससे कि हमारा अन्तरात्मा प्रसन्न हो। आपके वचनों पर पूर्ण विश्वास रखने वाले, हम मुनियों का कुछ भी कल्याण किये बिना अब आपका यहां से वृथा जाना योग्य नहीं है ॥ १६-१८ ॥

एवमभ्यर्थित: सुतो मुनिभिर्वेद वादिभि: श्लक्ष्णां च न्याय संयुक्तां प्रत्युवाच शुभां गिरम् ॥ १९ ॥ (सूत उवाच) मुनय: साधुपृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमंगलम् । यत्कृतो मीनसंप्रश्नो येनात्मासंप्रसीदति ॥ २० ॥

भा० टी०—इस प्रकार वेद के जानने वाले मुनियों की बारंबार प्राथना होने पर, सूतजी थोड़े अक्षरों में न्याय संयुक्त शुभ वाणी से यों उत्तर देते हुए। हे मुनिजनों! मुझसे मीनावतार और मीना जाति का अच्छा प्रश्न पूछ कर तुमने समस्त लोकों का बड़ा मंगल किया है। क्योंकि इसके उत्तर से प्राणी मात्र की आत्मा प्रसन्न होगी ॥ १९-२० ॥

पूजितोऽनु गृहीतश्च भवद्भिरिति चोदितः। कस्मात्सम्यक् नवि ब्रूयां पुराण मृषि पूजितम् ॥२१॥ इति श्री मद्भागवन्मीन पुराणे प्रथम स्कन्धे प्रथमोऽध्यायः॥१॥

भ० टी०—सूत जी कहते हैं कि जब आप लोगों ने बड़ी प्रेरणा करके मुझको यहां बुलाया, और अनुकूल आचरण करके सन्मानित, पूजित एवं अनुगृहीत किया तो फिर, ऋषियों के द्वारा पूजा हुआ श्री मद्भागतमीन पुराण सम्यक्तया क्यों नहीं कहूँगा। अपितु अवश्य कहूंगा। इति श्री भागवत् मीन पुराणे प्रथम स्कन्धे मुनि प्रश्नो नाम प्रथमोध्यायः॥ १ ॥ अथ द्वितीयोऽध्याय प्रारम्भः

नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासंततोजय मुदी रयेत् ॥ १॥ स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्ति रधोक्षजे। अहेतुक्य प्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति ॥ २ ॥ मीनदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः। जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानंयत्तद्हैतुकम् ॥ ३॥ धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासुयः। नोत्पादये यदिरतिं श्रमए वहि केवलम् ॥ ४ ॥

भा० टी०—सूत जी कहते हैं कि सबसे प्रथम सद्गुरु नरोत्तम, नारायण, सरस्वती देवी, एवं महर्षि वेद व्यास जी को नमस्कार करके तत्पश्चात् शास्त्र प्रारंभ करना चाहिये॥ मनुष्य मात्र का सबसे पहिला यह परम धर्म है कि ईश्वर में निष्कपट और फल की इच्छा के बिना अटल भक्ति हों। क्योंकि एक भक्ति ही आत्मा को अति प्रसन्नताका परम कारण है। मीन भगवान में जोड़ा हुआ एकभक्तियोगही, मनुष्य के हृदय में अप्रतिहत ज्ञान और वैराग्य को शीघ्र उत्पन्न कर देता है॥ भगवान की कथा सुनने में यदि मनुष्यों को प्रेम उत्पन्न नहीं होता, तो उन्हीं के समस्त धर्मानुष्ठान केवल परिश्रम और व्यर्थ हैं॥ १४ ॥

मीनदेवपरावेदा मीनदेवपरा मखाः। मीनदेवपरा योगा मीनदेवपराः क्रियाः ॥ ५ ॥ मीनदेवपरं ज्ञानं मीनदेवपरं तपः। मीनदेवपरो धर्मो मीनदेवपरा गतिः ॥ ६ ॥ एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्। यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ॥ ७ ॥ मीनः सर्व सुरासुरेन्द्रमहितोमीनं बुधा संश्रिताः, मीनेनाभिहतश्च दैत्यनिचयो मीनाय नित्यं नमः। मीनाद्धर्ममिदं प्रवर्त्तमनघं मीनस्य मैत्रीप्रजा, मीने व्याप्तमिदं ब्रह्मांडमखिलं हे मीन। भर्क्षित दिश ॥ ८ ॥

भा० टी०—मीन देव ही सर्वोत्कर्ष वेद है, मीनदेवही सर्व श्रेष्ठ यज्ञ है। मीन देव ही सर्वोत्तम योग समाधी है। मीन देवही सर्वोत्कृष्ट आचार किया है। मीन देवही ब्रह्म ज्ञान है,

मीन देवही परम तप है। मीन देवही शुद्ध धर्म है। मीन देवही परमोत्तम गति है। मीन देवही मात्र अवतारों का आश्रय, और अविनाशी बीज है। मीन भगवान के ही सर्व सूक्ष्म अंश के अंश से देव तिर्यंच पशु पक्षी और मनुष्यादि की सृष्टि होती है। मीन देवही सर्व मनुष्य और सुर असुर इन्द्र आदि के पूजनीय हैं। बुद्धिमान् लोक मीन भगवान के ही आश्रित रहते हैं। वेदविध्वंसक हयग्रीव शंखासुर आदि दैत्य मंडली को मीन भगवान ने ही मारा है। हम सन्त जन सदा मीनदेव को ही नमस्कार करते हैं। यह निर्दोष सनातन वैदिक धर्म सारे संसार में मीन भगवान से ही प्रवृत्त हुआ है। मीना नायक प्रजा मीन भगवान की ही वंशधर है। यह संपूर्ण ब्रह्मांड मीन भगवान में ही व्याप्त होकर रहा हुवा है हे मीन? हमको तो तू अपने चरणों की भक्ति ही प्रदान कर॥ ५-८॥

येषां चित्तेवसेद्भक्तिःसर्वदा प्रेमरूपिणी। न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेप्य-मल मूर्त्तयः॥ ९॥ न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वा सुरोपि वा। भक्तियुक्त मनस्कानां स्पर्शनेन प्रभुर्भवेत्॥ १०॥ न तपोभिर्नवेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा। हरिर्हिसाध्यते भक्त्या सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ११॥

भा० टी०—ईश्वर के ऊपर सर्वदा प्रेमरूप भक्ति जिन २ मनुष्यों के चित्त में सदा बसती है, वे पाप रहित सज्जन स्वप्न में भी यमराज को नहीं देखते। ईश्वर में सच्ची भक्ति युक्त मन वाले मनुष्यों को भूत प्रेत पिशाच राक्षस असुर आदि दुष्ट प्राणी स्पर्श करने को भी समर्थ नहीं हो सकते॥ मैं सच्च कहता हूं कि बिना एक भक्ति के कोरे तप नियम, वेदाध्ययन, ज्ञान, आदि कर्मों से, ईश्वर कभी प्रसन्न नहीं होते॥ ९-११॥

ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा न शोचतिनकांक्षति। समः सर्वेषुभूतेषु सभक्ति लभते पराम्॥ १२॥ अलंव्रतैरलंतीर्थैरलंयोगरलंमखः। अलंज्ञान कथा लापैर्भक्तिरेकैवमुक्तिदा॥ १३॥

भा० टी०—अब भक्ति के योग्य मनुष्य के लक्षण सूतजी कहते हैं जो राग द्वेष वर्जित ब्रह्म स्वरूप हो, आत्मा जिसका सदा प्रसन्न रहता हो, जो चिंता शोच वर्जित हो, जो आशा तृष्णा रहित हो, जो प्राणी मात्र पर सम दृष्टि वाला हो, वही सर्वोत्तम भक्ति को पा सकता है। ज्ञान चर्चा कथा कहानी व्रत नियम योग तीर्थाटन यज्ञ आदि कुछ नहीं। एक भक्ति ही मुक्ति का परम कारण है॥ १२-१३॥

काल-व्याल-महात्रास-विध्वंस कर मुत्तमम् ।
मीनं पुराणं परमं व्यासेनोक्त पुरामुने ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे मुने कालरूपी सर्प या दुष्ट गजराज की महा त्रास को विध्वंस करने वाला परमोत्तम श्री मीन पुराण सबसे पहिले मेरे गुरु श्री वेद व्यास जी ने मुझसे कहा था वही मैं तुम लोगों से कहता हूँ ॥ १४ ॥

वक्ष्यामि परमं पुण्यं पुराणं वेद सम्मितम् मीनंज्ञानार्णवं सम्यग्भक्ति मुक्ति फल प्रदम् ॥ १५ ॥ यदनुध्यासिना युक्ताः कर्म ग्रंथि निबन्धनम् । छिन्दन्ति कोविदास्तस्य कोनुकुर्यात्कथारतिम् ॥ १६ ॥ विद्या स्थानानि सर्वाणि पुराणानुक्रमं तथा । तत्पुराणस्य चोत्पत्तिं ब्रुवतो मेनिबोधत ॥ १७ ॥

भा० टी०—वेद के सदृश सर्व मान्य, परम पुण्य स्वरूप, ज्ञान का समुद्र, भक्ति और मुक्तिरूप सम्यक् फल को देने वाला, मीन पुराण मैं कहता हूँ ॥ जिसके ध्यान रूपी खड्ग से विद्वान् लोक असंख्य भवोपार्जित अपने कर्म जाल को एक क्षण भर में काट देते हैं। उस ही मीन भगवान की पवित्र कथा सुनने में कौन सचेतन प्रीति न करेगा। सर्व विद्याओं के स्थान १८ पुराणों के अनुक्रम से नाम और श्री मीन पुराण की मूलोत्पत्ति मैं कहता हूँ सुनो ॥ १५-१७ ।

अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः पुराणं धर्म शास्त्रं च विद्याश्चेताश्चतुर्दश ॥ १८ ॥ आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेत्यनुक्रमात् । अर्थ शास्त्रं परं तस्माद्विद्याह्यष्टादशःस्मृताः ॥ १९ ॥

भा० टी०—शिक्षा कल्प व्याकरण छन्द ज्योतिष और निरुक्त ये ६ अंग और ऋग्यजुसाम अथर्वणये ४ वेद मिलकर १० तथा कर्म और ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ विशेष मीमांसा ११, युक्ति पूर्वक तत्वनिर्णय विधायक न्याय शास्त्र १२, प्राचीन निवासी मनुष्यों की कथा पुराण १३ मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र १४, चिकित्सा शास्त्र आयुर्वेद १५, युद्धशिक्षा धनुर्वेद १६, संगीत शास्त्र गान्धर्व वेद, १७ कृषि व्यापार शिक्षा तथा भूगर्भ विद्या अर्थ शास्त्र १८, ये अष्टादश महाविद्यामीन पुराण से निकलकर लोक में प्रवर्त्ती हुई हैं ॥ १८-१९॥

अष्टा दशानां विद्यानामेतासां भिन्नवर्त्मनाम् । मूलकर्त्ताकविस्साक्षा-दादि देवरिति श्रुति ॥ २० ॥ स हि सर्व जगन्नाथः सिसृक्षुरखिलं जगत् । ब्रह्माणं विद्धेसाक्षात्पुत्रमग्रे सनातनम् ॥ २१ ॥ तस्मैप्रथमपुत्राय ब्रह्मणे विश्वयोनये । विद्याश्चेमाददौपूर्वं विश्वसृष्ट्यर्थमीश्वरः ॥ २२ ॥

भा० टी०—विभिन्न मार्ग वाली इन १८ विद्याओं का मूलकर्ता साक्षात् आदि देव विष्णु भगवान् ही हैं ऐसा हमने सुना है। अखिल जगत् को उत्पन्न करने की इच्छा वाले उस जगन्नाथ ने सबसे पहिले अपने साक्षात् पुत्र सनातन ब्रह्मा को उत्पन्न किया और उस ईश्वर ने सबसे पूर्व विश्व की सृष्टि के अर्थ ऊपर लिखित अष्टादश विद्याएँ अपने प्रथम पुत्र विश्व-योनि ब्रह्मा को दीं ॥ २०-२२ ॥

लब्धविद्येन विधिना प्रजासृष्टिंवितन्वता । प्रथमं सर्व शास्त्राणां पुराणं मीन ग्रन्थितम् ॥ २३ ॥ अनन्तरं तु वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः । प्रवृत्तिस्सर्व शास्त्राणां तन्मुखाद् भवत्ततः ॥ २४ ॥

भा० टी०—ईश्वर से १८ विद्याएँ प्राप्त कर प्रजा की सृष्टि का विस्तार करने वाले ब्रह्मा ने सर्व शास्त्रों के पहले श्री मीन पुराण को बनाया। इसके पश्चात् चारों मुखों से चार वेद निकले। उनके बाद ब्रह्मा के मुख से समस्त अन्य २ शास्त्रों की प्रवृत्ति हुई ॥ २३-२४ ॥

पुराण मेक मेवासीत्तदाकल्पान्तरे नघ। त्रिवर्ग साधनंमीनं शतः कोटि प्रविस्तरम् ॥ २५ ॥ यदास्य विस्तरंशक्ता नाधिगन्तुं प्रजाभुवि । तदाविद्या समासार्थ विश्वेश्वर नियोगतः ॥ २६ ॥ द्वापरान्तेषुविश्वात्मा विष्णुर्विश्वंभरः प्रभुः । व्यासनाम्नाचरत्यस्मिन्नवतीर्य महीतले ॥ २७ ॥ एवं व्यस्ताश्च वेदाश्च द्वापरे द्वापरे द्विजाः । निर्मितानि पुराणानि अन्यानिचततःपरम् ॥ २८ ॥

भा० टी०—उस प्रथम कल्प में धर्म अर्थ और मोक्ष का साधन रूप सौ क्रोड़ श्लोक प्रमित विस्तार वाला एक श्रीमद्भागवतमीन पुराण ही था। जब प्रहीय मान काल में मनुष्यों की शक्ति इतने विस्तार वाले शास्त्र को कंठस्थ करने के लिये असमर्थ हो जाती है, तब ईश्वर की प्रेरणा से वही सर्व व्यापी जगत्पालक विश्वात्मा मीनभगवान् उक्त १८ विद्याओं के संक्षेपार्थ द्वापर युगके अन्त में व्यास नामको धारण करके इस भूतल पर विचरते हैं इसी नियमानुसार प्रत्येक द्वापर के अन्त में वेद विभाग होते हैं, और मीन पुराण से निकल कर दूसरे पुराण बनते रहते हैं ॥ २५-२८ ॥

सपुनर्द्वापरे चास्मिन्कृष्णद्वैपायनाख्यया। अरण्यामिवहव्याशी सत्यवत्याम जायत ॥ २९ ॥ संक्षिप्यसपुनर्वेदांश्चतुर्द्धाकृतवान्मुनिः। व्यस्तवेदतया लोके वेद व्यास इति श्रुतः ॥ ३० ॥

भा० टी०—जैसे काष्ठ में अग्नि उत्पन्न होता है वैसे ही, वह ही आदि मीन भगवान् इस द्वापर के अन्त में कृष्णद्वपायन नाम से प्रसिद्ध, सत्यवती की कुक्षी में उत्पन्न हुये और समुच्चित एक ही वेद को मीन पुराण से उद्धृत करके ऋगादि चार अंशों में विभाजित करते हुए। वेदों के विभाग संकोच और विस्तार करने ही के कारण, लोक में वेद व्यास नाम से प्रसिद्ध हुए, ऐसा हमने सुना है। २९-३० ॥

योविद्याच्चतुरो वेदान्सांगोपनिषदान्द्विजः। नचेत्पुराणंसंविद्यान्नैवसस्या द्विचक्षणः ॥ ३१ ॥ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणिच। वंशानु वंशचरितं पुराणं पंचलक्षणम् ॥ ३२ ॥

भा० टी०—जो ब्राह्मण अंग उपांग सहित चार वेद और समस्त उपनिषदों को तो अच्छी तरह से जानता है, किन्तु श्रीमद्भागवत मीन पुराण को नहीं जानता, तो हम उसको विद्वान् नहीं कहेंगे। क्योंकि मीन पुराण के पढ़ने जानने और सुनने से ही मनुष्य विचक्षण व पंडित होता है ॥ इसमें जगत् की सृष्टि १ संहार २ मीनादि वंश ३ मन्वन्तर ४ और वंशानुवंश चरित ५ ये पांच मुख्य लक्षण (अधिकार) हैं ॥ ३१-३२ ॥

ब्राह्मंपाद्मं वैष्णवंच शैवं भागवतंतथा। भविष्यं नारदीयंच मार्कण्डेयमतःपरम् ॥३३॥ आग्नेयं ब्रह्म वैवर्तं लैंगं वाराहमेव च। स्कान्दं च वामनं चैव कौर्मं मैनंच गारुडम् ॥ ३४ ॥ ब्रह्माडंचेतिपुण्योयं पुराणानामनुक्रमः। तत्र श्रेष्ठं तु मैनं हि भातिंमुनिपुंगवैः ॥ ३५ ॥

भा० टी०—अब अष्टा दश पुराणों के अनुक्रम से नाम सूत जी कहते हैं ब्रह्म १ पद्म २ वैष्णव ३ शिव ४ भागवत् ५ भविष्य ६ नारद ७ मार्कंड ८ अग्नि ९ ब्रह्मवैवर्त्त १० लिंग ११ बाराह १२ स्कंध १३ वामन १४ कुर्म १५ मीन १६ गरुड़ १७ और ब्रह्मांड १८ ये पुण्यस्वरूप अष्टादश पुराणों के अनुक्रम से नाम है। इनमें श्रेष्ठ मुनियों ने एक श्रीमद्भागवत मीन पुराण को ही सर्वोत्तम कहा है ॥ ३३-३५ ॥

जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं महत्तस्य सुधीमतः। तस्य प्रीतिर्भवेत्तत्र महाभाग्यवतोमुने ॥३६॥ एतन्मीनपुराणं हि परमंशास्त्रमुत्तमम्। विष्णुरूपंक्षितौज्ञेयं सेवनीयं च सर्वथा ॥ ३७ ॥ पठनाच्छ्रवणादस्य भक्तिमान्नरसत्तमः। सद्यविष्णुपदं लक्ष्मीं लभते सर्वसाधनात् ॥३८॥

भा० टी०—हे मुने ! जिस महा भाग्यशाली के जन्मजन्मान्तर के संचित किये हुए महान् पुण्यों का उदय होता है उसी ही सुबुद्धिमान् मनुष्य को श्री मीन पुराण पर परम प्रीति होती है, भाग्यहीन को नहीं। अतएव इस परमोत्तम शास्त्र श्रीमद्भागवत् मीन पुराण को पृथ्वी पर साक्षाद्विष्णु स्वरूप जान कर सर्वथा सेवन करना चाहिये। सर्व साधन सहित जो कोई भक्तिमान् मनुष्य इस मीन पुराण का पठन व श्रवण करता है वह शीघ्र ही विष्णुपद (वैकुंठ) और लक्ष्मी को पाता है इस में कोई शक नहीं ॥ ३६ - ३८ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कांक्षितंपठनंनृभिः। तथाऽस्य श्रवणं प्रेम्णा सर्वकाम फलप्रदम् ॥ ३९ ॥ राजसूयेन यत्पुण्य मग्निष्टोम शतेनच। तत्पुण्यं लभतेमीनकथाश्रवणमात्रतः ॥४०॥ ये शृण्वन्ति मुने मीनं पुराणं शास्त्रमुत्तमम्। ते मनुष्या न मन्तव्या देवाएव न संशयः ॥४१॥

भा० टी०—श्रीमद्भागवत् मीन पुराण का पढ़ना और सुनना मनुष्यों को मनोवांछित फल देता है। अतएव चारों ही वर्ण के लोक बड़े प्रयत्न से इस को प्रेम के साथ पढ़ना और सुनना चाहते हैं। क्योंकि सौवार के अग्निष्टोम और राजसूय यज्ञ के करने पर जो पुण्य होता है उतना ही पुण्य मीन पुराण की कथा सुनने मात्र से हो जाता है। हे मुने ! जो भक्तजन श्री मीनपुराण उत्तम शास्त्रको सुनते हैं वह मनुष्य नहीं किन्तु देवता हैं ॥३९-४१॥

शृण्वन्तां तत्पुराणं हि तथा कीर्त्तयतांचतत् पादाम्बुजरजांस्येव तीर्थानि मुनयोविदुः ॥४२॥ गन्तुंनिःश्रेयसं स्थानं येऽभिवाञ्छन्ति देहिनः। मीनं पुराणममलंभक्त्या शृण्वन्तु ते सदा ॥४३॥

भा० टी०—मीन पुराण को सुनने वाले और कीर्त्ति करने वालों के चरणों की रज को ही मुनि जन तीर्थ कहते हैं। अतएव जो मुक्ति स्थान को पाने की वांछा रखते हैं उन्हें निर्मल भक्ति पूर्वक सदा मीन पुराण सुनना चाहिये ॥ ४२-४३ ॥

सदा श्रोतुंयद्यशक्तोभवेत्स मुनि सत्तम ! नियतात्माप्रतिदिनं शृणुयाद्वा मुहूर्त्तकम् ॥४४॥ यदिप्रतिदिनश्रोतुमशक्तो मानवो भवेत् । पुण्यमासादिषु नित्यं शृणुयान्मीनपुराणकम् ॥४५॥ मुहूर्त्तंवा तदर्द्धंवा तदर्द्धंवा क्षणंचवा । ये शृणवन्ति पुराणं तं न तेषां दुर्गतिर्भवेत् ॥४६॥

भा० टी०—हे मुनि सत्तम ! यदि मनुष्य सदा मीन पुराण को न सुन सके तो, जितेन्द्रिय होकर प्रतिदिन एक मुहूर्त अवश्य मीन पुराण सुनें । यदि प्रति दिन नियम से एक मुहूर्त्त मीन पुराण सुनने का अवकाश न हो तो, भाद्रपदादि पुण्य महिनों में मीनपुराण अवश्य सुनना चाहिये । एक मुहूर्त्त वा अर्द्ध मुहूर्त्त वा पाव मुहूर्त वा एक क्षण भर भी जो मनुष्य श्री मीन पुराण को सुन लेता है वह फिर कभी दुर्गति में नहीं जा सकता । ४४–४६॥

विशेषतः कलौमीनः पुराणश्रवणादृते । परोधर्मो न पुंसांहि मुक्ति साधन कृन्मुने ॥ ४७ ॥ पुमानज्ञानतस्तावद्भ्रमतेस्मिन्भवे पुनः । यावत्कर्णगतं नास्ति पुराणं मीन मुत्तमम् ॥४८॥

भा० टी०—हे मुने ! कलियुग में तो एक मीन पुराण को सुनने के सिवाय दूसरा कोई मुक्ति का साधन विशेष धर्म ही नहीं है । अज्ञानवश पुरुष तभी तक संसार में वारंवार भ्रमण करता है कि जब तक उत्तम मीन पुराण कर्णगोचर नहीं हुआ । अर्थात् इस के श्रवण मात्र से ही मनुष्य भव भ्रमण से छूट जाता है ॥ ४७--४८ ॥

किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः । मीनपुराण मेकंहि मुक्ति दानेन गर्जति ॥४९॥ एतन्मीनपुराणस्य कथाभवति यद्गृहे । तीर्थ भूतंहि तद्गेहं वसतां पापनाशनम् ॥५०॥ अश्वमेध सहस्राणि वाजपेय शतानि च । कलां मीन-पुराणस्य नार्हन्ति खलुषोडशीम् ॥५१॥

भा० टी—भ्रमोत्पादक दूसरे बहुत से शास्त्र और अन्य पुराणों के सुनने से कुछ भी नहीं होता । एक मीन पुराण ही प्राणीमात्र को मुक्ति देने के लिये बड़े जोर की आवाज करता है । मीन पुराण की कथा जिस किसी के घर में बचती है तो वह घर भी उस में बसनेवाले प्राणियों के समस्त पापों को नष्ट करनेवाला तीर्थ रूप होजाता है । क्योंकि हजारों अश्वमेध यज्ञ और सैंकड़ों वाजपेय यज्ञ भी मीन पुराण की कथा के सोलहवें हिस्से को भी नहीं पहुंच सकते ॥ ४९--५१ ॥

तावत्सप्रोच्यते पापी पापकृन्मुनि सत्तमः। यावन्मीनपुराणं हि न शृणोति सुभक्तितः ॥५२॥ गंगाद्याः पुण्यनद्यश्च सप्तपुर्यो गयास्तथा। एतन्मीनपुराणस्य समतां यान्ति न कचित ॥५३॥

भा० टी०—पाप करनेवालों को पापी तभी तक कहो कि, जबतक वे अच्छी भक्ति से मीनपुराण को नहीं सुनते। हे मुनि सत्तम। मीन पुराण सुनने के पश्चात् पापी के हृदय में भी कोई पाप नहीं रहता। क्योंकि गंगा आदि सहस्रों नदियों में किया गया स्नान दान पुण्य तथा काशी आदि सात पुरियों और गयादि तीर्थों में दिया हुआ पिंडदान तीर्थ व्रत यात्रादि, मीन पुराण के कोटि अंश की समानता को भी नहीं पा सकते॥ ५२--५३॥

नित्यं मीनपुराणस्य श्लोकं श्लोकार्द्ध मेवच। स्वमुखेन पठेद्भक्त्या यदीच्छेत्परमांगतिम् ॥५४। एतन्मीनपुराणं यो वाचयेदर्थतो निशम्। पठेद्वा प्रीतितोनित्यं स पुण्यात्मा न संशयः ॥५५॥

भा० टी०—अये मनुष्यो! यदि तुम अपनी परमगति (मुक्ति) को चाहते हो तो मीनपुराण का एक श्लोक या आधा श्लोक भक्ति के साथ अपने मुख से नित्य पढ़ो। संसार में एक वही मनुष्य पुण्यात्मा है कि जो अर्थ सहित श्री मीनपुराण को रातदिन सप्रेम बांचता है और कंठस्थ कर लेता है॥ ५४--५५॥

अन्तकालेहि यश्चैनं शृणुयाद्भक्तितस्सुधीः। विष्णुना सहसायुज्यं वैकुंठं लभते ध्रुवम् ॥ ५६॥ जीवच्छवोनिगदितः सतुपापकर्मा येनश्रुतं जिन कथा वचनं न किंचित्। धिक्तं नरं पशुसमं भुवि भाररूप मेव वदन्ति दिविदेव सरोज मुख्याः ॥५७॥

भा० टी०—जो कोई बुद्धिमान् मनुष्य मरणकाल में भी इस मीनपुराण को भक्ति पूर्वक सुन लेता है वो वह अवश्य ही वकुंठ में भगवान्विष्णु के साथ सायुज्य मुक्ति पाता है। स्वर्ग निवासी ब्रह्मादि सभी देवता कहते हैं कि जिस मनुष्य ने दैत्यों को जीतनेवाले मीन-भगवान की कथा अपने कानों में नहीं सुनी वह स्वांस लेता हुआ भी लुहार की धौंकनी के समान मुर्दा है। उपवास करता हुआ भी पापी है। पृथ्वी पर भाररूप पशु के समान उस मनुष्य को कोटिशः धिक्कार है॥ ५६--५७॥

एतन्मीनपुराणस्य कुर्वन्नित्यमतन्द्रितः । पट्टवस्त्रादिनासम्यक्सत्कारंससुखी सदा ॥५८॥ चतुर्वर्गप्रदंमीनं पुराण ममलं परम् । श्रोतव्यं सर्वदाप्रीत्या पठितव्यं विशेषतः ॥५९॥ वेदेतिहास शास्त्रेषु परंश्रेयस्करं महत् । मीनंपुराणंविज्ञेयं सर्वथाहि मुमुक्षुभिः ॥६०॥

भा० टी०—जो कोई प्रमाद वर्जित मनुष्य पटड़ा पर रख रेशमी वस्त्र आदि से मीन पुराण का अच्छी तरह से सत्कार करता है वह हमेशा सुखी ही रहता है । धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चतुर्वर्ग को देनेवाला एक परम निर्मल शास्त्र श्रीमीनपुराण ही है अतएव विशेष प्रीति से सर्वदा इसी ही को पढ़ना चाहिये । अये मुमुक्षजनो ! वेद इतिहास और समस्त धर्म शास्त्रों में महान् और परम कल्याण का कारण एक मीनपुराण ही है ऐसा नियम से जानना चाहिये ॥ ५८--६० ॥

मीनंपुराणमिदमात्मविदां वरिष्ठं सेव्यंसदा परमवस्तु सतांसमर्च्यम् । तापत्रयाभिशमनं सुखदं सदैव प्राणप्रियं विधि हरीशमुखामराणाम् ॥६१॥

भा० टी०—आत्मा का स्वरूप बतानेवाले शास्त्रों में यह मीनपुराण सर्वप्रधान है। यह परम वस्तु सन्त जनों के भी पूजनीय और सदा सैव्य है । प्राणीमात्र के तीनों तापों को शान्त करने वाला और सदैव सुख को देनेवाला है तथा ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर आदि सर्व देवों को अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा है ॥६१॥

ये मानवाः पापकृतो दुराचाररताः खलाः । कामादिनिरतानित्यं तेपि शुध्यन्त्यनेनवै ॥६२॥ ज्ञानयज्ञः परोयंवै भुक्तिमुक्तिप्रदस्सदा । शोधनं सर्वपापानां शिवसंतोषकारकः ॥६३॥ तृष्णाकुलाः सत्यहीनाः मातृपितृ विदूषकाः । दांभिका हिंसकायेच तेपि शुध्यन्त्य नेनवै ॥६४॥

भा० टी०—जो मनुष्य ब्रह्महत्यादि पापों के करनेवाले होते हैं और जो निस्सार दुष्ट दुराचारी होते हैं । तथा जो काम क्रोधादि में सदा तल्लीन रहते हैं वह भी इस मीनपुराण के सुनने से परम शुद्ध होजाते हैं । क्योंकि यह मीनपुराण सर्व पापों को शोधनेवाला, शिवजी को संतुष्ट करनेवाला, सदा भोग और मुक्ति को देनेवाला परम ज्ञानयज्ञ है । जो मनुष्य तृष्णावश आकुल होते हैं, सत्य धर्म हीन होते हैं, मा बाप को दुःख देनेवाले होते हैं। तथा जो मिथ्या दांभिक और हिंसक होते हैं वह भी इस मीनपुराण के सुननेमात्र से शुद्ध होजाते हैं ॥ ६२–६४ ॥

स्ववर्णाश्रम धर्मेभ्यो वर्जिता मत्सरान्विताः। ज्ञानयज्ञेन तेनेन सम्पुनन्ति कलावपि ॥६५॥ छलछद्म करा ये च ये च क्रूरास्तुनिर्दयाज्ञानय० सम्पु० कला० ॥६६॥ ब्रह्मस्वपुष्टास्सततं व्यभिचाररताश्चये। ज्ञान० ॥६७॥ सदा पापरता ये च ये शठातिदुराशयाः ज्ञा० ॥ ६८ ॥ मलिना दुर्धियाऽशान्ता देवता द्रव्यभोजिनः। ज्ञा० ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चान्यापि प्राणिनः। ज्ञा० ॥७०॥ मातृ पितृ वधू हन्ता वेश्यागामी च मद्यपाः। ज्ञा० ॥७१॥ कृषीवलाः शस्त्रधराः निर्गुणा पशुबुद्धयः ॥ ज्ञा० ॥ ७२ ॥

भा० टी०—जो मनुष्य अपने वर्ण जाति धर्माश्रम से वर्जित होते हैं। एक दूसरे को नहीं चाहते, वह कलियुग में भी इस ज्ञान यज्ञ से शुद्ध होजाते हैं। जो क्रूर निर्दयी और छलकपट करनेवाले होते हैं, और सदा पाप में ही रत धूर्त दुराशयी, मलिन, दुर्बुद्धि, अशान्त देव द्रव्य खानेवाले, चारों ही वर्ण के जो पापी मनुष्य होते हैं, तथा मां, बाप, पुत्र, बधू, भाई मित्रादि की हत्या करनेवाले, वेश्यागामी, मद्य पीनेवाले, खेती करनेवाले, शस्त्र रखने, बनाने, बेचनेवाले, निर्गुण और पशु के समान बुद्धि वाले मनुष्य भी इस मीनपुराण के सुनने से शुद्ध होजाते हैं ॥ ६५--७२ ॥

तावद्विजृम्भते पापं ब्रह्महत्यापुरस्सरम्। यावन्मीनपुराणंहि नोदेष्यतिजगत्यहो ॥ ७३ ॥ तावत्कलिमहोत्पाताः संचरिष्यन्ति निर्भयाः यावन्मी० ॥ ७४ ॥ तावत्सर्वाणिशास्त्राणि विवदन्ति परस्परम्। याव० ॥ ७५ ॥ तावत्स्वरूपं दुर्बोधं मीनस्य महतामपि। याव० ॥ ७६ ॥ तावद्यमभटाः क्रूराः संचरिष्यन्ति निर्भयाः। याव० ॥७७॥ तावत्सर्वं पुराणानि प्रगर्ज्जन्ति महीतले ॥ याव० ॥ ७८ ॥ तावत्सर्वाणि तीर्थानि विवदन्ति महीतले ॥ याव० ॥ ७९ ॥ तावत्सर्वाणि पीठानि विवदन्ति मही०। या० ॥ ८० ॥ तावत्सर्वाणि दानानि विव०। या० ॥ ८१ ॥ तावत्सर्वेचतेदेवा विव०। या० ८२॥ एतन्मीनपुराणं यो नमस्कुर्याद्दूरतः। सर्व देवार्चनफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥ ८३॥

इति श्री मीपुनराणे प्रथमस्कन्धे द्वितीयोध्यायः ॥२॥

भा० टी०—बड़े तेजवाले ब्रह्महत्यादि उग्र पाप मनुष्यों की तर्फ मुँह फाड़ कर तब तक आते रहेंगे कि जब तक पृथ्वी पर श्रीमद्भागवत् मीनपुराण रूप सूर्य का उदय नहीं होगा। अर्थात् मीनपुराण के प्रकाशित होने पर जगत भर के सभी पाप नष्ट होजाते हैं। कलियुग के

महानुत्पातों का भी तब तक संचार दुनियां में रहेगा कि जब तक मीनपुराण का उदय न हो। तभी तक सर्व शास्त्रों में आपस का विरोध चलता रहेगा कि जब तक मीनपुराण का उदय न हो। अर्थात् मीनपुराण के प्रकट होने पर, पौराणिक शास्त्रों में जो अलंकारिक और लौकिक विरोध दीखता है, आदि सर्व विकार मिट जायेंगे। श्री मीन भगवान् का स्वरूप भी मनुष्यों को तभी तक दुर्बोध है कि जब तक संसार में मीनपुराण का उदय न हो। क्रूर और निर्भय यमराज के दूतों का भी संसार में तभी तक संचार है कि जब तक श्री मीनपुराण का उदय न हो। पक्षपातियों के प्रक्षिप्त श्लोकोंवाले विरोधी पुराण रूप काले बद्दल तभी तक पृथ्वी पर जोर की भयंकर आवाज करते रहेंगे कि जब तक जगत् में मीनपुराण का उदय नहीं होगा। मीनपुराण का प्रचार होने पर ही सर्व तीर्थ, गुरुपीठ, दान, व्रत, नियम, आदि का विवाद शान्त होजाता है। सर्व देवता लोक भी तभी तक परस्पर विवाद करते रहेंगे जब तक इस महीतल पर मीनपुराण का उदय न होगा। कहां तक कहों इस श्रीभागवत् मीनपुराण को जो कोई मनुष्य अदूर से भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं वह सर्व ही देवताओं की पूजा को फल को पाते हैं इसमें कोई संशय नहीं। ७३-८३ इस प्रकार यह मीनपुराण की उत्पत्ति और महात्म्य नामक प्रथम स्कन्ध का दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

अथ तृतीय अध्याय प्रारम्भः ॥ कारण सृष्टिः।

(मुनय ऊचुः) कः पुमान्सर्वसत्त्वेभ्यः पुराणः परतः परः। (सूत उवाच) यतोवाचोनिवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसासह ॥ १ ॥ यस्मात्सर्वमिदंब्रह्म विष्णु रुद्रेन्द्र-पूर्वकम्। सहभूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं संप्रसूयते ॥२॥ एषदेवो महादेवः सर्वज्ञोजग-दीश्वरः। अपंतु परयाभक्त्या दृश्यन्ते नान्यथाक्वचित् ॥३॥

भा० टी०—कौन पुरुष सर्व जीवों से पुराना और पर से भी पर है, ऐसा मुनियों के पूछने पर, सूतजी कहते हैं कि मन के साथ वाणी जिस को प्राप्त न होकर पीच्छी लौट आती है वही अव्यक्त ईश्वर पर से पर और सब से पुराणा वासी है। जिस से यह सर्व ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्रादि देवगण पूर्व कल्पों में हुए। और इन्द्रियों सहित भूतों (प्राणियों) के भी प्रथम जो प्रगट होता है वही देव, महादेव, सर्वज्ञ, जगदीश्वरादि नामों से प्रसिद्ध पुराण पुरुष है। वह अरूपी, अखण्ड, चिदानन्द, ज्ञानदृष्टि के द्वारा सर्वोपरि भक्ति से ही भक्तजनों के हृदय में दीखता है। अन्यथा चर्म चक्षु से उसको देखने का कोई भी साधन नहीं है ॥ १-३ ॥

रुद्रोहरिर्हरश्चैव तथान्येच सुरेश्वराः । भक्त्या परमयातस्य नित्यं दर्शन कांक्षिणः ॥४॥ कारणानां च यो धाता ध्याता परम कारणम् । न संप्रसूयतेन्यस्मात् कुतश्चन कदाचन ॥ ५ ॥ सर्वैश्वर्येण सम्पन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम् । सर्वं मुमुक्षुभिर्ध्येयः शम्भुराकाश मध्यगः ॥६॥

भा० टी०— हरिहर, ब्रह्मा तथा और भी असुर, सुर आदि देव परमभक्ति से जिसके दर्शनों की नित्य अभिलाषा रखते हैं । सृष्टि के आदि कारणों का ध्याता जो नारायण है, वह परमेश्वर उसको भी धारण करनेवाला परम कारण है । और स्वयं कभी कहीं किसी से उत्पन्न नहीं होता । सर्व मोक्षार्थियों के ध्यान करने योग्य भक्त जनों के हृदयाकाश के मध्य में स्थित, सर्वैश्वर्य संयुक्त, स्वयं सर्वेश्वर नाम से प्रसिद्ध वही अन्तर्यामी मीन भगवान् है ॥ ४–६ ॥

विशुद्ध परिपूर्णश्च शाश्वतः परमेश्वरः । येनेद मखिलंपूर्णं पुरुषेण महात्मना ॥७॥ सदा जनानां हृदये संन्निविष्टोपियः परैः । अलक्ष्योलक्षयन्विश्व मधितिष्ठति सर्वदा ॥८॥

भा० टी०—जिस महात्मा पुरुष से यह अखिल ब्रह्माण्ड व्याप्त है वही विशुद्ध परिपूर्ण सर्वव्यापी शाश्वत परमेश्वर सब से पुरातन है । जो भक्तों के हृदय में स्थित होकर भी दूसरों को नहीं दीखता और स्वयं विश्व को देखता रहता है ॥ ७–८ ॥

यस्तु कालात्प्रमुक्तानि कारणान्यखिलान्यपि । अनन्तशक्तिरेवैको भगवानाधितिष्ठति ॥९॥ न यस्य दिवसोरात्रिर्न समानो न चाधिकः । स्वभाविकी पराशक्तिर्नित्यज्ञान क्रियेअपि ॥१०॥

भा० टी०—जो काल से मुक्त सूक्ष्म आत्मादि अखिल कारण हैं, उन सब में एक ही अनन्तशक्ति भगवान् विराजमान हैं । जिस के न दिन है, न रात्रि है, न समान है, न अधिक है । जिस में नित्यज्ञान और आत्म रमणरूप स्वभाविकी परमशक्ति विद्यमान है ॥९--१०॥

यदिदंक्षर मव्यक्तं यदप्यमृतमक्षरम् । तावुभावक्षरात्मानावेकोदेवः स्वयं जिनः ॥११॥ यस्मिन्नभासते विद्युन्नसूर्यो न च चन्द्रमाः । यस्यभासाविभातीद मित्येषा शाश्वतीश्रुतिः ॥१२॥

भा० टी०—यह जो क्षर चैतन्य स्वरूप अव्यक्त ब्रह्म जीवात्मा है। और जो अमृत अक्षर विज्ञानघन परम कारण अखण्ड परमात्मा है, यह दोनों ही एक दैत्यों को जीतनेवाला स्वयं भगवान् विष्णु है। जिसमें बिजली, सूर्य, चन्द्रमा आदि कोई अपना प्रकाश नहीं कर सकते। और जिसकी कांति से यह सब जगत् प्रकाशित होरहा है वही परब्रह्म ईश्वर सब से पुराना है ऐसी शाश्वती वैदिक श्रुति है॥ ११--१२॥

अयमादिरनाद्यन्तः स्वभावादेव निर्मलः। स्वतन्त्रो जगदाधारः स्वेच्छाधीनश्चराचरः ॥१३॥ अनेन चित्र कृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत्। अन्तकाले पुनश्चेदं तस्मिन्प्रलयमेष्यति ॥१४॥

भा० टी०—यह आदि अन्त रहित और स्वभाव से ही निर्मल तथा खुद स्वतन्त्र और चराचर को अपनी इच्छानुसार रखनेवाला, जगत् का मूलाधार स्वरूप है। विचित्र कृत्य वाले इसी ही ईश्वर से प्रथम सृष्टि की शुरूआत में यह जगत् उत्पन्न होता है और अन्त में सारी सृष्टि इसी के अन्दर लीन होजाती है॥ १३--१४॥

(मुनयऊचुः) किं तदक्षर मित्युक्तं किं चक्षर मुदाहृतम्। तयोश्च परमं किं वा एतं ब्रूहि महामुने ॥१५॥ (सूतउवाच) प्रकृतिःक्षरमित्युक्तं पुरुषोऽक्षर उच्यते। ता वुभौ प्रेरयत्यन्यः सपरः परमेश्वरः ॥१६॥

भा० टी०—मुनिजन पूछते हैं कि क्षर क्या चीज है, अक्षर किस को कहते हैं, और उन दोनों से परे क्या है। सूतजी बोले कि प्रकृति का नाम क्षर है और पुरुष को अक्षर कहते हैं। और उन दोनों की जो प्रेरणा करता है वह पर से परे परमेश्वर है॥१५--१६॥

(मुनयऊचुः) कैषा प्रकृतिरित्युक्ता क एष पुरुषोमतः। अनयोकेनसम्बन्धः कोयं प्रेरक ईश्वरः ॥१७॥ (सूत उवाच) माया प्रकृति रुद्दिष्टा चैतन्यो माययावृतः सम्बन्धो मूलकर्माभ्यां विष्णुः प्रेरक ईश्वरः ॥१८॥

भा० टी०—मुनि बोले, वह प्रकृति क्या वस्तु है, और वह पुरुष कौन है, इनका सम्बन्ध क्या है तथा इन सब का प्रेरक कौन है। सूतजी बोले कि, माया का नाम प्रकृति है पुरुष जीव माया से आवृत्त ढका हुआ है, इन दोनों का सम्बन्ध मूल (पुराणे) कर्मों से है। और कर्म मल वर्जित ईश्वर इन सब का प्रेरक है॥ १७--१८॥

(मुनयऊचुः) कस्य भोगेन किं भोग्यं किं वातद्भोगसाधनम्। मलक्षयस्य को हेतुः कि दृक्क्षीणमलः पुमान् ॥१९॥ (सूतउवाच) पुण्य पापात्मक कर्म सुखदुःख फलंतुयत्। अनादिमलभोगान्त मज्ञानात्मसमाश्रयम् ॥२०॥ भोगः कर्मविनाशाय भोग्यमव्यक्तमुच्यते। बाह्यान्तकरणद्वारं शरीरं भोगसाधनम् ॥२१॥ भावातिशय लब्धेन प्रसादेनमलक्षयः। क्षीणेचात्ममलेतस्मिन्पुमानीशः समोभवेत् ॥२२॥

भा० टी०—मुनि बोले कि भोग किस के निमित्त है, भोग्य क्या है, उस भोग का साधन क्या है। मल के क्षय होने का कारण क्या है। क्षीण मल पुरुष कैसा होता है। सूतजी बोले—अनादि मल से होनेवाले जो भोग के अन्त तक अज्ञानता से अपनी आत्मा में माने जाते हैं पुण्य पापात्मक कर्मों के जो सुख दुःख फल हैं उन्हीं को भोग कहते हैं। फल रूप कर्मों को नष्ट करने के लिये भक्तजन अव्यक्त प्रकृति को भोग्य कहते हैं। बाह्य चक्षुरादि इन्द्रिय, अन्तःकरण, मन और इन्द्रियों के द्वार तथा शरीर, ये सब भोग के साधन हैं। अत्यन्त शुभ भावों के प्राप्त होने पर, गुर्वादि के प्रसन्न होने के कारणों का सेवन करने पर, अनादि मल क्षय होजाता है। आत्मा के अन्दर रहा हुआ मल सर्वथा क्षीण होजाने पर मनुष्य स्वयं ईश्वर के तुल्य होजाता है इस में कोई शक नहीं ॥ १९—२२ ॥

अव्यक्तं कारणंयत्तत्त्रिगुणं प्रभवोप्ययम्। प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिंतकाः ॥ २३ ॥ सत्त्वरंजस्तमइति गुणाप्रकृति सम्भवाः। प्रकृतौ सूक्ष्मरूपेण तिलेतैलमिवस्थिताः ॥ २४ ॥

भा० टी०—अव्यक्त रूपी जो कारण है वह तीन रूप से प्रादुर्भूत होता है, उसी ही को पदार्थवेत्ता लोग प्रधान व प्रकृति के नाम से पुकारते हैं। सत्त्व, रज, तम यह प्रकृति के तीन गुण हैं वे सूक्ष्म रूप से प्रकृति में स्थित हैं जैसे तिलों में तेल रहता है ॥२३—२४॥

सुखं च सुख हेतुश्च समासात्सात्विकं स्मृतम्। राजसंतद्विपर्यासात् स्तम्भमोहौतुतामसौ ॥२५॥ सात्विक्युर्ध्वगतिप्रोक्ता तामसीस्यादधोगतिः ॥ मध्यमातुगतिर्यासा राजसी परिपठ्यते ॥२६॥

भा० टी०—सुख और सुख के हेतु जो पदार्थ हैं वह संक्षेप से सात्त्विक कहाते हैं। और दुःख तथा दुःख के हेतु राजस कहाते हैं। अभिमान मोह तथा आलस्य आदि

तामस हैं। सतोगुण की ऊर्ध्वगति, तमोगुण की अधोगति और रजोगुण की मध्यमा गति होती है ॥ २५--२६ ॥

तन्मात्रा पंचकचैव भूतपंचक मेवच। ज्ञानेन्द्रियाणि पंचैक्यं पंचकर्मेन्द्रियाणि च ॥ २७ ॥ प्रधानं बुद्ध्यहंकारं मनांसिच चतुष्टयम्। समासादेवमव्यक्तं सविकारमुदाहृतम् ॥ २८ ॥

भ० टी०—तन्मात्रा-शब्द स्पर्शादि पांच, पृथिव्यादि भूतपंचक, पांच ज्ञानेन्द्रिय तथा पांच कर्मेन्द्रिय, प्रधान, बुद्धि, अहंकार, मन, यह चार, सब मिल कर २४ संक्षेप में ये अव्यक्त और विकारी कहाते हैं ॥२७--२८॥

तत्कारण दशापन्न मव्यक्तमिति कथ्यते। व्यक्तं कार्यदशापन्नं शरीरादिघटादिवत् ॥ २९ ॥ यथाघटादिकं कार्यं मृदादेर्नातिभिद्यते। शरीरादितथाव्यक्त मव्यक्तान्नातिभिद्यते ॥३०॥ तस्माद्व्यक्तमेवैक्य कारणं करणानि च। शरीरं च तदाधारं तद्भोग्यं चापिनेतरत् ॥३१॥

भा० टी०—वह कारण दशा में प्राप्त होकर अव्यक्त कहाता है, और वही जब कार्य दशा में सूक्ष्म शरीरादि को प्राप्त होजाता है तो व्यक्त (प्रकट) नाम से बोला जाता है। जैसे मृतिका से घटादि नामान्तर होजाते हैं। जैसे घटादि कार्य मृतिका से भिन्न नहीं हैं वैसे ही प्राणियों के शरीरादि कार्य अव्यक्त से भिन्न नहीं हैं। अतएव अव्यक्त परमाणु ही समस्त कार्यों का मूलकारण है, शरीर (स्कन्ध) उस अव्यक्त प्रकृति का आधार और आत्मा का भोग्य है इस में अन्यथा नहीं ॥ २९-३१ ॥

भोक्ताभोग्यं प्रेरयिता मंतव्यं त्रिविधस्मृतम्। नातः परं विजानद्भिर्वेदितव्यंहि किंचन ॥ ३२ ॥ संयुक्तमेतद्द्वितयं क्षरमक्षर मेवच। व्यक्ताव्यक्तं विभर्तीशो विश्वंविश्व विमोचकः ॥३३॥

भा० टी०—भोगनेवाला जीव, भोग्य वस्तु शरीरादि और प्रेरणा करनेवाला ईश्वर, यह तीन हैं इनसे परे और किसी को जानने की कोई आवश्यकता नहीं। क्षर और अक्षर ये दोनों संयुक्त होकर व्यक्ताव्यक्त अवस्था को धारण करते रहते हैं। इन दोनों के अनादि बन्धनों को छुड़ा कर मुक्ति देनेवाला ईश्वर मीन भगवान् है ॥ ३२--३३ ॥

यच्छरीरमिदं प्रोक्तं पुरुषस्य ततः परम्। अशुद्धमवश्यं दुःख मध्रुवं न च सिध्यते ॥ ३४ ॥ विपदां बीजभूतेन पुरुषस्तेन संयुतः। सुखी दुःखी च मूढश्च भवति स्वेन कर्मणा ॥३५॥

भा० टी०—जो शरीर कहा जाता है वह पुरुष (आत्मा) से भिन्न है। और वह अवश्य दुःख रूप अशुद्ध और चंचल है। अगर आत्मा से अभिन्न होता तो इस में उपर्युक्त दोष कभी नहीं होते। विपत्ति के बीज रूप इस शरीर के साथ जीवात्मा का संयोग है। इसी कारण से यहजी व अपने कर्मानुसार सुखी दुःखी और मूढ़ आदि अवस्थाओं में दीखता है ॥ ३४–३५ ॥

अद्‌भिराप्लावितं क्षेत्रं जनयत्यङ्कुरंयथा। अज्ञानात्प्लावितं कर्म देहं जनयते तथा ॥ ३६ ॥ आगत्यागत्य शीर्णेषु शरीरेषु शरीरिणः। अत्यन्त वसति कापि न के नापि च लभ्यते ॥३७॥

भा० टी०—जिस प्रकार पानी देने पर खेत में से अंकुर निकल आते हैं, इसी प्रकार अज्ञानरूपी जल से भीजने के कारण देह से नवीन कर्म उत्पन्न होते रहते हैं। एक शरीर के जीर्ण होने पर यह प्राणी दूसरे शरीर में प्रवेश करता है। हमेशा एक ही शरीर में बसती कोई कहीं नहीं पा सकता ॥ ३६–३७ ॥

शरीरं त्रिविधंज्ञेयं स्थूलं सूक्ष्मं च कारणं। स्थूलं व्यापारदं प्रोक्तं सूक्ष्म मिन्द्रिय भोगदम् ॥३८॥ कारणं त्वात्मभोगार्थं जीवकर्मानुरूपतः। सुखं दुःखं पुण्यपापैः कर्मभिः फलमश्नुते ॥३९॥ तस्माद्धिकर्म रज्जवाहि बद्धोजीवः पुनः पुनः। शरीरत्रयकर्मभ्यां चक्रवद्भ्राम्यते सदा ॥४०॥ किमत्र बहुनोक्तेन पुरुषोदेहतः पृथक्। अनागताः अतीताश्च तनवोस्य सहस्रशः ॥४१॥

भा० टी०—शरीर तीन प्रकार के होते हैं १ स्थूल, २ सूक्ष्म, ३ कारण। स्थूल शरीर तो चलनादि क्रियाओं का हेतु है। सूक्ष्म शरीर ज्ञान तंतु रूप इन्द्रियों के सुख दुःख भोग को देता है। और तीसरा कारण शरीर, पुण्य पाप रूप क्रियाओं से किये गये सुख दुःख भोगने के लिये, जीव को स्वर्ग नरकादिक में पहुंचा देता है और नवीन कर्मों के परमाणुओं को आकर्षित कराता है, तिन्ही ही कर्मों के अनुसार यह आत्मा फलों को भोगता है। और उसी ही कर्म रूप रज्जु से बंधा हुआ यह जीव जगत् में बारंबार तीनों शरीर और

कर्मों के द्वारा चक्रवत् सदा भ्रमण करता रहता है। यहां अधिक लिखने और कहने से क्या होता है। आत्मा देह से भिन्न है और सदा अकेला अपने मूल रूप को न छोड़ कर, नये नये शरीरों को धारण करता रहता है। व्यतीत काल में हजारों शरीरों को छोड़ आया और अनागत काल में हजारों नये नये शरीरों को धारण करेगा ॥ ३८--४१ ॥

अतः स्मर्त्तानुभूतानामशेषज्ञेय गोचरः। अन्तर्यामीति वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते ॥४२॥ सर्वतत्र ससर्वत्र व्याप्यतिष्ठति शाश्वत। तथापि क्वापि केनापि व्यक्तमेष न दृश्यते ॥४३॥ नैवायं चक्षुषाग्राह्यो नापरैरिन्द्रियैरपि। मनसैव प्रदीप्तेन महानात्मावसीयते ॥ ४४ ॥

भा० टी०—अतएव जो वेद और वेदान्तों में अन्तर्यामी नाम से गाया जाता है और अनुभव की हुई वस्तुओं को जो याद रखता है, वही कर्म फल का भोक्ता और सम्पूर्ण पदार्थों को जाननेवाला आत्मा शरीर इन्द्रियादि से भिन्न है। और व्यक्तितया प्रत्येक प्राणी मात्र के सर्व शरीर में तथा जातितया सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर सदा रहता है, तोभी कोई इसे कहीं प्रकट नहीं देख पाता। नेत्र अथवा दूसरी इन्द्रियों से कोई इसे ग्रहण नहीं कर सकता। केवल योगाभ्यास द्वारा मन को शोध कर ही महात्मा लोग इसे जान सकते हैं ॥ ४२—४४ ॥

न च स्त्री न पुंमानेष नैव चापि नपुंसकः। नैवोर्ध्वं नापि तिर्यक् च नाधस्तान्न कुतश्चन ॥ ४५ ॥ अशरीरं शरीरेषु चलेषु स्थाणुमव्ययम्। सदा पश्यन्तितं धीरा नराः प्रत्ययमर्शनात् ॥४६॥ कालः स्वभावोनियति पूर्वकर्म पराक्रमः। पञ्चाप्येते समवायाः कारणानिसमष्टिनः ॥४७॥ इतिज्ञात्वानरः पुण्यं कुर्यात्पापं विवर्जयेत्। पुण्येन याति देवत्वमपुण्यो नरकं व्रजेत् ॥ ४८॥

इतिश्री मीनपुराणे प्रथमस्कन्धे कारणसृष्टि वर्णननाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

भा० टी०—यह जीव स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक नहीं है। इसका एक स्थान ऊपर नीचे या तिरछे में कहीं नहीं है। यह आत्मा शरीर में रहा हुआ भी अशरीरी है। चल वस्तुओं में रहने पर भी अचल और अविनाशी है। स्मृति संज्ञा चेतनादि प्रत्ययों के द्वारा धीर पुरुष अभ्यास कर के इसे सदा देख सकते हैं। और काल १ स्वभाव २ नियति ३ पूर्व कर्म ४ तथा पुरुषार्थ ५ इन पांचों समवायों को भी विद्वान् लोग जगत् के कारण बतलाते हैं।

और पुण्य पाप भी शरीर सुख दुःख स्वर्ग नरकादि के कारण हैं। पुण्य से देव और पाप से नरक स्थान मिलता है। इसीलिये विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि पाप कभी न करें सदा पुण्य ही करें। इस प्रकार यह श्रीमद्भागवत् मीन पुराण के प्रथम स्कन्ध में कारण सृष्टि नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥ ४५--४८ ॥

अब चौथा अध्याय शुरू होता है। कार्य सृष्टि अधिकार।

(सूत उवाच) सर्वानन शिरोग्रीवः सर्वभूत गुहाशयः। सर्वव्यापीच भगवान्ज्ञानरूप मीनेश्वरः ॥१॥ सर्वतः पाणिपादोयं सर्वतो क्षिशिरोमुखः। सर्वतः श्रुतिमांल्लोके सर्वमावृत्यतिष्टति ॥२॥ सर्वेन्द्रिय गुणाभासस्सर्वेन्द्रिय विवर्जितः। सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥३॥

भा० टी०—सर्व कार्यों का मूल कारण वह ज्ञान रूप मीनेश्वर सर्वतोमुख तथा सर्वतो शिर और सर्वतो ग्रीव है। तथा वह सर्वव्यापी भगवान् सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है। सभी ओर इस के हस्त, चरण, नेत्र, मुख और शिर हैं। सभी ओर उस के कान, नाक आदि अंगोपांग हैं। सर्व ही पदार्थों को वह अपने गुणों से ढक कर स्थित है। वह सर्व इन्द्रिय गुणों के प्रकाशक स्वरूप और सर्व इन्द्रियोंके काम गुणों से वर्जित है। वह सबका प्रभु ईश्वर सब को शरणदाता और सब का मित्र है ॥ १--३ ॥

अचक्षुरपियः पश्यत्यकर्णोपि शृणोतियः। सर्ववेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषंपरम ॥ ४ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानयमव्ययः। गुहायां निहितश्चापि जंतोरस्य महेश्वरः ॥५॥ वेदाहमेन मजरं पुराणं सर्वगं विभुम्। निरोधं जन्मनोयस्य वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥६॥ एकोपि त्रीनिमाल्लोकान् बहुधाशक्ति योगतः। विदधाति विचेत्यन्ते विश्वमादौमिनेश्वरः ॥७॥

भा० टी०—वह भगवान् विना नेत्र के ही देखता है। विना कान ही सुनता है। वह सब को जानता है। मगर उसको विना अतिशय ज्ञानी के दूसरा कोई नहीं जानसकता। वही सर्व सृष्टि का मूल कारण भगवान् मीनपुराण पुरुष है। वही सूक्ष्म से अति सूक्ष्म और महान् से अति महान् अविनाशी महेश्वर प्रत्येक प्राणी के हृदयाकाश में स्थित है। वेद इस सर्वव्यापी परमात्मा को जराहीन, पुराणवासी, सर्वगामी मानते हैं। और ब्रह्मवादी लोग कहते हैं कि उसी ही मीन भगवान् के ध्यान से जन्म, जरा, मरण आदि सब ही दुःखों का

निरोध होजाता है। आदि मीनेश्वर वह एक ही अपनी अनेकधा शक्ति के योग से इस त्रिलोकी को विधान कर के पीछा संहार कर देता है ॥ ४--७ ॥

एषएव परोदेवो विश्वकर्मा महेश्वरः। हृदये संनिविष्टंतं ज्ञात्वैवा मृत-मश्नुते ॥ ८ ॥ यदातमस्तं न दिवा न रात्रिर्नसद्प्यसत। केवलं मीनएवैको यतः प्रज्ञापुरातनी ॥ ९ ॥ नैनमूर्ध्वं न तिर्यक् च न मध्यं पर्यजिग्रहत। न तस्य प्रतिमा चास्ति यस्य नाम महद्यशः ॥१०॥

भा० टी०—यह मीन भगवान् ही परम देव है, विश्वकर्मा और महेश्वर भी यही है। अपने हृदय में इन्हीं को जान कर मनुष्य सर्व दुःखों से छूट कर मुक्ति पाता है। जब सम्पूर्ण दिन, रात, सत्, असत् कुछ भी नहीं था, तब केवल एक शुद्ध मीन ही था, जिससे यह पुरानी प्रज्ञा (ज्ञाती) चली आ रही है। ऊंचे, नीचे, तिरछे में कोई उस को ग्रहण नहीं कर सकता। और जिसके नामों का जप करनेवाले मनुष्यों की संसार में बड़ी प्रतिष्ठा होती है, उस परमात्मा की कोई मूर्त्ति नहीं बना सकता ॥ ८--१० ॥

स्वभाव वाचकान्सर्वान्वाच्यांश्चपरिणामयन्। गुणांश्च भोग्यभोक्तृत्वे तद्विश्व मधितिष्ठति ॥११ तेवै गुह्योपनिषदि गूढं ब्रह्म परात्परम्। ब्रह्मयोनिं जग-त्पूर्वं विदुर्देवा महर्षयः ॥१२॥ भावग्राह्य मनीहाख्यं भावाभावकरं शिवं। कलासर्ग करंदेवं यविदुस्तेजहुस्तनुम् ॥ १३ ॥ न तस्य विद्यते काय कारणं च न विद्यते। न तत्समोधिकश्चापि क्वचिज्जगति दृश्यते ॥ १४ ॥

भा० टी०—सर्व स्वभाव, वाचक, वाच्य और गुणों को परिणमन करने वाला वह ईश्वर भोग्य और भोक्तृ दोनों में अधिष्ठित होकर सारे जगत् में स्थित है। उपनिषदों में गूढ़, जगत् को उत्पन्न करनेवाले, परात्पर ब्रह्म उस ईश्वर को सब से प्रथम देवता और ऋषियों ने जाना था। वांच्छा चेष्ठा वर्जित, भाव अभाव अर्थात् संसार की उत्पत्ति और संहार करनेवाला, कला, समय का परिणाम और सर्ग जगत् की उत्पत्ति करनेवाला, भाव ग्राह्य अर्थात प्रेम से ग्रहण करने योग्य उस परमात्मा को जो जान लेते हैं वे फिर शरीर बन्धन में नहीं पड़ते। उनको कार्य और साधन की कोई आवश्यकता नहीं। जगत् में उस से समान और अधिक कोई नहीं दीखता। ११--१४ ॥

परास्य विविधाशक्तिः श्रुतौ स्वाभाविकी श्रुता। ज्ञानंबलं क्रियाचैव याभ्यो विश्वमिदं कृतम् ॥ १५ ॥ न चास्य जनिता कश्चिन्नव जन्म कुतश्चन। न जन्महेतवस्तद्वन्मलमायादि संज्ञकाः ॥ १६ ॥

भा० टी०—इस मीनेश्वर की स्वभाविकी पराशक्ति अनेक प्रकार से वेदों में सुनी जाती है। उन म ज्ञान, बल, कियादि मुख्य हैं। जिन्हीं से ये सारा संसार हुआ है। न तो कोई दूसरा इस को उत्पन्न करनेवाला है और न कभी इसका कहीं जन्म है। न मल और माया से मिले हुए जन्म आदि का इस में कोई कारण है ॥ १५--१६ ॥

सर्व भूताधिवासश्च साक्षी चेता च निर्गुणः। एकोवशी निष्क्रियाणां बहूनां विवशात्मनाम् ॥ १७ ॥ विश्वकृद्विश्ववित्स्वात्मयोनिज्ञः कालकृद्गुणी। प्रधान क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः पाशमोचकः ॥१८॥

भा० टी०—वह आत्मा रूप से सर्व प्राणियों में रहनेहारा, सब का साक्षी, चेतन और निर्गुण है। और वह एक ही बहुत से योगी तथा विवश आत्मा वाले निष्क्रिय पुरुषों का वश करनेहारा है। और वही संसार के कर्त्ता, संसार के ज्ञाता, जीवों के कर्म बीज के ज्ञाता, काल के नियमों का करनेहारा, सर्वगुणी प्रधान, क्षेत्रज्ञ, जगत्पति, गुणेश, कर्मपाश छुड़ानेवाला है ॥ १७—१८ ॥

यदास्यांतर्गतं विश्वं शश्वत्संसारमण्डलम्। सर्ग संहृति मुद्राभ्यां चक्रवत्परिवर्त्तते ॥१९॥ ब्रह्माहरिश्च रुद्रश्च तथान्यव सुरासुराः। यत्कृतां नियतिंप्राप्य प्रभवोनातिवर्तितुम् ॥ २० ॥

भा० टी०—जब यह सारा विश्वमण्डल ईश्वर के अंतर्गत होजाता है तब समय पाकर फिर उत्पन्न होता है। उत्पत्ति और प्रलय मुद्रा से यह काल, चक्र के समान शाश्वत घूमा करता है। ब्रह्मा, हरि, रुद्र तथा दूसरे देवता, जिस चक्र को प्राप्त होकर उस ईश्वर के नियम को उल्लंघन नहीं कर सकते ॥ १९—२० ॥

कालादुत्पद्यते सर्वं कालादेव विपद्यते। न काल निरपेक्षंहि कचित्किं च न विद्यते ॥ २१ ॥ भूतभव्यभविष्याद्यैर्विभज्य जरयन्प्रजाः। अतिप्रभुरितिस्वैरं वर्त्ततेति भयंकरः ॥२२॥ परस्त्रिकालादकलस्तएव परमेश्वरः। सर्ववित्त्रिगुणाधीशो ब्रह्मसाक्षात्परात्परः ॥२३॥

भा० टी०— उस मीनेश्वर की पराशक्ति काल से ही वस्तु उत्पन्न होती है। और काल से ही लय होजाती है। काल कभी कहीं निरपेक्ष नहीं रहता। यह काल रूप ईश्वर अपना भूत, भविष्य, वर्त्तमानादि विभाग करके सर्व प्रजा को जराग्रस्त करता हुआ स्वच्छन्द और भयंकर रूप से त्रिलोकी में वर्तता है। परन्तु वह मीनेश्वर त्रिकाल से अकल अर्थात् निर्गुण है। सब को जाननेवाला, तीनों गुणों अधीश्वर, पर से पर, साक्षात् ब्रह्म है ॥२१-२३॥

(ऋषयऊचुः) केन मानेन कालेस्मिन्नायुस्संख्याप्रकल्प्यते। संख्यारूपस्य कालस्य कः पुनः परमोवधिः ॥२४॥ (सूत उवाच) आयुषो त्रनिमेषाख्य माद्यमानं प्रचक्षते। संख्यारूपस्य कालस्य शान्त्यतीतकलावधिः ॥२४॥

भा० टी०—ऋषि बोले—इस काल में किस प्रमाण से आयु संख्या की कल्पना की जाती है। और संख्यारूप काल की परमावधि क्या है। सूतजी बोले—स्थूल आयु का प्रथम मान यहां निमेष आंख का झपकना है। संख्यावाले काल की शान्त्यतीत (अन्तवर्जित) सीमा है ॥२३-२४॥

अक्षिपक्ष्म परिक्षेपो निमेषः परिकल्पितः। तादृशानां निमेषाणां काष्ठा-दश च पञ्च च॥२५॥ काष्ठास्त्रिंशत्कालानाम कलास्त्रिंशन्मुहूर्त्तकः। मुहूर्त्तानामपि-त्रिंशदहोरात्रं प्रचक्षते ॥२६॥ त्रिंशत्संख्यै रहोरात्रैर्मासः पक्ष द्वयात्मकः। ज्ञेयंपित्र्य महोरात्रं मासकृष्ण सितात्मकः ॥२७॥ मासै स्तैरयनं षड्भिर्वर्षं द्वेचायनं मतम्। लौकिकेनैव मानेन अब्दोयं मानुषः स्मृतः ॥२८॥

भा० टी०—जितने समय में आंख झपकती है उतने काल को निमेष कहते हैं। ऐसे पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठा की एक कला, तथा तीस कला का एक मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्त का एक दिन रात होता ह। तीस दिन रात के दो पक्षों का एक मास होता है। कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्ष मिल कर एक महीने का पितरों का एक दिन रात होता है। ऐसे छः महीने का एक अयन और दो अयनों का एक लौकिक मान से मानुष वर्ष होता है॥ २५--२८॥

एतद्दिव्यमहोरात्र मितिशास्त्रस्य निश्चयः। दक्षिणं चायनं रात्रिस्तथो-दगयनं दिनम् ॥२९॥ मासस्त्रिंशदहोरात्रैर्दिव्यो मानुषवत्स्मृतः संवत्सरोपिदेवानां मासैर्द्वादशभिस्तथा ॥३०॥ त्रीणिवर्ष शतान्येवषष्टि वर्षयुतान्यपि। दिव्यः संवत्सरो ज्ञेयो मानुषेण प्रकल्पितः ॥३१॥

भा० टी०—मनुष्यों के (लौकिक) एक वर्ष का भुवलोक निवासी देवताओं का एक दिन रात होता है। ऐसा प्राचीन शास्त्रों का निश्चय है। लौकिक दक्षिणायन रात्रि और उत्त-रायण दिन है। देवों का एक महीना लौकिक तीस वर्षों का होता है। ऐसे द्वादश महीनों का एक देव वर्ष होता है। भारतीय तीनसौ साठ वर्षों में एक देव वर्ष प्रकल्पित है ॥२९--३१॥

दिव्ये नैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रवर्त्तते। चत्वारि भारतेवर्षे युगानिकवयो-विदुः ॥३२॥ पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते। द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येता निकृत्स्नशः ॥३३॥

भा० टी०—इस दिव्य (अलौकिक वर्ष से ही युग संख्या होती है। और कविलोग इस भारतवर्ष में चार युग कहते हैं। यथा—प्रथम कृत (सत) युग, द्वितीय त्रेतायुग, तृतीय द्वापर और चौथा कलियुग है ॥ ३२—३३ ॥

चत्वारितु सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्। तस्यतावच्छतीसन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥३४॥ इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषुचत्रिषु। एकापायेन-वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥३५॥

भा० टी०—इन में चार हजार देव वर्षों का सतयुग होता है। जिस के चारसौ वर्षों की सन्ध्या और चारसौ वर्षों का ही सन्ध्यांश होता है। युग के पूर्व में संध्या और अन्त में संध्यांश रहता है। वैसे ही दूसरे युगों में वर्ष संध्या और संध्यांश एकैकपाद कमती होते जाते हैं ॥ ३४—३५ ॥

एतद्द्वादश साहस्रं साधिकं च चतुर्युगम्। चतुर्युग सहस्रंयत्तकल्पइति कथ्यते ॥३६॥ चतुर्युगैक सप्तत्या मनोरन्तर मुच्यते। कल्पेचतुर्दशैकस्मिन्मनूनां परिवृत्तयः ॥३७॥

भा० टी०—इस प्रकार चारों युग संध्या और संध्यांशों के सहित बारह हजार वर्षों के होते हैं। ऐसी एक हजार चतुर्युगी का एक कल्प कहा जाता है। इकहत्तर चतुर्युगी का एक मन्वन्तर होता है। एक कल्प में चौदह मनु होते हैं ॥ ३६—३७ ॥

एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि च। स प्रजानि व्यतीतानि शतशोथ सहस्रशः ॥ ३८ ॥ अज्ञेयत्वाच्च सर्वेषा मसंख्येयतयापुनः। शक्योनैवानुपूर्व्याद्वैतेषां वक्तुं सुविस्तरः ॥३९॥

भा० टी०—इस क्रमयोग से प्रजा सहित कल्प और मन्वन्तर सहस्रों बीत चुके हैं। उन्हें कोई नहीं जान सकता, न उनकी संख्या कर सकता है। और क्रम से कोई इनका विस्तार भी नहीं कर सकता ॥३८—३९ ॥

कल्पोनाम दिवाप्रोक्तो ब्रह्मणोऽव्यक्त जन्मनः। कल्पानां वै सहस्रं च ब्राह्मं वर्षं मिहोच्यते ॥४०॥ वर्षाणामष्टसाहस्रं यत्तद्ब्रह्मणो युगम्। सवन युग साहस्र ब्रह्मणः पद्मजन्मनः ॥४१॥

भा० टी० अव्यक्त से प्रकट होनेवाले ब्रह्मा का एक दिन, एक कल्प का होता है। और एक हजार कल्प का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है। ऐसे आठ हजार वर्षों में ब्रह्मा का एक युग होता है। और ब्रह्मा के एक हजार युग का एक सवन काल होता है ॥४०—४१ ॥

सवनानांसहस्रं च त्रिगुणं त्रिवृतं तथा। कल्प्यते सकलः कालो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥ तस्यवै दिवसे यांति चतुर्दशपुरंदराः। शतानिमासे चत्वारि विंशत्यासहितानि च ॥४३॥ अब्दे पंच सहस्राणि चत्वारिंशच्छतानि च। चत्वारिं-शत्सहस्राणि पंचलक्षाणि चायुषि ॥ ४४ ॥

भा० टी०—ऐसे तीन हजार सवन का परमेष्ठी ब्रह्मा का समय और आयु है। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह इन्द्र हो जाते हैं। और एक महीने में चार सौ बीस इन्द्र होते हैं। तथा ब्रह्मा के एक वर्ष में पांच हजार चालीस इन्द्र होते हैं। और ब्रह्मा की सारी आयु में पांच लाख चालीस हजार इन्द्र होते हैं ॥ ४२-४४ ॥

विष्णोरेक दिनेधाता रुद्रस्य सगुणो विभुः। मीनेशस्यदिनेरुद्रस्सदाख्यस्य मयाश्रुतम् ॥४५॥ अहस्तस्यतुयासृष्टी रात्रिश्च प्रलयः स्मृतः। अहर्नविद्यतेतस्य न रात्रीतिधारयेत् ॥ ४६ ॥ एषोपचारः क्रियते लोकानां हितकाम्यया। प्रजाः प्रजानां पतयो मूर्त्तयश्च सुरासुराः ॥ ४७ ॥

भा० टी०—ब्रह्मा विष्णु के एक दिन पर्यन्त रहते हैं। और रूद्र के एक दिन पर्यन्त सगुण विष्णु की स्थिति है। मीनेश्वर के एक दिन तक रुद्र की स्थिति है जिसको सत् कहते हैं ऐसा हमने सुना है ब्रह्मा के दिन में सृष्टि और रात्रि में प्रलय होती है परन्तु उस मीनेश्वर परमात्मा को दिन रात कुछ नहीं है। यह काल का व्यवहार लोगों के हित की इच्छा से किया जाता है। प्रजा तथा प्रजा के पति मनु और सुर असुर आदि सभी मूर्ति मान पदार्थ, काल के आधीन है ॥ ४५-४७ ॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च महाभूतानि पंच च। तन्मात्राण्यथ भूतादिर्बुद्धिश्चसह दैवतैः ॥ ४८ ॥ अहस्तिष्ठंतिसर्वाणि परमेशस्यधीमतः ॥ अहरन्तेप्रलीयंतेरात्र्यन्ते विश्व संभवः ॥ ॥ ४९ ॥

भा० टी०—इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के अर्थ, पंच-महाभूत, पांच तन्मात्रा, भूतादि प्राणी, बुद्धि आदि और उनके देवता, ये सब उस बुद्धिमान परमेश्वर के दिन भर रहते हैं और दिन के अन्त में लय हो जाते हैं। तथा रात्रि के अन्त में सारा विश्व उत्पन्न होजाता है ॥४८-४९॥

(ऋषयऊचुः) किंतत्प्रथमसंभूतं केनेदमखिलंततम्। केनवापुनरेवेदंग्रस्यते पृथुकुक्षिणा ॥ ५० ॥ सूतउवाच:) शक्तिः प्रथम सम्भूता शांत्यतीतदोत्तरा । ततोमायाततोऽव्यक्तमीनाच्छक्ति मतः प्रभोः ॥ ५१ ॥ शान्त्यतीतपदंशक्तेस्ततः शान्तिपदक्रमात्। ततोविद्यापदंतस्मात्प्रतिष्ठापद संभवः॥ ५२ ॥ निवृत्तिपदंमुत्पन्न प्रतिष्ठापदतः क्रमात्। एव मुक्तासमासेन सृष्टिरीश्वर प्रेरिता ॥ ५३ ॥

भा० टी०—ऋषिगण बोले-पहले क्या उत्पन्न हुआ, और किससे यह जगत् विस्तृत है। और अन्त में किसकी महा कोख में यह प्रवेश कर जाता है । सूतजी बोले-जिससे आगे शान्त्यतीतपद है एसी प्रथम शक्ति उत्पन्न हुई। फिर माया और उससे आगे शक्तिमान् मीन प्रभु से अव्यक्त प्रकृति उत्पन्न हुई, प्रथम उत्पन्न भई शक्ति से परे (पहिले) शान्त्यतीतपद है । उसके आगे शान्तिपद, फिर विद्यापद, उससे आगे प्रतिष्ठापद है। और प्रतिष्ठापद के आगे निवृत्तिपद है। यह संक्षेप से ईश्वर प्रेरित सृष्टि पूर्व वर्णन की ॥५०-५३॥

कलाभिः पंचभिर्व्याप्तं तस्माद्विश्वमिदं जगत्। अव्यक्तं कारणं यत्तदात्म-नासमनुष्ठितम् ॥ ५४ ॥ महादादिविशेषान्तं सृजतीत्यपि संमतम् । किंतु तत्रापि कर्तृत्वं नाव्यक्तस्य न चात्मनः ॥ ५५ ॥

भा० टी०—यह जगत इन पांच कलाओं से व्याप्त है । अतएव जो अव्यक्त कारण है वह आत्मा से अधिष्ठित है । अर्थात् सुषुप्ति दशा में भी आत्मा के साथ में कुछ अत्यन्त सूक्ष्मकर्म परमाणु रहते हैं । महत्से लेकर विशेषतक उत्पत्ति होती है, किंतु उसमें अव्यक्त और जीव का स्वभाविक कर्तृत्व नहीं है। ५४-५५ ॥

अचेतनत्वात्प्रकृते रज्ञत्वात्पुरुषस्य च । प्रधानपरमाणवादि यावत्किंचद चेतनम् ॥ ५६ ॥ तत्कर्तृकंस्वयंदृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना। जगच्च कर्तृसापेक्षं कार्यं सावयवं यतः ॥ ५७ ॥

भा० टी०—क्योंकि उस अवस्था में जीव अज्ञानी है और प्रकृति, प्रधान, परमाणु आदि जो कुछ भी है सब अचेतन है वह कुछ भी नहीं कर सकते। अतएव विद्वानों ने अन्य कारणों के बिना उस बुद्धिमान कर्त्ता को स्वयं देखा है। क्योंकि-जगत् कार्य और सावयव होने से ही कर्तृं सापेक्ष है ॥ ५६-५७ ॥

तस्माच्छक्तस्स्वतन्त्रोयः सर्वशक्तिश्च सर्ववित। अनादि निधनश्चायं महदै-श्वर्य संयुतः ॥ ५८ ॥ सएव जगतः कर्त्ता मीन देवो महेश्वरः। पाता हर्ता च सर्वस्यततः पृथगन्वयः ॥ ५९ ॥

भा० टी०—इस कारण जो समर्थ, स्वतन्त्र, सर्व शक्तिमान्, सर्वज्ञ, अनादि निधन, और सदा महान् एश्वर्य संयुक, कोई जरूर है और उसीको ईश्वर कहते हैं। वही जगत्का कर्त्ता मीन देव महेश्वर है। सबका पालक,सबका हर्ता, और वह सबसे पृथक है ॥५८-५९॥

यावदादि समारंभो यावचःप्रलयो महान्। तावद्प्येति सकलं ब्रह्मणः शरदां शतम् ॥ ६० ॥ परमित्यायुषोनाम ब्रह्मणोऽव्यक्त जन्मनः। तत्पराख्यं तदर्द्धं च परार्द्धमभिधीयते ॥ ६१ ॥

भा० टी०—जिस समय से सृष्टि कार्य प्रारंभ होता है और जिस समय के अन्त में महा प्रलय हो जाती है तब तक ब्रह्मा के सौ वर्ष बीत जाते हैं। पर, यह अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा की आयु का नाम है और जो उसके आयु का पहला आधा भाग है उसको परार्द्ध कहते हैं॥६०-६१॥

परार्द्धद्वय कालान्ते प्रलये समुपस्थिते। अव्यक्त मात्मनः कार्य मादाया-त्मनितिष्ठति ॥ ६२ ॥ आत्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रति संहृते। साधर्म्येणाधि-तिष्ठते प्रधानपुरुषा वुभौ ॥ ६३ ॥

भा० टी०—जब दो परार्द्ध बीत जाते हैं। तब ब्रह्मा की आयु समाप्त हो जाती है। और यह अव्यक्त (सूक्ष्म) आत्मा कार्य को लेकर आत्मा में (ब्रह्मा या सुषुप्तावस्था में) स्थित हो जाता है। जब यह जगत् आत्मा में स्थित होकर विकार वर्जित हो जाता है, तब प्रधान और पुरुष ये दोनों भी साधर्म से स्थित हो जाते हैं ॥ ६२-६३ ॥

प्रभातायांतु शर्वर्यां प्रधान पुरुषा वुभौ। प्रविश्यक्षोभयामास माया योगान्मीनेश्वरः ॥ ६४ ॥ पुरुषाधिष्ठितात्पूर्वम व्यक्तादीश्वराज्ञया। बुध्याद्योविशे-

षान्ताविकाराश्चाभवन्क्रमात॥ ६५॥ततस्तेभ्यो विकारेभ्यो रुद्रो विष्णुः पितामहः कारण त्वेन सर्वेषां त्रयोदेवाः प्रजज्ञिरे ॥ ६६ ॥

भा० टी० – प्रलय रात्री व्यतीत होने पर माया योग से परमात्मा, प्रधान और पुरुष दोनों में प्रविष्ट होकर उनको क्षोभित करते हुए फिर ईश्वर की ही आज्ञा से सब में प्रथम पुरुष अधिष्ठित अव्यक्त से, बुद्धि आदि क्रम से, विशेष पर्यन्त विकार उत्पन्न हुए। फिर उन बिकारों से सगुण रुद्र, विष्णु और पितामह (ब्रह्मा) जगत् के कारणरूप तीन देवता उत्पन्न हुए ॥ ६४-६६ ॥

सृष्टि स्थिति लयाख्येषु कर्मसुत्रिषु हेतुताम् । प्रभुत्वेन सदैतेषां प्रसिदीत मीनेश्वरः ॥ ६७॥ कल्पान्तरे पुनस्तेषामस्पर्द्धा बुद्धि मोहिनाम् । सर्ग रक्षालया चारप्रत्येकं प्रददौचसः ॥ ६८ ॥ एतेपरस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् । परस्परेण वर्द्धन्ते परस्परमनुव्रताः ॥६९ ॥

भा० टी०—उत्पत्ति, पालन, लय, क्रमसे इन तीनों कर्मो में हेतु रूप यह तीन देव होते हैं। इन रुद्रादि के प्रभुत्व से भगवान् मीनेश्वर प्रसन्न होते हैं । कल्पान्तर में फिर भी बुद्धि और मोह की अस्पर्द्धा को धारण करने वाले इन तीनों देवों को परमेश्वर उत्पत्ति, रक्षा, और लय स्वरूप तीन शक्तियां प्रदान करते हैं। संगठन शक्ति को धारण करने वाले ये तीनों देव एक दूसरे से उत्पन्न होते हैं। आपस में एक दूसरे की शक्ति को धारन करते हैं परस्पर वृद्धि पाते हैं तथा एक दूसरे के अनुयायी होकर रहते हैं ॥ ६७-६९ ॥

क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते । नानेनतेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते ॥ ७० ॥ मूर्खा निन्दन्ति तान्वाग्भिः संरंभाभि निवेशिनः। यातुधाना भवंत्येव पिशाचाश्च न संशयः ॥ ७१ ॥ मीनो गुणत्रया तीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वरः। सकलस्सकलाधार शक्ते रुत्पत्ति कारणम् ॥ ७२ ॥

भा० टी०-कहीं ब्रह्मा, कहीं विष्णु, कहीं रुद्र की प्रशंसा होती है। इससे उनका एश्वर्य कुछ न्यूनाधिक नहीं होता। जो मूर्ख मनुष्य होते हैं वह हठाग्रहवश इन्हों में से किसी देव को एक दूसरे से न्यूनाधिक कह कर इनकी वाणी द्वारा निंदा करते हैं। निस्संदेह वह अल्पज्ञानी राक्षस और पिशाच होते हैं । और मीन भगवान तो तीनों गुणों से पर ब्रह्मादि चार व्यूह स्वरूप, सर्वात्मक, सकला धार शक्ति की उत्पत्ति के मूल कारण महेश्वर हैं ॥ ७०-७२ ॥

प्रधानात्प्रथमंजज्ञे बुद्धि ख्यातिमतिर्महान् । महत्तत्त्वस्य संक्षोभादहंकारस्त्रिधाऽभवत् ॥ ७३ ॥ अहंकारश्च भूतानि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च । वैकारिकादहंकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तुसात्विकः ॥ ७४ ॥

भा० टी०—प्रधान से पहले बुद्धि, ख्याति, मति और महान् उत्पन्न हुए। और महत्व के क्षोभ से तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकार से पंच महाभूत, तन्मात्रा और इन्द्रियां उत्पन्न हुईं। तथा इन्द्रियां उस अहंकार के प्रथम सतो गुणी विकार से उत्पन्न होने के कारण सात्त्विक कहाईं ॥ ७३-७४ ॥

वैकारिकः ससर्गस्तु युगपत्संप्रवर्तते। बुद्धीन्द्रियाणि पंचैव पंच कर्मेन्द्रियाणि च ॥७५॥ एकादशं मनस्तत्र स्व गुणेनो भयात्मकम् ॥ तमोयुक्तादहंकाराद्भूततन्मात्र संभवः ॥ ७६ ॥ भूता नामादि भूतत्वाद्भूतादि कथ्यते तुसः। भूतादेः शब्द मात्रंस्यात्तत्रचाकाश सभवः ॥ ७७ ॥

भा० टी०—वह सर्व वैकारिक सृष्टि एक साथ ही प्रवर्त्त होती है। बुद्धि आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय तथा ११ वाँ मन ये सब सत्वरज युक्त होने से उभयात्मक है, और तमोयुक्त अहंकार से पांच भूत, तथा तन्मात्रा होती है। भूतों का आदि भूत होने से वह तन्मात्र भूतादि कहाता है। भूतादि अहंकार से तदात्मक शब्द मात्रा होती है और उससे आकाश होता है ॥ ७५-७७ ॥

आकाशात्स्पर्श उत्पन्नः स्पर्शाद्वायुसमुद्भवः। वायोरूपंततस्तेज स्तेजसोरससंभवः ॥ ७८ ॥ रसादापस्समुत्पन्नास्तेभ्योगन्ध समुद्भवः। गन्धाच्च पृथिवी जाता भूतेभ्योन्यच्चरा चरम् ॥ ७९ ॥

भा० टी०—आकश से स्पर्श और स्पर्श से वायु हुआ। वायु से रूप रूप से तेज और तेज से रस हुआ। रस से जल जल से गन्ध और गन्ध से पृथ्वी हुई, इस प्रकार पंच महाभूतों से सब चराचर उत्पन्न हुए ॥ ७८-७९ ॥

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च। महदादि विशेषान्ताह्यण्डमुत्पादयन्तिते ॥ ८० ॥ तत्र कार्यं च करणं संसिद्धं ब्रह्मणोयदा। त दंडेसु प्रवृद्धोऽभूतत्क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥ ८१ ॥ सवैशरीरी प्रथमः सवैपुरुष उच्यते। आदि कर्ता सभूतानांब्रह्मा ग्रेसमवर्तत ॥ ८२ ॥

भा० टी०—पुरुष (जीव) के अधिष्ठित होने के कारण और अव्यक्त के अनुग्रह से महत्से लेकर विशेष पर्यंत यह सब अण्ड को उत्पन्न करते हैं। जब ब्रह्म का कार्य और कारण सिद्ध हुआ तब इस अण्ड में ब्रह्म संज्ञा वाला क्षेत्रज्ञ वृद्धि को प्राप्त हुआ। यही प्रथम शरीरी और उसीको पुरुष कहते हैं। वही प्राणियों के आदि कर्त्ता ब्रह्मा सबसे पहिले उत्पन्न हुए ॥८०-८२॥

तस्येश्वरस्या प्रतिमा ज्ञान वैराग्य लक्षणा। धर्मैश्वर्य करी बुद्धिर्ब्राह्मी यज्ञेऽभिमानिः ॥ ८३ ॥ अव्यक्ताज्जायतेतस्य मनसा यद्यदीप्सितम्। वशी कृतत्वात्त्रैगुण्यात्सापेक्षत्वात्स्वभावतः ॥ ८४ ॥

भा० टी०—उस सृष्टि कर्ता अभिमान युक्त ब्रह्मा के, उपमार हित, ज्ञान वैराग्य लक्षण युक्त, धर्म और ऐश्वर्य करने वाली, ब्रह्म सम्बन्धी बुद्धि उत्पन्न हुई। तीनों गुणों को वशी किये हुए ब्रह्मा को मन द्वारा अव्यक्त से जो कुछ इच्छा उत्पन्न होती है वह स्वभाविकी और त्रिगुण सापेक्ष है ॥ ८३-८४ ॥

त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्त्तते। सृजते ग्रसते चैव वीक्षते चत्रिभिस्स्वयम् ॥ ८५ ॥ चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वेचान्तकस्स्मृतः। सहस्रमुर्द्धा पुरुषस्तिस्त्रोवस्थाः स्वयंभुवः ॥ ८६ ॥ सत्त्वंरजश्च ब्रह्मा च कालत्वेचतमोरजः। विष्णुत्वे केवलंसत्त्वं गुणवृद्धिस्त्रिधाविभौ ॥ ८७ ॥

भा० टी०—वह ब्रह्मा अपने आत्मा को तीन प्रकार से विभक्त करके, त्रिलोकी में प्रवृत्त होता है। और इन्हीं तीन गुणों से, उत्पत्ति, लय, और पालन करता है। सृष्टि कर्म में चतुर्मुख, संहार में रुद्र, और पालन में वह सहस्र शिर पुरुष, इस प्रकार तीन अवस्था में स्वयंभू रहते हैं। ब्रह्मत्व में सत्वगुण और रजोगुण, कालत्व में तम और रज है। विष्णुत्व में केवल सत्वगुण रहता है, इस प्रकार गुण वृद्धि तीन प्रकार की है ॥ ८५-८७ ॥

ब्रह्मत्वे सृजते लोकान्कालत्वे संक्षिपयत्यपि। पुरुषत्वेऽत्युदासीनः कर्म च त्रिविधं विभोः ॥ ८८ ॥ आदि त्वादादि देवोऽसा वजातत्वादजः स्मृतः। पाति यस्मात्प्रजाः सर्वः प्रजापतिरितिस्मृतः ॥ ८९ ॥

भा० टी०—ब्रह्मत्व में लोकों की रचना होती है। कालत्व में संहार होता है। पुरुत्व में व्यापार रहित, इस प्रकार उस विभु के तीन प्रकार के कर्म हैं। सृष्टि के आदि में होने से यह आदि देव है। अजन्मा होने से अज कहलाता है। और प्रजाकी रक्षा करने से यह प्रजा पति कहलाता है ॥ ८८-८९ ॥

हिरण्मयस्तु योमेरु स्तस्योल्वंसु महात्मनः। गर्भोदकं समुद्राश्च जरायुश्चापि पर्वताः ॥ ९० ॥ तस्मिन्नंडेह्विमेलोका अन्तर्विश्वमिदं जगत्। चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सहवायुना ॥ ९१ ॥

भा० टी०—सुवर्ण का जो मेरु पर्वत है वही उस महात्मा का गर्भाशय है। गर्भ का जल समुद्र और पर्वत जरायु हैं। इस अंड में यह सब लोक रहते हैं। और ग्रह नक्षत्र सहित चन्द्रमा सूर्य तथा वायु सहित समस्त विश्व इसी के अन्तर में स्थित है ॥ ९०-९१ ॥

अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोण्डंसमावृतम्। आपोदश गुणेनैव तेजसा बहिरावृताः ॥ ९२ ॥ तेजोदशगुणेनैव वायुना बहिरावृतम्। आकाशेनावृतोवायुः। खचभूतादिनावृतम् ॥ ९३ ॥ भूतादिर्महतात्तद्वदव्यक्तेनावृतोमहान्। एतैरावरणैरंडं सप्तभिर्बहिरावृतम् ॥ ९४ ॥

भा० टी०—यह अंड बाहर दशगुणा जल से समन्तात् व्याप्त है। और जल से। दशगुणा तेज से व्याप्त है। तेज से दशगुणा वायु से आवृत है आगे आकाश से वायु ढका हुआ है और आकाश पंचभूतों से वेष्टित है। भूतादि महान् से और महान्प्रकृति से व्याप्त है। इस प्रकार यह सारा ब्रह्मांड प्रकृति के सात आवरणों से व्याप्त है। ॥ ९२-९४ ॥

एतदावृत्त्यचान्योन्यमष्टौप्रकृतयः स्थिताः। सृष्टिपालनविध्वंस कर्मकर्त्र्यो-द्विजोत्तमाः ॥ ९५ ॥ एवंपरस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्। आधाराधेयभावेन विकारास्तुविकारिषु ॥ ९६ ॥ कूर्मांगानियथापूर्वं प्रसार्य्य विनियच्छति। विका-रांश्चतथाव्यक्तंसृष्टाभूयोनियच्छति ॥ ९७ ॥

भा० टी०—इस प्रकार यह आठ प्रकृति परस्पर सापेक्ष हैं। हे द्विजोत्तमो यही सृष्टि की उत्पत्ति,पालन और संहार करते हैं। और यही परस्पर प्रादुर्भूत होकर परस्पर जगत को धारण करते हैं। आधार आधेय भाव से वे विकार विकारियों में कछुये के शरीर के समान फैलाते और सकोड़ते हैं। यही व्यक्त (प्रगट) संपूर्ण विकारों को उत्पन्न करके फिर संहार कराता है ॥ ९५-९७ ॥

अव्यक्त प्रभवंसर्व मानुलोम्येन जायते। प्राप्तेप्रलयकालेतुप्रातिलोम्येनु लीयते ॥ ९८ ॥ गुणाः कालवशादेव भवंति विषमाः समाः। गुणसाम्येलयोज्ञेयो वैषम्येसृष्टिरुच्यते ॥ ९९ ॥

भा० टी०— यह सब जगत पूर्वोक्त क्रम से उत्पन्न होकर अव्यक्त से ही प्रगट होता है। प्रलयकाल की प्राप्ति में प्रतिलोम प्रकार से लय हो जाता है। काल के वश से ही गुण विषम और सम होते हैं। गुणों के साम्य में लय और विषमता में सृष्टि होती है॥ ९८-९९॥

तदिदंब्रह्मणोयोनि रेतदंडंघनंमहत् । ब्रह्मणः क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ १०० ॥ इतीदृशानामण्डानां कोट्योज्ञेयाः सहस्रशः । सर्वगत्वात्प्रधानस्यतिर्य्यगूर्ध्वमधः स्थिताः ॥ १०१ ॥

भा० टी०—यही ब्रह्मा का उत्पत्ति स्थान, कारण, घन, अंड है। ब्रह्मा का क्षेत्र (आधार) होने से इसी को, ब्रह्माक्षेत्रज्ञ भी कहते हैं। प्रधान के सर्वगत होने से इस प्रकार ऊँचे नीचे तिरछे में सहस्रों कोटी अंड स्थित हैं। १००-१०१ ॥

वर्षाऽसंख्य सहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम् । काल कर्म स्वभावस्थो जीवोजीवमजीवयत् ॥१०२॥ प्रारब्धचण्डनृत्येषु ततःप्रलयवारिषु । ब्रह्मानारायणो भूत्वा सुष्वाप सलिलेसुखम् ॥ १०३ ॥ आपोनाराइति प्रोक्ता आपोवैनरसूनवः । अयनंतस्यतायस्मात्तेन नारायणः स्मृतः ॥ १०४ ॥

भा० टी०—काल कर्म और स्वभावस्थित जीव (मीनेश्वरकी सचेतनात्मक शक्ति) ने असंख्य सहस्र वर्षों के अनन्तर जलस्थित उस तत्त्वमय निर्जीव अंड को सजीव किया और प्रलय जल के तीक्ष्णनृत्य करने पर ब्रह्मा, नारायण रूप में मिल कर, सुख से जल में शयन कर गये। जलों को नार कहते हैं। मनुष्य का अवतार, विष्णु, व सृष्टि का बीज भी जल ही है। जल ही है उस ब्रह्म के रहने का स्थान, इसी से उसे नारायण कहते हैं॥१०२-१०४॥

सएवपुरुषस्तस्मादण्डंनिर्भिद्यनिर्गतः । सहस्रोर्वंघ्रिबाह्वक्षः सहस्रानन शीर्षवान ॥ १०५ ॥ यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयन्ति मनीषिणः । कट्यादिभिरधः सप्तसप्तोर्ध्वंजघनादिभिः ॥ १०६ ॥

भा० टी०—उस महान् अंड को फोड़ कर सहस्र ऊरु, सहस्र पाद, सहस्र बाहु, सहस्र-नेत्र, एवं सहस्र शिर वाला वही विराट् पुरुष निर्गत हुआ। बुद्धिमान् चतुर पुरुष उसी विराट् पुरुष के कटि देश से लेकर नीचे के सात अंगों में अतल आदि नीचे के सात लोकों की और जघनादि ऊपर के सात प्रदेशों में भू आदि सात लोकों की कल्पना करते हैं॥ १०५-१०६॥

तत्कट्यांचातलंक्लृप्त मुरुभ्यांवितलंविभोः। जानुभ्यांसुतलंशुद्धम्। जंघाभ्यां-सुतलातलम्॥ १०७॥ महातलंतु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यांरसातलम्। पातालंपादतलत इति लोकमयःपुमान्॥ १०८॥

भा० टी०—कटि देश में अतल लोक, ऊरु देश में वितल लोक, जानुओं में सुतल लोक, और जंघाओं में तलातल लोक कल्पित है। गुल्फ देश में महातल, प्रपद में रसातल एवं पादतल में पाताल है। इस प्रकार विराट् पुरुष के नीचे के अंगों में लोकों की कल्पना है॥ १०७-१०८।

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्यनाभितः। हृदास्वर्लोक उरसा महर्लोक महात्मनः॥ १०९॥ ग्रीवायां जनलोकश्च तपोलोकः स्तनद्वयात्। मूर्द्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः॥ ११०॥ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोस्य नाभितः। स्वर्लोकः कल्पितोमूर्ध्ना इति वालोक कल्पना॥ १११॥

भा० टी०—पैरों में भूतललोक, नाभि में भुवर्लोक, हृदय में स्वर्ग लोक, और वक्ष स्थल में महर्लोक है। ग्रीवा में जन लोक, दोनों स्तनों में तप लोक, ललाट में सत्य लोक, एवं शिर में सनातन वैकुण्ठ लोक है। अथवा भूलोक चरणों में, भुवर्लोक नाभि में और स्वर्ग लोक शिर में, यों त्रिलोकी की कल्पना है॥ १०९-११०॥

पुरुषस्यमुखं ब्रह्मक्षत्रमेतस्य बाहवः। ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यांशूद्रोभ्यजायत॥ ११२॥ पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्ने नातिरोहति॥ ११३॥

भा० टी०—उस विराट् पुरुष का मुख ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय उसकी भुजा है, जंघा उसकी वैश्य है, और शूद्र उसके चरण हैं। जो यह वर्तमान जगत् है, जो अतीत जगत् और जो जो भविष्य जगत है, वह संपूर्ण पुरुष ही है। और जो प्राणियों के भोग्यान्न के निमित्त अपनी कारणावस्था को छोड़ कर कार्य दृश्यमान जगदवस्था को प्राप्त होता है और जो मुक्तेश्वर होकर कभी नहीं मरता॥ ११२-११३॥

चन्द्रमा मनसोजातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥ ११४॥ तस्माद्विराडजायत विराजो अधिपुरुषः। सजातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमि मथोपुरः॥ ११५॥

भा० टी०—इसके पहिले चन्द्रमा उस पुरुष के मन से उत्पन्न हुआ। चक्षुओं से सूर्य उत्पन्न हुआ। मुख से इन्द्रादि सतो गुणी देव उत्पन्न हुए। उस आदि पुरुष से विराट् याने ब्रह्मांड देह-जिसमें अनेक प्रकार की वस्तुएँ विराजमान होती हैं प्रकट हुआ। फिर उसी देह को अधिकरण करके उस देह का अभिमानी एक ही पुरुष (जीव) उत्पन्न हुआ, वह पुरुष देह से अतिरिक्त (भिन्न) रह कर ही देवतिर्यङ्क मनुष्यादि रूप में हुआ। इसके पश्चात् विभिन्न स्थान और सात धातुओं से पूर्ण शरीरों की रचना करता हुआ॥ ११४-११५

सर्गचिंतय तस्तस्यतदावै बुद्धि पूर्वकम्। प्रध्यान काले मोहस्तु प्रादुर्भूतस्तमोमयः॥ ११६॥ तमोमोहोमहामोहस्तामिस्त्रश्चान्ध संज्ञितः। अविद्या पंचमी चेषाप्रादुर्भूता महात्मनः॥ ११७॥

भा० टी०—इस के उपरान्त आदि में सृष्टि रचना की इच्छा से बुद्धि पूर्वक ध्यान के समय ब्रह्मा को तमोमय मोह की प्राप्ति हुई। इसके पश्चात् मोह महामोह तामिस्र अन्धतामिस्र और पंचमी अविद्या ये वस्तुएँ उस महात्मा से प्रादुर्भूत हुईं॥ ११६-११७॥

प्रथमोमहतः सर्गो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः सउच्यते॥ ११८॥ वैकारिकस्ततीयस्तु सर्गऐन्द्रियकः स्मृतः। इत्येष प्रकृतेः सर्गः संभूतोऽबुद्धिपूर्वकः॥ ११९॥

भा० टी०—परमेष्ठी ब्रह्म का पहला महान्सर्ग है। और दूसरा तन्मात्रा का भूतसर्ग कहाता है। तथा तीसरा वैकारिक ज्ञान कर्मेन्द्रिय रूप सर्ग है। ये अबुद्धि पूर्वक जड प्रकृति के सर्ग माने जाते हैं॥ ११८-११९॥

ततएकादशेवर्षे प्रारम्भ ब्रह्मणोह्ययम्। प्रगृह्यसर्व देवांशाञ्जीवांश्चाप्यखिलानपि॥ प्रद्युम्नरूपः स्वांगेषुबीजत्वेनासृजत्ततः॥१२०॥ मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वैस्थावराः स्मृताः। तिर्यक् स्रोतस्तुयः प्रोक्त स्तिर्यग्योनिः सपंचमः॥ १२१॥ पशु तिर्य्यक्वस्ति वृक्ष तृण गुल्मादयांखिलाः। जीवाः पुंस्त्रोविभेदेन। रोमभ्यानिः स्मृताइमे॥ १२२॥ ब्रह्मविंशतिवर्षेतुसृष्टिजोनानिरूपिता। एवंनानाविधैर्जीवैर्नानारूप धरैर्हरिः॥१२३॥

भा० टी०—इसके बाद ब्रह्मा के ग्यारह वर्ष प्राप्त होने पर सब देवताओं के अंश और जीवों को ग्रहण करके विष्णु के प्रद्युम्न रूप ने अपने अंगों में बीज रूप से सब की सृष्टि की। अर्थात् स्थावरों में बीज और जंगमों में वीर्य शक्ति उत्पन्न हुई। चौथा मुख्य सर्ग है यहां

स्थावरजीव मुख्य जानना चाहिये। तिर्यक्स्रोत (वीर्य उद्गमन) जो कहा जाता है वह पांचवां तिर्यग्योनी सर्ग है। पशु, तिरछे चलने वाले जीव, पक्षी, वृक्ष, तृण, गुल्म आदि जो कुछ भी है वे स्त्री पुरुष के भेद वाले जीव प्रजापति के रोमों से प्रगट हुए हैं। इस प्रकार पूर्व निरूपण की हुई यह सर्व सृष्टि ब्रह्मा के २० वें वर्ष में हुई है। इस प्रकार अनेक जीवों के रूप में साक्षात् हरि मीन भगवान् ही हैं॥ १२०-१२३॥

तदूर्ध्वस्रोतसः षष्ठोदेवसर्गस्तुसस्मृतः। ततोर्वाक्स्रोतसांसर्गः सप्तमः सतुमा. नुषः॥ १२४॥ अष्टमोनुग्रहः सर्गः कौमारोनवमः स्मृतः। प्राकृताश्चत्रयः पूर्वेसर्गा-स्तेऽबुद्धिपूर्वकाः॥ १२५॥

भा० टी०— इनके उपरान्त छटा ऊर्ध्व स्रोत सर्ग है जो देव सर्ग कहा जाता है। इसके पश्चात् गुरुत्व के कारण नीचे चलने वालों के स्रोत की प्राप्ति हुई जो सातवां मनुष्यों का सर्ग है। आठवां प्राणियों को आहारादि अभीष्ट सम्पादन रूप अनुग्रह सर्ग हुआ। निरापराधी देह धारियों का अहित करने वाले पृथ्वी पर के दुष्ट प्राणियों को मारने के लिये नवमां कुमार नामक (मारणदेव) सर्ग हुआ। इन्हों में प्रकृति के किये हुए पहिले तीन सर्ग अबुद्धि पूर्वक कहलाते हैं॥ १२४-१२५॥

बुद्धिपूर्वंप्रवर्त्तन्ते मुख्याद्याः पंचवैकृताः। अग्रेससर्ज्ज वैब्रह्मामानसा-नात्मनः समान्॥ १२६॥ सनकं चसनन्दंच सनातनमथात्मभूः। सनत्कुमारंच मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः॥ १२७॥ तान्बभाषेस्वभूर्पुत्रान्प्रजाः सृजतपुत्रकाः। तन्नैच्छन्मोक्ष धर्माणो मीनध्यानपरायणाः॥ १२८॥

भा० टी०—आगे के पांच विकारी सर्ग बुद्धि पूर्वक प्रवृत्त होते हैं और इनके आगे ब्रह्मा अपने ही समान चार मानस पुत्रों को उत्पन्न करते हुए। उन्हों के नाम ये हैं-सनक, सनन्द सनातन और सनत्कुमार ये चारों मुनि निष्क्रिय और वीर्य को शिर में चढ़ाने वाले हुए। उन्हों से ब्रह्मा ने कहा पुत्रो प्रजा उत्पन्न करो! परन्तु मीन भगवान् के ध्यान में तल्लीन उन्होंने गृहस्थ सेवन नहीं चाहा॥ १२६-१२८॥

क्रोधंनिगृह्यमाणोपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः। सद्योऽजायतसन्मन्युः कुमारो-नीललोहितः॥ १२९॥ सवैरुरोदवेदानां पूर्वजो भगवान्भवः। नामानिकुरुमेधातः। स्थानानिचजगद्गुरो॥ १३०॥ धाता वाच। यद्ररोदीः सुरः श्रेष्ठ सोद्वेगइवबालकः। ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्नारुद्रइतिप्रजाः॥ १३१॥

भा० टी०—बुद्धि द्वारा क्रोध का निग्रह भी किया पर वह प्रजापति के दोनों भृकुटी के मध्य होकर शीघ्र ही एक नील लोहित वर्ण वाले कुमार के रूप में बाहर निकल पड़ा। वही सर्व देवों के पूर्वज कामदेव को मारने वाले भगवान् भव मारण देव हैं। उत्पन्न होते ही वह कुमार रोकर कहने लगा कि हे विधाता! हे जगत् गुरु! मेरा नाम करण करो और मुझे रहने को स्थान दो। ब्रह्माजी बोले-हे सुरश्रेष्ठ! उत्पन्न होते ही घबड़ायेहुए बालक के समान तुम रोने लगे। इस कारण प्रजागण तुमको रुद्र कहेंगे ॥ १२९-१३१ ॥

हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योमवायुरग्निर्जलंमही। सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैवस्थानान्यग्रेकृतानिमे ॥ १३२ ॥ मन्युर्मनुर्महिनसो महान्शिवऋतुध्वजः। उग्ररेताभवकालो वामदेवो धृतव्रतः ॥ १३३ ॥

भा० टी०—हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, और तप ये तुम्हारे स्थान हैं। जिनकी रचना तुम से प्रथम ही मैने करदी है। मन्यु, मीन, महीनस, महान्, शिव, ऋतुया ऋतुध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव, और धृतव्रत, ये तुम्हारे नाम हैं ॥ १३२-१३३ ॥

धीर्वृत्तिरुशनोमाचनियुत्सर्पिरिलाम्बिका। इरावतीसुधादीक्षारुद्राण्योरुद्रतेस्त्रियः ॥ १३४ ॥ गृहाणैतानिनामानि स्थानानिचसयोषणः। एभिःसृजप्रजाबह्वीः प्रजानामसियत्पतिः ॥ १३५ ॥ इत्यादिष्टः सगुरुणाभगवान्नीललोहितः। सत्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ॥ १३६ ॥

भा० टी०—धी, धृतिया वृत्ती, उसना, उमा, नियति, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती सुधा दीक्षा और रुद्राणी, हे रुद्र! ये तुम्हारी स्त्रियां हैं। सहित स्त्रियों के इन नाम और स्थानों को ग्रहण करो, और प्रजाओं को उत्पन्न करो, क्योंकि तुम प्रजापति हो। इस प्रकार जगदगुरु ब्रह्मा की आज्ञा पाकर भगवान् नील रोहित अपने सत्त्व आकृति और स्वभाव के अनुरूप तीव्र तेज युक्त प्रजा उत्पन्न करने लगे ॥ १३४-१३६ ॥

ब्रह्मोवाच। अलंप्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम। मयासहदहंतीभिर्दिशश्चक्षुभिरुल्बणैः॥ १३७ ॥ अथाभिध्यायतः सर्गं दशपुत्राः प्रजज्ञिरे। भगवच्छक्तियुक्तस्यलोकसंतानहेतवः ॥ १३८ ॥ मरीचिरत्र्यंगिरसौपुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। भृगुर्वसिष्ठोदक्षश्चदशमस्तत्रनारदः ॥ १३९ ॥

भा० टी०—ब्रह्माजी बोले कि हे सुर श्रेष्ठ ! बस अब ऐसी प्रजा न उत्पन्न करो। क्योंकि ये सब अपने तीव्र नेत्रों से मेरे सहित दशों दिशाओं को जलाये देते हैं । इसके पश्चात् फिर भगवान् ब्रह्मा सृष्टि के लिये चिंता करने लगे । तब मीन भगवान् की शक्ति युक्त ब्रह्मा के शरीर से निम्न लिखित दस पुत्र उत्पन्न हुए । जिन से सृष्टि का विस्तार हुआ । मरीचि, अत्रि, अंगीरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और दशम नारदजी ॥१३७-१३९॥

उत्संगान्नारदोजज्ञे दक्षोंगुष्ठात्स्वयंभुवः । प्राणाद्वसिष्ठः संजातोभृगुस्त्वचि करात्क्रतुः ॥ १४० ॥ पुलहोनाभितोज्ञे पुलस्त्यकर्णयोर्ऋषि । अंगिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥ १४१॥ धर्मः स्तनाद्दक्षिणतोयत्रनारायणः स्वयम् । अधर्मः पृष्ठतोयस्मान्मृत्युर्लोकभयंकरः॥ १४२ ॥ हृदिकामोभ्रुवः क्रोधोलोभश्चाधरदच्छदात् आस्याद्वाक्सिन्धवोमेढ्रान्निर्ऋतिः पायोरघाश्रयः ॥ १४३ ॥ छायायाः कर्दमोजज्ञेदेवहुत्याः पतिः प्रभुः । मनसोदेहतश्चेदंजज्ञेविश्वकृतो जगत् ॥ १४४ ॥

भा० टी०—ब्रह्मा की गोद से नारदजी, अंगुष्ठ से दक्ष प्रजापति प्राण (श्वांस से) वशिष्ठ, त्वचा से भृगु, कर से क्रतु, नाभि से पुलह, कान से पुलस्त्य, मुख से अंगिरा ऋषि, नेत्र से अत्रि, मन से मरीचि उत्पन्न हुए । ब्रह्मा के दक्षिण स्तन से धर्म उत्पन्न हुआ । जिसमें स्वयं नारायण स्थित हैं । और अधर्म ब्रह्मा की पीठ से उत्पन्न हुआ जिससे लोकों की भयंकर मृत्यु होती है । फिर ब्रह्मा के हृदय से काम, भ्रकुटी से क्रोध, ओष्ठ से लोभ, मुख से वाक्य, मेढ़ देश से सिन्धु, और पायु देश से पाप का आश्रय निऋति ये सब उत्पन्न हुए । देव हुति के पति प्रजापति कर्दमजी ब्रह्मा की छाया से उत्पन्न हुए । इसी प्रकार ये सारा विश्व ब्रह्मा के मन और शरीर से उत्पन्न हुआ है ॥ १४०-१४४ ॥

कदाचिद्ध्यायतःस्रष्टुर्वेदाआसंश्चतुर्मुखात् । चातुर्होत्रकर्मतंत्रमुपवेदनयैः सह ॥ १४५ ॥ विद्यायोगपुराणानि धर्मशास्त्रमुखानिच । सर्वेभ्यएववक्त्रेभ्यःससृजेसर्वदर्शनः ॥ १४६ ॥ इति श्रीमद्भा० मी० प्रथमस्कं० कार्यसृष्टि० चतु० अ० ॥

भा० टी०—एक समय ब्रह्माजी विचार रहे थे कि ये सब लोक जैसे प्रथम थे वैसे ही मैं कैसे उत्पन्न करूँगा ? तब चारों मुखों से चार वेद उत्पन्न हुए । एवं चार प्रकार के अग्नि होत्र, यज्ञ विस्तार, चार उपवेद, न्याय शास्त्र, धर्म के आचरण मय चार चरण, चार आश्रम और उनकी वृत्तियां । सर्व दर्शन ब्रह्मा के चारों मुखों से उत्पन्न हुए ! तथा सर्व प्रकार

की विद्याएँ, सर्व योग, सर्व पुराण, और सर्व धर्म शास्त्र (स्मृतियां) ब्रह्माजी के चारों मुखों से ही प्रगट हुए ॥ १४५-१४६ ॥ इस प्रकार श्री मद्भागवत मीन पुराण के प्रथमस्कंध में यह कार्य सृष्टि सर्ग नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

॥ पंचम अध्याय प्रारंभ ॥ ऋषयऊचुः। देवानां दानवानांच गन्धर्वोरगरक्षसाम् । उत्पत्तिं विस्तरेणैव सूतब्रूहि यथा तथम् ॥ १ ॥ सूतउवाच । सृजन्तिमीनभूतानिदेवनर मुखानिच । विस्तराच्चयथा सर्वेकीर्त्यमानंनिबोधत ॥ २ ॥

भा० टी०—ऋषि गण बोले कि हे सूतजी अब हम से आप देव दानव गंधर्व नाग और राक्षसों की यथा तथ्य उत्पत्ति विस्तार से कहिये । सूतजी बोले देव मनुष्य आदि सर्व भूतों को मीन (विष्णु) भगवान् ही ब्रह्मा के नाम से उत्पन्न करते हैं वही सर्व विस्तार पूर्वक कहता हूँ सुनिये ॥ १-२ ॥

सोपिस्वयंभूर्भगवान्निसृक्षुर्विविधाप्रजाः । अपएवससर्जादौतासुवीर्यमवासृजत् ॥ ३ ॥ हिरण्यवर्णमभवत्तदंडमुदकेशयम् । तत्रजज्ञेस्वयं ब्रह्मास्वयंभूरितिविश्रुतः ॥ ४ ॥ हिरण्यगर्भोभगवानुषित्वापरिवत्सरम् । तदंडमकरोद्द्वैधं दिवंभूमिंचनिर्ममे ॥ ५ अधोर्ध्वप्रयुक्तानिभुवनानि चतुर्दशः । तयोः शकलयोर्मध्य आकाशमसृजत्प्रभुः ॥ ६ ॥

भा० टी०—विविध प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा वाले भगवान् ब्रह्मा ने कार्य सृष्टि के समय सब से पहिले पानी को उत्पन्न किया । और उसमें शरीर उत्पत्ति का कारण स्वरूप वीर्य छोड़ा । वही वीर्य सोने के वर्ण वाला अंडाकार होकर उदक के ऊपर तिरता रहा। उसी अंडे में स्वयं ब्रह्मा, जीव स्वरूप में उत्पन्न हुए इसी कारण से ब्रह्मा का प्रसिद्ध नाम स्वयंभु हुआ । हिरण्य गर्भ भगवान् ने उसमें असंख्य वर्षों तक रहकर उस अंडे के दो भाग कर दिये । जिन्हों में ऊपर के भाग से दिव और नीचे के भाग से भूमि का निर्माण हुआ है । फिर नीचे के भाग में सात एवं ऊपर के में सात सर्व विभाग मिल कर चौदह भुवनों की कल्पना हुई। तथा उन दोनों हिस्सों के बीच में प्रभु ब्रह्मा ने आकाश को सर्जा॥३-६॥

पयांसिचससर्जादौपर्जन्यंचससर्जह।ऋचोयजूंषिसामानि निर्ममेयज्ञसिद्धये ॥ ७ ॥ पुरुषोंडंविनिर्भिद्ययदासौसविनिर्गतः । तेननारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः ॥ ८ ॥ द्रव्यंकर्मच कालश्चस्वभावोजीवएवच । यदनुग्रहतः सन्तिनसन्तियदुपेक्षया ॥ ९ ॥

भा० टी०—पंचतत्व, काल, कर्म, प्रकृति, और जीव, उसी के अनुग्रह से अपने २ कार्यों का सम्पादन करते हैं। एवं उन्हीं की उपेक्षा से नष्ट हो जाते हैं। वही विराट् पुरुष उस अंडे को भेद कर जल सहित बाहर निकला। क्योंकि विराट पुरुष का नाम नर है। यह जल उसी नर से उत्पन्न हुआ, इसी से जल का नाम नार हुआ। पुरुष ने उसी जल को अपना-अयन नाम स्थान बनाया, इसी से उस पुरुष का नाम नारायण हुआ। उसी विराट् पुरुष ने आदि में दिव और भूमि के बीच आकाश में सूर्य की रश्मि द्वारा जल और मेघ को उत्पन्न किया, तथा यज्ञों की सिद्धि के लिये वेदत्रयनिर्माण किये ॥ ७-९ ॥

अधिदैवमथाध्यात्ममधिभूतमितिमुने। अथैकं पौरुषं वीर्यंत्रिधाभिद्यनतच्छृणु ॥ १० ॥ अन्तः शरीर आकाशात्पुरुषस्य विचेष्टतः । ओजः सहोबलंजज्ञेततः प्राणोमहानसुः ॥ ११ ॥ अनुप्राणन्तियं प्राणाः प्राणंतः सर्व जंतुषु । अपानंतमपानंति नरदेवमिवानुगाः ॥ १२ ॥

भा० टी०—उस एक ही पौरुष वीर्य के तीन भावों की उत्पत्ति कैसे हुई सो सुनो। अधिभूत-विषयरूप रसादि, अध्यात्म-चक्षुरादि इन्द्रिय, और अधि दैव-इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता सूर्यादि हुए। उस पुरुष के अन्तर में जो आकाश था उसके साथ उस पुरुष के क्रिया युक्त होने की चेष्टा होने से ओज (इन्द्रिय शक्ति) सह (मन की शक्ति) और बल (देह शक्ति) इन तीन शक्तियों का प्रकाश हुआ। तदन्तर इन तीनों शक्तियों का सूत्रधार और मुख्य अंश रूप प्राण प्रकाशित हुआ। इन सब का प्रभु तुल्य प्राण जब चेष्टा करता है तब सेवक तुल्य इन्द्रियाँ उसके पीछे २ कार्य में प्रवृत्त होती हैं। एवं उस प्राण की निवृत्ति होने पर निवृत्त हो जाती है ॥ १०-१२ ॥

प्राणेनक्षिपताक्षुत्तृडन्तराजायतेप्रभोः। पिपासतो जक्षतश्च प्राङ् मुखंनिरभिद्यत ॥ १३ ॥ मुखतस्तालु निर्भिन्नंजिह्वातत्रो-पजायते । ततोनानारसोजज्ञे जिह्वयायोधिगम्यते ॥ १४ ॥ विवक्षोर्मुखतोभूम्नो वह्निर्वाग्व्याहृतंतयोः। जलेवैतस्यसुचिरं निरोधः समजायतः ॥ १५ ॥ नासिकेनिरभिद्येतांदोधूयतिनभस्वति ॥ तत्रवायुर्गन्धवहोघ्राणोनसिजिघृक्षतः ॥ १६ ॥

भा० टी०—प्राण का संचार होने पर प्रभु विराट पुरुष के भूख और प्यास लगी तब भोजन व पान करने की इच्छा करने पर प्रथम उनके मुख उत्पन्न हुआ (प्रकृति व ईश्वर का बांधा हुआ यह नियम है कि कोई भी प्राणी जिस वस्तु की निरंतर ही इच्छा

रखता हो, कालान्तर में वही वस्तु उसको अवश्य मिल जाती है) फिर मुख से तालुजिह्वा और अनेक रस उत्पन्न हुए, जिह्वा से उन समग्र रसों का स्वाद लिया व जाना जाता है, फिर विराट् पुरुष ने कुछ बोलना चाहा तो उस मुख से वाक्य और उसके अधिष्ठता देवता अग्नि उत्पन्न हुए। पुरुष के जल में शयन के समय ये इन्द्रिय व इनके अधिष्ठाता देवता दोनों ही बहुत काल तक रुद्ध रहें। जब प्राण वायु अत्यन्त विचलित हुआ तब पुरुष के दोनों नासिका छिद्र उत्पन्न हुए, फिर जब गन्ध सूँघना चाहा तो नासिका से गन्ध और उसके देवता वायु की उत्पत्ति हुई ॥१३१६॥

यदात्मनि निरालोकमात्मानंचदिदृक्षतः निर्भिन्ने ह्यक्षिणी तस्य ज्योतिश्चक्षुर्गुण ग्रहः ॥ १७ ॥ बोध्यमानस्य ऋषिभिरात्मनस्तज्जिघृक्षतः । कर्णौचनिर्भिद्यतांदिशः श्रोत्रगुण ग्रहः ॥ १८ ॥ वस्तुनो मृदुकाठिन्यलघुगुर्वोष्ण शीतताम् । जिघृक्षत स्त्वङ्निर्भिन्नातस्यांरोममही रुहाः । तत्र चान्तर्बहिर्वातस्त्वचालब्ध गुणोवृतः ॥ १९ ॥

भा० टी०—यह प्रकाश हीन जगत्, विराट् पुरुष में प्रथम अवस्थि तथा, तदनन्तर विराट् पुरुष ने अपनी मूर्ति एवं अन्यान्य वस्तुओं के देखने की इच्छा की, तब उसके दो चक्षु और चक्षु के अधिष्ठाता देवता सूर्य तथा दर्शन इन्द्रिय उत्पन्न हुई, जिससे रूप का ग्रहण होता है। ऋषि गण वेद वाक्य द्वारा उस विराट् पुरुष को जगाने लगे, तब पुरुष ने सुनने की इच्छा की, उस समय दो कानों के छिद्र, श्रवणेन्द्रिय, और उसकी अधिष्ठात्री दिशाएँ उत्पन्न हुईं। अनन्तर पुरुष ने समग्र वस्तुओंकी कोमलता, कठिनता, लघुता, भारीपन, गर्मी और ठंढापन, ग्रहण करने की इच्छा की, तब रोम युक्त त्वचा (खाल) और त्वक् इन्द्रिय एवं उसका अधिष्ठता देवता वायु उत्पन्न हुआ, जो त्वचा के भीतर बाहर स्थित होकर स्पर्श रूप विषय को ग्रहण करता है ॥ १७-१९ ॥

हस्तौ रुरुहतुस्तस्य नानाकर्म चिकीर्षया । तयो स्तुबलमिन्द्रश्च आदानमुभयाश्रयम् ॥ २० ॥ गतिं जिगीषतःपादौरुरुहातेऽभिकामिकाम् । पद्भ्यांयज्ञः स्वयंहव्यंकर्मभि क्रियतेनृभिः ॥ २१ ॥

भा० टी०—जब पुरुष को विविध कर्म करने की इच्छा हुई तब दो हाथ निकले एवं हस्त इन्द्रिय और इन्द्र देवता उत्पन्न हुए। उन हाथों में आदान और प्रदानादि के आश्रयीभूत बल नामक शक्ति निवास करती है। ऐसे ही जब आदि पुरुष ने गमन करने की

इच्छा की, तब उसके दो पैर उत्पन्न हुए। यज्ञ रूपी विष्णु स्वयं उन दोनों पैरों के अधिष्ठाता देवता है। मनुष्यगण उसी गती नामक कर्म शक्ति के द्वारा यज्ञ तीर्थ यात्रादि कर्म सम्पादन करते हैं॥ २०-२१॥

निरभिद्यतशिश्नोवैप्रजानन्दामृतार्थिनः। उपस्थ आसीत्कामानां प्रियंतदुभयाश्रयम्॥ २२॥ उत्सिसृक्षोर्धातुमलंनिरभिद्यतवैगुदम्। ततः पायु स्ततोमित्र उत्सर्ग उभयाश्रयः॥ २३॥ आसिसृप्सोः पुरः पुर्यानाभि द्वारमपानतः। तत्रापानस्ततोमृत्युः पृथक्त्वमुभयाश्रयम्॥ २४॥

भा० टी०—पुरुष ने जब पुत्र स्त्री संभोग और स्वर्गादि की इच्छा की, तब उनके शिश्न उत्पन्न हुआ। एवं उपस्थ इन्द्रिय और उसके देवता प्रजापति की उत्पत्ति हुई। संभोग का सुख इस इन्द्रिय और इसके अधिष्ठता देवता के आधीन है। जब विराट् पुरुष ने मल त्याग करना चाहा, तब गुदाछिद्र एवं गुह्य इन्द्रिय और इनके अधिष्ठता देवता मित्र उत्पन्न हुए। मल का त्याग गुह्य इन्द्रिय और मित्र देवता दोनों के आश्रित है। भगवान् जीव ने जब देह से देहान्तर में जाने की इच्छा की, तब उनके नाभि द्वारा मृत्यु देवता सहित अपान इन्द्रिय उत्पन्न हुआ। नाभि देशमें प्राण वायु और अपान वायु का विश्लेष होने पर ही मृत्यु होती है॥ २२-२४॥

आदित्सोरन्नपानानामासन्कुक्ष्यन्त्रनाडयः। नद्यःसमुद्राश्चतयोस्तुष्टिः पुष्टिस्तदाश्रये॥ २५॥ निदिध्यासोरात्ममायां हृदयंनिरभिद्यत। ततो मनस्ततश्चन्द्रः संकल्पः कामएवच॥ २६॥

जब पुरुष ने रस अन्न और पान ग्रहण करने की इच्छा की तब उनके कुक्षि आंतें व नाडियों की उत्पत्ति हुई। नदियां आंतों का, एवं समुद्र नाडियों का अधिष्ठाता देवता है। और तुष्टि व पुष्टि आंतों और नाडियों के आधीन विषय है। जब पुरुष ने अपने अपनी माया का विचार करने की इच्छा की तब उनके हृदय व मन उत्पन्न हुए। संकल्प व अभिलाषायें विषय एवं उनका अधिष्ठाता देवता चन्द्रमा उत्पन्न हुआ॥ २५-२६॥

त्वक्चर्म मांसरुधिर मेदोमज्जास्थि धातवः। भूम्यप्तेजोमयाःसप्तप्राणो व्योमाम्बु वायुभिः॥ २७॥ गुणात्मकानीन्द्रियाणि। भूतादि प्रभवागुणाः। मनः सर्वविकारात्मा। बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी। एतद्भगवतो रूपंस्थूलंतेव्याहृतंमया॥ २८॥

भा० टी०—फिर पुरुष के त्वक्, चर्म, मांस रुधिर मेदा मज्जा और अस्थि, ये सात धातुएँ पृथ्वी जल और तेज से उत्पन्न हुईं। तथा प्राण वायु, आकाश जल और वायु से उत्पन्न हुआ। सब इन्द्रियां शब्दादि विषयों के अभिमुख है। एवं वे विषय अहंकार से समुत्पन्न है। और मन सर्व विकारों का रूप है। तथा बुद्धि विज्ञान रूपिणी अर्थात् परमार्थ को ग्रहण करने वाली है। विराट् भगवान् का यह स्थूल रूप मैंने तुमसे कहा ॥ २७-२८ ॥

प्रजापतीन्मनून्देवानृषीन्पितृगणान्पृथक्। सिद्ध चारणगन्धर्वान्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥ २९ ॥ किन्नराप्सरसोनागान्सर्पान्किं पुरुषोरगान्। मातृरक्षः पिशाचांश्चप्रेतभूतविनाय कान् ॥ ३० ॥ कूष्मांडोन्माद वेतालान्यातुधानान्ग्रहानपि। खगान्मृगान्पशून्वृक्षान्गिरीन्नृपसरी सृपान् ॥ ३१ ॥

भा० टी०—इस प्रकार वही ईश्वर-प्रजापति, मनु, देवगण, ऋषि, पितृगण, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, यक्ष, किंनर, अप्सरागण, नाग, सर्प, किंपुरुष, उरग, मातृगण, राक्षस, पिशाच, प्रत, भूत, विनायक, कूष्मांड, उन्माद, बेताल, यातुधान, ग्रह मृग, पक्षी, पशु, वृक्ष, पर्वत और सरी सृप आदि भिन्न २ नाम रूप और कर्मादि सृजते हैं ॥२९-३१॥

नास्यकर्मणि जन्मादौ परस्यानुविधीयते। कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययारोपितं-हितत् ॥ ३२ ॥ अयंतु ब्रह्मणः कल्पः सविकल्प उदाहृतः। विधि साधारणो यत्र सर्गाः प्राकृत वैकृताः ॥ ३३ ॥

भा० टी०—ईश्वर के कर्म और जन्म के इस रूप को पंडितों के लिये वेद नहीं कहता। क्योंकि वेदों में निर्गुण ईश्वर के लिये कर्तृत्व का प्रतिषेध है। निर्गुण रूप तो वाणी और मनके भी अगोचर है। उसका प्रकाश केवल माया से होता है। अये मुनि जनो! मैंने उदाहरण स्वरूप यह ब्रह्मा का महाकल्प व अवांतर कल्प संक्षेप से वर्णन किया है। महाकल्प में प्राकृत (महत्तत्त्वादि की कारणसृष्टि) एवं अवान्तर कल्प में वैकृत (चराचरजगत् की) सृष्टि होती है। प्रत्येक महाकल्प व अवान्तर कल्प की यही साधारण विधि है ॥ ३२-३३ ॥

सृष्टियादौ भगवान्भूत्वा वैराजः पुरुषोमहान्। ससर्जविश्वमखिलं नानारूपमिदंस्वतः ॥ ३४ ॥ मुखादेवानजनयत्पितृंश्चैवाथवक्षसः। प्रजनाच्च मनुष्यान्वै जघनान्निर्ममेऽसुरान्। उच्चावचानि भूतानिगात्रेभ्यस्तस्यजज्ञिरे ॥ ३५ ॥

भा० टी०—सृष्टि की आदि में मीन भगवान् ने विराट् पुरुष होकर अनेक रूप वाले

इस संसार को रचा। उस महापुरुष ने मुख से देवों को, वक्षस स्थल से पित्तरों को, जननेन्द्रिय से मनुष्यों को, जांघों से असुरों को, और ऊँच नीच सर्व प्राणियों को अपने गात्र से उत्पन्न किया ॥ ३४-३५ ॥

सृज्य मानाः प्रजाश्चैव नावर्द्धन्तयदातदा। द्विधाकृत्वात्मनोदेहं स्त्रीचैव पुरुषोऽभवत् ॥ ३६ ॥ सावित्रींलोक सृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वासमास्थितः। ततः संजपतस्तस्यभित्वादेहमकल्मषम् ॥ ३७ ॥ स्त्री रूपमर्द्धमकरोदर्द्धं पुरुष रूपवत्। शतरूपाच साख्याता सावित्री चनिगद्यते ॥ ३८ ॥ सरस्वत्य थगायत्री ब्रह्माणी च परंतपः। ब्रह्मवादिनी जननी मीनादेवी शतेन्द्रिया ॥ ३९ ॥

भा० टी०—बारम्बार मानसी सृष्टि उत्पन्न करने पर भी जब प्रजा नहीं बढ़ी। तब प्रजापति ब्रह्मा अपनी देह के दो भाग करके स्त्री और पुरुषत्व को प्राप्त हुए। पूर्वकल्प के अन्त में लोकों की सृष्टि के अर्थ ब्रह्माजी सावित्री को अपने हृदय में स्थापित करके समाधिस्थ हुए थे। अतएव उसको अब याद करने पर वही सावित्री ब्रह्मा के पापरहित देह को भेद कर निकल पड़ी। एक ही ब्रह्मा अर्द्धोअर्द्ध स्त्री पुरुष इन दोनों रूपों में दीखने लगे, वह स्त्री सावित्री व शत रूपा नाम से प्रख्यात हुई। उसी ही को सरस्वती, गायत्री, ब्रह्माणी, ब्रह्मवादिनी, जननी, मीनादेवी और शतेंद्रिया भी कहते हैं ॥ ३६-३९ ॥

अर्धनारीकदेहोसा वर्ध नारायणोभवत्। तस्यदक्षिण भागेभ्योपुरुषाजज्ञिरेखिलाः चतुर्वर्ण विभेदेन नार्योवामांगतो भवन् ॥ ४० ॥ यावदब्दशतंदिव्यं यथान्यः प्राकृतोजनः। ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः ॥ ४१ ॥

भा० टी०—यह मीनादेवी आधे अंग में स्त्री और आधे अंग से नारायण रूप हुई। अर्थात् स्त्री के गर्भाशय में बाईं तरफ पुत्री और दाहिनी तरफ पुत्र रहता है। उसके दक्षिण भाग से अनेक पुरुष तथा बाँयें अंग से चारों वर्णों की स्त्रिय प्रगट हुईं। अन्य अज्ञानी मनुष्यों के समान होकर ब्रह्मा उस मीनादेवी के सग दिव्य सौ वर्ष पर्यन्त रमण करते हुए। इसी के फल स्वरूप बहुत वर्षों के बाद मनु नामक पुत्र हुआ ॥ ४०-४१ ॥

स्वायंभुव इतिख्यातः सविराडितिनःश्रुतम्। तद्रूपगुण सामान्यादधि पुरुष उच्यते ॥ ४२ ॥ तंमीनं तंमनुं विद्धि मनोरन्तरमेवच। सविराजः प्रजास्सर्वाः

ससर्जपुरुषः प्रभुः ॥ ४३ ॥ मनोः स्वायंभुवाज्जाता मनुजामारणोत्तमाः । मनुष्या मानवा मैनाः मर्त्याः पंच जनानराः ॥ ४४ ॥

⟹ भा० टी०—वह ही स्वायंभुव मनु इस नाम से प्रसिद्ध होकर विराट् रूप (बड़े वंश विस्तार वाला) हुआ, रूप आदि सभी गुणों में ब्रह्मा के ही समान होने से उन्हीं को अधिपुरुष भी कहते हैं ऐसा हमने सुना है। उन्हीं को आदि मीन व मनु जानो वही पूर्वोक्त विराट है। मनु के अनन्तर सभी वर्णों की प्रजा प्रभु उसी आदि पुरुष मनु जी से उत्पन्न हुई है। एवं मनुज, नर, पंचजन, मर्त्य, मैन, मानव, मनुष्य, और मारण, कहलाने वाले उत्तम क्षत्रिय भी उसी स्वायं भुव मनु से उत्पन्न हुए और उनके प्रधान वंशज हैं ॥ ४२-४४ ॥

चैत्रमासि जगद्ब्रह्मा ससर्जप्रथमेहनि । शुक्लपक्षे समग्रंतु तदासूर्योदयसति ॥ ४५ ॥ वैराजा यत्रतेजाता बहवः शंसितव्रताः स्वायं भुवामहाभागाः सप्तसप्ततथापरे ॥ ४६ ॥ तदामैथुन धर्मेणप्रजाह्यधांबभूविरे । स चापिमारणादेव्यांपत्रापत्यान्यजीजनत् ॥ ४७ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौतिस्रः कन्याश्चनामतः आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरितिविश्रुताः । ॥ ४८ ॥ आकूतिंरुचयेप्रादात्कर्दमायतुमध्यमा । दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितंजगत् ॥ ४९ ॥

⟹ भा० टी०—चैत्र मास शुक्ल पक्ष प्रतिपदा तिथि सूर्योदय के समय, सहित मनु के ब्रह्मा ने समग्र जगत् को उत्पन्न किया। उस स्वायंभुव मनु विराट पुरुष से वैराट गौत्रीय महाभाग तीक्ष्ण व्रत वाले चौदह मनु हुए, जिन्हों में सात तो हो चुके, और सात होने बाकी हैं। जब मैथुन धर्म से प्रजा बढ़ने लगी। तब स्वायंभुव मनु जी ने भी अपनी अनन्ती नामक मारण देवी में पांच सन्तानें उत्पन्न कीं। जिनके नाम ये हैं प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दोनों पुत्र और आकूति,देवहूति तथा प्रसुति नामक कन्याएँ प्रसिद्ध हैं। उन्हों में से आकूति तो रुची प्रजापति को व्याही गई, मझली कर्दम जी को तथा तीसरी प्रजापति दक्ष को दी गई, इन्हीं तीनों की संतानों से सारा जगत् पूर्ण हो गया है ॥ ४५-४९ ॥

प्रजापति सुतःसम्राट् मनुर्विख्यातमारणः। ब्रह्मावर्त्तयोऽधिवसन् शास्ति सप्तार्णवांमहीम् ॥ ५० ॥ एतेमीनगणाविप्राः प्रतिमन्वन्तरेषु च । उत्पद्यंतेप्रलीयन्ते कल्पेकल्पेतथैवच ॥ ५१ ॥ इत्येवमादि सर्गस्ते वर्णितो मुनिसत्तम । आदिसर्गं विदित्वैवं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥ ५२ ॥

भा० टी०—मारण जाति में विख्यात ब्रह्मा के पुत्र सम्राट मनु जी ध्रुव प्रान्त के ब्रह्मावर्त्त देश में राज्यधानी स्थापित करके सात समुद्र वाली इस सम्पूर्ण पृथ्वी का शासन करते हुए सुख से रहने लगे। अये विप्रो! स्वायंभुव मनु के वंशधर ये मीन गण (मारणक्षत्रिय) ब्रह्मा के प्रत्येक कल्प में तथा प्रति मन्वन्तर में उत्पन्न और लीन होते रहते हैं। यह आदि सर्ग मैंने तुम लोगों के सामने वर्णन किया। इस प्रकार इस आदि सर्ग को सम्यग्तया जानने वाले सज्जन यथेष्ट शुभ गति को पाते हैं ॥ ५०-५२ ॥

द्वात्रिंशदवतारास्युमीनवंश कराविभोः । आद्यस्तेषामयंजज्ञे सर्वलोक पितामहः ॥ ५३ ॥ यश्चेमां धारयेन्नित्यंशृणुयाद्वाऽप्यभीक्ष्णशः । स्ववंशंधारणां कृत्वास्वर्ग लोके महीयते ॥ ५४ ॥ इति श्री मीन पु० प्र० स्कं० देव मनुष्य सृष्टि वर्णन नाम पंचमोऽध्याय ॥ ५ ॥

भा० टी०—मीन वंशकी वृद्धि करने वाले विष्णु के ३२ अवतारों में से यह सब जातियों के पितामह प्रथम अवतार है। जो मनुष्य इस मीनजाति के उत्पत्ति की कथा को सदा हृदय में धारण करता है एवं बारम्बार श्रवण करता है और सुन करके अपने वंशको धारण करता (याद रखता) है वह अपने 'सनातन वंश' को भूतल पर सदा के लिये स्थापित करके स्वर्गलोक में भी पूजा जाता है। इस प्रकार यह श्रीमद्भागवत मीनपुराण के प्रथम स्कंध में देव मनुष्य सृष्टि वर्णन नामक पाचवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

अथषष्ठोऽध्याय प्रारम्भः । स्वायंभुववंशः ॥ (सूतउवाच) सर्वशास्त्रार्थ तत्त्वज्ञंपरा शरसुतंप्रभुम् । गुरुंप्रणम्यवक्ष्यामि पुराणं वेदसंमितम् ॥ १ ॥ कथयामि यथापूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः । पृष्टः प्रो वा च भगवानब्जयोनिः पितामहः ॥ २ ॥ मीनानां सं प्रवक्ष्यामि कथांपापप्रमोचिनीम् । शृणुध्वंभोजनाश्चित्रां बहुर्था श्रुति-विस्तराम् ॥ ३ ॥

भा० टी०—अब छठा अध्याय शुरु होता है। इसमें स्वायंभुव वंश संक्षिप्त कथन मुख्य अधिकार है। सूतजी बोले हे मुनियो! सर्व शास्त्रों के अर्थ और तत्त्वों के जानने वाले पराशरजी के पुत्र मेरे गुरु प्रभु वेदव्यासजी को प्रणाम करके मैं वेद के समान श्रीमद्भागवत मीनपुराण को कहता हुँ। जैसा पूर्व सृष्टि की शुरुआत में दक्ष आदि उत्तम मुनियों के पूछने पर भगवान् अब्जयोनि पितामह ब्रह्माने कहा था। समस्त पापों से छुड़ा कर मुक्ति को देने वाली

मीनावतार व मीनक्षत्रियों की बहुत अर्थ वाली श्रुतियोंका विस्ता स्वरूप विचित्र कथा, मैं कहता हूँ। अये सज्जनों! कान लगा कर ध्यान से सुनो!॥ १-३ ॥

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः। मन्वन्तरेशानु कथा निरोधो-मुक्ति राश्रयः ॥ ४ ॥ दशमस्य विशुद्धयर्थं नवानामिहलक्षणम्। वर्णयन्तिमहात्मा नः श्रुतेनार्थेनचाञ्जसा ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे मुने! इस श्रीमद्भागवत मीनपुराण में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊती, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय ये ही दश विषय वर्णित है। इन में दशवें (आश्रय) पदार्थ का तत्व जानने के लिये महात्मा लोग कहीं श्रुति कहीं साक्षात् वा कहीं तात्पर्य द्वारा अन्य नव पदार्थों के स्वरूप का वर्णन करते हैं।॥ ४-५ ॥

भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्मसर्गउदाहृतः। ब्रह्मणोगुण वैषम्याद्विसर्ग पौरुषः स्मृतः ॥ ६ ॥ स्थितिर्वैकुण्ठ विजयः पोषणंतदनुग्रहः। मन्वन्तराणिसद्धर्म ऊतयः कर्मवा सनाः॥७॥ अवतारानुचरितंहरेश्चास्यानुवर्तिनाम्। पुंसामीशकथाःप्रोक्तानाना ख्यानोपबृंहिताः ॥ ८ ॥ निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सहशक्तिभिः। मुक्तिर्हित्वा न्यथारूपंस्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥ ९ ॥

भा० टी०—पंचमहाभूत शब्दादितन्मात्रा इन्द्रिय व महत्तत्त्व उत्पन्न होकर उसी विराट् रूप परमेश्वर में अवस्थित होते हैं। इसीका नाम सर्ग है। ब्रह्मा की सृष्टि व प्रलय का नाम विसर्ग है जो कि गुणों की विषमता होने पर विराट का संकोच स्वरूप है। मीनभग-वान की उत्पन्न की हुई सब वस्तुएँ अपनी २ मर्यादा का पालन करके जो उत्कर्ष प्राप्त करती है उसको स्थिति व स्थान कहते हैं। अपने भक्तों के प्रति ईश्वर की अनुग्रह का नाम पोषण है। अनुग्रहीत साधु (राजाओं) के धर्म व शासन का नाम मन्वन्तर है। संयोजित कर्म वासना का नाम ऊती है। भगवान् के अनेक मीनावतारों का कथन एवं ईश्वर की आज्ञा के अनुवर्ती पुरुषों की पवित्र कथाका नाम ईशानु कथा है। जिनमें अनेक प्रकार के आख्यान (चरित्र व इतिहास) है। शक्तियों के साथ योग निद्रा का अवलम्बन करके प्रलय कालीन जलशाया पर मीनभगवान के शयन करने पर उन्हीं के साथ व उन्हीं में जीव के लय होने का नाम निरोध है। माया जनित अन्यथा रूपको त्याग कर आत्मा का अपने रूप में स्थित होना इसी का नाम मुक्ति है ॥ ६-९ ॥

आभासश्च निरोधश्चयतश्चाध्यवसीयते । सआश्रयः परंब्रह्मपरमात्मेतिशब्द्यते ॥ १० ॥ एकमेकतराभावेयदानोपलभामहे । त्रितयंतत्रयोवेदसआत्मास्वाश्रयाश्रयः ॥ ११ ॥

भा० टी०—जिससे इस चराचर जगत की उत्पति पालन और नाश होता है । एवं जिसको परब्रह्म व परमात्मा कहते हैं (उसी का नाम आश्रय है (आध्यात्मिक आदि तीनों में एक का अभाव होने पर जब हम अन्य दोनों को नहीं देखपाते तब जो आत्मासाक्षी रूप से (जीवदेह प्रकाश) इन तीनों को देखता वा जानता है । उसी का नाम आश्रय या ब्रह्म है उस का आश्रय कोई नहीं वही सबका आश्रय है । १०-११

यदातुसृजतस्तस्यदेवर्षिगणपन्नगान्नवृद्धिमगमल्लोकस्तदामैथुन योगतः ॥ १२ ॥ प्रजासृजेतिव्यादिष्टः पूर्वदक्षस्वयंभुवा । यथाससर्जचैवादौतथैव शृणुतद्विजाः ॥ १३ ॥

भा० टी०—देव, ऋषिगण और पन्नग आदि की ब्राह्मी सृष्टि जब वृद्धि को प्राप्त न हुई तब ब्रह्माने अपने दक्ष आदि पुत्रों को मैथुन योग से सृष्ठि बढाने का आदेश दिया उन्होंने जैसे आदि प्रजा की वृद्धि की, वही मैं अब कहता हूँ हे द्विजो सुनो ॥ १२-१३ ॥

धर्मादयः प्रथम जा विज्ञेया ब्रह्मणः सुताः । भृग्वादय स्तुयेसृष्टा नचते ब्रह्म वादिनः ॥ १४ ॥ गृहमेधिपुराणास्ते विज्ञेया ब्रह्मणः सुताः । द्वादशैते प्रसूयंते सहरुद्रेण च द्विजाः ॥ १५ ॥ तेषां द्वादशवंशाद्दिव्या देवगणान्विता । क्रियावन्तः प्रजावन्तोमहर्षिभिरलंकृताः ॥ १६ ॥

भा० टी०—धर्मादि और भृग्वादि जो पहलें ब्रह्मा के पुत्र कह आये हैं वह सब ब्रह्मवादि याने बाल ब्रह्मचारी न थे, किंतु वे सब गृहस्थ और पुराणेवासी (मारण) क्षत्रिय थे । रुद्र गणों के सहित ब्रह्मा के वे द्वादश पुत्र, हे द्विजो अपनी अलग २ संतति को उत्पन्न करते हुए । उन्हीं के देवगण समन्वित, और शुभक्रियावंत, तथा अच्छे २ महर्षियों से अलंकृत, एवं दिव्य प्रजावंत द्वादश वंश प्रसिद्ध हुए ॥ १४-१६ ॥

रुचिर्यो भगवान्ब्रह्मन्दक्षोवा ब्रह्मणः सुतः । यथाससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यांतु मानवीम ॥ १७ ॥ दक्षः पुत्रसहस्राणिपाश्चजन्यामजी जनत् । विरिणयांच पुत्राणांसहस्रमसृजत्प्रभुः ॥ १८ ॥

भा० टी—हे ब्रह्मन् ब्रह्मा का पुत्र दक्ष, और प्रजापति भगवान् रुचि, मानवी भार्याओं को पाकर प्रजा उत्पन्न करते हुए सो सुनो। दक्ष जी अपनी पांचजनी स्त्री में एक सहस्र पुत्र उत्पन्न करते हुए। एवं प्रभु रुचि जी वीरिणी में एक हजार पुत्र उत्पन्न करते हुए॥ १७-१८॥

प्रजाः सृजेति भगवान्कर्दमो ब्रह्मणोदितः। तस्यामाधत्तरेतस्तां भावयन्नात्मनात्मवित् ॥१९॥ नौधाविधायरूपंस्वंसर्वसंकल्पविद्विभुः। अतः सालुषुवेसद्योदेवहूतिःस्त्रियप्रजाः॥२०॥सर्वास्ताश्चारुसर्वांग्यो लोहितोत्पलगन्धयः। पथोद्विंतस्वदुहितृः प्रादाद्विश्वसृजांस्ततः ॥ २१ ॥

भा० टी०—प्रजा उत्पन्न करो! ऐसा भगवान् ब्रह्मा का आदेश पाकर कर्दमजी ने भगवान्मनु की पुत्री के संग व्याह किया, और आत्मतत्त्व के जानने वाले भगवान् कर्दम जी ने अत्यंत प्रीति पूर्वक अपना आधा शरीर रूप जो देवहूति है उनमें अपने वीर्य्य के नव भाग कर के गर्भाधान किया। जिससे वह देवहूति स्त्री प्रजा को उत्पन्न करती हुई। वे सभी कन्याएँ सर्वांग सुन्दरी और कमल के समान सुगन्ध शरीर वाली हुईं। कर्दम जी ने ब्रह्मा की आज्ञानुसार अपनी सभी पुत्रियें विश्व को उत्पन्न करने वाले पृथक् २ प्रजापतियों को दे दीं॥ १९-२१॥

मरीचये कलांप्रादादनसूयामथात्रये। श्रद्धामंगिरसे यच्छत्पुलस्त्यायहविर्भुवम् ॥ २२ ॥ पुलहायगतिंयुक्तां क्रतवेचक्रियांसतीम् । ख्यातिं च भृगवेयच्छ द्वसिष्ठायाधरुंधतीम् ॥ २३ ॥ अथर्वणेददाच्छान्तियया यज्ञोवितन्यते । विप्रर्षेभान्कृतोद्वाहान्सदारान्समलालयत् ॥ २४ ॥ ततस्तेऋषयः सर्वेकृतदारानिमंत्रयतम्। प्रतिष्ठन्नन्दिमापन्नाः। स्वंस्वमाश्रममण्डलम् ॥ २५ ॥

भा० टी०—कला मरीचि को, अत्रिजी को अनसूया, अंगीरा को श्रद्धा, पुलस्त्यजी को हविर्भुवा, पुलह को गति कन्या दी गई। क्रतुजी को सती क्रिया, भृगुजी को ख्याती, अरुंधती वशिष्ठजी को और अथर्वाजी को शान्ति नाम कन्या दी गई। जिससे यज्ञ का विस्तार होता है। व्याह होने पर कर्दमजी ने सस्त्रिक अपने नव विद्वान् जामातों का अच्छा सत्कार किया। इसके पश्चात् वे सभी ऋषिवर्य प्रसन्न होकर तथा कर्दमजी को पूछ कर रवाना हो गये और अपने आश्रम मंडल में जाकर आनन्द पाते हुए सुख से रहने लगे॥ २२-२५॥

काम्यानाम महाभागा कर्दमस्यप्रजापतेः। काम्यापुत्रास्त्रयस्त्वासन्। सम्राट्सान्द्विरविट्प्रभुः ॥ २६ ॥ कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया । आत्मप्रज्ञ स्पयेनुर्यां देवहूत्याम जायतः ॥ २७ ॥

भा० टी०—कर्दम प्रजापति की दूसरी स्त्री महाभागा काम्या हुई जिससे तीन या ४ पुत्र हुए सम्राट् साक्षी रविट् व प्रभुः। एवं तत्त्वसमुद्र की संख्या करने वाले भगवान् कपिल जी मनुष्यों को आत्म ज्ञान की शिक्षा देने के लिये जन्म रहित होकर भी अपनी माया से देवहूति की कुक्षी में स्वयं उत्पन्न हुए ॥ २६-२७ ॥

याःकर्दमसुताप्रोक्ता नवब्रह्मर्षिपत्न्यः। तासांप्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानं निबोधमे।॥ २८ ॥ पत्नीमरीचेस्तुकलासुषुवेकर्दमात्मजा। कश्यपं पूर्णिमानंचययोरापूरितंजगत् ॥ २९ ॥ पूर्णिमासूतविरजं विश्वगंचपरंतप। देवकुल्यांहरेःपादशौचाद्याभूत्सरिद्दिवः ॥ ३० ॥

भा० टी०—कर्दम की नव कन्याएँ ब्रह्मर्षियों को ब्याही गई, ऐसा पहिले कह चुके हैं, अब उनके वंश का कुछ वर्णन करते हैं सुनो। कर्दम की कन्या कला मरीची को ब्याही गई, इसके कशयप और पूर्णिमान, दो पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके वंश से यह जगत् परिपूर्ण हो गया है। पूर्णिमान के विरज और विश्वग नाम दो पुत्र और देव कुल्या नाम कन्या हुई। हे। परंतप यही देव कुल्या अन्य जन्म में हरि के पाद प्रक्षालन से देव नदी (गंगा) हुई ॥२८-३०॥

अत्रेः पत्न्यनसूयात्रीञ्जज्ञेसुयशसःसुतान्। दत्तंदुर्वाससंसोममात्मेशब्रह्मसंभवान् ॥ ३१ ॥ सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंऽशेनदत्तो विष्णोस्तु योगवित्। दुर्वासाः शंकरस्यांशेन निबोधांगिरसः प्रजाः ॥ ३२ ॥ श्रद्धात्वंगिरसःपत्नी चतस्रोसूत कन्यकाः। सिनीवाली कुहूराका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा ॥ ३३ ॥ तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौस्वारोचिषेन्तरे। उतथ्यो भगवान्साक्षाद्ब्रह्मनिष्ठश्चबृहस्पतिः ॥ ३४ ॥

भा० टी०—कर्दम की कन्या अनुसूया अत्रि को व्याही गई, उसके परम यशस्वी दत्त, दुर्वासा, सोम ये तीन पुत्र विष्णु शिव और ब्रह्मा के अंश से यथा क्रम उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के अंश से सोम, विष्णु के अंश से योगी दत्तात्रय और शंकर के अंश से दुर्वासाऋषि, ये तीन पुत्र अत्रि ऋषि के हुए, अब अंगीरा ऋषि के वंश को सुनो। कर्दम की कन्या श्रद्धा अंगिरा ऋषि की स्त्री थी उनके सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति ये चार कन्याएँ उत्पन्न हुईं। और इनके साक्षात् भगवान् के अंश उतथ्यजी तथा ब्रह्मज्ञानी बृहस्पति जी ये दो पुत्र भी हुए। ये दोनों स्वारोचिष मन्वन्तर में विख्यात हुए ॥ ३१-३४ ॥

पुलस्त्यो जनयत्पत्न्यामगस्त्यंचहविर्भुवि। सोन्यजन्मनिदह्राग्नि विश्रवाश्च

महातपाः ॥ ३५ ॥ तस्ययक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः। रावणः कुम्भकर्णश्च तथान्यस्यांविभीषणः ॥ ३६ ॥

भा० टी०—कर्दम की कन्या हविर्भू पुलस्त्यजी को ब्याही थीं उनके अगस्त्यजी एवं महातपस्वी विश्रवा उत्पन्न हुए। यह अगस्त्य जन्मान्तर में जठराग्नि होंगे। और विश्रवा के इड विडा स्त्री में यक्षो के पति कुबेर होंगे। और केशिनी नामक दूसरी स्त्री में रावण, कुम्भकरण तथा विभीषण होंगे ॥ ३५-३६ ॥

पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूतसती सुतान् । कर्मश्रेष्टं वरीयांसंसहिष्णुश्च महामते ॥ ३७॥ क्रतोरपिक्रियाभार्या वालिखिल्यानसूयत। ऋषिन्षष्टिसहस्त्राणिज्वलंतो ब्रह्मतेजसा ॥ ३८ ॥

भा० टी०—पुलह जी की गती भार्या थीं हे महामति! उनके कर्म श्रेष्ठ, वरीयान और सहिष्णु, ये तीन पुत्र हुए। कर्दम की क्रिया कन्या क्रतु को ब्याही गई थीं, उनके ब्रह्म तेज से जाज्वल्यमान वालिखिल्या, नाम गोत्र वाले साठ हजार पुत्र हुए॥ ३७-३८ ॥

ऊर्जायांजज्ञिरेपुत्रा वसिष्ठस्यपरंतपः । चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्तब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ३९ ॥ चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजामित्रएवच । उल्वणोवसुभृद्यानोद्युमान् शक्त्याद्योपरे ॥ ४० ॥

भा० टी०—कर्दम की ऊर्जा कन्या में वसिष्ठ के वीय से चित्रकेतु आदि सात ब्रह्मर्षि पुत्र हुए, जिनके नाम ये हैं। चित्रकेतु, सुरोची, विरजा, मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान, और द्युमान् एवं वसिष्ठ की अन्य स्त्रियों में शक्ति आदि अन्य पुत्र हुए ॥ ३९-४० ॥

चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नीलेभेपुत्रंधृतव्रतम्। दध्यंचमश्वशिरसं भृगोर्वंशंनिबोधमे ॥४१॥ भृगुःख्यात्यां महाभागः पत्न्यांपुत्रानजीजनत्। धातारंच विधातारं श्रियंच-भगवत्पराम् ॥ ४२ ॥ आयतिंनियतिंचैव सुतेमेरुस्तयोरदात्। ताभ्यांतयोरभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेयामृकंडस्य प्राणाद्वेदशिरामुनिः। कविश्च-भार्गवोयस्यः भगवानुशनासुतः ॥ ४४ ॥ तएतेमुनयःसर्वैलोकान्सर्गैरभावयन् । एषकर्दमदौहित्र संतानकथितोमया ॥ ४५ ॥

भा० टी०—कर्दम की कन्या चित्ती (शान्ति) अथर्वण की स्त्री थी उनके तपोनिष्ठ

दधीचि नाम पुत्र हुए। उनको अश्वशिरस भी कहते हैं। अब भृगुका वंश मुझसे सुनो। ख्याती भृगुजी की स्त्री थीं उनके धाता, विधाता, नाम दो पुत्र हुए। और भगवत्परायण, श्री, नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। मेरु ने भृगु के पुत्र धाता, विधाता को अपनी आयती और नियती नाम दो कन्याएँ ब्याही थीं। उन्हों में उनके क्रम से मृकंडु और प्राण नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमें मृकंडू के मार्कंडेय एवं प्राण के वेद शिरा मुनि उत्पन्न हुए (भृगु के एक और कवि नामक पुत्र हुए जिनके पुत्र भगवान् उशना शुक्राचार्य्यजी) हैं। इन सब मुनियों (ज्ञानियों) ने प्रजा उत्पन्न कर के लोकों को बसाया। यह कर्दम जी की कन्याओं का वंश हमने तुम लोगों से वर्णन कर दिया ॥ ४१-४५ ॥

शृण्वतः श्रद्दधानस्यसद्यः पापहरः परः। प्रसूतिंमानवीं दक्षउपयेमेह्यजात्मजः ॥ ४६ ॥ तस्यांससर्जदुहितॄः षोडशामललोचनाः। त्रयोदशादाद्धर्मायतथैकामग्नये-विभुः ॥ ४७ ॥ पितृभ्यएकांयुक्तेभ्योभवायैकांभवच्छिदे। श्रद्धामैत्रीदयाशान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ॥ ४८ ॥ बुद्धिर्मेधातितिक्षाह्रीमूर्त्तिर्धर्मस्यपत्नयः। श्रद्धा-सूतशुभंमैत्रीप्रसादमभयंदया ॥ ४९ ॥ शान्तिः सुखंमुदंतुष्टिस्मयंपुष्टिरसूयत। योगंक्रियोन्नतिर्दर्पमर्थंबुद्धिरसूयत ॥ ५० ॥ मेधास्मृतिं तितिक्षातुक्षेमंह्रीःप्रश्रयंसुतम् । मूर्त्तिः सर्वगुणोत्पत्तिनर नारायणावृर्षी ॥ ५१ ॥

भा० टी०—इसे जो श्रद्धा पूर्वक सुनता है उसके सकल पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। आगे और सुनिये, स्वायंभुव मनु ने अपनी प्रसूति कन्या का ब्याह ब्रह्मा के पुत्रप्रजापति दक्षके साथ किया था। उसमें सोलह मृग नयनी सुन्दरी कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उनमें तेरह कन्याएँ धर्म नामक प्रजा पति को, और एक अग्नि प्रजा पति को, एक सुयोग्य पितृगण को व एक भवछेदक शिव को ब्याही गईं। उनमें धर्म की पत्नियों के नाम सुनो। श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बृद्धि, मेधा, तितिक्षाह्री और मूर्ति ये तेरह हैं। अब इनके पुत्रों के नाम सुनिये। श्रद्धा के शुभ, मैत्री के प्रसाद, दया के अभय, शांति के शम व सुख, तुष्टि के मुद व आनन्द, पुष्टि के स्मय, क्रिया के योग, उन्नति के दर्प, बुद्धि के अर्थ व कौशल, मेधा के स्मृति व क्षमा, तितिक्षा के क्षेम और ह्री के प्रश्रय नामक पुत्र हुआ। एवं सकल, गुणों को उत्पन्न करने वाली मूर्ति के गर्भ से नर नारायण ऋषि उत्पन्न हुए ॥ ४६-५१ ॥

स्वाहाभिमानिनश्चाग्ने रात्मजांस्त्रीनजीजनत्। पावकं पवमानंच शुचिंच हुतभोजनम् ॥ ५२ ॥ तेभ्योऽग्नयः समभवंश्चत्वरिंशच्चपंचच। तएवै कौनपंचाशत्सा

कंपितृपितामहैः ॥ ५३ ॥ वैतानिके कर्मणियन्नामभि र्ब्रह्मवादिभिः। आग्नेय्यइष्टयो यज्ञेनिरूप्यन्तेग्नयस्तुते ॥ ५४ ॥

भा० टी०—अग्नि के अभिमानी अग्निदेव के साथ दक्ष की स्वाहा नाम की कन्या का विवाह हुआ था। उसमें हवन कर भोजन करने वाले, पावक, पवमान, और शुचि नामक ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। आगे इन तीनों के पैंतालीस पुत्र हुए। वे सब एक बाबा और तीनों बापों को मिलाकर उन्चास होते हैं। याग यज्ञादि में ब्रह्मवादी ब्राह्मण गण इन सब का नाम लेकर अग्नि में आहुतियें देते हैं। उनके येही अग्नि संज्ञक देवता हैं ॥ ५२-५४ ॥

अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सौम्याः पितर आज्यापाः। साग्नयोऽनग्नयस्तेषांपत्नी दाक्षायणीस्वधा॥ ५५ ॥ तेभ्योदधारकन्येद्वेवयुनां धारिणींस्वधा। उभेतेब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे ॥ ५६ ॥

भा० टी०—अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, सोमप, और आज्यपा आदिविभिन्न संज्ञायुक्त पितृलोक वासी पितृगण साग्नि और अनग्नि दो श्रेणी में हैं। इन सब की एक ही स्त्री स्वधा हुई। इन के वीर्य से स्वधा के गर्भ में वयुना और धारणी नाम दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं। ये दोनों ही कन्याएँ ज्ञान और विज्ञान के पार को जान कर ब्रह्मवादिनी हुईं ॥ ५५-५६ ॥

भवस्यपत्नीतुसती भवंदेवमनुव्रता। गणेशंमैनपुत्रंच लेभेसागुणशीलतः ॥५७॥ दक्षायब्रह्मपुत्रायप्रसूतिं भगवान्मनुः। प्रायच्छद्यत्कृतः सगस्त्रिलोक्यांविततो महान् ॥ ५८ ॥

भा० टी०—दक्ष की सती नामक कन्या जो शिवजी को ब्याही गई थीं। गणेश और मैन नाम वाले गुण और शील के धारक दो पुत्रों को उत्पन्न करती हुईं। भगवान् स्वायंभुव मनु ने जो अपनी प्रसूति नाम कन्या दक्ष को दी थी उन्हीं की संतती इस प्रकार तीनों लोकों में विस्तीर्ण हो गई ॥ ५७-५८ ॥

आकूतिंरुचयप्रादादपिभ्रातृमतींनृपः। पुत्रिकाधर्ममाश्रित्यशतरूपानुमोदितः ॥ ५९ ॥ प्रजापतिसभगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत्। मिथुनंब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥ ६० ॥ यस्तयोः पुरुषःसाक्षाद्विष्णुर्मीनस्वरूपधृक्। यास्त्रीसादक्षिणा भूतेरंशभूतानपायिनी ॥ ६१ ॥ आनिन्येस्वगृहंपुत्र्याः पुत्रंविततरोचिषम्। स्वायंभुवोमुदायुक्तोरुचिर्जग्राहदक्षिणाम् ॥ ६२ ॥

भा० टी०—मनुजी ने अपनी आकूति कन्या का व्याह पुत्रिका धर्म का आश्रय लेकर रुचि प्रजा पति से किया था। अपने पुत्र न होने पर ही, अपनी पुत्रिका पुत्र गोद लिया जाता है। यद्यपि आकूति के अनेक भाई थे, तथापि अपनी शत रूपा रानी के अनुरोध से राजा मनु ने ऐसा किया। राजएश्वर्य युक्त ब्रह्मवर्चस्वी प्रजा पति रुचि ने ईश्वर ध्यान पूर्वक आकूति में एक कन्या और एक पुत्र उत्पन्न किया। रुचि के पुत्र तो मीन स्वरूपधारी साक्षात् विष्णु भगवान हुए। और कन्या परम पवित्र लक्ष्मी का अंश दक्षिणा नाम हुई। उस वितत रोचिष नामक अपनी पुत्री के पुत्र को स्वायंभुव मनुजी अपनी प्रतिज्ञानुसार प्रसन्नता पूर्वक अपने घर ले आये, और उस दक्षिणा नाम्नी कन्या को रुचि ने ग्रहण किया ॥ ५९-६२ ॥

ताकामयानां भगवानुवाहयजुषांपतिः। तुष्टायांतोष मापन्नोजनयद्द्वादशात्मजान् ॥ ६३ ॥ तोषः प्रतोषःसंतोषोभद्रशान्तिरिडस्पतिः। इध्मः कविर्विभुःस्वह्नः सुदेवोरोचनोद्विषट् ॥ ६४ ॥ तुषितानामतेदेवा आसन्स्वायंभुवान्तरे। मरीचिमिश्राऋषयोयज्ञः सुरगणेश्वरः ॥ ६५ ॥ मन्वन्तरं मनुर्देवामनुपुत्राः सुरेश्वरः ऋषयों शावताराश्चहरेः षड्विधमुच्यते ॥ ६६ ॥

भा० टी०—दक्षिणा लक्ष्मी का अवतार थी, अतएव उन्हों ने विष्णु के अंशावतार यज्ञ पति मीन भगवान् को अपना पति करना चाहा। तब यज्ञ पुरुष ने प्रसन्नता युक्त दक्षिणा से प्रसन्नता पूर्वक विवाह किया। उसी दक्षिणा में मीन भगवान् के वीर्य से तोष, प्रतोष, संतोष, भद्र, शांति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वन्ह, सुदेव, और रोचन, ये बारह पुत्र उत्पन्न हुए। स्वायंभुव मन्वन्तर में ये ही यज्ञ पुत्र तुषित नाम देवगण हुए। मरीचि आदि सात ऋषि हुए। यज्ञ पुरुष मीन भगवान् हरि का अवतार एवं इन्द्र हुए। मनु, देव, मनु के पुत्र, इन्द्र, सप्त ऋषि और मीनावतार ये छः प्रतिमन्वन्तर में अलग २ होते हैं। इन्हीं की संज्ञा मन्वन्तर है ॥ ६३-६६ ॥

प्रियव्रतो त्तानपादौमनुपुत्रौमहौजसो। तत्पुत्रपौत्रनप्तृणामनुवृत्तं तदन्तरम् ॥ ६७ ॥ प्रवृतायांतुवार्तायां निवृतेसृष्टिकर्मणि। ब्रह्मलोकं समाश्रित्यविश्रान्तिंच गतोविधिः ॥ ६८ ॥

भा० टी०—प्रियव्रत और उत्तान पाद ये महाबली दोनों मनु के पुत्र पृथ्वी के पालन करने वाले राजा हुए। स्वायंभुवजी मनु हुए। मनु के पुत्र पौत्र और नातियों से स्वायंभुव मन्वन्तर तथा संपूर्ण जगत् व्याप्त होगया। इसके पश्चात् सृष्टि कर्म के निवृत्त होने पर चार

वर्ण तथा चार आश्रमों की प्रवृत्ति हुई। एवं अपनी राज्यधानी सुमेरु पर ब्रह्मलोक में विधाता ने विश्राम किया ॥ ६७-६८ ॥

शंखासुरोऽभवद्दस्युस्तस्मिन्समयेचानघ । मर्त्यलोकाज्जहाराशु वेदानादि स्वयंभुवः ॥ ६६ ॥ नीतास्तुतेनतेवेदास्सांगोपांगैरसातले । ज्ञाता भूर्मिसहादादेवैर्मन्त्र-वेदविवर्जिता ॥ ७० ॥

भा० टी०—हे पाप रहित मुनिजनो, उस समय शंख ग्रीवा नामक एक दस्यु असुर उत्पन्न हुआ, और ब्रह्मा के निर्माण किये हुए आदि वेदों को हरण कर वह मनुष्य लोक से शीघ्र ही ले गया। समग्र अंगोपांग सहित चारों ही वेदों को वह असुर, रसातल में ले गया उस समय सम्पूर्ण भूमि को देवताओं ने वेद के मंत्रों से विवर्जित जाना ॥ ६९-७० ॥

अथतेनिर्जराःसर्वे सुप्रणम्य प्रजेश्वरम् । तुष्टुवुः परया भक्त्या आदिमीनं यज्ञेश्वरम् ॥ ७१॥ देवाऊचुः । सहस्रशिरसंविष्णु मत्स्यरूपधरं हरिम् । नमस्यामिहृषी-केशं कूर्मं वाराहरूपिणम ॥ ७२ ॥ आर्ताः स्मजगतामीश शंखचक्रगदाधरः । अस्म-दर्थंभवान्नित्यमायुधानिबिभर्तिच ॥७३॥ यजामस्त्वां महायज्ञैर्वदामोवाग्भिरच्युत । त्वदेक शरणाः सन्तः कथंदैत्यंनमेमहि ॥ ७४ ॥

भ० टी०—अब वे सब ही देवगण ब्रह्मा को प्रणाम करके ब्रह्मा सहित सर्व देवता परम भक्ति से यज्ञेश्वर भगवान् आदि मीनदेव की स्तुति करते हुए। देवता बोले- सहस्र शिर वाले इन्द्रियों के स्वामी, कूर्म बारह रूपहरी, मत्स्य रूप को धारण करने वाले, विष्णु भगवान् को हम नमस्कार करते हैं। हे जगदीश्वर ! बिना वेद के हम इस समय पूरे दुःखी हैं। हे शंख चक्र गदादि आयुधों को धारण करने वाले मुरारिन् हमारे रक्षणार्थ ही तो आप नित्य आयुधों को धारण करते हैं। हे अच्युत ! नाना प्रकार के महायज्ञों के द्वारा हम आप का पूजन करते हैं। वेद रूपवाणी से हम तुम्हारी ही स्तुति करते हैं और नित्य एक तुम्हारे ही आश्रित रहते हैं तो फिर हम उस दैत्य को क्यों नमैं ॥ ७१-७४ ॥

सुत उवाच । मन्वादिभिः पाल्यमानाः सेनवस्त्वसुरैर्यदा, कामरूपैर्विभि-द्यन्ते वासुदेवस्तदास्वयम् ॥ ७५ ॥ ब्रह्मादिभिः प्रार्थ्यमानः प्रादुर्भवतिभूतले । अवतारा भगवतोभूता भव्याश्चसन्तिये । कर्त्तुनशक्यते तेषां संख्या संख्याविशारदैः ॥ ७६ ॥

भा० टी०—सूत जी बोले मन्वादिकों के द्वारा पालन की गई धर्म सेतु को जब स्वेच्छाचारी असुरगण तोड़ देते हैं । तब ब्रह्मादि देवताओं की प्रार्थनानुसार स्वयं वासुदेव भगवान् इस भूतल पर प्रगट होते हैं । इसी नियमानुसार रुचि प्रजापति के घर आकूति की कुक्षी से लक्ष्मी नारायण जनमे । दुष्टों को मार कर वेदों का उद्धार करने के लिये विष्णु के कितने मीन अवतार भूतकाल में हुए और भविष्य में कितने होंगे उन्हों की संख्या कोई भी संख्याविशारद नहीं कर सकता ॥ ७५-७६ ॥

अथदेवैस्स्तुतोविष्णु श्शफरीतुल्यरूपधृक् । वेदानांहरणार्थाय रसातलतले-स्थिताम् ॥ खात्पपातजलेसिन्धोः ब्रह्मादीनांचपश्यतः ॥ ७७ ॥ ब्रह्मवेदप्रहर्त्तारं शंखग्रीवंचदानवम् । अवधीद्वेदमन्त्राद्यान्पालयामासकेशवः ॥ ७८ ॥

भ० टी०—फिर देवताओं की स्तुति के पश्चात् रसातल के नीचे स्थित वेदों का उद्धार करने के लिये मत्स्य रूपधारी विष्णु भगवान ब्रह्मादिक देवताओं के देखते २ आकाश (स्थल) से समुद्र के जल में कूद पड़े । ब्रह्मा के निर्माण किये हुए आदि वेदों को हरण करने वाले शंखग्रीवदानव को मार कर केशव ने वेद मंत्रों का रक्षण किया ॥ ७७-७८ ॥

उद्धृताश्चसबीजाते वेदायज्ञसमन्विता । लब्ध्वावेदान्समग्रांस्तुब्रह्माहर्षसमन्वितः ॥ ७९ ॥ अजयद्वाजिमेधेन देवर्षिगणसयुतः । यज्ञान्तेदेवताः सर्वे तुष्टुवुश्च-मीनेश्वरम् ॥ ८० ॥ देवाऊचुः । नमोस्तुतेमहामीनश्रुतिपृष्ठधराच्युत । समुद्रसलिल-क्षोभ पद्मजाल्हादकारिणे ॥ ८१ ॥ पातालेयानिमीनानि यानिमीनानिभूतले । स्वर्गेचयानिमीनानि तानिवन्देनिरन्तरम् ॥ ८२ ॥ अद्यमेसफलंजन्म अद्यमेसफला-क्रिया । शुभोदयोदिनोऽस्माकं मीनेन्द्रतवदर्शनात् ॥ ८३ ॥

भ० टी०—मीन भगवान ने मंत्र बीज और यज्ञ सहित चारों वेदों का उद्धार किया (नये रूप में बनाये) समग्र वेदों को पाकर सहर्ष ब्रह्माने अश्वमेध यज्ञ किया । और यज्ञ के अंत में ब्रह्मा सहित सर्वदेव एवं ऋषिगण मीनेश्वर भगवान् की स्तुति करने लगे । देवगण बोले अपनी पीठ पर समग्र वेद व श्रुतियों को धारण करने वाले एवं समुद्र के जल को क्षोभित करने वाले और ब्रह्मा को आनन्दित करने वाले अच्युत महामीन को हम नमस्कार करते हैं । भूतल, पाताल, और स्वर्ग लोक में जितने भी मीनगण हैं उन सबको हमारी निरन्तर वन्दना हो । हे मीनेन्द्रदेव आपके दर्शन से आज हमारा दिन क्रिया एवं जन्म सफल हुआ ॥ ७९-८२ ॥

सूतउवाच । मीनवंशोद्भवास्तत्रक्षत्रिया वेद रक्षकाः । संजातास्तेमहावीराः शुद्धाचारपरायणाः ॥ ८३ ॥ धर्मविध्वंसकायेतुदस्यवःपृथिवीतले । मारितामीनभूपालैर्मारणास्तेनप्रोच्यते ॥ ८४ ॥ धर्मसेतुःप्रजावेद ब्राह्मणगोप्रतिपालकाः । येद्वादशात्मजापूर्वेमीनस्यकथितामया ॥ तेषांवंशधराभूपाः पालनामेनविश्रुताः ॥ ८५ ॥

भा० टी०—मीन भगवान के वंश में जितने भी क्षत्रिय लोग हुए हैं वे सब वेद रक्षक महावीर और शुद्ध आचार व्यवहार को पालन करने वाले हैं । धर्म के विघातक जितने भी दस्युगण पृथ्वीतल पर हुऐ वे सब मीन भूपालों के द्वारा मारे गये । इसी कारण भगवान् मीन के वंशज क्षत्रिय गण मारण नाम से पुकारे जाते हैं । हे मुनि जनो ! पहले मुझ से जो मीन भगवान् के बारह पुत्र कहे गये हैं वे सब धर्म, नीति, मर्यादा, एवं गो प्रजा वेद और ब्राह्मणों के पालक (रक्षक) थे । अतएव उन्हीं के वंशधर सभी भूपालगण पाल नाम से विख्यात हुए ॥ ८३-८५ ॥

क्षत्रियाणामशेषेषुब्राह्मणेषुविशेषतः संस्थितो भगवान्विष्णुर्मीननामेनचान घ ॥ ८६ ॥ हृदयंतस्यहि ब्रह्मक्षत्रमंगंप्रचक्षते । अतोह्यन्योन्यमात्मानं ब्रह्मक्षत्रं चरक्षतः ॥ ८७ ॥ इतिश्रीमीनपु० प्र. स्क. षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

भा० टी०—भगवान विष्णु के उपासक समस्त क्षत्रिय तथा विशेष ब्राह्मण उस समय मीन नाम से प्रसिद्ध हुए । प्रजापति ब्रह्मा ने वेद का एवं विद्या धर्म नीति ज्ञान विज्ञान का प्रचार करने के लिये अपने मुख और हृदय स्वरूप ब्राह्मणों को और सृष्टि व प्रजापालन एवं धर्म रक्षा के लिये अपनी भुजा स्वरूप क्षत्रियों को माना है । ये दोनों ही ब्रह्मा के मुख्य अंग हैं । अतएव ये दोनों ही अन्योन्य ब्राह्मण क्षत्रियों का और क्षत्रिय ब्राह्मणों का रक्षण करते हैं इस प्रकार श्री मद्भागवत मीन पुराण प्रथम स्कंध का यह छटा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ८६ ॥

अथसप्तमोऽध्यायप्रारंभः ॥ स्वयंभुवमनु वंशः ॥ ऋषयऊचुः ॥ सृष्टिः प्रजापतेः सम्यक्त्वयाप्रोक्ता महामते । प्रजापतीनां सर्वेषां गुह्यकाप्सरसांतथा ॥ १ ॥ स्थावरं जंगमं सर्वमुत्पन्न विविधं जगत् । त्वयाप्रोक्तं महाभाग श्रुतं चैतन्मनोहरम् ॥ २ ॥ कथितं पुण्यफलदं पुराणं श्लक्ष्णयागिरा । मनः कर्णौ सुखं सम्यक् प्रीणात्यमृतसंमितम् ॥ ३ ॥ स्वायंभुवस्यचमनोर्वंशःपरमसंमतः । कथ्यतां भगवन्यत्र मैथुने नैधिरे प्रजाः ॥ ४ ॥

भा० टी०-अब सातवां अध्याय शुरू होता है। इसमें भी स्वायंभुव मनुजी के वंश का विवर्ण मुख्य अधिकार है। ऋषिगण बोले । हे महामती सूतजी ! ब्रह्मा की सृष्टि और सर्व प्रजापतियों की उत्पत्ति तथा गुह्यक अप्सरागण एवं सर्व स्थावर जंगमरूप विविध जगत् के उत्पन्न होने का मनोहर वर्णन आपने बहुत अच्छा कहा। पुण्यफल को देने वाला और सम्यक् सुखकर यह मीन पुराण आपके द्वारा जो थोड़े अक्षरों में मनोहरवाणी से कहा जाता है, वह हमारे मन और कानों को अमृत के समान तृप्त करता है। हे भगवन् ! अब आप परममान्य स्वायंभुव मनु के वंश को कहिये ! जिसमें मैथुन के द्वारा प्रजा की वृद्धि हुई है ॥ १-४ ॥

सूत उवाच। हिरण्यमयादंडको शादुत्थाय सलिलेशयात। तमाविश्य महादेवो बहुधानिर्बिभेदखम् ॥ ५ निरभिद्यतास्य प्रथमं मुखं वाणी ततोभवत् । वाण्यावह्नि रथो नासे प्राणोऽतो घ्राणएतयोः॥ ६ ॥ घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणी चक्षुरेतयोः। तस्मात्सूर्योऽभ्यभिद्येतां कर्णौश्रोत्रंततोदिशः ॥७॥ निर्बिभेद विराजस्त्वग्रोमश्मश्रवा-दयस्ततः । तत औषधय आसन् शिश्नं निर्बिभिदेततः ॥ ८ ॥ रेतस्तस्मादाप आसन्निरभिद्यतवैगुदम् । गुदादपानोऽपानाचमृत्युर्लोक भयंकरः ॥ ९ ॥

भा० टी०—जलशायी हिरण्य मय अंड से उठकर विराट ने निश्चेष्टता को त्यागा, एवं उसी अण्ड में अधिष्ठित होकर उसमें कार्य क्रम से अनेक छिद्र फोड़ दिये । प्रथम उसमें मुख प्रगट हुआ। उससे वाक्य, वाणी एवं उसके अधिष्ठाता अग्नि उत्पन्न हुआ। फिर दोनों नासिकाओं के छिद्र उत्पन्न हुए। और उनसे प्राणवायु युक्त घ्राणइन्द्रिय प्रगट हुई । तदनन्तर प्राणयुक्त वायु प्रगट हुआ। फिर दो चक्षु गोलक प्रगट हुए। उनसे चक्षु नामक दर्शन इन्द्रिय का प्रकाश हुआ। एवं सूर्य नामक तेज उनमें अधिष्ठित हुआ । फिर कर्ण छिद्र प्रगट हुए। उनसे दिशाओं का निर्देश करने वाली श्रोत्र शक्ति का प्रकाश हुआ। फिर विराट के शरीर में त्वक्का आविर्भाव हुआ । उसी त्वक् में केश रोम एवं श्मश्रु आदि प्रगट हुए । फिर उनमें औषधि आदि अधिष्ठित हुए । फिर विराट् के शिश्नइन्द्रिय प्रगट हुई । उसमें रेत: (वीर्य) शक्ति का आवेश हुआ। फिर गुदा का छिद्र प्रगट हुआ। उसमें अपान वायु एवं उस वायु में लोक भयंकर मृत्यु अधिष्ठित हुआ ॥ ५-९ ॥

हस्तौचनिरभिद्येतां बलंताभ्यांततः स्वराट्। पादौचनिरभिद्येतांगतिस्ताभ्यां ततोहरिः ॥ १० ॥ नाड्योऽस्यनिरभिद्यन्त ताभ्योलोहितमाभृतम् । नद्यस्ततः समभवन्नुदरंनिरभिद्यत॥ ११ क्षुत्पिपासेततः स्यातां समुद्रस्त्वेतयोरभूत्। अथास्य

हृदयंभिन्नंहृदयान्मनउत्थितम् ॥ १२ ॥ मनश्चन्द्रमाजातोबुद्धिर्बुद्धेर्गिरांपतिः । अहंकारस्ततोरुद्रश्चित्तंचैत्यस्ततोऽभवत् ॥ १३ ॥

भा० टी०—फिर उस विराट् शरीर में हस्त इन्द्रिय प्रगट हुआ। उनमें बल नामक शक्ति सहित इन्द्र देव अधिष्ठित हुए। फिर चरणों का आविर्भाव हुआ। उनमें गति शक्ति सहित विष्णु देव अधिष्ठित हुए। फिर उसमें नाड़ियां प्रगट हुईं। उन नाड़ियों में रक्त स्रोत प्रवाह शक्ति और नदियां अधिष्ठित हुईं। फिर उस देह में उदर प्रगट हुआ। उस उदर में क्षुधा पिपासा शक्ति और समुद्र अधिष्ठित हुए। फिर विराट के हृदय का प्रकाश हुआ। उस हृदय में मन बुद्धि चित्त अहंकार संज्ञक चार अवस्थाओं का प्रकाश हुआ। और मन में आनन्द शक्ति रूप वासु देव, बुद्धि संकल्प कर्ता ब्रह्मा, अहंकार में रुद्र, एवं चित्त में क्षेत्रज्ञ आत्मा, ये चार देव (प्रकाश) अधिष्ठित हुए ॥ १०-१३ ॥

एतेह्यभ्युत्थितादेवानेवास्योत्थापनेऽशकन् । पुनरा विविशुः खानितमुत्थापयितुंक्रमात् ॥ १४ ॥ वह्निर्वाचामुखं भेजेनोदतिष्ठत्तदाविराट् । घ्राणेन नासिकेवायुर्नोदत्तिष्ठत्तदाविराट् ॥ १५ ॥ अक्षिणी चक्षुषादित्यो नोदति० श्रोत्रेणकर्णौचदिशोनोद:० ॥ १६ ॥ त्वचंरोमभिरोषध्योनो० रेतसा शिश्निमापस्तुनो० ॥१७॥ गुदंमृत्युरपानेननो०। हस्ताविन्द्रोबलेनैवनो ०॥१८॥ विष्णुर्गत्यैवचरणौ०। नाडीर्नद्योलोहितेननो० ॥१९॥ क्षुत्तृड्भ्यामुदरंसिन्धोर्नोद० । हृदयंमनसाचन्द्रोनोद० ॥२०॥ बुद्ध्याब्रह्मापिहृदयंनोदतिष्ठत्तदाविराट्। रुद्रोऽभिमत्याहृदयंनोदतिष्ठदत्तदाविराट् ॥२१॥ चित्तनहृदयंचैत्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा। विराट्तदैवपुरुषः सलिलादुदतिष्ठत ॥ २२॥

भा० टी०—ये सकल देव अपने आविर्भाव होने के बाद भी विराट पुरुष को न उठा सके तब फिर सब इन्द्रियों के अधिष्ठिता देव गण विराट पुरुष को उठाने के लिये अपने २ छिद्र में अपनी अपनी शक्ति सहित प्रविष्ठित हुए। अग्नि ने वाक् इंद्रिय द्वारा मुख में प्रवेश किया पर, विराट पुरुष न उठा। वायु ने घ्राण इन्द्रिय द्वारा नासिका छिद्र में प्रवेश किया पर विराट पुरुष न उठा। सूर्य ने चक्षु इन्द्रिय द्वारा चक्षु गोलक में प्रवेश किया पर विराट पुरुष न उठा। दिशाओं ने श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा कर्ण छिद्रों में प्रवेश किया पर विराट पुरुष न उठा। औषधियों ने रोम द्वारा त्वक् इन्द्रिय में प्रवेश किया पर विराट पुरुष न उठा। रेतः द्वारा जल ने शिश्न में प्रवेश किया पर विराट पुरुष न उठा। मृत्यु ने अपान द्वारा गुदा छिद्र में प्रवेश किया पर विराट पुरुष न उठा। इन्द्र ने बल द्वारा हस्तयुग में प्रवेश किया पर विराट पुरुष

न उठा। विष्णु ने गति द्वारा चरण युग में प्रवेश किया पर विराट पुरुष न उठा। नदियों ने रक्त प्रवाह द्वारा नाड़ियों में प्रवेश किया पर विराट पुरुष न उठा। समुद्र ने क्षुधा और पिपासा द्वारा उदर में प्रवेश किया पर विराट पुरुष न उठा। चन्द्र ने मन द्वारा हृदय में प्रवेश किया पर विराट पुरुष न उठा। बुद्धि द्वारा ब्रह्मा ने भी हृदय में प्रवेश किया पर विराट पुरुष न उठा। जब क्षेत्रज्ञ आत्मा चित्त द्वारा हृदय में प्रविष्ट हुआ, तब उसी समय उस जल से विराट पुरुष उठ खड़ा हुआ॥ १४-२२ ॥

असौ नारायणोमीन आपवोऽथप्रजापतिः। विराट्पुरातनोदेही आदिमीन सनातनः ॥ २३ ॥ सिसृक्षुस्तुप्रजास्त्वेवमापवोवैप्रजापतिः। लेभेसपुरुषः पत्नीशत रूपामयोनिजाम् ॥ २४ ॥ धर्मेणैवमुनिश्रेष्ठाः शतरूपा व्यजायतः। सातुवर्षायुतंतप्त्वातपः परमदुश्चरम्। भर्तारंदीप्ततपसंपुरुषंप्रत्यपद्यत ॥ २५ ॥

भ० टी०—वही नारायण (जलशायी) मीन है। और वही आपव, प्रजापति, विराट् पुरातन देही, एवं आदि मीन व सनातन मीन नाम से प्रसिद्ध है। वही विराट पुरुष, आपव, प्रजापति, मैथुनद्वारा मानवी सृष्टि की इच्छा से स्त्री की खोज करते हुए। तब केवल धर्म ही के प्रभाव से हे मुनि श्रेष्ठो! उनको अयोनिजा शतरूपा पत्नी उपलब्ध हुई। एवं पतिही के लिये अयुत वर्षों से दुश्चर तप करने पर शतरूपा को परम तपस्वी भर्तार विराट पुरुष उपलब्ध हुए ॥ २३-२४ ॥

विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत्पुरुषंविराट्। पुरुषंतंमनुं विद्यात्तस्यमन्वन्तरं स्मृतम् ॥ २६ ॥ वैराजात्पुरुषाद्वीरंशतरूपाव्यजायत। सवैस्वायंभुवोविप्राः पुरुषोम नुरुच्यते ॥ २७ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौवीरात्काम्याव्यजायत। काम्यापत्नी मुनिश्रेष्ठाः कर्दमस्यप्रजापतेः ॥ २८ ॥ काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिर्विराट्प्रभुः ॥ उत्ता नपादंजग्राहपुत्रमत्रिः प्रजापतिः ॥ २९ ॥ उत्तानपादाच्चतुरः सूनृतासुषुवेसुतान्। ध्रुवंच कीर्तिमन्तंच। आयुष्मन्तंवसुंतथा ॥ ३० ॥

भा० टी०—आदि विराट् ब्रह्मा को भगवान विष्णु ने उत्पन्न किया और उसने दूसरे देह धारी पुरुष विराट् को उत्पन्न किया हे संत जनों! उसी को पुरुष एवं मनु जानो और उन्हीं की राज्य सत्ता को प्रथम मन्वन्तर जानना चहिए। राणी सतरूपा ने आदि विराट् पुरुष से वीर पुत्र को पाया। अये विप्रो! वही वीर पुरुष स्वायंभुव मनु कहाता है। अये मुनि श्रेष्ठो! कर्दम प्रजापति की पत्नी सती काम्या तथा राजा प्रियव्रत और उत्तानपाद इसी वीर से उत्पन्न हुए थे।

सम्राट, कुक्षि, विराट् और प्रभु ये काम्या के चार पुत्र थे और मनु के दूसरे पुत्र उत्तानपाद को प्रजापति अत्रीजी ने गोद ले लीया था। उनके सूनृता रानी से ध्रुव, कीर्तिमान्, आयुष्मान तथा वसु, ये चार पुत्र हुए ॥ २६-३० ॥

ध्रुवो वर्षसहस्राणित्रीणि दिव्यानि कानने तपस्तेपेसबालस्तुप्रार्थयन्स्थान मव्ययम् ॥ ३१ ॥ तस्मैब्रह्माददौप्रीतस्स्थान मात्मसमंप्रभुः। अचलंचैवपुरतस्सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥ ३२ ॥ धन्यानाम मनोः कन्याध्रुवाच्छिष्टम जीजनत्। अग्निकन्यातु सुच्छायाशिष्टात्सासुषुवेसुतान् ॥ ३३ ॥

भा० टी०—अविनाशी पदस्थान का राज्य की प्रार्थना करते हुए बालक ध्रुव न दिव्य तीन हजार वर्षों तक बन में कठोर तप किया। सप्तर्षियों के सामने प्रसन्न होकर प्रभु ब्रह्मा ने उस बालक प्रजापति ध्रुवजी को अपने ही समान अचल ध्रुव प्रदेश का राज्य दिया। मनु की धन्या नाम कन्या ने ध्रुवजी से शिष्ट (श्लिष्ट) नामक पुत्र को उत्पन्न किया। अग्नि प्रजापति की सुछाया कन्या ने राजा शिष्ट से अनेक पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३१-३३ ॥

पश्चात्पुष्टिञ्चधान्यञ्च ध्रुवात्पुत्रोव्यजायताम्। पुष्टिरेवसनु थायाः पंचपुत्रान कल्मषान्ः ॥ ३४ ॥ रिपुंरिपुंजयंविप्रं वृकलं वृषतेजसम्। रिपोरेवंचमहिषी चक्षु षंसर्वतोदिशम् ॥ ३५ ॥

भा० टी०—फिर अन्य स्त्री में ध्रुवजी से पुष्टि और धान्य नामक दो पुत्र हुए। पुष्टि के समुत्था स्त्री में पाप रहित रिपु, रिंजय, विप्र, वृकल, और वृषतेज, ये पांच पुत्र हुए। रिपु की महिषी स्त्री ने सर्व दिशियों में फतह करने वाला चाक्षुस पुत्र को जन्म दिया ॥ ॥ ३४- ३५ ॥

कृपं रिपुं जयं वृत्तं वृकंच वृकेतेजसम्। चाक्षुषं ब्रह्मदौहित्र्यांविरिण्यांसरि पुंजयः ॥ ३६ ॥ वीरणस्यात्मजायांतु चक्षुर्मनुमजीजनत। मनुर्वैराजकन्यायां न ड्वला यां सचाक्षुषः ॥ ३७॥ उरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाग्घविः अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चापराजितः ॥ ३८ ॥ अभिमन्युस्तुदशमोनड्वलायामजायत। नाडलानामते वीरामारणामीनस्त्रियाः ॥ ३९ ॥

भा० टी०—वीरणराज की पुत्री, एवं ब्रह्मा की पुत्री की पुत्री, विरिणी नाम रानी में शत्रुओं को पराजय करने वाले, सर्वतेजा, चक्षुप राजा ने, कृप, रिपु, वृत्त, जय, वृक वृकतेज

और चाक्षुषमनु ये, पुत्र उत्पन्न किये। आगे चाक्षुप मनुने वैराज की कन्या नडला में उरु, पुरु, शतद्युम्न, सत्यवाक, हवि, अग्निष्टुत, अतिरात्र, सुधुम्न, अपराजित, और अभिमन्यु ये १० पुत्र उत्पन्न करते हुए। वे सभी दुष्टों को मारने वाले वीर मीनक्षत्रिये नडलाकी संतान नाडला, नाम से प्रसिद्ध हुए ॥ ३६ ॥-३९ ॥

उरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयीमहाप्रभान् । अंगंसुमनसंख्यातिं क्रतुमंगिरसंगयम् ॥ ४० ॥ पितृकन्यासुनीथातु वेनमंगादजीजनत् । यद्दौःशील्यात्सराजर्षिनिर्विण्णोनिरगात्पुरात् ॥ ४१ ॥ अराजकेतदालोकेदस्युभिः पीडिताःप्रजाः । जातोमीनेश्वरांशेनपृथुराद्यःक्षितीश्वरः ॥ ४२ ॥

भा० टी०—उरु राजासे अग्नि की पुत्री ने सुन्दर कान्ति वाले अंग, सुमनस, ख्याति, क्रतु, अंगिरस, और गय नाम वाले छः पुत्रों को जन्म दिया ॥ इन में अंग के पितृ कन्या सुनीथा नाम रानी के गर्भ से वेन नाम कुमार उत्पन्न हुआ जिसके दुश्शील से राजा अंग विरक्त हो पुर को छोड वन को चले गये (साधु हो गये) राजा अंग के मुनि होजाने पर सारे देश में अराजकता छागई और दस्यु चौर आदि प्रजा को सताने लगे तब मीनेश्वर भगवान के अंशावतार वेन के पुत्र राजा पृथु आदि क्षितीश्वर हुए ॥ ४०-४२ ॥

गृहेषु वर्त्तमा नोपि ससाम्राज्यश्रियान्वितः । नासज्जतेन्द्रियार्थेषु निरहंमतिरर्कवत् ॥ ४३ ॥ एवमध्यात्मयोगेनकर्माण्यनुसमाचरन् । पुत्रानुत्पादयामास पंचार्चिष्यात्म संमतान् ॥ ४४ ॥ विजिताश्वंधुम्रकेशंहर्यक्षंद्रविणंवृकम् । सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान् ॥ ४५ ॥

भा० टी०—सकल साम्राज्य समन्वित एवं गृहस्थाश्रम में वर्त्तमान होकर भी महाराज पृथु इन्द्रियजन्य सुखों म आसक्त न हुए और अभिमान रहित सूर्य के समान निर्लेप रहैं। एवं अध्यात्म योग और मध्यस्थ दृष्टि से सर्व कर्मों का आचरण करते हुए उन्होंने अर्चीष्मति नाम रानी में अपने ही समान तेजस्वी पांच पुत्र उत्पन्न किये जिनों के नाम ये हैं—विजिताश्व धुम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण और वृक । सब ही लोक पालों के समस्त गुणों को एक ही महाराज पृथु ने धारण किया ॥ ४३-४५ ॥

विजिताश्वोधिराजासीत्पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः । यवीयोभ्योऽददात्काष्टां भ्रातृभ्योभ्रातृवत्सलः ॥ ४६ ॥ हर्यक्षाया दिशत्प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणाम् । प्रतीचीं वृक संज्ञायतुर्यांद्रविणसेविभुः ॥ ४७ ॥

भा० टी०—राजा पृथु के परम धाम जाने पर उनके पुत्र महायशस्वी विजिताश्व पृथ्वी मण्डल के महाराज हुए। उसने अपने प्रिय भाइयों को चारों दिशाओं का राज्य दिया अर्थात् हर्य्यक्ष को पूर्व दिशा, धूम्रकेश को दक्षिण दिशा, वृक को पश्चिम दिशा और द्रविण को उत्तर दिशा का स्वामी बनाया ॥ ४६-४७ ॥

अन्तर्धानगतिं शक्राल्लब्ध्वान्तर्धानसंज्ञितः। अपत्यत्रय मानघत्तशिखंडिन्यां सुसंमतम् ॥ ४८ ॥ पावकपवमानश्चशुचिरित्यग्नयः पुरा। वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिंगताः ॥४९ ॥

भा० टी०—विजिताश्व ने इन्द्र से अन्तर्धान (अदृश्य हो जाना) विद्या पाई थी इसी लिये उसका दूसरा नाम अन्तर्द्धान पड़ा। इन्होंने अपनी शिखंडिनी नाम रानी में अपने ही समान गुण रूप और बल वाले पावक, पवमान और शुचि नाम वाले तीन पुत्र उत्पन्न किये। ये तीनों पहेली के भव में अग्नि थे सो वसिष्ठ के शाप से मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए और शाप से छूटने पर फिर अग्नि देव होगये ॥ ४८-४९ ॥

अन्तर्द्धानोनभस्वत्यां हविर्द्धानमविन्दत। हविर्धानाद्धविर्धानीपुनरासूतषट् सुतान् ॥ ५० ॥ बर्हिषदंगयंशुक्लंकृष्णंसत्यंजितव्रतम्। बर्हिषत्समहाभागोहविर्धानीप्रजापतिः ॥ ५१ ॥ क्रियाकांडेषुनिष्णातो योगेषुचव्रतेषुच। प्राचीनाग्रैः कुशैरासीद्यास्तृतंवसुधातलम्।॥ ५२ ॥ सामुद्रींदेवदेवोक्ता मुपयेमेशतद्रुतिम्। प्राचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यांदशाभवन् ॥ तुल्यनामव्रताः सर्वेधर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥ ५३ ॥

भा० टी०—राजा अन्तर्द्धान के नभस्वती नाम एक दूसरी रानी भी थी। उसके गर्भ से हविर्द्धान नाम और एक पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर हविर्द्धान ने अपनी स्त्री हविर्द्धानी में बर्हिषद्, गय, शुक्र, कृष्ण, सत्य व जितव्रत ये छः पुत्र उत्पन्न किये। वह हविर्द्धान के पुत्र अति भाग्यशाली राजा बर्हिषद बड़े भारी योगी और कर्म्म काण्ड यज्ञादि के करने में ऐसे तत्पर थे कि जहां एक यज्ञ करते थे उसी के पास फिर दूसरे यज्ञ का आरम्भ कर देते थे। इसी भांति यज्ञ के समय वेदी पर बिछाये हुये पूर्व मूल कुशों से उन्होंने सारा पृथ्वी मण्डल व्याप्त कर दिया। इसीलिये उनका दूसरा नाम प्राचीन बर्हि पड़ा। राजा प्राचीन बर्हि ने ब्रह्मा जी की आज्ञा से शतद्रुति नाम समुद्र की कन्या से ब्याह किया। राजा प्राचीन बर्हि के शतद्रुति रानी में दश पुत्र उत्पन्न हुए। उन दशों का नाम प्रचेता हुआ। उन धर्म की मूर्ति प्रचेताओं का एकसा नाम, एकसा स्वभाव और एकसा आचरण गुण था ॥ ५०-५३ ॥

पित्रादिष्टाःप्रजासर्गे तपसेऽर्णवमाविशन्। दशवर्षसहस्राणि तपसार्चंस्तपस्प
तिम् ॥ ५४ ॥ रुद्रगीतंभगवतः। स्तोत्रंसर्वेप्रचेतसः ॥ जपन्तस्तेतपस्तेपुर्वर्षाणामयु-
तंजले ॥ ५५ ॥

भा० टी०—प्रचेतागण पिता की आज्ञानुसार प्रजा उत्पन्न करने की कामना से तप करने के लिये समुद्र के भीतर गये और वहां पर दश हजार वर्ष तक तप करके मीन देव की आराधना की शिवजी का किया हुआ जो रुद्र गीत नाम स्तोत्र है उसका जाप करते हुए प्रचेताओं ने जल में दश हजार वर्ष तक तप किया ॥ ५४-५५ ॥

दशवर्ष सहस्रान्ते पुरुषस्तुमीनेश्वरः। तेषामाविरभूत्कृच्छ्रं शान्तेनशमय-
न्रुचा ॥ ५६ ॥ (श्रीभगवानुवाच) वरंवृणीध्वंभद्रंवो यूयंमेनृपनंदनाः। सौहार्देना-
पृथग्धर्मास्तुष्टोहं सौहृदेनवः ॥ ५७ ॥ भवितावित्रुतः पुत्रोऽनवमोब्रह्मणोगुणैः।
यएतामात्मवीर्येण त्रैलोक्यंपूरयिष्यति ॥ ५८ ॥

भा० टी०—दश हजार वर्ष के उपरान्त सनातन पुरुष मीनेश्वर देव ने प्रगट होकर अपने शान्त प्रकाश से उनके तप जनित क्लेश को दूर किया। श्री भगवान बोले—हे राजकुमारो तुम्हारा कल्याण हो। मुझ से इच्छानुसार वर मांगो। तुम में परस्पर बड़ी मित्रता है। तुम लोगों का स्वभाव भी एकही प्रकार का है। भ्रातृप्रेम देख कर मैं तुम पर बहुत ही प्रसन्न हूँ। तुम्हारे एक बहुत ही प्रसिद्ध पुत्र होगा, वह गुणों में ब्रह्मा के तुल्य होगा और उसके वंश से तीनों लोक भर जायेंगे ॥ ५६-५८ ॥

कंडोः प्रम्लोचयालब्धा कन्याकमललोचना। तांचापविद्धांजगृहु र्भूरुहानृप
नन्दनाः ॥ ५९ ॥ क्षुत्क्षामायामुखेराजासौमः पीयूषवर्षिणीम्। देशिनींरोदमानाया
निदधेसदयान्वितः ६० ॥ प्रजाविसर्ग आदिष्टाः पित्रामामनुवर्तता। तत्रकन्याव-
रारोहां तामुद्वहतमाचिरम् ॥ ६१ ॥ अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषांवः सुमध्यमा।
अपृग्धर्मशीलेयं भूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥ ६२ ॥

भा० टी०—देव पति इन्द्र ने कंडु ऋषी की तपस्या में विघ्न डालने के लिये प्म्लोचा नाम अप्सरा भेजी थी। उस अप्सरा में कंडू के वीर्य से एक कमल नयनी कन्या उत्पन्न हुई। वह अप्सरा कन्या को छोड़ कर स्वर्ग चली गई। हे राजकुमारो! उस कन्या को वृक्षों ने पाया। वह कन्या बहुत भूखी हुई और रोने लगी, तब औषधियों के राजा चन्द्रमा ने दया कर अपनी

अमृतमय अंगुली उस कन्या के मुंह में देदी। तुम्हारे पिताने तुमको आज्ञा दी थी कि तुम लोग मुझ विष्णु को प्रसन्न करके प्रजा उत्पन्न करो। अतएव अब तुम उसी सुन्दरी से विवाह करो देर न करो और पिता की आज्ञा पालो। तुम दशों का एकसा शील, रूप, धर्म, और नाम है, अतएव वह कन्या तुम दशों की एक ही स्त्री होगी। उस कन्या का स्वभाव और धर्म तुम्हारे योग्य है और उसने अपना हृदय तुम लोगों को अर्पण कर दिया है॥ ५९-६२॥

तेच ब्रह्मण आदेशान्मारिषामुपयेमिरे। यस्यांमहदवज्ञानादजन्यजनयोनिजः॥ ६३॥ चाक्षुषेन्तरेप्राप्तेप्राक्सर्गे कालविद्रुते। यः ससर्जप्रजाइष्टाः सदक्षोमीन चोदितः॥ ६४॥ योजायमानसर्वेषांतेजस्तेजस्विनांरुचा। स्वयोपादत्तदाक्ष्याच्चकर्मणादक्षमब्रुवन्॥ ६५॥ तंप्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषिच्यच। युयोजयुयुजेऽन्यांश्चसवैसर्व प्रजापतीन्॥ ६६॥ मयैषोत्तानपादस्य मारणस्यानुवर्णितः। वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोधमुनिसत्तम॥ ६७॥ इति श्रीमीनपु० प्र० स्कं० उत्तानपाद वं०व० सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

भा०टी०—प्रचेतागणने भगवान् ब्रह्मा (मीन) की आज्ञा से उस कन्या को ग्रहण किया। उस कन्याके गर्भ में दशों ही प्रचेतागण के दक्ष नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। यह वही दक्ष है जिन्होंने महादेव का निरादर किया था, इसी अपराध से क्षत्रिय वंश में जन्म लेना पड़ा है। यह वही दक्ष हैं जिन्होंने चाक्षुष मन्वन्तर उपस्थित होनेपर काल वश पूर्व देह नष्ट होने से ईश्वर की आज्ञा के अनुसार प्रजा की सृष्टी की थी। इन्होंने जन्म समय में ही अपने तेज से सब तेजस्वियों के तेज को फीका कर दिया था। सभी कर्मों में दक्ष (चतुर) होने के कारण इन का नाम दक्ष पड़ा। भगवान् ब्रह्मा ने प्रजा सृष्टि का पालन करने के लिये प्रजापति के पदपर दक्ष का अभिषेक किया। दक्षने अन्य २ प्रजापतियों को प्रजा पालन के कार्य में नियुक्त किया। हे मुनिजनों! दुष्टों का दमन करने वाले राजा उत्तान पाद का मैंने यह वंश वर्णन किया अब राजा प्रियव्रत का वंश सुनो। इति श्री मद्भागवन्मीन पुराणे प्रथमस्कन्धेसप्तमोऽध्याय:। ७-६३-६७॥

अथाष्टमोऽध्यायप्रा० प्रियव्रत वंशव०॥

प्रियव्रतात्प्रजोपेतान्वीरान्काम्यांव्यजायत। कन्यासातुमहाभागा कर्दमस्य प्रजापतेः॥ १॥ कन्येद्वेदशपुत्राश्चसम्राट्कुक्षिश्चतेशुभे। तयोर्वैभ्रातरःशूराःप्रजापतिसमादश॥ २॥ आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः। ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्यः सवनः सत्र एवच॥ ३॥

भा० टी०—कर्दम प्रजापति की कन्या महाभागा काम्या से तथा विश्वकर्मा प्रजापति की कन्या बर्हिष्मति से ब्याह करके राजा प्रियव्रत ने, उन दोनों राणियों में दो कन्याएँ एवं दश शूरवीर पुत्र उत्पन्न किये, उनके नाम ये हैं। सम्राट्, कुक्षि, व ऊर्जस्वती नाम तीन कन्याएँ, तथा आग्निध्र, अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान, द्युतिमान, हव्य, सवन, और सत्र ये दश पुत्रों के नाम हैं ॥ १-३ ॥

आग्नीध्रंज्येष्ठदायादं काम्यापुत्रंमहाबलम्। प्रियव्रतोऽभ्यषिंचत्तं जंबूद्वीपेश्वरं नृपम् ॥ ४ ॥ तस्यपुत्राबभूवुर्हि प्रजापतिसमानव। ज्येष्ठोनाभिरितिख्यातस्तस्य- किंपुरुषोनुजः ॥ ५ ॥ हरिवर्षस्तृतीयस्तुचतुर्थोऽभूदिलावृतः। रम्यस्तुपंचमःपुत्रोहिर- ण्यवान्षष्ठ उच्यते ॥ ६ ॥ कुरुस्तुसप्तमस्तेषां भद्राश्वश्चाष्टमः स्मृतः ॥ नवमः केतुमालश्चतेषांदेशान्निबोधत ॥ ७ ॥

भा० टी०—काम्या रानी के ज्येष्ठ पुत्र महाबली आग्नीध्र को महाराज प्रियव्रत ने जंबू द्वीप के नरपति पद पर अभिषेक किया। राजा आग्नीध्र के प्रजापति सम नव पुत्र हुए जिन्हों में सब से बड़ा नाभी, दूसरा किं पुरुष, तीसरा हरिवर्ष, चौथा इलावृत, पांचवाँ रम्यक्, छठा हिरण्यवान, सातवाँ कुरु, आठवाँ भद्राश्व, और नवाँ केतुमाल हुआ। अब उनके देशों को सुनो ॥ ४-७ ॥

नाभेस्तुदक्षिणं वर्षं हिमाख्यंतुपितादद्दौ। हेमकूटंतुयद्वर्षं ददौ किंपुरुषायतत् ॥ ८ ॥ नैषधंयत्स्मृतं वर्षं हरिवर्षायतंददौ। मध्यमंयत्सुमेरोस्तुददौसतदिलावृतम् ॥ ९ ॥ नीलं तुयत्स्मृतंवर्षंरम्यायैतत्पितादद्दौ। श्वेतंयदुत्तरंतस्मात्पित्रादत्तं हिरण्यवते ॥ १० ॥ यदुत्तरेश्रृंगवतोवर्षंतत्कुरवेददौ। माल्यवतं तथावर्षं भद्राश्वायन्यवेदयत ॥ ११ गन्धमादनवर्षंकेतुमालेन्यवेदयत। इत्येतानिमयोक्तानिनववर्षाणिभागशः ॥ १२ ॥ आग्नीध्रस्तेषु वर्षेषु पुत्रांस्तानभ्यषेचयत्। यथाक्रमंसधर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः ॥ १३ ॥

भा० टी०—सुमेरु से दक्षिण हिम नामक वर्ष पिताने नाभि को दिया। और हेमकूट नामक देश किं पुरुष को दिया। नैषध देश हरिवर्ष को, और सुमेरु के मध्य का देश इलावृत्त को दिया। रम्य को नील देश और श्वेत (यूरोप व अमरिका) हिरण्यवत को दिया। उत्तर का श्रृंगवत् वर्ष कुरु को और माल्यवंत वर्ष भद्राश्व को दिया तथा गन्धमादन देश केतुमाल को दिया गया। इस प्रकार मेरे कहे हुए पृथ्वी के नव विभागों में यथा क्रम अपने नव पुत्रों का राज्याभिषेक करके वह धर्मात्मा राजा आग्नीध्र चतुर्थ आश्रम संन्यास में उपस्थित हुआ॥८-१३॥

नाभेर्निसर्गं वक्ष्यामि हिमाह्वेऽस्मिन्निबोधत । नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मेरुदेव्यां महाद्युतिम् ॥ १४ ॥ ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् । ऋषभाद्भरतो जज्ञे । वीरः पुत्र शताग्रजः ॥ १५ ॥ सोभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्रव्रज्यया स्थितः ॥ हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरतायन्यवेदयत् ॥ १५ ॥

भा० टी०—अब राजा नाभि की सृष्टी को कहता हूँ । राजा नाभि ने मेरु देवी नाम रानी में सर्व क्षत्रियों के पूर्वज महा द्युतिमान नरपति श्रेष्ठ भगवान श्रीऋषभदेवजी को उत्पन्न किया । ऋषभदेवजी के वीर एकसौ पुत्र हुए जिन्हों में भरत सर्व ज्येष्ठ पुत्र थे । उन सौ पुत्रों को पृथक २ देशों का राज्य देकर ऋषभदेवजी महाप्रव्रज्या (परम हंस वृत्ति) में स्थित हुए । हिमालय के दक्षिण का भूभाग भरत को दिया गया था ॥ १४-१६ ॥

तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः । भरतस्यात्मजो विद्वान्सुमतिर्नाम-धार्मिकः ॥ १७ ॥ बभूव तस्मिन्राज्येतं भरतस्त्वभ्यषेचयत् । पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजाविवेशसः ॥ १८ ॥ तेजसस्तत्सुश्चापि प्रजापतिरमित्रजित् । तेजसस्यात्मजो-विद्वानिन्द्रद्युम्न इतिस्मृतः ॥ १९ ॥

भा० टी०—राजा भरत के ही नाम से विद्वान् लोक इस देश को भारतवर्ष कहते हैं । राजा भरत के पुत्र विद्वान और धर्मात्मा सुमति हुए । उस सुमति को महाराज भरत ने मीन राज्य पर अभिषिक्त किया । एवं पुत्र गण में अपनी समस्त लक्ष्मी को संक्रामित कर राजा भरत वन में प्रवेश कर गये (मुनि हो गये) राजा सुमति के तेजस और प्रजापति अमित्रजित नाम दो पुत्र हुए । तेजस का पुत्र विद्वान् इन्द्रद्युम्न हुआ ॥ १७-१९ ॥

परमेष्ठी सुतश्चापि प्रतिहारस्तस्य चाप्यभूत् । प्रतीहारः कुलं तस्य नाम्ना जज्ञेत-दन्वयः ॥ २० ॥ प्रतिहर्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमतः । उन्नेता प्रतिहर्तुस्तु भूमा-तस्य सुतः स्मृतः ॥ २१ ॥ उद्गीथस्तस्य पुत्रोऽभूत्प्रस्तावश्चापि तत्सुतः ॥ प्रस्तावेस्तु वि-भुः पुत्र पृथुस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ २२ ॥ पृथोश्चापि सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः सुतः । गयस्यापि नरः पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट् ॥ २३ ॥

भा० टी०—इन्द्रद्युम्न के पुत्र परमेष्ठी हुए । परमेष्ठी के प्रतिहा हुए । जिन्हों के ही नाम से जगत में प्रतिहार (पडिहार) कुल प्रसिद्ध हुआ है । राजा प्रतिहा के बुद्धिमान एवं प्रसिद्ध प्रतिहर्त्ता नाम पुत्र हुआ । प्रतिहर्ता के उन्नेता और उन्नेता के भूमन्पुत्र हुआ । भूमन् के

उद्गीथ, उद्गीथ के प्रस्तावि । प्रस्तावि के विभु और विभु के पुत्र पृथु हुए । राजा पृथु के नक्त । नक्त के गय, गय के नर और नर के विराट पुत्र हुआ ॥ २०-२३ ॥

सम्राटस्तु विराटस्य मरीचिर्बिन्दुमान्मधुः । वीरव्रतो महावीर्यो धीमान्मन्यु महान्क्रमात् ॥ २४ ॥ धीमतश्चमहान्पुत्रोमहतश्चापिभौवनः । भौवनस्यसुतस्त्वष्टा विरजास्तस्यचात्मजः ॥ २५ ॥

भा० टी०—विराट के पुत्र सम्राट् हुए । सम्राट के मरीचि । मरीचि के बिंदुमान, बिंदुमान के मधू, मधू के वीरव्रत, उनके महावीर्य, उनके धीमान्, धीमान के मंथु, और मंथु के महान् पुत्र हुआ । महान के धीमत और महत दो पुत्र हुए जिनमें महत के पुत्र राजा भौवन हुए । भौवन के पुत्र त्वष्टा हुए, त्वष्टा के पुत्र विरजा हुए ॥२४-२५ ॥

रजाविरजसः पुत्रः शतजिद्रजसस्तथा । तस्यपुत्र शतंत्वासीद्राजानःसर्वएवतु ॥ २६ ॥ विश्वज्योतिष्प्रधानास्ते यैरिमा वर्द्धिताःप्रजाः ॥ तेषांसृष्टिरियंप्रोक्तामीन नामेन चानघ ॥ २७ ॥ राजावताराजपुत्रा स्सौगया रायकास्तथा । राजलोतारजः पुत्रा राजानस्तेतदन्वयाः ॥ २८ ॥ तरिंद् भारतं वर्षसप्तद्वीपमिहांकितम् । तेषां वंशप्रसूतस्तुभुक्तयं भारतीपुरा ॥ २९ ॥ स्वायंभुवान्तरेपूर्वंशतशोथसहस्रशः ॥एवंस्वायंभुवः सर्गोयेनेदंपूरितंजगत् ॥ ३० ॥

भा० टी०—विरजा के पुत्र रजा हुए । रजा के शतजित हुए । राजा शतजित के एक सौ पुत्र हुए जिन्होंने अलग २ एकसौ देशों पर राज्य किया । उन सौ पुत्रों में राजा विश्वज्योति सर्व श्रेष्ठ था । उन्होंने सौ देशौ में प्रजा की वृद्धि की । हे सर्व पाप वर्जित मुनिजनो ! उन्हीं की समस्त मनुष्य सृष्टि मीन (मन) नाम से कही जाती है । राजावत, राजपूत, सौगण, रायक, राजलोत, रजपुत आदि नामों (गोत्रों) से प्रसिद्ध पुराणे वासी राजालोक उन्हीं के वंशज हैं । उन्हीं के वंशधर मीनगणोंने भारतवर्ष में आकर, इस भूमि को सातद्वीपों में अंकित की । प्राचीन काल में उन्हीं के वंशज मीनगणों ने इस भारत भूमीका उपभोग किया । पूर्व स्वायंभुव मन्वन्तर में उन्हीं प्राचीन मीनगणोंने सैकड़ों और सहस्रों पीढी राज्य किया । उन्हीं की वंश परम्परा से यह सारा जगत् परिपूर्ण भरगया है । यह मैने संक्षेप से स्वायंभुव सर्ग का वर्णन किया ॥ २६-३० ॥

प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः । अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥ ३१ ॥ अष्टाध्यायेपरिपूर्णं पुराणेपठितेसति । फलंशतोपवासानां भाषितं

मुनिपुंगवैः ॥ ३२ ॥ विश्ववंद्योभवेद्धयाता कल्याणानिचसोश्नुते । गत्वास्थानंपरं सोपि भूयस्तुन निवर्त्तते ॥ ३३ ॥ भार्यार्थीलभते भार्यां पुत्रार्थी लभतेसुतम् । वित्तार्थीलभते वित्तं नरः श्रवणमात्रतः ॥ ३४ ॥ राज्य भ्रष्टानिजं राज्यंपदभ्रष्टानिजं पदम् ॥ लक्ष्मीभ्रष्टानिजां लक्ष्मीं प्राप्नुवन्तिनसंशयः ॥ ३५ ॥ एतन्महापुण्यमलं पवित्रं धन्यंयशस्यं पदमायुराशिषाम् । प्राणेन्द्रियाणां युधिशोर्यवर्द्धनं नारायणोन्ते गतिरंगशृण्वताम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीमीनपुराणे प्रथमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ समाप्तश्चायं प्रथमस्कन्धः ॥ १ ॥

भा० टी०—प्रियव्रत महाराज के वंश में जन्म लेकर राजर्षि विरजने अपने विमल यश से निजकुल को यों विभूषित किया जैसे विष्णु ने मीनावतार लेकर देव कुल को पवित्र और विभूषित किया था । अष्टांध्याय परिपूर्ण मीन पुराण को पढ़ने मात्र से श्रेष्ठ मुनियों ने सौ उपवासों का फल कहा है । और जो मनुष्य ध्यान पूर्वक साथ मीनपुराण के आठ अध्यायों को पढ़ता है वह जगद्वंद्य हो जाता है । और अनेक कल्याणों का भोग कर नित्य मुक्त हो जाता है । फिर संसार में नहीं लौटता । सकाम मनुष्य श्री मीनपुराण के श्रवण मात्र से भार्या अर्थी भार्या को पाता है । पुत्र की कामना वाले को पुत्र मिलता है । धनार्थी को धन मिलता है । राज्य भ्रष्ट मनुष्य को अपना राज्य मिलता है । श्रेष्ठ पद भ्रष्ट को निज पद मिलता है । लक्ष्मीभ्रष्टमनुष्य पुनः अपनी लक्ष्मी को पाता है इसमें कोई संशय नहीं । सब कुछ देने को समर्थ यह श्रीमद्भागवन्मीनपुराण अनेक आशीर्वादों से भरा हुआ । महान्पुण्य स्वरूप, पवित्र, धन्य, यशस्य, उत्तम पद और शुभ चिरायुः देने वाला है । सब शास्त्रों का जीवन स्वरूप यह मीन पुराण अन्यपुराणों में वैसा श्रेष्ठ है जैसे सर्व इन्द्रियों में प्राण । युद्ध के समय क्षत्रियों में शौर्य रस को बढाने वाला और अंत में सुनने वालों को हेमुनिजनों ! ईश्वर के समीप स्थान (मुक्ति) देने वाला इस मीनपुराण का सदा श्रवणन् कीर्तन पठन और मनन करना चाहिये इस प्रकार श्रीमद्भागवन्मीनपुराण में प्रथम स्कन्ध का यह अष्टम अध्याय समाप्त हुआ।

समाप्तश्चायं प्रथम स्कन्धः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयस्कंधप्रारंभः ॥ (व्यासउवाच)

इति ब्रुवाणांसंस्तूय मुनीनांदीर्घसत्रिणाम् । वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचःशोनकोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ प्रायेणाल्पायुषः सभ्यः कलावस्मिन्युगेजनाः । मन्दाः सुमन्दमतयो मन्द भाग्याह्युपद्रुताः ॥ २ ॥ भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः । अतः साधो ऽत्रयत्सारं समुद्धृत्यमनीषया । ब्रूहिनः श्रद्दधानानामवताराणयशेषतः ॥ ३ ॥ मीनावतारो भूतानां योगक्षेमाय जायते । तन्नः शुश्रूषमाणाना मर्हस्याङ्गानु वर्णि-तुम् ॥ ४ ॥ सूतजानासि भद्रंते मीनः स्वायंभुवोमनुः । कस्मिन्युगे संजातोयं स्थाने वाकेनहेतुना ॥ ५ ॥ आख्याहिहरेर्धीमन्नवतार कथाः सुभाः । लीलाविदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ॥ ६ ॥

भा० टी०—अब दूसरा स्कन्ध शुरु होता है । मीन (विष्णु) भगवान का स्वायंभुव मनु अवतार वर्णन प्रथम अध्याय प्रारंभः । पुराण कर्ता व्यास बोले कि इतना कहने पर सुतजी की स्तुती करते हुए बहुत ऋचाओं के जानने वाले चिर कालीन यज्ञशील मुनियों के वृद्ध कुल पति शौनकजी यों बोले कि हे सभ्य इस आने वाले कलियुग में प्रायः कर के मनुष्य अनेक उपद्रवों से पीडित, मन्द, अतिमन्दमति, मन्दभाग्य, और अल्पायुष वाले होते हैं । बड़े २ यज्ञ तप दान आदि विषय तो बहुत दिनों में सुनने व करने योग्य और बहुत दिनों में फल देने वाले होत हैं और इधर उक्त कारणों से मनुष्य जीवन चिरस्थाई नहीं है । अतएव हेसाधो ! जो कुछ तुमने अपनी बुद्धि से सारांश निकाला हो उन्हीं समस्त मीनावतारों को संक्षेप-तया अपने जनों के कल्याणार्थ कहिये । भगवान्का मीनावतार प्राणी मात्र के योग और क्षेम के लिये होता है । उन सभी अवतारों का वर्णन हम श्रोताजनों के सन्मुख कहना अत्युत्तम है । हे सूतजी आपका कल्याण हो । आप सब जानते हैं कि स्वायंभुव मनु नाम से विष्णु भगवान का यह मीनावतार किस युग में, किस स्थान में, किस हेतु से हुआ । हे धीमान्सूतजी अपनी माया से लीलाको धारण कर विचरने वाले हरि के सब मीनावतारों की शुभ कथा सानुग्रह हम से कहिये ॥ १-६ ॥

(सूतउवाच) अवताराह्य संख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः । यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ ७ ॥ ऋषयोमनवो देवा मनुपुत्रामहौजसः कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥ ८ ॥ एतेचांशकलाः पुंसोमीनस्तु भगवान्स्वयम् ॥

जातः कृतयुगस्यादौ सर्वज्ञोधृतिमान्नृपः ॥ ६ ॥ प्रजापति सुतः सम्राणमनुर्विख्यात-
तमण्डलः । ब्रह्मावर्तयोऽधिवसन् शास्तासप्तार्णवांमहीम् ॥ १० ॥

भा० टी०—सूतजी बोले हे ऋषियो । सत्त्वमूर्ति भगवान के ऐसे अनेक मीनावतार हैं जिनकी गिनती नहीं हो सकी । जैसे अक्षय अथाह सरोवर से सहस्रों छोटे २ सोते निकलते हैं । ऋषि, मनु, देवता, महापराक्रमी मनुष्यों के पुत्र, एवं सम्पूर्ण प्रजापति, ये सब हरि की ही कला है । और तो सर्व परमेश्वर के अंशावतार हैं किंतु इनमें मीन स्वयं भगवान ही है । यह सर्वज्ञ धृतिमान् राजा स्वायंभुव मनु कृत युग के आदि में हुए हैं । समस्त भूमंडल पर विख्यात, ब्रह्मा के पुत्र सम्राट् मनुजी भ्रुव प्रदेश के ब्रह्मावर्त में रह कर, सात समुद्रवाली इस पृथ्वी का शासन करते थे ॥ ७-१० ॥

गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपिचेश्वरः । रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते । धर्मस्यार्थस्य चैवहि ॥ ११ ॥ सत्त्वंरजस्तमइतिप्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्यधत्ते । स्थित्यादयेहरि विरिंचिरहरेतिसंज्ञाः श्रेयांसितत्रखलुसत्त्वतनोर्नृणांस्युः ॥ १२ ॥

भा० टी०—साधु, वेद, गो, ब्राह्मण, देव, और धर्म की रक्षा चाहते हुए ईश्वर प्रजा के हितार्थ शरीर को धारण कर लेते हैं । सत्त्वरज और तम इन तीन प्रकृति के गुणों से युक्त एक परम पुरुष संसार की सृष्टि स्थिति और लयार्थ विरिंचि, हरि, हर इन तीनों संज्ञाओं को धारण करते हैं । इन तीनों में से मनुष्यों को एक हरि नामक सतोगुणमूर्ति, ही विशेष कल्याण कारक होती है ॥ ११-१२ ॥

अतोवैकवयोनित्यं भक्तिपरमयामुदा । मीनदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसाद-नीम् ॥ १३ ॥ सएवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममयया । सदसद्रूपयाचासौ गुणमयाऽगु-णोविभुः ॥ १४ ॥ तयाविलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव । अन्तः प्रविष्टआभाति विज्ञानेन विजृंभितः ॥ १५ ॥

भा० टी०—इसी कारण सुचतुर विद्वान लोग परमानंद से आत्माको प्रसन्न करनेवाली भगद्भक्ति करते हैं । वही अगुण विभु सदसद्गुणमयी अपनी माया से इस जगत् को उत्पन्न करते हैं । विज्ञान से प्रकाशित वही मीन देव चैतन्य रूप से प्राणियों में प्रविष्ट हो कर रहता है और उनके द्वारा विलसित इन गुणों में गुणवान के समान भासित होता है ॥ १३-१५ ॥

असौगुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः। स्वनिर्मितेषुनिर्विष्टोभुंक्तेभूतेषु-
तद्गुणान् ॥१६॥ भावयत्येष सत्त्वेन लोकान्वै लोकभावनः। लीलावतारानुरतोदेव
तिर्य्यंनरादिषु ॥ १७ ॥ उच्चावचेषु भूतेषु चरन्वायुरिवेश्वरः। नोच्चावचत्वंभजते
निर्गुणत्वाद्धियोगुणैः ॥ १८ ॥ वदन्तितत्तत्त्वविदस्तत्त्वंयज्ज्ञानमद्वयम् । ब्रह्मेति
परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ १९ ॥ मनुर्नारायणोमीनः पुराणः पुरुषोत्तमः।
वासुदेवोजगद्धामं विश्वोत्पत्यादिहेतवः ॥ २० ॥ स्वायंभूवश्चित्तवृत्तिः परंपूज्यपि-
तामहः। कामशत्रुहणंदेवो मारणोमीनविग्रहः ॥ २१ ॥

भा० टी०—वहां भगवान्मीन, निजनिर्मित भूतसूक्ष्म, एवं इन्द्रिय आदि पदार्थों द्वारा सब प्राणियों में अवस्थित होकर यथा योग्य अपनी माया के गुणों का भोग स्वयं करते हैं। वही लोक भावन मीन भगवान सतोगुण से लोकों का पालन करते हैं। एवं जगन्मंगलमूललीला के लिये देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि नाना योनियों में अवतार लेते हैं। और काम क्रोधादि गुणों से वर्जित निर्गुण होने के कारण ऊंच नीच भूतों में विचरने पर भी वायु के समान ईश्वर ऊंच नीच भाव को नहीं भजते। तत्त्व (पदार्थ विज्ञान) के जानने वाले विद्वान लोक उस ईश्वर को तत्त्व, ज्ञान, अद्वय, ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् आदि शब्दों में सम्बोधित करते हैं। मनु, नारायण, मीन, पुराण, पुरुष, पुरुषोत्तम, वासुदेव, जगद्धाम, विश्वोत्पत्त्यादिहेतु स्वायंभुव, चित्तवृत्ति, परंपूज्य, पितामह, कामहन, शत्रुहन, देव, मारण, मीनविग्रह, ॥ १९-२१।

सर्वसत्त्वहितोयोगी चिदानन्दमयः शिवः। जगन्नाथः सुरज्येष्ठोभूतेशः
परमार्थदः॥ २२ ॥ सर्वज्ञो निर्मलः शान्तश्चैतन्य सर्वगोत्तमः। सर्वात्मा सर्वदर्शीच
सर्वव्यापी जगद्गुरुः॥२३॥ अजः सनातन, शंभुरेकोनैकनिरंजनः। ओंकाराकृतिरव्यक्तो
व्यक्तरूपस्त्रयीमयः ॥२४॥ परमेन्दूपरः प्राणः क्षेत्राधीशोनिरामयः। दिव्यतेजोमयः
शुद्धोनिर्मारोमारणेश्वरः ॥ २५ ॥

भा० टी०—सर्व सत्त्वहित, योगी, चिदानन्दमय शिव, जगन्नाथ, सुरज्येष्ट, भूतेश, परमार्थद, सर्वज्ञ, निर्मल, शान्त, चैतन्य, सर्वगत, उत्तम, सर्वात्मा, सर्वदर्शी, सर्वव्यापी, जगद्गुरु, अज, सनातन, शंभु, एक, अनेक, निरंजन, ओंकारआकृति, अव्यक्त, व्यक्तरूप, त्रयीदेवमय, परम, इन्दु, (हिन्दू,) पर प्रण क्षेत्राधीश, निरामय दिव्यतेजोमय शुद्ध, निर्मार, मारण जातिके ईश्वर, ॥ २२-२५ ॥

साकारश्च निराकारो । विश्वतत्व प्रकाशकः। आद्योनाद्यःपरंमारो विष्णुरीशप्रजापतिः ॥ २६ ॥ सर्वतीर्थमयोनित्य सर्वदेवमयः प्रभुः । विश्वकर्माजगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्त्तिर्जिनेश्वर ॥ २७ ॥ जंगमोगौरवश्चित्रो जगत्प्राणो जनाश्रयः ॥ चन्द्रश्चिरंतनो ज्ञातश्चिद्रुपोजीवनंतथा ॥ २८ ॥ ध्रुवोद्विजपतिस्त्रातुः प्रसूनो बीजकेशवः । एकशृंगो यमःकीलोब्रह्मपुत्रोथ ब्राह्मणः ॥ २९ ॥

भा० टी०—साकार, निराकार, विश्वप्रकाशक, तत्वप्रकाशक, आद्य, अनाद्य, परमार, विष्णु, ईश, प्रजापति, सर्वतीर्थमय, नित्य, सर्वदेवमय, प्रभु विश्वकर्मा, विश्वज्येष्ठ, कर्मज्येष्ठ, जगत्ज्येष्ठ, विश्वमूर्ति, जिनेश्वर, जंगम, गौरव, चित्र, जगत्प्राण, जनाश्रय, चंद्र, चिंरतन, ज्ञात, चिद्रूप, जीवन, ध्रुव, द्विजपति, त्रातु, प्रसून, बीज, केशव, एकश्रृंग, यमकील, ब्रह्मपुत्र, ब्राह्मण, ॥ २६-२९ ॥

प्राग्वंशो भूधरोभानुर्मत्स्यराजोविराटजः । युगादिकृद्युगावर्तः प्रत्ययःसर्व दर्शनः ॥ ३० ॥ अतीन्द्रो मेहनोरामोहंसोधन्वीपरंतपः । भक्तिवश्योगुणातीतः सर्वैश्वर्यप्रदायकः ॥ ३१ ॥ सिद्धोबुद्धः प्रबुद्धात्मा कूटस्थः स्थाणुरत्नयः । अग्रणीर्ग्रामणी नेताप्रणेतान्यायशास्त्रकृत ॥ ३२ ॥ पद्मयोनिर्जगद्योनिः कः स्त्रष्टामीन केतनः । काकेशः कुन्तलोमैनी आदिमीन गणाधिपः ॥ ३३ ॥ इत्येवंतस्यनामानि शतशोऽथसहस्त्रशः । यः शृणोति नरोभक्त्या सगच्छेद्वैष्णवंपदम् ॥ ३४ ॥

भा० टी०—प्राग्वंशधर, भूधर, भानु, मत्स्यराज, विराटज, युगादिकृत, युगावर्तक, प्रत्यय, सर्वदर्शन, अतीन्द्र, मेहन, राम, हंस, धन्वी, परंतप, भक्तिवश, गुणातीत, सर्वैश्वर्य प्रदायक, सिद्ध, बुद्ध, प्रबुद्ध, आत्मा, कूटस्थ, स्थाणु, अत्नय, अग्रणी, ग्रामणी, नेता, न्याय शास्त्रकृत, पद्मयोनि, जगत्योनि, क, स्त्रष्टा, मीनकेतन, काकेश, कुन्तल, मैनी, आदिमीनगणाधिप, इस प्रकार से उस मीनभगवान के सैंकड़ों व सहस्रों नाम हैं । जो मनुष्य भक्ति पूर्वक इन नामों को सुनता व पढ़ता है वह अवश्य ही विष्णु भगवान् के पद (बैकुण्ठ) को पाता है ॥ ३०-३४ ॥

मत्तद्विपेन्द्र मृगराज दवानलाहि संग्राम वारिधि महोदर बन्धनोत्थम् । तस्याशुनाशमुपयातिभयं भियेव, योमीनकं स्तवमिमंमतिमानधीते ॥ ३५ ॥ येऽभिनन्दन्तिनामानिहरेःश्रुत्वातिहर्षिताः । रोमांचितशरीराश्च तेवैभागवतोत्तमाः ॥ ३६ ॥ श्रोतव्यंमारयैनित्यंदुष्टग्रहनिवारणम् । सर्वरोगप्रशमनमायुर्वर्द्धनकारण-

॥ ३७ ॥ दुःस्वप्ननाशनंपुण्यं धर्म्यंपापहरंशुभम् । देवानांदुर्लभं गुह्यं सर्वसंपत्करं परम ॥ ३८ ॥ पुराणश्रवणेभक्तिर्गंगास्नानसमाद्विजाः । तद्वक्तरिचयाभक्तिःसा प्रयागोपमास्मृता ॥ ३६ ॥

भा० टी०—मदोन्मत्तहस्ती, सिंह, अग्नि, संग्राम, समुद्र, जलोदर, और बन्धीखाना आदि सर्व प्रकार के भय, उस मनुष्य के भिड मृग के समान शीघ्र नष्ट होजाते हैं जो कि बुद्धिमान इस मीन भगवान् के स्तोत्र को प्रतिदिन पढ़ता है। जो रोमांचित शरीर वाले मनुष्य हरि के नामों को सुनकर अति हर्षित और आनन्दित होते हैं वही उत्तम भागवत (सच्चेभक्त) हैं। मारणजाति के राजपूतों को चाहिये कि दुष्टग्रहों को निवारण करने वाले एवं सब रोगों को शान्त करने वाले और आयु की वृद्धि के कारण मीन भगवान् के इन नामों को नित्य पढ़े वा सुनें। ईश्वर के ये परम शुभ नाम, दुःस्वप्न को नाश करने वाले, पापों को हरने वाले, सर्व संपत्तकरने वाले गोपनीय, धर्म और पुण्य स्वरूप देवताओं को भी दुर्लभ है। अये ब्राह्मणों! मीनपुराण को श्रवणन् करने की भक्ति श्रीगंगाजी के स्नान के पुण्य को देने वाली और इसको पढ़कर सुनाने वाले की भक्ति तीर्थराज प्रयाग के समान है॥ ३५-३६ ॥

पुराणसंहिता वक्ताहरिरित्यभिधीयते। त किं कुर्वतांनृणां गंगास्नानंदिने दिने ॥ ४० ॥ भक्तिस्तुभगवद्भक्तसंगेनखलुजायते। तत्संगंप्राप्यतेपुंभिः। सुकृतैः पूर्वसंचितैः ॥ ४१ ॥ सत्संगः परमोब्रह्मन्नलभ्येताऽकृतात्मनाम् ॥ यदिलभ्येतविज्ञेयं पुण्यंजन्मान्तरार्जितम् ॥ ४२ ॥ यथालोकोहि जंतूनां चेष्टा कारणतांगतः। तथैव पूर्वं सिद्धीनां भक्तिः परमकारणम् ॥ ४३ ॥ यथा भूमिसमाश्रित्य सर्वेजीवन्ति जन्तवः। तथाभक्तिसमाश्रित्य सर्व कार्याणिसाधयेत् ॥ ४४ ॥ यइदंप्रातरुत्थाय पठेद्वैभक्तिपूर्वकम्। सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकंसगच्छति ॥ ४५ ॥ इति श्रीमीनपुराणे द्वितीय स्कन्धेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

भा० टी०—इस मीनपुराण संहिता को सभा में पढ़कर सुनाने वाला साक्षात हरि ही है, ऐसा जानना चाहिये। उसकी भक्ति करने वाले मनुष्यों को प्रतिदिन गंगा स्नान का पुण्य होता है। भगवद्भक्त के सत्संग से ही भक्ति उत्पन्न होती है और भक्तों का सत्संग मनुष्यों को पूर्व संचित सुकृत से ही मिलता है। हे ब्राह्मणों! अच्छा सत्संग, अकृत पुण्य आत्माओं को नहीं मिल सकता। यदि कहीं मिलजाता है तो, समझो कि पूर्व जन्मोपार्जित पुण्य का बड़ा उदय है। जैसे आलोक ही सर्व जन्तुओं के चेष्टा का कारण है वैसे एक भक्ति ही सर्व

सिद्धियों का परम कारण है। जैसे भूमिका आश्रय लेकर सर्व जन्तु जीते हैं, वैसे ही भक्ति के आश्रित हो कर सर्व कार्य्य सिद्ध करने चाहिये। जो कोई मनुष्य इस मीनपुराण को प्रातः काल उठ कर भक्ति पूर्वक पढ़ता है वह सर्व पापों से विशुद्ध आत्मा हो कर विष्णु लोक (वैकुण्ठ) को अवश्य पाता है॥ ४०-४५॥ इति श्रीमद्भगवन्मीनपुराणे द्वितीय स्कन्धे प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथद्वितीयअध्यायः (सूतउवाच) योवाअनन्तस्य गुणानन्ताननुक्रमिष्यन्सतुबालबुद्धिः। रजांसिभूमेर्गणयेत्कथंचित्कालेननवाखिलशक्तिधाम्नः॥ १॥ भूतैर्यदापंचभिरात्मसृष्टैः पुरंविराजंविरचय्यतस्मिन्। स्वांशेनविष्टः पुरुषाभिधानमवापनारायण आदिमीनः॥ २॥

भा० टी०—सूतजी बोले हे मुनिजनो! जो व्यक्ति अनन्त हरि के संपूर्ण अवतार व अनन्तगुण और कर्मों की गिनती करना चाहता है वह अत्यन्त अदूरदर्शी और बालकों की ऐसी बुद्धि रखता है। बहुत काल में किसी प्रकार चाहे पृथ्वी के रजकण गिने भी जासक हों परन्तु सर्व शक्ति धाम मीनभगवान के गुण कर्म और अवतारों की गणना नहीं की जासकी। अपने उत्पन्न किये पंचतत्त्वों से इस ब्रह्माड रूप बिराट शरीर पुरकी रचना कर के अपने अंश चेतरूप जीवात्मा के द्वारा उसमें प्रवेश करनेसे उस आदि मीन नारायण को पुरुष कहते हैं॥ १-२।

प्रियव्रतोत्तान पादौ सुतौ स्वायंभुवस्यवै। यथाधर्मजुगुपतुः सप्तद्वीपवतींमहीम्॥ ३॥ जायेउत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः। सुरुचिः प्रेयसीपत्युर्नेतरायत्सुतो ध्रुवः॥ ४॥

भा० टी०—आदि मीन भगवान्स्वायंभुवमनुजी के, प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दोनों पुत्र अपने पिता के उत्तराधिकारी हो कर सात द्वीपावली इस पृथ्वी को यथा धर्म रक्षण करते हुए। राजा उत्तानपाद के सुनीति और सुरुचिनामा दो मुख्य रानियें थी। उनमें सुरुचि रानी राजा को विशेष प्यारी थीं, और दूसरी सुनीति जिसका पुत्र ध्रुव है प्यारी न थी॥ ३-४॥

एकदा सुरुचेःपुत्रमंकमारोप्यलालयन्। उत्तमंनारुरुक्षंतं। ध्रुवंराजाभ्यनन्दतः॥ ५॥ तथाचिकीर्षमाणंतं सपत्न्यास्तनयंध्रुव। सुरुचिः शृण्वतोराज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता॥ ६॥ नवत्सनृपतेर्धिष्ण्यं भवानारोढुमर्हति। नगृहीतोमयायत्त्वंकुक्षावपिनृपात्मजः॥ ७॥ बालोसिवतनात्मान मन्यस्त्रीगर्भसंभृतम्॥ नूनंवेद भवान्यस्य

दुर्लभेर्येमनोरथः ॥ ८ ॥ तपसाराध्यपुरुषं तस्यैवानुग्रहेणमे । गर्भेत्वंसाधयात्मानं यदिच्छसिनृपासनम् ॥ ९ ॥

भा० टी०—एक दिन राजाउत्तानपाद रानीसुरुचि के पुत्र उत्तम को, गोद में लिये खेला रहे थे, इतने में ध्रुव भी आगये, और पिता की गोद में चढ़ने लगे। परन्तु राजा सुरुचि के भय से ध्रुव को गोद में न लेसके। गर्व से भरी रानी सुरुची, राजा के सामने ही अपने पुत्र की बराबरी कर रहे, सौतके पुत्र ध्रुव से, इस प्रकार ईर्षा से भरे वचन कहने लगीं। ध्रुव! तुम राजा के पुत्र हो, सही किन्तु राजा की गौद वा राज्यासन के योग्य नहीं हो, क्योंकि तुम्हारा जन्म मेरे गर्भ से नहीं है। तुम बालक हो तुम नहीं जानते कि मैं और स्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ। इसी कारण तुम ऐसा दुर्लभ मनोरथ कर रहे हो। यदि राजा के आसन में बैठने की इच्छा है तो तपः कर के ईश्वर की आराधना करो। और उन्हीं मीनेश्वर के अनुग्रह से मेरे गर्भ में जन्म ग्रहण करो ॥ ५-९ ॥

मातुःसपत्न्याः सदुरुक्तिविद्धः श्वसनरुषाद्दण्डहतोयथाहिः। हित्वामिषन्तं-
पितरंसन्नवाचं जगाममातुः प्ररुदन्सकाशम् ॥ १० ॥ तंनिश्वसन्तंस्फुरिताधरोष्ठं
सुनीतिरुत्संगउदूह्यबालम्। निशम्यतत्पौरमुखान्नितान्तंसाविव्यथेयद्गदितंसपत्न्याः
॥ ११ ॥ सोत्सृज्यधैर्यं विललापशोक दावाग्निनादावलतेवबाला। वाक्यंसपत्न्याः
स्मृतीसरोज श्रियादृशाबष्पकलामुवाह ॥ १२ ॥ दीर्घंश्वसन्ती वृजिनस्यपारमपश्य-
तीबालकमाहबाला। मामंगलंतातपरेष्वमंस्था भुंक्तेजनोयत्परदुःखदस्तत् ॥ १३ ॥

भा० टी०—अपनी माता की सौत के कहे हुए ये कटुक वचन बालक ध्रुव के हृदय में बाण ऐसे बिंध गये। और जैसे सांप के लाठी मारो और वह साँसें ले, उसी भांती बड़ी २ साँसें लेकर रोने लगे। स्री के वशवर्ती पिताने भी चुप के खड़े २ सब सुना और कुछ भी न कहा। जैसे ध्रुव उनके लड़के थे ही नहीं। ये देख ध्रुवजी वहां से रोते हुए अपनी माता के पास आयें। सुनीतिने बड़ी २ साँसें ले रहे ध्रुवको देखा कि आंसू आंखों से बह रहे हैं। सुनीति ने ध्रुव को गोद में उठा लिया। इतने में अन्तःपुर की दासियों ने आकर सब वृन्तात कहा। तब सौत के वाक्य सुन कर सुनीति को बड़ी ही व्यथा हुई। रानी सुनीति शोक रूप दावानल से लता के समान मुरझा गई। एवं धीरज छोड़ कर विलाप करने लगीं। सौत के वचन स्मरण कर, कमल से नेत्रों से निरन्तर आसुओं की वर्षा करने लगीं। सुनीति को इस दुःख सागर का पार न देख पड़ा, तब वह बड़ी २ साँसे लेकर ध्रुव से कहने लगीं। बेटा इस में दूसरे को दोष देना योग्य नहीं है। क्योंकि जो व्यक्ति, पहलें किसी को दुःख देता हैं वह भी फिर उसी दुःख को भोगता है। यह सब अपने ही कर्म का फल है ॥ १०-१३ ॥

भा० टी० शुभ भूमि के पवित्र स्थान में, नहीं अति ऊंचा नहीं अति नीचा, समान भूमिपर आसन तीन-कुश चर्म व ऊन और वस्त्र का क्रम से नीचोपरि, स्थिर अपने बैठने के लिये, स्थापन करना चाहिये। कटि मस्तक तथा ग्रीवा अर्थात् मूलाधार से मस्तक के अग्र भाग तक सर्व अवयवों को सम और स्थिर, अचल, रखकर, अन्य दिशाओं में नहीं देखता हुआ अर्धोन्मीलित नेत्रों से अपने नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखना चाहिये। प्रशान्तात्मा, भयवर्जित, ब्रह्मचारी और व्रतो में स्थित होकर, उक्त विधिसे आसन पर बैठकर, इस प्रकार आत्म विशुद्धि के लिये ईश्वर के संग योग करना चाहिये ॥ ४१–४३ ॥

इति श्री मद्‌भगवन्मीन पुराणे द्वितीयो ध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः प्रा०

नारदउवाच–योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मज। मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥ १ ॥ स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्त्तनम्। दैवाल्लब्धेन संतोष आत्मविच्चरणार्चनम् ॥ २ ॥ ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मरतिस्तथा। मितमेध्यादनं शुचिविविक्तक्षेमसेवनम् ॥ ३ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थपरिग्रहः। ब्रह्मचर्यं तपः [illegible] स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् ॥ ४ ॥

[illegible] टी० नारदजी बोले हे राजकुमार अब सबीज (सावलंबन) योगका लक्षण मैं तुमसे [illegible] अभ्यास करने से मन प्रसन्न (निर्मल) होकर सन्मार्ग में गमन करता है [illegible] यथाशक्ति आचरण, विरुद्ध या निषिद्ध धर्म (अधर्म से निवृत्त होना, जो [illegible] संतोष, आत्म तत्व के जानने वाले ज्ञानियों के चरणों की सेवा पूजा, [illegible] मोक्षदायक धर्ममें रति। शुद्ध एवं मित जितने में योगाभ्यास [illegible] रहित निर्जन [illegible]

यथास्थिरमचंचलम् ॥ ७ ॥ मनोचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः । वाय्वग्… यथा हेमं ध्मातं त्यजति वैमलम् ॥ ८ ॥

भा० टी०—मौन-प्रयोजन के सिवाय अधिक नहीं बोलना। आसन जीत कर स्थिर भाव से स्थित होना, फिर क्रम २ प्राणवायु को जीतना, इन्द्रियों को मन द्वारा विषयों से हटाकर अन्तःकरण में लीन करना। इन संपूर्ण एवं इनके अतिरिक्त अन्य व्रत आदि उपायों से असत् (विषय) मार्ग में लगे हुए दुष्ट मन को क्रमशः बुद्धि द्वारा योग साधन में लगाना चाहिये! एवं आलस्य त्याग कर प्राण वायु को जीतना चाहिये। पहले पूरक (बाहर के वायु को भीतर भरना) कुंभक (उस वायु को भीतर रोकना) रेचक (उस वायु को बाहर निकाल देना) इस तीन प्रकार के प्राणायाम से, अनुलोम प्रतिलोम क्रम से चित्त को ऐसा शुद्ध करे जिससे वह अपने चंचलता दोष को त्याग कर, एक कदम श… हो जाय। जैसे वायु और अग्नि के ताव से सोना अपने मैल को त्याग देता है, वैसे वारंवा…र, प्राणा… के द्वारा श्वास जय करने से योगी का मन भी शीघ्र ही निर्मल हो जाता है ॥ ५—८ ॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्विषान् ॥ प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥ ९ ॥ यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम् । काष्ठां भगवतो ध्याये… नासाग्रावलोकनः ॥ १० ॥ प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम् । वेदानुद्धारकं शंखचक्रगदाधरम् ॥ ११ ॥ संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं वज्रांकुशध्वजसरोरुह… नाढ्यम् । उत्तुंगरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारं…

भा० टी०—इसके अनन्तर समाधि के द्वार स्वरूप प्राणायामादि … करने चाहिये सो कहते हैं। प्रथम प्राणायाम द्वारा कफ, पित्त आदि … फिर धारणा (वायु के साथ मन को स्थिर करना) से किल्विष अ… …हटाकर चित्त को … …ना) से संसर्ग…

भा० टी० प्राणी को उचित है कि सुख के आनेपर पूर्व कृत पाप का क्षय और दुःख के पूर्व कृत पुण्य को क्षय जानकर आत्मा को संतुष्ट रक्खे। ऐसा करने से मोक्ष होती है। गुण और अपने से अधिक पुरुष को देखकर आनंदित होना चाहिये और अधम को देखकर उसपे दया चाहिये। एवं समान पुरुष सें मित्रता रखना चाहिये। इस भांति रहने से मनुष्य को पीड़ा और नहीं होता ॥ २७-२८ ॥

दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखेपश्येत्सुखाधिकान् । आत्मानं शोकहर्षाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत् ॥ २९ । कार्यः सम्पदि नानंदः पूर्वं पुण्यभिदेहिसा । नैवापदि विषादश्च सोहि प्राक् पापपिष्टये ॥ ३० ॥ सम्पदो महतामेवमहतामेव चापदः । वर्धते क्षीयते चंद्रो नतु तारागणः क्वचित् ॥ ३१ ॥ शुद्धः सद्वंशकुलश्चसद्धीरः श्लाघ्योविपत्स्वपिनमुंचति यः स्वभावम् । तप्तं यथा दिनकरस्य मरीचिजालैर्देहं त्यजेत्पिहिमं नतु शीतलत्वं ॥ ३२ ॥

भा० टी०—दुःख आने पर अपने से अधिक दुःखियों को देखना चाहिये। और सुख आने पर अपने से अधिक सुखियों को देखना चाहिये। एवं शोक और हर्ष को अपना शत्रु समझ कर, अपने आप को उनके अर्पण नहीं करना चाहिये। सम्पत्ति आने पर आनन्दित नहीं होना चाहिये, क्योंकि वह पुण्य को क्षय करने वाली है। और आपत्ति आने पर विषाद नहीं करना चाहिये क्योंकि आपत्ति पूर्व पापों को पीसकर उड़ादेने वाली है। संपत्ति और विपत्ति ये दोनों बड़ों को होते हैं, देखो वृद्धि और क्षय ये दोनों धर्म चन्द्रमा में होते हैं। तारों में नहीं क्योंकि वह छोटे हैं ॥ वही शुद्ध, अच्छे कुल वाला, धीर वीर, और प्रशंसनीय है कि जो कि—आपत्ति आने पर भी अपने धर्म को नहीं छोड़ता। देखो तपी हुई सूर्य की किरणों के समूह से तपा हुआ हिम (बरफ) अपनी देह को छोड़ देता है। किन्तु अपने स्वाभाविक शीतल गुण को नहीं छोड़ता ॥ ३२ ॥

ध्रुव उवाच

सोयं शमो भगवता सुखःदुखहतात्मनाम् । दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दर्शोस्मद्विधैस्तुयः ॥ ३३ ॥ अथापिमेऽविनीतस्य क्षात्रंघोरमुपेयुषः । सुरुच्या दुर्वचो बाणैर्नभिन्ने श्रयतेहृदि ॥ ३४ ॥ पदं त्रिभुवनो त्कृष्टं जिगीषोः साधु वर्त्म मे । ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितम् ॥ ४४ ॥ नूनं भवान्भगवतो योङ्गजः परमेष्ठिनः । वितुदन्नटते वीणांहितार्थं जगतो [illegible] ॥ ३५ ॥

भा० टी० ध्रुवजी बोले भगवन् ? सुखदुःख के आधीन पुरुषों के लिये यह जो आपने कृपाकर शान्ति का मार्ग दिखाया इसको मेरे जैसे अज्ञानी नहीं देख पाते। किन्तु मैं घोर क्षत्रिय स्वभाव के हूं। अत एव नम्रता वा शान्ति मुझमें नहीं है। मेरा हृदय सुरुचि के दुर्वचन रूप बाणों से विदीर्ण गया है। इसी कारण उसमें ये शान्त वचन नहीं ठहरते। ब्रह्मन मैं उसपद को लेना चाहता हूं जिसमें रे बाप दादे नहीं पहुंचे हैं। और न अन्य भी कोई उस पद को प्राप्त हुआ है। ऐसे त्रिभुवन में श्रेष्ठ पदके पहुँचने की सहज राह मुझको आप कृपाकर बताइये। आप ब्रह्माजी के पुत्र हैं। निश्चय ही आप वीणा बजाते हरि गुण गाते जगत्के हितके ही लिये त्रिलोकी में सूर्य के समान अज्ञान व अमंगल रूप अन्धकार को दूर करते हुए विचरते हैं। ॥ ३३-३५ ॥

(सूत उवाच)

इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान्नारदस्तदा। प्रीतः प्रत्याहतं बालं सद्वाक्यमनु
कंपया ॥३६॥ जनन्याभिहितः पंथाः स वै निश्रेयसेऽस्तु ते। भगवान्वासुदेवस्तं भज
प्रवणात्मना ॥ ३७ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः। एकमेव हरे
कारणं पाद सेवनम् ॥ ३८ ॥ तन्मीन गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि। म
धुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदाहरेः ॥ ३९ ॥ स्नात्वा नु सवनं तस्मिन् कालिन्द्याः स
लिले। कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः ॥४० ॥

भा० टी० सूतजी बोले भगवान् नारद ध्रुव के ऐसे वचन सुनकर व उनकी दृढ प्रतिज्ञा देखकर प्रसन्न हुए। फिर दयापूर्वक बालक ध्रुवसे इस प्रकार सत् वचन बोले। पुत्र तुमारी माता ने जो उपदेश दिया है वही तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध होने की मंगल मय सहज राह है। इसी राह से तुम भगवान् वासुदेव को भजो। अपने मन को भक्तिसे शुद्ध करके हरि में लगाओ। धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों कल्याणों के मिलने का कारण एक हरि के चरणों की सेवा ही है। हे मीनपुत्र तुम्हारा कल्याण हो ! तुम यमुना जी के पवित्र तटपर स्थित पवित्र मधुवन में जाओ जहां हरि भगवान् सर्वदा वर्त्तमान हैं। वहां यमुनाजी के पवित्र जलमें त्रिकाल स्नान कर अपने कर्त्तव्य (देववंदन आदि) कार्य करके कुश आदि के आसन पर स्वस्तिकासन आदि आसन से बैठना चाहिये ॥ ३६-४० ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः। नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिन-कुशोत्तरम् ॥ ४१ ॥ समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ ४२ ॥ प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारि व्रते स्थितः। उपवि-श्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ ४३ ॥

दुःख तथा मान, अपमान में सम रहने वाला ही योगाभ्यास कर सकता है और उसी में परमात्मा निवास करते हैं। ज्ञान और विज्ञान से संयुक्त जिसका आत्मा तृप्त एवं अचल रहता है। इन्द्रियों को जीतने वाला, मिट्टी के टुकड़े, पाषाण और सुवर्ण ऊपर जिसकी एक समान बुद्धि हो, सुहृद्, मित्र, शत्रु के ऊपर उदासीन, मध्यस्थ, अपने ऊपर द्वेष रखने वाले पर, बन्धु (भाई) पर, साधु और पापी पर भी समान बुद्धि रखने वाला, महात्मा ही योग साधन के विशेष योग्य है। अपनी आत्मा के समान सर्व प्राणिमात्र को जो देखता है। सुख और दुःख को जो एक समान देखता है। हे ध्रुव! उसी को मैं परम योगी मानता हूँ। क्योंकि मेरी यह मति है कि जो मनुष्य पूर्वोक्त अभ्यास और वैराग्य से मन को वश नहीं करता, उसको योग दुष्प्राप्य है। और जिसका आत्मा वस में है, वह अष्टाङ्ग उपायों के द्वारा प्रयत्न करने पर योग को प्राप्त कर सकता है ॥ २६-३० ॥

अहिंसा सूनृतास्तेय ब्रह्माकिंचनता यमाः। नियमाः शौचसंतोषौ स्वाध्यायतपसी अपि ॥ देवता प्रणिधानं च करणं पुनरासनम् ॥ ३१ ॥ प्राणायामः प्राणयमः श्वास-प्रश्वासरोधनम् । प्रत्याहारस्त्विन्द्रियाणां विषयेभ्यः समाहृतिः ॥ ३२ ॥ धारणा तु कचिद्ध्येये चित्तस्य स्थिरबन्धनम्। ध्यानं तु विषये तस्मिन्नेकप्रत्ययसंततिः ॥ ३३ ॥ समाधिस्तु तदेवार्थमात्राभासनरूपकम्। एवं योगो यमाद्यङ्गैरष्टभिः सम्मतोष्टधा ॥३४॥

भा० टी० अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अकिंचनता, ये पाँच यम हैं। शौच, संतोष, स्वाध्याय, तप और प्रणिधान, ये पाँच नियम हैं। करण आसन को कहते हैं। श्वास को खींचना, रोकना और निकाल देने को प्राणायाम कहते हैं। इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा लेना प्रत्याहार है। देवमूर्ति आदि पर चित्त को स्थिर करके बाँध देना, धारणा है। प्रत्ययान्तरों से चित्त का निरोध करके, ध्येय (विषय) के एक आलम्बन की सन्तति को ध्यान कहते हैं। ध्येयाकार होजाना समाधि है। इस प्रकार से योगियों का माना हुआ योग, यमादि अङ्गों के भेदसे आठ प्रकार का है। ॥ ३१-३४ ॥

सर्वगुह्यतमं भूयः श्रृणु मे परमं वचः। इष्टोसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ३५ ॥ ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे तिष्ठति ध्रुव। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रा-रूढानि मायया ॥ ३६ ॥ तं मीनं शरणं गच्छ सर्वभावेन मारण। तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ ३७ ॥ सू० उ०। इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च ...र्भकः। ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमत्स्य० मी० द्वि० स्कं० तृतीयो-ध्यायः ॥ ३ ॥

भा० टी० हे ध्रुव ! तू मुझको अतिशय प्यारा लगता है । अतएव फिरभी मेरे परम गुप्त वचन सुनो। मैं तुम्हारे हित के लिए कहता हूँ। मीनेश्वर भगवान् सर्वजीवों के हृदय में ही रहते हैं। और वही अपने यन्त्रारूढ मायारूपी चक्र से सर्वप्राणीरूप कल-पुर्जों को घुमाते रहते हैं। अतएव सर्वात्मभाव से तू उसी मीन भगवान् के शरण जा। क्योंकि उन्हीं की कृपासे तू उत्तम शान्ति और शाश्वत ध्रुवस्थान को पावेगा। सूतजी बोले, देवऋषि नारद का यह उपदेश सुनकर, राजकुमार ध्रुव ने नारद जी की प्रदक्षिणा और प्रणाम किया। फिर ध्रुवजी उनसे विदा होकर हरि के चरणों से पवित्र उस मधुवन को चले गये।॥ ३५–३८ ॥

इति श्रीमद्भागवत मीनपुराणे द्वितीयस्कंधे तृतीयोऽध्यायः

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः प्रारम्भः । ध्रुवतपवर्णनम् ॥

सूत उवाच। तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम्। समाहितः पर्यचरद्दृष्यादेशेन पूरुषम् ॥ १ ॥ त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः। आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येर्चयन्हरिम् ॥ २ ॥ द्वितीयं च तथामासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने। तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोभ्यर्चयद्विभुम् ॥ ३ । तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि। अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ॥ ४ ॥ चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि। वायुभक्षो-जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥ ५ ॥

भा० टी०—अब चौथा अध्याय शुरू होता है। ध्रुवजी के तप का वर्णन। सूतजी बोले—ध्रुव जी ने मधुपुरी में पहुंच कर स्नान किया और उस रात को व्रत किया। उसके बाद एकाग्र होकर नारदजी के उपदेश के अनुसार भगवान् की आराधना करने लगे। ध्रुव ने तीन २ दिन के बाद केवल कैथा और बेर के फल खाकर शरीर का पालन करते हुए हरि की सेवा में पहिला महीना बिताया। दूसरा महीना छठे २ दिन वृक्षों से गिरे हुए सूखे पत्ते और तृण आदि खाकर हरि की सेवा में बिताया। ऐसे ही तीसरा महीना नवें २ दिन केवल जल पीकर ही हरि के ध्यान में व्यतीत किया। चौथा महीना बारहवें २ दिन केवल वायु भक्षण करके प्राणायाम द्वारा हरि की आराधना में बिताया ॥ १–५ ॥

...ञ्चमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः। ध्यायन्मीनं पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥६॥ सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम्। ध्यायन्भगवतोरूपं नाद्राक्षीत्किं...परम् ॥७॥ आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम्। ब्रह्मधारयमाणस्य त्रयो लोका... यासे... ॥८॥

भा० टी०—पाचवें महीने राजकुमार ध्रुव श्वास को रोक कर एक पैर से खंभे के समान निश्चल खड़े हो हृदय में मीन भगवान का ध्यान करने लगे। शब्द आदि विषय एवं चक्षु आदि इन्द्रियों का आश्रय जो मन है उसे बाह्य पदार्थों से खींच कर हृदय में स्थित हरि भगवान् के ध्यान में लगाया। ध्रुव को उस समय सिवाय भगवान के रूप के और कुछ भी न दीख पड़ने लगा। जब महत् आदि तत्त्वों का आधार एवं प्रकृति पुरुष का ईश्वर जो परब्रह्म है उसे ध्रुव ने हृदय में धारण कर लिया तब तीनों लोक कांप उठे। ॥६-८॥

यदैकपादेन स पार्थिवार्भकस्तस्थौतदंगुष्ठनिपीडिता मही। ननाम तत्रार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता तरीव सव्येतरतः पदे पदे ॥९॥ तस्मिन्नभिध्यायति विश्वात्मनो द्वारं निरुध्यासुमनन्यया धिया। लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम् ॥१०॥ देवा उचुः नैवं विदामो भगवन्प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः। विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥११॥ श्री भगवानुवाच। मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्ययान्निवर्त्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम। यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि संगतात्मा ॥१२॥

भा० टी०—वह राजकुमार एक पैर से खड़े थे, उनके अंगूठे से दबी हुई पृथ्वी हिलने लगी, जैसे हाथी के चढ़ते समय नाव इधर उधर डगमगाती है। ध्रुवजी प्राण और प्राण के द्वारों को रुद्ध करके ईश्वर में और अपने में तथा अपने व सब जगत् में भेद-भाव त्याग कर विश्वमूर्ति भगवान् का ध्यान करने लगे। उस समय संपूर्ण लोकों (सब जीवों) की सांस रुक गई और सब जीव व लोकपाल बहुत ही पीड़ित हुये। अन्त को सभी मिल कर अपना कष्ट दूर करने की प्रार्थना करने के लिए भक्त भय भंजन हरि की शरण में गये। जाकर हरि से देवगण बोले—भगवन् चराचर संपूर्ण प्राणियों की सांस क्यों रुक गई? सो हमें कुछ नहीं जान पड़ता, ऐसा तो कभी नहीं हुआ। इस क्लेश से शीघ्र हमें छुड़ाइये, आप शरण में आये हुए लोगों के प्रतिपालक हैं। अतएव हम आपकी शरण में आये हैं। श्री भगवान् बोले, देवगण; तुम डरो नहीं। जिस बालक से तुम्हारी श्वास का अवरोध हुआ है उसको उसकी दुष्कर तपस्या से मैं अभी जाकर निवृत्त करता हूँ। वह राजा उत्तानपाद का पुत्र है। वह इस समय मुझमें मिल गया है। अतएव एक उसके साँस रोकने से संपूर्ण विश्व की साँस रुक गई है। ॥९-१२॥

त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम्। सहस्रशीर्षापि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥१३॥ स वै धिया योगविपाकतीव्रया

तद्दर्शनेनागत साध्वसः क्षितावन्दतांगं विनमय्यदंडवत् । दृग्भ्यां प्रपश्यन्प्रपिबन्निवार्भकश्चु-म्बन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन् ॥१५॥ स तं विवक्षन्तमतद्विदं हरिर्ज्ञात्वास्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः । कृतांजलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥१६॥

भा० टी०—वाक्य सुनकर देवगण का भय दूर हो गया, तब वे सब भगवान् को प्रणाम कर स्वर्ग को चले गये । सहस्र शिर वाले भगवान भी अपने भक्त ध्रुव को देखने की इच्छा से मधुवन को गये । ध्रुव की बुद्धि दृढ़ योग से निश्चल थी । वह अपने हृदय कमल में बिजली के समान प्रभावशाली भगवान की मूर्ति का ध्यान कर रहे थे । सहसा भगवान की मूर्ति हृदय से अन्तर्द्धान हो गई । तब घबड़ा कर ध्रुव ने नेत्र खोले, तो देखा कि सामने वैसे ही रूप से श्री हरि खड़े हुए हैं उस समय ध्रुव ने मारे हर्ष के संभ्रमयुक्त हो पृथिवी में गिर कर भगवान् को साष्टांग प्रणाम किया। मानों नेत्रोंसे पीलेंगे, मुख से चूम लेंगे, और भुजाओं से लिपटा लेंगे । इस भांति प्रेम से बालक ध्रुव हरि को देखने लगे । ध्रुवजी अंजली बांध कर खड़े हुए और हरि की स्तुति करनी चाही परन्तु कर न सके । भगवान जो सब के हृदय में स्थित हैं अतएव वे जान गये कि ध्रुव अभी अबोध है या हर्ष बस बोल नहीं सकता । तब कृपा पूर्वक अपना वेदतत्व स्वरूप शंख ध्रुव के कपोल में छुआ दिया ॥१३-१६॥

स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः । तं भक्तिभावोऽभ्यगृणा-दसत्वरं परिश्रुतोरुश्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥१७॥ ध्रुवउवाच । योन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना । अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥१८॥ अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ जडाशयोपि कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य । बालोपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य विस्तीर्णतां कथयति स्वधि-याम्बुराशेः ॥१९॥

भा० टी०—उस समय ध्रुव को जीव और ब्रह्म का विवेक प्राप्त हुआ । तब ध्रुवजी ईश्वर की कृपा से उसी समय प्राप्त वेदमय वाक्यों से धीरे धीरे भक्ति पूर्वक, त्रिभुवन में जिनकी पवित्र कीर्ति प्रसिद्ध है उन हरि की स्तुति करने लगे । ब्रह्म ज्ञान होने से ध्रुवजी को अभय पद प्राप्त हो गया । ध्रुवजी बोले हे प्रभु ! जो अपनी चैतन्य शक्ति से संपूर्ण इन्द्रियों को जीवित करता है । और जिसके होने पर हाथ, पैर, कान, त्वचा, प्राण आदि अपना २ कर्म करने को समर्थ होते हैं । वह जीवात्मास्वरूप [illegible] पुरुष आपही हैं । और आपही अन्तः करण में प्रवेश कर मेरी इस वाक् शक्ति को अपनी [illegible] बन [illegible] जीवित कर [illegible] हे भगवन् आपको मेरा प्रणाम है । हे नाथ ! मैं बाल एवं [illegible]

अपनी दोनों भुजाओं को फैलाकर अपनी बुद्धि से समुद्र की विस्तीर्णता को नहीं कहता ? अपितु कहता ही है ॥ १७—१६ ॥

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादमीनं स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोहम् । बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्बमन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥२०॥ आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति । दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव पद्माकरेषु जलजानि [illegible] ॥२१॥ नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूतमीन भूतै- र्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः । तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥२२॥

भा० टी०—जिनके चरणों की पूजा विद्वानों ने की है, उन्हीं मीन भगवान् को मैं निर्लज्ज और बु[illegible] बिना ही स्तुति गोचर करता हूं। सो ठीक ही है, जल स्थित चन्द्र बिम्ब को बालक के बिना कौन दू[illegible] सहसा ग्रहण करना चाहता है। हे प्रभो! समस्त दोष वर्जित आपका स्तोत्र तो दूर ही रहो किन्तु मीन पुराण में रही हुई आपकी पवित्र कथा भी समस्त पापों को नष्ट कर देती है। सो ठीक ही है। भगवान् दिवाकर के दूर रहने पर भी उसकी प्रभा जलाशयों में कमलों को विकशित कर देती है। हे तीन भुवन के भूषण रूप मीन ? आपकी स्तुति करने वाला मनुष्य योग्य गुणों के द्वारा पृथ्वी पर आप ही के समान हो जाये इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। धनाढ्य स्वामी क्या अपने आश्रित को अपने समान नहीं बना लेता है ? ॥२०-२२॥

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः । पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः क्षारं जलं जलनिधेरशितुं क इच्छेत् ॥२३॥ त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांसमादित्यवर्णममलं तमसः परस्तात् । त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयंति मृत्युं नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्रपन्थाः ॥२४॥ त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनंगकेतुम् । योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२५॥

भा० टी०—हे अनिमेष विलोकनीयदेव जिस मनुष्य ने एक बार आपको देख लिया तो फिर उसकी आंखें दूसरे देवों पर सन्तुष्ट नहीं होती। क्योंकि जिसने चन्द्र किरण के समान द[illegible] [illegible]र समुद्र का जल पी लिया तो फिर वह लवण समुद्र का जल क्यों पीवेगा, हे मुनीन्द्र मुनिजन [illegible] (पहला पुरुष) मानते हैं, एवं अज्ञान रूप घोर अन्धकार को [illegible]

समझते हैं। और तुमही को अच्छी तरह पाकर मनुष्य मृत्यु को भी जीत लेता है। क्यों कि सिवाय एक तुम्हारे दूसरा कोई शान्ति और मुक्ति का मार्ग नहीं है। अतएव सन्त जन एक तुम्हीं को अव्यय, विभु, अचिन्त्य, असंख्य, आद्य, ब्रह्मा, ईश्वर, अनन्त, अनंगकेतु, योगीश्वर, विदितयोग, अनेक, एक, ज्ञान-स्वरूप, मल रहित आदि नामों से पुकारते हैं ॥ २३-२५ ॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात् त्वं शं करोसि भुवनत्रयशंकरत्वात्। धातासि धीरशिवमार्गविधेर्विधानात् व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोसि ॥२६॥ धन्यास्त एव भुवनाधिप ये त्रिसन्ध्यमाराधयन्ति विधिवद्विधुतान्यकृत्याः। भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः पादद्वयं तव विभो भुविजन्मभाजः ॥२७॥

भा० टी०—आपकी बुद्धि का बोद्ध (ज्ञान) विद्वानों से पूजा गया अतएव आप ही बुद्ध हैं। तीन भुवन में शान्ति व सुख के करने से आप ही शंकर (शिव) हैं। शिव (मोक्ष) मार्ग की विधि के विधायक होने से आप ही विधाता हैं। और मेरे सम्मुख तो आप प्रगट पुरुषोत्तम ( ) हो। हे त्रिभुवनाधिप! इस पृथ्वी पर जन्म पाकर जो मनुष्य भक्ति से उल्लसित रोमांच शरीर वा न्य समस्त कृत्यों को छोड़ कर, आपके दोनों चरणों की, त्रिसन्ध्याओं में विधि पूर्वक जो आराधना करते हैं विभो! वे धन्य हैं ॥२६-२७॥

अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीशमन्यन्न मे श्रवणगोचरतां गतोसि। आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमंत्रे किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥२८॥ जन्मान्तरेपि तव पादयुगं न मीन मन्ये मयामहितमीहितदानदक्षम्। तेनेह जन्मनि मुनीशपराभवानां जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥२९॥ आकर्णितोपि महितोपि निरीक्षितोपि नूनं न चेदसि मया विधृतोसि भक्त्या। जातोस्मि तेन जनबान्धवदुःखपात्रं यस्मात्क्रिया प्रतिफलंति न भाव शून्याः ॥३०॥

भा० टी०—हे मुनीश मैं यह मानता हूं कि इस अपार संसार समुद्र में भटकते हुए मेरे आप श्रवणगोचर कभी नहीं हुए। यदि मैंने आपका मीन गोत्ररूपी पवित्र मंत्र कभी अपने कान में सुना होता तो फिर क्या विपत् रूपी काली नागिन मेरे पास आ सकतीं थी? और हे मीनदेव! मैं यह भी मानता हूं कि-मनोवांछित दान देने में दक्ष आपके दोनों चरणों का पूजन मैंने जन्मान्तर में नहीं किया, बस! इसी कारण से मेरे मन के आशयों को मथन करने वाले अनेक पराभवों का मैं स्थान र हूं। अथवा तो मैंने आपका नाम गोत्र भी सुना, पूजा भी किया, दर्शन भी किया, परन्तु चित्त मैंने सच्ची भक्ति से धारण नहीं किया, इसीलिये हे जन बान्धव! मैं दुःखों का पात्र हैं भी क्रिया फल नहीं देती है ॥ २८-३० ॥

त्वं नाथ दुःखिजनवत्सल हे शरण्य कारुण्यपुण्यवसते वशिनां वरण्य। भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय दुःखांकुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ॥ ३१ ॥ देवेन्द्रवन्द्य विदिताखिल-वस्तुसार संसारतारक विभो भुवनाधिनाथ। त्रायस्व मीन करुणाहृद मां पुनीहि सीदन्तम-द्यभयद व्यसनाम्बुराशे ॥ ३२ ॥

भा० टी०—हे नाथ आप शरणागत और दुःखिजनों पर प्यार करने वाले हैं एवं करुणा और धर्म के रहने के स्थान हैं। भक्तिपूर्वक नमने पर हे महेश आप दया करके मेरे दुःखों के समस्त बीजों को दलन कर दें। देवेन्द्रों करके वन्द्य, अखिल वस्तुओं के सार को जानने वाले, संसार से तारने वाले समर्थ, तीन भुवन के नाथ। दया की झील, हे मीन! व्यसनरूप समुद्र में डूबते हुए मुझको आप तारें हे अभयदान देनेवाले! आप मुझको पवित्र करें ॥ ३१-३२ ॥

त्वं नित्यमुक्त परिशुद्ध विबुद्ध आत्मा कूटस्थ आदि पुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः। यद्बु-द्ध्यवस्थितिमखंडितया स्वदृष्ट्या द्रष्टास्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥ ३३ ॥ यस्मि-न्विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात्। तद्ब्रह्म, विश्वभवमेक-मनन्तमाद्यमानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥ ३४ ॥

भा० टी०—आप नित्य, मुक्त, एवं ज्ञानमय होने के कारण शुद्ध है। सर्वज्ञ, चैतन्य, निर्वि-कार, आदि पुरुष, छः ऐश्वर्यों से युक्त, तीनों गुणों के ईश्वर हैं। तथा आप बुद्धि की अवस्थाओं के साक्षी है। आपकी दृष्टि अखंडित है। और आप ही विश्वपालने के लिये सात्विक, यज्ञपुरुष, विश्व या विष्णुरूप से स्थित है। जिससे समयानुसार परस्पर विरुद्ध गतिवाली विविध शक्ति शालिनी विद्या व अविद्या उत्पन्न होती है। और जिसमें लय हो जाती है, वह विश्व को उत्पन्न करने वाले, अनादि, आदि अद्वितीय, अनन्त, अविकार, आनन्दमय, ब्रह्म आप ही है। मैं आपकी शरण हूं ॥ ३३-३४ ॥

तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्यमर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम्। रूपं स्थविष्ट-मजते महदाद्यनेकं नातः परं परमवेद्मि न यत्र वादः ॥ ६५ ॥ कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन् शेते पुमान्स्वदृगनन्तसखस्तदंके। यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चनलोकपद्मगर्भे द्युमान्भग-वते प्रणतोस्मि तस्मै ॥ ३६ ॥

भा० टी०—हे आदि पुरुष! हे अज! मैं केवल आपका यह विराट् (सगुण) रूप ही जानता हूं। पशु, पक्षी, वृक्ष, पर्वत, देवता, दैत्य; मनुष्य, आदि एवं सत् और असत् पदार्थ, सब इसी के अन्तर्गत हैं। यह आपका शरीर महत् आदि तत्वों से रचित है। इसके सिवाय वाणी और मनसे

जो नहीं जाना जाता उस आपके निराकार परम रूपको मैं नहीं जानता। कल्प के अन्त में जो पुरुष इस संपूर्ण जगत्को अपने हृदय में धारण कर योग निद्रायुक्त हो शेष शय्या पर शयन करता है और जिसके नाभि सागर से सुवर्ण वर्ण लोकमय कमल उत्पन्न होता है। वह नारायण भगवान् आप ही हैं। अतएव मैं आपको प्रणाम करता हूं ॥ ३५–३६ ॥

अथाभिष्टुतएवंवै सत्संकल्पेन धीमता। भृत्यानुरक्तोभगवान्प्रतिनन्द्य दमब्रवीत् ॥३७॥
श्रीभगवानुवाचः–वेदाहंते व्यवसितं हृदिराजन्य बालक। तत्प्रयच्छामिभद्रंते दुरापमपिसुव्रत
॥ ३८ ॥ प्रियोसिमेमहाभाग आद्यभक्तोसि मारणे। अतोहंते प्रयच्छामि ध्रुवंलोक सनातनम्
॥ ३९ ॥ प्रांस्थतेतु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्मसंश्रयः। षट्त्रिंशद्वर्ष साहस्रं रक्षिताऽव्याहते-
न्द्रियः ॥ ४० ॥ त्वद्भ्रातर्युत्तमेनष्टे मृगयायांतु तन्मनाः। अन्वेषन्ती वनं माता दावाग्नि
साप्रवेक्ष्यति ॥ ५१ ॥ इष्ट्वामां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः। भुक्त्वाचेहाशिषः सत्या
अन्तेमां संस्मरिष्यसि ॥ ४२ ॥ ततोगंतासिमत्स्थानं सर्व लोकनमस्कृतम्। उपरिष्टादृषि-
भ्यस्त्वं यतो नावर्त्तितेगतः ॥ ४३ ॥

भा०— टी०—उत्तम संकल्प वाले ध्रुव ने इस भांति स्तुति की, तब भक्त वत्सल भगवान् प्रसन्न होकर बोले, भगवान् कहने लगे—हे राजकुमार! मैं तुम्हारा मनोर्थ जानता हूं। हे सुव्रत! तुम्हारा कल्याण हो। यद्यपि तुम्हारा मनोर्थ दुर्लभ है तथापि वही देता हूं। हे महाभाग तू मुझको प्यारा लगता है। और इस कल्प की मारण जाति में तूं ही मेरा प्रथम भक्त है। अतएव मैं तुमको सनातन ध्रुवलोक का राज्य देता हूं। तुमको राज्य दे कर तुम्हारे पिता वनको चले जायेंगे। तुम छत्तीस हजार वर्ष पृथ्वी मंडल की रक्षा करोगे, किन्तु तुम्हारा अन्तःकरण मेरी कृपा से विषय भोग में लिप्त न होगा। तुम्हारा भाई उत्तम वन में शिकार खेलने जायगा। वहां जंगलियों के हाथ से उसकी मृत्यु होगी, उत्तम की माता सुरुचि पुत्र की खोज में वन को जायेंगी, वहां वनमें लगी हुई दावानल में पड़कर जल मरेंगी। तुम मुझ यज्ञ पुरुष की प्रसन्नता के लिये बड़ी २ दक्षिणा वाले यज्ञ करोगे, इस लोक के सब सुख भोग करके अन्त में वृद्धावस्था आने पर मेरा स्मरण करके ध्रुवलोक को जाओगे। ध्रुवलोक सप्त ऋषियों के ऊपर है। उसको सब लोक नमस्कार करते हैं। योगीजन मेरे उस स्थान को जाकर फिर इस संसार में लौटकर नहीं आते ॥ ३७–४३ ।

सूतउवाचः—इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदम्। बालस्य पश्यतोभ म
स्वमगाद्गरुड़ध्वजः ॥ ४४ ॥ सोपिसंकल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम्। प्राप्य संकल्प-
निर्वाणं नातिप्रीतोभ्यगात्पुरम् ॥ ५५ ॥ इतिश्रीमद्भा० मी० द्वितीयस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः॥

भा० टी०—सूतजी बोले-इस प्रकार ध्रुव द्वारा पूजित गरुड़ध्वज भगवान् ध्रुवको ध्रुवलोक देकर उनके देखते ही अपने लोक को चले गये। ध्रुवजी हरिके चरणों की सेवा से अपनी कामना पाकर कुछ अप्रसन्न मनसा अपने पुरको चले आये ॥ ४४-४५ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवन्मीनपुराणे द्वितीयस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ अथ पंचमोऽध्यायः प्रा० ॥ ध्रुवमिलाप व० ॥ सूत उवाच—आकर्ण्यात्मजमायान्तं संपरेत्य यथागतम्। न राजाश्रद्दधे भद्रमभद्रस्य कुतो मम ॥ १ ॥ श्रद्धायवाक्यं देवर्षेर्हर्षवेगेन धर्षितः। वार्ताहर्तु रतिप्रीतो हारं प्रादान्महाधनम् ॥ २ ॥ सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वरपरिष्कृतम्। ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोमात्यबन्धुभिः ॥ ३ ॥ शंखदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः। निश्चक्राम पुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥ ४ ॥ सुनीतिसुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते। आरुह्य शिबिकां सार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥ ५ ॥

भा० टी०—जब राजा उत्तानपाद को समाचार मिलाकि ध्रुवजी लौटकर आरहे हैं तो जैसे मरे हुए मनुष्य के जीवित होने का कोई विश्वास न करे, वैसे ही राजा को इस बात पर विश्वास न आया। उन्होंने मनमें कहा कि मुझ अभागे के ऐसे भाग्य कहां है ? परन्तु जब देवर्षि नारद के वाक्य का स्मरण आया तब उनको ध्रुव के आने का विश्वास हुआ। राजा को वह शुभ समाचार पाकर बड़ा ही आनन्द हुआ। जिसने आकर यह समाचार सुनाया था, उसको राजा ने प्रसन्न हो बड़े मोलका हार गले से उतार कर दे दिया। जिसमें सुन्दर घोड़े जुते हुए हैं और सुवर्ण की सर्व सामग्री सुसज्जित रथ पर उसी समय सवार हुए, राजा के साथ ब्राह्मण, कुलके बूढ़े लोग, मन्त्री और सर्व बन्धु बान्धव चले। राजा के आगे २ शंख, दुन्दुभि, वेणु आदि मंगल के बाजे बजते हुए, और विप्रगण वेद पाठ करते हुए चले और पुत्रको देखने के लिये उत्कंठित राजा बहुत शीघ्र पुरसे निकले। सोने के गहने पहने हुए सुनीति और सुरुचि दोनों रानियें पालखी में बैठीं और बीच में राजकुमार उत्तम को बैठाया। ये सब ध्रुवजी से मिलने के लिये चलीं ॥ १-५ ॥

तं दृष्ट्वोपवनाभ्याश आयान्तं तरसा रथात्। अवरुह्य नृपस्तूर्णमासाद्य प्रेमविह्वलः ॥ ६ ॥ परिरेभेंगजं दोर्भ्यां दीर्घोत्कंठमनाःश्वसन्। मीनेश्वरांघ्रिसंस्पर्श हताशेषाघबन्धनम् ॥ ७ ॥ अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयनवारिभिः। स्नापयामास तनयं जातोद्दाममनोरथः ॥ ८ ॥ अभिवन्द्यपितुः पादावाशीर्भिश्चाभिमंत्रितः। ननाम मातरौ शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणीः ॥ ९ ॥

भा० टी०—उपवन के पास पहुंचकर राजाने ध्रुवको आते हुए देखा, वैसे ही रथसे उतरकर पैदल ही मिलने के लिये दौड़े। प्रेम से विह्वल राजा ने पास पहुंचते ही दोनों हाथ पसारकर, मीनेश्वर

के चरणकमल के स्पर्श द्वारा संसार के पापरूप दृढ़ बन्धन से छूटे हुए पुत्र ध्रुवको गले से लगा लिया। मन बहुत ही उत्कंठित होनेसे बारम्बार सांसें आने लगीं और राजा प्रेमवश होकर बारम्बार ध्रुव का माथा सूंघने लगे। राजा का यह बड़ा भारी मनोरथ पूर्ण हुआ। उसने ध्रुवको गोद में ले लिया, और उनके नेत्रों से इतने आनन्द के आंसू गिरे कि ध्रुवका माथा भीग गया। सज्जनों में श्रेष्ठ ध्रुवने पहले पिता के पैर छुये और पिताने उनको आशीर्वाद दिया॥ ६-९॥

सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम्। परिष्वज्याहजीवेति बाष्पगद्गदया गिरा॥ १०॥ यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः। तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम्॥ ११॥ उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योन्यं प्रेमविह्वलौ। अंगसंगादुत्पुलकावस्रौघं मुहुरूहतुः॥ १२॥

भा० टी०—सुरुचि ने पैरों पर पड़े हुए बालक ध्रुवको उठाकर छाती से लगा लिया, और नेत्रों में आनन्द के आँसू भरकर कहाकि "पुत्र चिरंजीव हो" सुरुचि का ध्रुव के साथ ऐसा व्यवहार कोई विस्मय की बात नहीं है,—क्योंकि विश्वमूर्ति भगवान् विष्णु-सब प्राणियों पर मित्रता आदि-गुणों से जिस पर प्रसन्न होते हैं उससे शत्रु और मित्र सभी, जैसे जल नीचे को झुकता है, वैसे अनुकूल होकर आपसे आप ही मिलते हैं। उत्तम और ध्रुव दोनों भाई प्रेमपूर्वक परस्पर मिले। दोनों के रोमांच हो आया और आंखों में आंसू भर आये॥ १०-१२॥

यं सुनीतिरस्यजननी प्राणेभ्योपि प्रियंसुतम्। उपगुह्य जहावाधिं तदंगस्पर्शनिर्वृता॥१३॥ पयः स्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः। तदाभिषिच्यमानाभ्यां विप्र. वीरः सुवो मुहुः॥१४॥ तां शशंसुर्जना राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा। प्रतिलब्धश्चिरंनष्टो रक्षिता मंडलं भुवः॥ १५॥ अभ्यर्चितस्त्वया नूनं भगवान्प्रणतार्तिहा। यदनुध्यायिनो धीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम्॥ १६॥

भा० टी०—ध्रुव की माता सुनीति अपने प्राणों से भी प्यारे पुत्रको गले से लगाकर बहुत ही प्रसन्न हुई। एवं पुत्र के स्पर्श से उसका सारा दुःख दूर हो गया। हे विप्रगण! वीर पुत्रकी माता सुनीति के दोनों स्तनों से दूध की धाराएं निकलने लगीं। तथा वे स्तन स्नेह के आंसुओं से भीग गये। पुरनिवासी लोग कहने लगे कि हे रानी! आपके भाग्य से बहुत दिनों के बिछुड़े हुए कुंवर ने आकर आपका दुःख दूर किया। यह प्रतापी राजकुमार पृथ्वीमंडल की रक्षा करेंगे। अवश्य ही पूर्व जन्म में आपने भक्ति भय भंजन हरि की पूजा की है। उसी का यह प्रताप है। उस ईश्वर का ध्यान कर धीर योगी दुर्जय मृत्यु को भी जीत लेते हैं॥ १३-१६॥

लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः। आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥१७॥ उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तम्। श्रुत्वा दृष्ट्वाद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥ १८ ॥ वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनांच संमतम्। अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥१९॥ आत्मानं च प्रवयसमालक्ष्य विशांपतिः। वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥२०॥

भा० टी०—इसी प्रकार नगरवासी भी ध्रुवको बधाई देने लगे। तदनन्तर राजा ने हथिनी पर ध्रुव और उत्तम को बिठाकर पुर में प्रवेश किया। और सुखसे रहने लगे। उत्तानपाद राजर्षि पुत्र के हरिदर्शन आदि अद्भुत प्रभाव को सुनकर, एवं बिना पढ़े ही इतने ज्ञान और विद्या से सम्पन्न देख कर बहुत ही विस्मय को प्राप्त हुए। राजा उत्तानपाद ने जब देखा कि, ध्रुवजी तरुण हुऐ और उनसे सब प्रजा भी संतुष्ट है। एवं सभी चाहते हैं कि ध्रुव राजा हों, तब सबकी इच्छा के अनुसार ध्रुवको पृथ्वी मंडल का साम्राज्य दे दिया। एवं अपने को वृद्ध देखकर विषय सुखसे निवृत्त होगये और आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिये तप करने की इच्छा से वनको चले गये ॥ १७–२० ॥

प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः। उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥२१॥ इलायामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः। पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥२२॥ ध्रुणावता ध्रुवबाला आदि मारणक्षत्रियाः। अचलाश्चेति विज्ञेया ध्रुववंशे समुद्भवाः॥२३॥

भा० टी०—ध्रुवने राजा होने के कुछ समय उपरान्त प्रजापति शिशुकुमार की भ्रमी नाम कन्या से विवाह किया, उसके गर्भ से कल्प और वत्सर नाम के दो पुत्र हुए। ध्रुव के दूसरी स्त्री वायु प्रजापति की कन्या इलाभी थी उसके गर्भ से महाबली उत्कल नामक एक पुत्र हुआ, और स्त्रियों में रत्न ऐसी श्रेष्ठ एक कन्या भी उत्पन्न हुई। ध्रुणावत, ध्रुवबाल, धूंवाल, अचल, उत्कल आदि गोत्र वाले मारण क्षत्रियलोक, ध्रुवजी के ही वंश में उत्पन्न हैं ॥ २१–२३ ॥

उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा। हतः पुण्यजने नाद्रौ तन्मातास्यगतिंगता ॥ २४ ॥ काबुरा राक्षसा पुण्यजनाश्वाशिरकौणपाः। रात्रिंचरा यातुधाना गुह्यका वन-वास्यपि ॥ २५ ॥ शारिजा आशरा शंकुः कीनाशा निकशात्मजाः। किंपुरुषा मया राजा-स्तं नरा गवनासिनः ॥ २६ ॥

भा० टी०—उत्तम का विवाह नहीं हुआ था। वह शेर मारने के लिये वनको गया, वहां एक बलवान् आदिम निवासी ने हिमाचल पर उसको मार डाला। उसकी माता उसे वनमें ढूंढने के लिए गई। वहीं वह भी दावानल में जलकर मर गई। उत्तम को मारने वाले वे वनवासी लोग काबुरा,

राक्षस, पुण्यजन, आशिर, कौणव, रात्रिचर, यातुधान, गुह्यक, सारिया, आशारा (असुर) शंकू, कीनाश, निकषात्मज, किंपुरुष, कापुरुष, मय, राजा आदि नामों (गोत्रों) से प्रसिद्ध पर्वतनिवासी लोक थे २४–२६

ध्रुवो भ्रातृवधंश्रुत्वा कोपामर्षशुचार्पितः। जैत्रस्यन्दनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥२७॥ गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रानुचरसेविताम्। ददर्शहिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यकसंकुलाम् ॥ २८ ॥ दध्मौ शंखं बृहद्बाहुः खंदिशश्चानुनादयन्। येनोद्विग्नदृशसर्वास्यदेव्योसन्भृशम् ॥ २६ ॥

भा० टी०—ध्रुवने जब यक्ष के हाथ से अपने भाई के मारे जाने का वृत्तान्त सुना तब क्रोध, शोक, और बदला लेने की इच्छा से उनका हृदय अस्थिर हो उठा। उसी समय वह अपने विजयदायक रथ पर चढ़कर अकेले ही बदला लेने के लिये कुबेर की अल्कापुरी को गये। उन्होंने उत्तर दिशा में जाकर हिमवान पर्वत के निकट रुद्र के अनुचर यक्षों की पुरी देखी। ध्रुवने वहां पहुंचकर अपना शंख बजाया, जिसका शब्द आकाश और सब दिशाओं में भर गया। उस घोर शब्द को सुनकर यक्षों की सब स्त्रियां डरगई और घबड़ाकर इधर उधर देखने लगीं॥ १७–१६ ॥

ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेवमहाभटाः। असहन्तस्तन्निनादमभियेतुरुदायुधाः ॥२०॥ स तानापततोवीर उग्रधन्वामहारथः। एकैकं युगपत्सर्वानहन्बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २१ ॥ ते वै ललाटलग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एव हि। मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन्कर्म तस्य तत् ॥ २२॥ ते पि चामुममृष्यन्तः पादस्पर्शमिवोरगाः। शरैरविध्यन्युगपद्द्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

भा० टी०—उस शब्द को वे महाभट बली यक्षगण न सह सके और शस्त्र ले-लेकर पुरीसे बाहर निकल आये। उग्र धनुषवाले महारथी वीर ध्रुवने यक्षों को आते हुए देख धनुष चढ़ाकर एक ही साथ तीन-तीन बाण सबके मारे। मस्तक में आकर लगे हुए ध्रुवके बाणों से सब यक्षों ने अपनी पराजय मानी एवं ध्रुव के इस कर्म्म की प्रशंसा करने लगे। किन्तु जैसे सर्प लात के प्रहार को नहीं सह सकता वैसे ही वीरमानी यक्षगण भी ध्रुव के इस कर्म्म से अपनी हार न सह सके और क्रोधित होउठे। सब यक्षोंने दूना काम करके ध्रुवको हराने की इच्छासे एक साथ छः-छः बाण ध्रुव पर चलाये ॥२०-२३॥

ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः। शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥ २४ । अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम्। इच्छन्तस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानि त्रयोदश। २५ ॥ औत्तानपादिः स तदाशस्त्रवर्षेण भूरिणा। न उपादृश्यतच्छन्न आसारेण यथा गिरिः ॥ २६ ॥ हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम्। हतोयं मानवः सूर्यो-

मग्नपुण्यजनार्णवे ॥ २७ ॥ नदत्सु यातुधानेषु जय काशिष्वथोमृधे । उदतिष्ठद्रथस्तस्य-
नीहारादिव भास्करः ॥ २८ ॥

भा० टी०—वे तेरह अयुत यक्ष कुपित हो ध्रुव पर परिघ, (लोह से मढा हुआ लट्ठ) प्रास (भाला) शूल, परश्वधर (कुल्हाड़ा) शक्ति. (बर्छी) ऋष्टि, (दुधारी तलवार) भुशुण्डी (गदा या लोहंडी) एवं विचित्र पक्षवाले बाण आदि अस्त्र, शस्त्र निरंतर बरसाने लगे, ध्रुवजी उस शस्त्रों की महा-वर्षासे ऐसे छिप गये जैसे जलकी धाराओं के बरसते समय उनमें पर्वत छिप जाता है और नहीं दीख पड़ता। अन्तरिक्ष में खड़े हुए सिद्धगण इस युद्धको देख रहे थे, जब उन्हें ध्रुवजी न दीख पड़े तब वे हाहाकार करते हुए कहने लगे हा ! यह मारणवंश का सूर्य यक्ष सेनारूप सागरमें डूबकर नष्ट हो गया। यक्षगण अपनी जय जानकर आनन्द से गरजने लगे। इतने ही में जैसे कुहरे को नष्टकर उसके बीचसे सूर्यनारायण प्रकट होते हैं वैसे ही शस्त्र समूह को नष्ट करता हुआ ध्रुव सहित ध्रुवका रथ देख पड़ा ॥२४-२८॥

धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन् । अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानलः ॥ २९ ॥ तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम् । कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीन शनयो यथा ॥ ३० ॥ भल्लैः संछिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः । ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलय वल्गुभिः ॥ ३१ ॥ हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः । आस्तृता स्तारण भुवोरेजुर्वीरमनोहराः ॥ ३२ ॥

भा० टी०—उग्र धनुष के शब्द से अपने शत्रुओं को खिन्न करते हुए ध्रुवजी आगे बढ़े, जैसे वायु मेघमाला को टुकड़े २ कर नष्ट कर देता है उसी भांति ध्रुवने घड़ी भर में शत्रुओं के शस्त्रों को बाणों से छिन्न भिन्न कर डाला ॥ उसके उपरान्त ध्रुवने यक्षों पर बहुत से बाण चलाये। ध्रुवके धनुष के छूटे हुए बाण जैसे वज्र (बिजली) पहाड़ों में घुस जाते हैं वैसे दृढ़ कवचों को तोड़कर यक्षों के शरीरों को भेदने लगे। यक्षों के कुण्डल मंडित मुख और मनोहर वलय भूषित भुजाएं एवं सुवर्ण वर्ण व ताल तरु के तुल्य मोटी २ जंघा आदि अङ्ग, ध्रुवके भल्ल नामक पैने बाणों से कटकर संग्राम भूमि में बिछ गये। वीर जनों के मनको उत्साह देनेवाली युद्ध भूमि, उन कटे हुए अङ्गों से भरी हुई, हार, केयूर, मुकुट, पगड़ी आदि अमूल्य वस्तुओं से बहुत ही सुशोभित हुई ॥ २९-३२ ॥

तान्हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यकाननागसश्चित्ररथेन भूरिशः । औत्तानपादिं कृपया पितामहो मनुर्जगादोपगतः सहर्षिभिः ॥ ३३ ॥ (मनुरुवाच) अलं वत्सातिरोषेण तमो द्वारेण पाप्मना । येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ॥ ३४ ॥ नास्मत्कुलोचितं तात

कर्मैतत्सद्विगर्हितम् । बधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ॥ ३५ ॥ नन्वेकस्यापराधेन प्रसंगाद्बहवो हताः । भ्रातुर्वधाभितप्तेन त्वयांग भ्रातृवत्सल ॥ ३६ ॥

भा० टी०—इस भांति बहुत से निरपराध यक्षों को ध्रुवजी के हाथ से मरते हुए देखकर महानुभाव स्वायंभुव मनु को दया आई तब वह महर्षियों के साथ युद्ध भूमि में आकर अपने पौत्र ध्रुव से यों कहने लगे। मनु बोले—पुत्र! क्रोध बड़ा भारी पाप है। यह क्रोध ही नरक का द्वार है। इस कारण क्रोध को त्यागो। इस क्रोध के ही वश होकर तुमने इतने निरपराध यक्षों का वध किया है, तात! तुम थोड़े से अपराध पर यक्षों के बध में प्रवृत्त हुए हो। यह कर्म हमारे कुलके योग्य नहीं है। सज्जन लोग ऐसे कुकर्म्म की निन्दा करते हैं। तुम्हारा भाई तुमको अवश्य ही प्रिय था। उसी के वध से व्यथित और कुपित होकर तुम इस कर्म्म में प्रवृत्त हुए हो। पर तुम्हारे भाई को तो एक यक्ष ने मारा था, उसके साथ तुमने अनेक यक्षों का बध किया॥ ३३-३६ ॥

नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्त्तिनाम्। यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूत वैशसम् ॥ ३७ ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान् । आराध्याय दुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥ ३८ ॥ सत्वं हरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपि संमतः । कथं त्ववद्यं कृतवान तुशिक्षन्सतां व्रतम् ॥ ३९ ॥ तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु । समत्वेन य सर्वात्मा भगवान्संप्रसीदति ॥ ४० ॥ संप्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः । विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ४१ ॥ इतिश्री मीनपु० द्वितीयस्कंधे पंचमोध्यायः॥५॥

भा० टी०—देहाभिमानी होकर पशुओं की भांति प्राणियों की हिंसा करना, भगवान् के भक्त साधुजनों का मार्ग नही है। (क्यों कि वे सब प्राणियों में ईश्वर को देखते हैं) वत्स! सब प्राणी मुझसे भिन्न नहीं हैं, इस प्रकार की सम बुद्धि से सब प्राणियों में स्थित दुराराध्य हरि की आराधना करके उन विष्णु का परम पद ध्रुवलोक तुमने पाया है। तुम हरि के हृदय में अवस्थित हो एवं हरि के भक्त भी साधु कहकर तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। तुम ऐसे होकर एवं नारद के द्वारा साधुजनों के व्रत (समदृष्टि) की शिक्षा पाकर ऐसे निन्दित कर्म्म में कैसे प्रवृत्त हुए ?॥ अपने से उत्तम लोगों के साथ सहनशीलता का, और अपने से नीचे के साथ दया का, व समान व्यक्ति से मित्रता का व्यवहार करने से एवं सर्व प्राणियों पर समदृष्टि रखने से सब प्राणियों के आत्मा भगवान् हरि प्रसन्न होते हैं। जब इन कर्मों से सर्व व्यापक भगवान प्रसन्न होते हैं तब यह पुरुष माया के गुणों से एवं लिंग शरीर से मुक्त होकर सुख स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त एवं कृतार्थ होता है॥ ३३-४१ ॥

॥ इतिश्रीमद्भागवन्मीनपुराणे द्वितीयस्कंधे पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठोध्यायः प्रा० ॥ स्वायंभुवमनोरुपदेशः ॥ (मनुरुवाच)–नास्ति कोपसमो वह्निर्नास्तिज्ञानात्परं सुखम् । नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ॥ १ ॥ अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम् । नीचप्रसंगः कुलहीनसेवा चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम् ॥ २ ॥ क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी । विद्याकामदुघा धेनुः संतोषो नन्दनं वनम् ॥ ३ ॥ शान्तितुल्यं तपो नास्ति न संतोषात्परं सुखम् । न तृष्णायाः परो व्याधिर्न च धर्मो दयासमः ॥ ४ ॥ गते शोको न कर्त्तव्यो भविष्यं नैव चिंतयेत् । वर्तमानेन कालेन प्रवर्तन्ते विचक्षणाः ॥ ५ ॥ आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च । पंचैतानि च सृज्यंते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥६ ॥ यस्य स्नेहो भयं तस्य स्नेहो दुःखस्य भाजनम् । स्नेहमूलानि दुःखानि तत्तं त्यक्त्वा वसेत्सुखम् ॥ ७ ॥ जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम् । मृतो धर्मेणसंयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः ॥ ८ ॥ बलादसौ मोहरिपुर्जनानां ज्ञानं विवेकं च निराकरोति । मोहाभिभूतं च जगद्विनष्टं तत्वावबोधादपयाति मोहः ॥ ९ ॥ न देवराजस्य न चक्रवर्तिनस्तद्वै सुखं रागयुतस्य मन्ये । यद्वीतरागस्य मुनेः सदात्मनिष्ठस्य चित्तस्थिरतां प्रयाति ॥ १० ॥ यत्संतोषसुखं यदिन्द्रियदमो यच्चेतसः शान्तता यद्दीनेषु दयालुता यदपि गीः सत्यामृतस्यन्दिनी । शौर्यंधैर्यमनार्यसंगविरतिर्या संगतिः सज्जने एते ते परिणामसुन्दरतराः सर्वे विवेकांकुराः ॥ ११ ॥

भा० टी०—अब छठा अध्याय शुरू होता है ॥ इसमें स्वायंभुव मनुजी के उपदेश का वर्णन है। मनुजी बोले हे ध्रुव ! क्रोध के समान अग्नि नहीं है, ज्ञान के समान सुख नहीं है, कामदेव के समान व्याधि नहीं है। और मोह के समान रिपु नहीं है। नरक में रहे हुए मनुष्यों के निम्न लिखित ६ चिह्न हैं—अत्यन्त कोप, वाणी में कटुकता, घर में दरिद्रता, अपने ही मनुष्यों में वैर, नीच लोगों से सम्बन्ध, और कुलहीन मनुष्यों की सेवा करना। क्रोध ही यमराज है। तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या ही कामधेनु है। और संतोष ही नन्दनवन है। क्षमा तुल्य तप नहीं, संतोष से आगे सुख नहीं, तृष्णा से बढ़कर व्याधि नहीं, और दया सम कोई धर्म नहीं है। गये हुए का शोच नहीं करना चाहिये, भविष्य में होनहार की चिन्ता नहीं करना चाहिये, और वर्तमान काल के सुख दुःखों में सम रहे वही विचक्षण है। आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये पांच बातें विधाता, गर्भ में रहे हुए के ही सर्जे देता है। जिसका किसी पर स्नेह होता है उसीको दुःखों का भय है। क्योंकि एक स्नेह ही दुःखों का भाजन एवं मूल है। अतएव स्नेह को छोड़कर सुख से रहो। धर्म वर्जित मनुष्य को मैं जीते हुए भी मरा हुवा

ही मानता हूं। और धर्म संयुक्त मनुष्य मरणे के पश्चात् भी दीर्घजीवी है इसमें संशय नहीं। यह मोहरूपी शत्रु मनुष्नों के ज्ञान और विवेकरूप धन को जबरन छीन लेता है। मोह से दब कर सम्पूर्ण जगत् नष्ट होगया, केवल तत्व के बोध से ही मोह दूर हो सकता है। चित्त की स्थिरता होने पर, सदात्मनिष्ठ वीतराग मुनि को जो सुख प्राप्त होता है वह सुख रागयुक देवराज (इन्द्र) और चक्रवर्त्ती को नहीं मिल सकता ऐसा मैं मानता हूँ। क्यों कि जो संतोष, सुख, इन्द्रियों का दमन करता, चित्त की शान्तता, दीन दुःखी जनों पर दयालुता, सत्य और अमृत को बहाने वाली वाणी, शौर्य, धैर्य्य, अनार्य्यों के सङ्ग से दूर रहना, और सज्जनों की सङ्गति, ये सब परिणाम (शेषमें) सबसे अच्छे विवेकरूपी कल्पवृक्ष के अंकुर हैं ॥ १-११ ॥

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया, स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥ १२ ॥ यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति। स सर्वस्यहितः प्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ १३ ॥ यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च। तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किंचन ॥ १४ ॥ दया महानदी तीरे सर्वे धर्मास्तृणांकुराः। तस्या शोषमुपेतायां कियन्नन्दंति ते चिरम् ॥ १५ ॥ आत्मवंत्सर्वभूतेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्। मातृवत्परदारेसु यः पश्यति स पण्डितः ॥ १६ ॥

भा० टी० जो मनुष्य अपने सुख की इच्छासे अहिंसक प्राणियों को मारता है, वह अपनी जिन्दगी में वा मरने पर भी कहीं सुख नहीं पाता। जो मनुष्य वध-बन्धन आदि क्लेशों के द्वारा प्राणियों को दुःख नहीं पहुंचाता, वह सब का हितेच्छु उभयलोक में अत्यन्त सुख भोगता है। जिसका वह ध्यान करता है, जो करना चाहता है, जहां पर वह अपनी धारणा को बाँधता है, उन सभी को वह अयत्न से पा लेता है जो किसी को नहीं मारता। दयारूपी महानदी के तीर पर सभी धर्म-तृणांकुर हरे-भरे रहते हैं। उस नदी के सूख जाने पर वे धर्म आनन्द से कबतक रह सकते हैं? सर्व प्राणियों को अपने समान, पराये धनको पत्थर के समान, एवं पर-स्त्री को अपनी माताके समान जो देखता है वही पण्डित है ॥ १२-१६ ॥

पंचैतानि पवित्राणि सर्वेषां धर्मचारिणाम्। अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो मैथुनवर्जनम् ॥ १७ ॥ सप्तद्वीपवतीं धात्रीं कुलाचलसमन्विताम्। नैकप्राणिवधोत्पन्नं दत्वा दोषं व्यपोहति ॥ १८ ॥ तपःश्रुतयमज्ञानध्यानदानादि कर्मणाम्। सत्यशीलव्रतादीनामहिंसा जननी मता ॥ १९ ॥ अहिंसालक्षणो धर्मो ह्यधर्मः प्राणिनां वधः। तस्माद्धर्मार्थिभिर्लोकैः कर्त्तव्या प्राणिनां दया ॥ २० ॥

अमेध्यमध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालये। समाना जीविताकांक्षा तुल्यं मृत्युभयं-द्वयोः ॥ २१ ॥ दीयते म्रियमाणस्य कोटिर्जीवित एव वा। धनकोटिं परित्यज्य जीवो जीवितुमिच्छति ॥ २२ ॥ महतामपि दानानां कालेन हीयते फलम्। भीता भयप्रदास्य क्षय चैव न विद्यते ॥ २३ ॥ कपिलानां सहस्राणि यो विप्रेभ्यः प्रयच्छति। एकस्य जीवितं दद्यात् न च तुल्यं कदाचन ॥ २४ ॥

भा० टी०—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, दान वा अपरिग्रह, परस्त्री वर्जन, ये पांच बातें सभी धर्म वालों ने पवित्र मानी हैं। एक प्राणी के वध से उत्पन्न हुए दोष को कुलाचल सहित सात द्वीप वाली पृथ्वी का दान भी दूर नहीं कर सकता। तप, श्रुत, यम, यज्ञ, ज्ञान, ध्यान, सत्य, शील, व्रत, दान आदिक शुभ कर्मों की अहिंसा ही जननी (माता) है। धर्म का लक्षण अहिंसा और अधर्म का लक्षण प्राणिवध है। अतएव धर्मार्थी लोकों को चाहिये कि वे प्राणियों पर दया करे। विष्ठा में रहने वाले कीड़े और स्वर्गलोक में रहने वाले इन्द्र के जीने की वांछा और मृत्यु का भय दोनों के एक ही समान है। मरते समय किसी को एक कोटि द्रव्य अथवा एक जीतव्य दो तो, कोटि धन को छोड़कर वह प्राणी जीना चाहेगा। बड़े २ दानों के पुण्य कालान्तर में क्षय हो जाते हैं। परन्तु मृत्यु के भय से अभय कर देने के पुण्य का कभी क्षय नहीं होता। एक ने तो ब्राह्मणों को अनेक सहस्र सवत्सा गायें दी, और एक किसी ने एक प्राणि को मृत्यु से बचाकर जीवित दान दिया तो इन दोनों को एक समान पुण्य कभी नहीं हो सकता। अर्थात् जीतव्य दान देने वाला अधिक पुण्यात्मा है ॥ १७–२४ ॥

दत्तमिष्टं तपस्तप्तं तीर्थसेवा तथा श्रुतम्। सर्वेप्यभयदानस्य कलां नार्हन्ति षोड्-शीम् ॥ २५ ॥ नातभूयस्तपो धर्मः कश्चिदन्योस्ति भूतले। प्राणिनां भयभीतानामभयं यत्प्रदीयते ॥ २६ ॥ हेमधेनुधरादीनां दातारः सुलभा भुवि। दुर्लभः पुरुषो लोके यः प्राणिष्वभयप्रदः ॥ २७ ॥ यथा मे न प्रियो मृत्युः सर्वेषां प्राणिनां तथा। तस्मान्मृत्यु-भयान्नित्यं त्रातव्याः प्राणिनो बुधैः ॥ २८ ॥ एकतः क्रतवः सर्वे समग्रवरदक्षिणाः। एक-तो भय भीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम् ॥ २९ ॥

भा० भा०—दान, यज्ञ, तप, तीर्थ सेवा तथा सुना हुआ ज्ञान एवं वेदाध्ययन आदि सब अभय दान की सौलवीं कला के योग्य भी नहीं है। भयभीत प्राणियों को जो अभय दिया जाता है, पृथ्वी पर इससे बढ़कर कोई तप व धर्म ही नहीं है। इस जमीन पर हेम, धेनु, और धरादि का दान देने वाले तो बहुत से लोक मिल सकते हैं परन्तु प्राणियों को अभयदान देनेवाले सम्पूर्ण लोकों में भी दुर्लभ हैं। जैसे मुझको मृत्यु प्यारा नहीं है, वैसे सभी को समझकर बुद्धिमानों को चाहिये कि मृत्यु

के भय से प्राणियों का सदा रक्षण करें। सत्य के तराजू में एक तरफ तो श्रेष्ठ दक्षिणा सहित समग्र यज्ञों को रक्खे और एक तरफ भयभीत प्राणियों के प्राण रक्षण जन्य पुण्य को रक्खा जावे तो प्राण रक्षण का पुण्य ज्यादा होगा ॥ २५-२६ ॥

एकतः कांचनो मेरुर्बहुरत्ना वसुन्धरा। एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम् ॥ ३० ॥ न गोप्रदानं न महीप्रदानं नान्नप्रदानं हि तथा प्रधानम्। यथा वदन्तीह बुधाः प्रधानं सर्वप्रदानेष्वभयप्रदानम् ॥ ३१ ॥ जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजानि कदाचन। ये न हिंसन्ति भूतानि शुद्धात्मानो दयापराः ॥ ३२ ॥ दयावतामिमे लोकाः परे चापि तपस्विनाम्। अहिंसा लक्षणो धर्म इति धर्मविदो विदुः ॥ ३३ ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः। अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम ॥ ३४ ॥ क्षतं च स्खलितं चैव पतितं कृष्टमाहतम्। सर्वभूतानि रक्षन्ति समेषु विषमेषु च ॥ ३५ ॥ नैनं व्यालमृगा घ्नन्ति न पिशाचा न राक्षसाः। मुच्यते भयकालेषु मोक्षयेद्यो भयेपरान् ॥ ३६ ॥

भा० टी०—सुवर्ण का मेरु और बहुतसे रत्नों सहित वसुन्धरा (पृथ्वी) का दान एक पलड़े में रक्खा गया और दूसरे पलड़े में भयभीत प्राणियों के प्राण रक्षण का पुण्य रक्ख कर तौला गया तो वही अधिक ठहरा। गो-दान, पृथ्वी-दान, अन्न दान, आदिकों को विद्वान लोक इतना प्रधान पद नहीं देते जितना कि सर्व दानों में अभयदान को देते हैं। दयावान् और तपस्वियों में वही शुद्धात्मा दयालु अधिक है जो कि जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज प्राणियों की हिंसा नहीं करते। क्योंकि धर्म के जानने वाले लोक अहिंसा को ही धर्म का लक्षण कहते हैं। जो कोई सर्व जीवों को अभय देता है, तो सर्व जीव भी उसको अभय ही देंगे। ऐसा हमने सुना है। घाव लगा हुआ, गिरा हुआ, स्खलित हुआ, कष्टों में पड़ा हुआ, सम विषम अवस्थाओं में रहा हुआ, किंबहुना, अपने को मारने पर भी जो सर्व जीवों की रक्षा ही करता है। और भय के समय जो दूसरों को भय से मुक्त करता है उसको सिंह, सर्प, हस्ति और हिंसक पशुगण भी नहीं मार सकते एवं वह सब ही दुःखों से मुक्त हो जाता है ॥ ३०-३६ ॥

न ह्यात्मनः प्रियतरं किंचिदस्तीह निश्चितम्। प्राणदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ ३७ ॥ सर्वभूतेषु यो विद्वान् ददात्यभयदक्षिणाम्। दाता भवति लोकेषु प्राणानां नात्र संशयः ॥ ३८ ॥ हिंसा विघ्नाय जायेत विघ्नशान्त्यै कृतापिहि। कुलाचार धियाप्येषा कृताकुलविनाशिनी ॥ ३९ ॥ पंगुः कुष्टी कुणित्वादि दृष्ट्वा हिंसा फलं सुधीः। निरागस्त्रसजन्तूनां हिंसा संकल्पतस्त्यजेत् ॥ ४० ॥ सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपोदानानि चा

नघ। जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ॥ ४१ ॥ दुःखोत्पत्तिर्मनःक्लेशस्तत्पर्य्या- यस्य च क्षयः। यस्यां स्यात्सा प्रयत्नेन हिंसा हेया विपश्चिता ॥४२॥ न तज्ज्ञानं न तद्ध्यानं न तद्दानं जपस्तपः। न तद्धर्म्मं व्रतं मौनं दया यत्र न विद्यते ॥ ४३ ॥

भा० टी०—सभी शास्त्रकारों ने ऐसा निश्चय किया है कि अपने प्राणों से बढ़कर संसार में कोई प्यारी वस्तु नहीं है अतएव प्राणदान से बढ़कर दूसरा न तो कोई दान है, और नहीं कभी हुआ, न होगा। जो विद्वान् सर्व जीवों को अभय दक्षिणा देता है लोक में वही प्राणों का दाता है इसमें संशय नहीं। विघ्नों की शान्ति के लिये की गई जीव हिंसा, विघ्नों की वृद्धि के लिये होती है। एवं कुलाचार की बुद्धि से की गई हिंसा भी कुल को विनाश देती है। हिंसा करने वाला पंगु, कुष्टी, और दुर्गन्ध शरीर वाला होता है। ऐसा देखकर विद्वानों को चाहिये कि निरपराधी चलते फिरते किसी जीव की संकल्प (बुद्धिपूर्वक) हिंसा छोड़ दें। क्योंकि सर्व वेद, यज्ञ, तप, दान, आदि अभयदान की एक कला को भी नही पा सकते, (दुःखों की उत्पत्ति, मनको क्लेश, और अपने प्यारे शरीर का विनाश हिंसा में ये तीन बातें होती हैं। अतएव समझदारों को चाहिये कि हिंसा सर्व प्रयत्न से छोड़ दें। वह ज्ञान, ध्यान, दान, जप, तप, धर्म, व्रत, मौन आदि कुछ नहीं जहां दया न हो ॥ ३७—४३ ॥

उद्यतं शस्त्रमालोक्य विषादयंति विह्वलाः। जीवाः कम्पन्ति संत्रस्ता नास्ति मृत्यु- समं भयम् ॥४४॥ सर्वाणि भूतानि सुखेरतानि दुःखाच्च सर्वाणि समुद्विजन्ति। तस्मात्सुखा- र्थी सुखमेव दत्ते सुखप्रदाता लभते सुखानि ॥ ४५ ॥ अहिंसा सर्वजीवेषु तत्त्वज्ञैः परि- भाषितम्। इदं हि मूलं धर्मस्य शेषस्तस्यैव विस्तरम् ॥ ४६ ॥ दारिद्र्यदौर्भाग्यकुणित्व कुष्टपंगुत्वतिर्यङ्नरकादिभेदैः। दुःखान्यनेकानि भवन्ति हिंसा संभूतपाप प्रचयेन पुंसाम् ॥ ४७ ॥ स्थूलेपु जीवेषु विनाशभावः संकल्पमुख्यस्त्रिविधोपि हेयः। संसार- निस्तारकरस्वरूपो व्रतेषु भूपाग्र एष धर्म्मः ॥ ४८ ॥

भा० टी०—मारने के लिये उठाये हुए शस्त्र को देखकर जीव दिलटूट, भयभ्रांत, प्रकंपित होकर अति त्रास पाते हैं। अतएव मृत्यु के समान प्राणी को दूसरा कोई भय नहीं है। सर्व प्राणी सुख में रत रहते हैं और दुःखों से उद्वेग पाते हैं, इस वास्ते सुखार्थी को चाहिये कि वह दूसरों को भी सुख ही दें। क्योंकि दूसरों को सुख देनेवाला ही तो स्वयं सुख पाता है। पदार्थ विज्ञान के वेत्ताओं ने सर्व जीवों पर दया ही धर्म कहा है। क्योंकि अहिंसा ही धर्म का मूल है। शेष सत्य, ब्रह्मचर्य, तीर्थ, व्रत, दान, ध्यान, तप आदि सर्व इस अहिंसा के ही विस्तार स्वरूप हैं। हिंसा से उत्पन्न हुए पापों के समूह से मनुष्यों को दारिद्र्य, दौर्भाग्य, दुर्गन्धित्व, कुष्टीपन, पंगुलापन, और तिर्य्यंच नरकादि

अनेक प्रकार के दुःख भुगतने पड़ते हैं। अतएव संकल्प (संरंभ समारंभ) प्रमुख तीन प्रकार की हिंसा स्थूल (चलते फिरते) जीवों की हिंसा छोड़ देनी चाहिये। समस्त व्रतों में राजा के समान श्रेष्ठ यही धर्म संसार का निस्तार करने वाला है ॥ ४४-४८ ॥

आदेयः सुभगः सौम्यः त्यागी वाग्मी यशोनिधिः। भवत्यभयदानेन चिरंजीवो निरामयः ॥ ४९ ॥ मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी। अहिंसा दुःखदावाग्निप्रावृषेण्यघनावली। भवभ्रमिरुजार्त्तानामहिंसा परमौषधी ॥ ५० ॥ हेमाद्रिः पर्वतानां हरिरमृतभुजां चक्रवर्तिर्नराणां शीतांशुर्ज्योतिषां स्वस्तरुरवनिरुहां चण्डरोचिर्ग्रहाणाम्। सिन्धुस्तोयाशयानां मिनपतिरसुरामर्त्यमर्त्याधिपानां यद्वत्तद्वत्व्रतानामधिपतिपदवीं यात्यहिंसा किमन्यत् ॥ ५१ ॥ न हन्ति योन्यान्स परैर्नहन्यते दुनोति नान्यान्स परैर्नदूयते। अतः स्वतन्त्रसुखभावमिच्छता कार्या न हिंसा मनसापि धीमता ॥ ५२ ॥ जले मीनं स्थले मीनं मीनं पर्वतमस्तके। ज्वालामालाकुले मीनं सर्वं मीनमयं जगत् ॥ ५३ ॥ मीनं सर्वगतं ज्ञात्वा यो न हिंसेत्कदाचन। पापविध्वांसी निष्कामस्तमाहुर्मारणोत्तमः ॥ ५४ ॥ इतिश्री मीनपुराणे द्वि० स्कं० षष्ठोऽध्यायः ॥

भा० टी०—अभयदान के प्रभाव से जीव परलोक में आदेय वचनवाला, सुभग, सौम्य, त्यागी (दानेश्वरी) पंडित, यशस्वी, दीर्घजीवी और रोगवर्जित होता है। क्योंकि अहिंसा माता के समान सर्व जीवों की हितकारिणी है। दुःखरूप दावाग्नि को शान्त करने के लिये वर्षा ऋतु में होनेवाली घटा है। भव भ्रमणतारूप रोगों से पीड़ित जनों को परमौषधी है। जैसे पर्वतों में हिमालय, देवतों में हरि, मनुष्यों में चक्रवर्ती, ज्योतिषियों में चन्द्र, वृक्षों में कल्पवृक्ष, ग्रहों में सूर्य, जलाशयों में समुद्र, और सुर-असुर मनुष्यों के अधिपतियों में जैसे मीनों के पति विष्णु भगवान् मुख्य एवं प्रधान हैं। वैसे ही अधिक क्या कहें अहिंसा व्रत समस्त व्रतों में अधिपति पदको पाता है। जो दूसरों को नहीं मारता वह किसी के द्वारा नहीं मारा जाता, जो किसी को नहीं सताता उसका दिल कोई भी नहीं दुःखा सकता। अतएव स्वतन्त्र भाव से सुख चाहने वाले बुद्धिमानों को चाहिये कि मन के द्वारा भी किसी की हिंसा न करें। जल, स्थल, पर्वत के मस्तक, अग्नि वाले सर्व प्रदेश आदि सर्व स्थानों में मीन भगवान् को देखें। क्यों कि सब ही जगत् मीन स्वरूप है। मारण जाति में सर्वोत्तम, समस्त पापों को विध्वंस करने वाला, एवं निष्काम भक्त नहीं कहलाता है जो कि मीन भगवान् को सर्व गत जानकर किसी की हिंसा नहीं करता ॥ ४९-५४ ॥

॥ इतिश्री मीनपुराणे द्वितीय स्कंधे षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः प्रा० ॥ ध्रुव उवाच—पिशाचान्निर्गुणान्क्रूरान् भ्रातुर्मे घातुकानिमान्। यदाहं मारणस्तात मारयामिनराधमान् ॥ १ ॥ मनुरुवाच–कामं क्रोधं मदं लोभं द्वेषं मोहं तथैव च। मारयन्ति नरा मीना मारणस्तेन प्रोच्यते ॥ २ ॥ देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य मारण। तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३ ॥ भूतैः पंचभिरारब्धै र्योषित्पुरुष एव हि। तयोर्व्यवसायात्संभूतिर्योषित्पुरुषयोरिह ॥ ४ ॥ एवं प्रवर्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च। गुणव्यतिकराद्राजन्मायया परमात्मनः ॥ ५ ॥ निमित्त मात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः। व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥ ६ ॥

भा० टी०—अब सातवां अध्याय शुरू होता है ॥ ध्रुवजी बोले–मांसाहारी, धर्मशून्य, निर्दयी, और मेरे भाई की हत्या करने वाले इन राक्षसों को हे पूज्य! मैं अवश्य मारूंगा। क्योंकि अधम मनुष्यों को मारने ही के कारण तो मेरी क्षत्रिय ज्ञाति का मारण नामकरण हुआ है। मनुजी बोले कि हे पुत्र! ऐसा एकान्त नियम नहीं है कि बाह्य शत्रुओं को मारने ही के कारण क्षत्रियों को मारण कहते हैं। काम, क्रोध, मद (अहंकार), लोभ, एवं द्वेष, मोह आदि अन्तर्गत शत्रुओं को मारने ही के कारण मीन ज्ञाति के मनुष्य मारण कहाते हैं। हे मारण सबके देह में यह देही (आत्मा) अवध्य (अमर) है। अतएव सभी जीवों की तुम्हें कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम यदि आत्मा के तत्व का विचार करो तो जान सकोगे कि तुम्हारा भाई भी कोई नहीं था। एवं उसको किसी ने मारा भी नहीं है। क्योंकि पांच तत्त्वों से स्त्री और पुरुष का शरीर बनता है। स्त्री और पुरुष के संयोग से अन्य स्त्री और पुरुष की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार परमात्मा की माया के द्वारा सत्त्वादि गुणों के व्यवहार से देहादि की उत्पत्ति (सृष्टि) पंच तत्त्वों की देहादि रूप में अवस्थिति (पालन) और देह नाशादि (संहार) कार्य होते रहते हैं। हे पुरुष श्रेष्ठ! निर्गुण परमेश्वर इन कार्यों का कारण मात्र है। उनका इन कार्यों से और किसी भांति का सम्बन्ध नहीं है। कार्य (शरीर) कारण (जीव) स्वरूप विश्व चक्र उसी की शक्ति से घूमता है। जैसे चुम्बक की आकर्षणी शक्ति द्वारा लोहा घूमता है ॥१–६॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः। न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ ७ ॥ नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः। अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ ८ ॥ ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः। तेषामादित्यवत् ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ ६ ॥ भूतैः पंचभिरारब्धे देहे देह्यबुधोऽसकृत्। अहं ममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥ १० ॥ तदर्थं कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम्। योनुयाति ददत्क्लेशमविद्या कर्मबन्धनः ॥ ११ ॥ यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः। आस्थितो

रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥ १२ ॥ सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा । शमो दमो भगश्चेति यत्संगाद्याति संक्षयम् ॥ १३ ॥ तेष्वशान्तेषु मूढेषु खंडितात्मस्वसाधुषु । संगं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ॥ १४ ॥

भा० टी०—वह निर्गुण ईश्वर जीवों के कर्त्तापन, कर्म, एवं कर्मफल के संयोग को उत्पन्न नहीं करता। किन्तु ये सारी बातें प्रकृति के स्वाभाविक नियम से होती हैं। वह विभु किसी के पाप एवं सुकृत को हरण नहीं कर सकता। अज्ञान के द्वारा ढक गया है ज्ञान जिन्हों का, वे ही इसी विषय में मोहित होते हैं। ज्ञान के द्वारा जिन्होंने अपने अज्ञान को नष्ट कर दिया है। उन्हीं के हृदय में सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश करता है और मारण क्षत्रियों में वही पुरुष श्रेष्ठ है। यथार्थ ज्ञान न होने के कारण वह कुमति वारंवार इस पंच भूत रचित मिथ्या शरीर में, मैं हूं, मेरा है, इस प्रकार बुद्धि करके असत् आग्रह करता है। अविद्यामय कर्मबन्धन में वह ऐसा जकड़ जाता है कि उसी देह व स्त्री पुत्रादि के लिये सर्वदा वही कर्म करता है जिनसे उसे फिर इस मायामय दुःख रूप संसार में आना पड़ता है। और यदि सांसारिक असत् मार्ग में स्थित होकर शिश्नोदर परायण असत्पुरुषों का संसर्ग करता है और कुटुम्ब पोषण में तत्पर रहता है तो भी पहले की भांति नरक जाना ही पड़ता है। असज्जन विषयी लोगों के संग करने से सत्य, शौच, दया, मौन, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, यश, शम, दम, ऐश्वर्य, और तेज एवं ज्ञान आदि मनुष्य जन्म के स्वाभाविक सद्गुण नष्ट हो जाते हैं। विषयी जनों का आत्मा शान्त नहीं रहता क्योंकि उनको मिथ्या अभिमान के कारण सदा चिंता ही रहती है। एवं उन असाधुजनों से परोपकार आदि कुछ नहीं होते। अतएव उन सोच करने योग्य स्त्री, बन्धु, साधारण जनों का संगत भूल कर भी नहीं करना चाहिये।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् । विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १५ ॥ अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः । अनाशिनोऽप्रमेयस्य न विकंपितुमर्हसि ॥ १६ ॥ देहिनोस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा । तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १७ ॥ य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १८ ॥ न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः । अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १९ ॥ वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् । कथं स पुरुषः ध्रुव कं घातयति हन्ति कम् ॥ २० ॥ वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोपराणि । तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २१ ॥ नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः । न चैनं क्लेद-

यंत्यापो न शोषयति मारुतः २३ ॥ अच्छेद्योयमदाह्योयमक्लेद्योऽशोष्य एव च । नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ॥ २३ ॥ अव्यक्तोयमचिंत्योयमविकार्योयमुच्यते । तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २४ ॥

भा० टी०—हे ध्रुव जिस आत्मा से इस सम्पूर्ण जगत का विस्तार हुआ है। उसको तू अविनाशी जान। क्योंकि आद्यन्त रहित इस आत्मा का कोई विनाश नहीं कर सकता। नित्य, अप्रमेय, एवं अविनाशी, सभी आत्माओं के शरीर अन्त वाले हैं। किस २ की चिन्ता करोगे। शरीरधारियों में जैसे कौमार, यौवन, और जरादि अवस्थाएं होती हैं। वैसे ही देहान्तर प्राप्ति होती ही रहती हैं बुद्धिमान इसमें मोहित नहीं होते। जो इस आत्मा को मरनेवाला, वा मारनेवाला, जानता है वे दोनों ही अज्ञानी हैं। न तो यह जीव कभी मरता है और न कोई इसको मार सकता है। न तो यह जन्मता है और न यह मरता है। और यह भी नहीं है कि यह एक ही बार संसार में उत्पन्न होकर फिर कभी पुनः जन्म न लेगा। अपितु लेगाही। अनेकान्ताश्रित यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत एवं पुराण है। शरीर के नष्ट होने पर आत्मा का नाश नहीं होता। हे ध्रुव तुम्हारे भाई को कौन पुरुष मार सकता है और कैसे वह मर सकता है। पुराणे वस्त्रों को त्याग कर मनुष्य जैसे नये २ वस्त्रों को पहन लेता है वैसे ही यह आत्मा पुराणे शरीरों को छोड़ २ कर नये २ शरीर धारण करता रहता है। शस्त्र इस आत्मा को छेदन नहीं कर सकते। अग्नि इसको नहीं जाल सकता। जल इसको गीला नहीं कर सकता। वायु इसको सुखा नहीं सकता। यह आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, नित्य, सर्वगत, कूटस्थ, अचल और सनातन है। योगीजन इसको अव्यक्त, अचिंत्य, एवं विकारवर्जित कहते हैं। इसका वास्तविक स्वरूप जानकर तुम्हें कोई सोच नहीं करना चाहिये ॥ १४–२४ ॥

न चैते पुत्रकभ्रातुर्हन्तारो धनदानुगाः । विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥ २५ ॥ विधिर्विधाता नियतिः स्वभावः कालोग्रहास्चेश्वरकर्मदैवः । भाग्यान्यदृष्टनियमः कृतान्तपर्यायनामानि पुराकृतस्य ॥ २६ ॥ सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोनादिरादिकृदव्ययः । जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥ २७ ॥ आयुषोपचयं जन्तोस्तथैवापचयं विभुः । उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधात्यसौ ॥ २८ ॥ केचित्कर्म वदन्त्येनं स्वभावमपरे नृप । एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ॥ २९ ॥ स एव विश्वं सृजति स एवावति हन्ति च । अथापि ह्यनहंकारान्नाज्यते गुणकर्मभिः ॥ ३० ॥ संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसांपरम् । श्रुतेन भूयसा राजन्न गदेन यथामयम् ॥ ३१ ॥ एनोपस्टष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् । न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः ॥ ३२ ॥ हेलनं गिरी-

शश्रातुधनदस्य त्वया कृतम् । यज्ञघ्निवान्पुण्यजनान् भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ॥ ३३ ॥ तं प्रसादय वत्साशु सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः । गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिता ॥ ३४ ॥ एवं स्वायंभुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवम् । तेनाभिवंदितः साकमृषिभिः स्वाश्रमं ययौ ॥३५॥ इतिश्री मी० पु० द्वि० स्कं० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे पुत्र ! ये कुबेर के किंकर यक्ष तुम्हारे भाई के मारनेवाले नहीं हैं। क्योंकि प्राणी की कर्म्मानुसार सृष्टि और संहार के विषय में एक ईश्वर ही कारण है। ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई न तो किसी को उत्पन्न कर सकता है और न मार सकता है। विधि, विधाता, नियति, स्वभाव, काल, ग्रह, ईश्वर, कर्म्म, दैव, भाग्य, अदृष्ट, नियम, कृतान्त, आदि पुराकृत उसी ईश्वर के पर्याय नाम हैं। वह ईश्वर ही पिता आदि के द्वारा पुत्रादि को उत्पन्न कराता है। एवं प्राणियों के द्वारा प्राणियों की मृत्यु कराता है। प्राणियों की सृष्टि और संहार का वही कारण है। वही सबके नियन्ता है। वह स्वयं अनन्त और अनादि है। उनकी कालरूप शक्ति कभी क्षीण नहीं होती। ईश्वर वृद्धि और क्षय से रहित स्वस्थ है। जीवों की कालमृत्यु से रक्षा वा अकालमृत्यु उनके कर्म्मानुसार होती है। ईश्वर का उल्लिखित रूप सब ही लोक मानते हैं। उनके विषय में केवल नाममात्र का विवाद पाया जाता है। कोई उनको कर्म कहकर मानते हैं। कोई स्वभाव कहते हैं। कोई काल कहते हैं। कोई दैव कहते हैं। और कोई काम व इच्छा कहते हैं। वही ईश्वर विश्व को उत्पन्न करते हैं। और वही उसका पालन व नाश करते हैं। परन्तु उनमें अहंकार नहीं होने के कारण गुणों के कर्मों में लिप्त नहीं होते। पुत्र ! संपूर्ण मंगलों के विघ्न इस क्रोध को शास्त्र के श्रवण से प्राप्त आत्म ज्ञान द्वारा शान्त करो, जैसे औषध से अमंगलकारी रोग नष्ट किया जाता है। तुम्हारा कल्याण हो। जो मनुष्य क्रोध के अधीन होते हैं उनसे लोक भयभीत होकर घबड़ाते हैं। अतएव जिसको निर्भय होने की एवं अपने मंगल की इच्छा हो उसे उचित है कि ज्ञान प्राप्तकर क्रोध के अधीन न हो। अपने भाई के मारनेवाले कुबेर के अनुचर लोगों को मारकर तुमने शिवजी के भ्राता धनद की भी बड़ी अवज्ञा की है। इसलिये शीघ्र जाकर उनको प्रणाम और विनीत वचनों से प्रसन्न करो एवं अपना अपराध क्षमा कराओ। और चिंताओं को सर्वथा छोड़दो, क्योंकि विद्वान् मारण क्षत्रिय लोक मरे हुओं की और शेष बचे हुए बन्धु रहितों की चिंता नहीं करते। स्वायंभुव मनु इस प्रकार अपने पौत्र ध्रुवको उपदेश देकर एवं ध्रुव के द्वारा अभिवन्दित होकर महर्षियों सहित अपने आश्रम को चले गये ॥ २५-३५ ॥

॥ इतिश्रीमद्भागवतमीनपुराणे द्वितीयस्कंधे सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥

४

अथाष्टमोऽध्यायः प्रा० ॥ सूत उवाच–ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुद्ध्य वै शसादपेतमन्युं भगवान्धनेश्वरः। तत्रागतश्चारणयक्षकिंनरैःसंस्तूयमानोभ्यवदत्कृतांजलिम् ॥ १ ॥ धनद उवाच–भो भो क्षत्रियदायाद परितुष्टोस्मि तेनघ। यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजत् ॥ २ ॥ न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षाभ्रातरं तव। काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः॥३॥ न चास्य कश्चिद्दयितो न द्वेष्यो न च बान्धवः। आविशत्यप्रमत्तोसौ प्रमत्तं जनमन्तकृत् ॥४॥ तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तमधोक्षजम्। सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥५॥ भजस्व भजनीयांघ्रिमभवाय भवच्छिदम्। युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्यात्ममायया ॥६॥ तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वैडविडस्ततः। पश्यतोन्तर्दधे सोपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥ ७ ॥

भा० टी०—अब आठवाँ अध्याय शुरू होता है ॥ ध्रुवजी का ध्रुवलोक गमन ॥ सूतजी बोले–जब भगवान् कुबेरजी ने सुना कि मनु के कहने से क्रोध त्यागकर ध्रुवजी यक्षों के वध से निवृत्त हो गये। तब चारण, यक्ष, किन्नर गणकृत अपनी स्तुति सुनते हुए कुबेरजी युद्धभूमि में आये। एवं अञ्जलि बाँधकर नम्रभाव से खड़े हुए कुबेरजी ध्रुव से कहने लगे। कुबेरजी बोले–हे निष्पाप राजकुमार! तुमने अपने बाबा के कहने से दुस्त्यज वैर को तज दिया, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। देखो! न तुमने यक्षों को मारा और न यक्षों ने तुम्हारे भाई को मारा है। क्योंकि काल ही जीवों के जन्म और मरण का कारण है। इसको कोई प्रिय नहीं है और न कोई अप्रिय है। एवं न कोई इसका बान्धव है। यह स्वयं सावधान होकर असावधान प्राणियों का संहार करता है। अब तुम अपने पुरको जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। जाकर जन्म–मरण से मुक्त होने के लिये जन्म–मरण से छुड़ानेवाले हरि को भजो। एवं सब प्राणियों में उन्हीं को स्थित देखो। क्योंकि ये सभी प्राणी उन्हीं का रूप हैं। वह गुणमयी माया शक्ति से युक्त भी है एवं रहित भी हैं। उन्हीं के चरण कमल भजने योग्य हैं। कुबेरजी प्रसन्नतापूर्वक ध्रुवको मन मानी हरि की अचल भक्ति देकर देखते ही देखते अन्तर्धान हो गये। ध्रुवजी भी अपने पुर को लौट आये ॥ १–७ ॥

तमेव शीलसंपन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम्। गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥८॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमंडलम्। भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥९॥ एवं बहुसवं कालं महात्माविचलेन्द्रियः। त्रिवर्गौपयिकं नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम् ॥ १० ॥ मन्यमान मिदं विश्वं मायारचितमात्मनि। अविद्यारचितस्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥ ११ ॥ आत्मास्त्र्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोशमन्तःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः। भूमंडलं जलधिमेखलमाकलय्य कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥ १२ ॥

भा० टी०—सब प्रजागण इस प्रकार के उत्तम स्वभाव वाले, ब्राह्मणों के भक्त, दीनों पर दया करने वाले एवं धर्म की मर्य्यादाओं के रक्षक व प्रजा की प्रतिपालना करने वाले ध्रुव पर अपने पिता के समान सम्मान व भक्ति करने लगे। इस प्रकार भोग से पुण्यों का एवं दान यज्ञादि से पापों का क्षय करते हुए ध्रुवने छत्तीस हजार वर्ष तक पृथ्वी-मण्डल का शासन किया। महात्मा ध्रुव ने इस प्रकार इन्द्रियों को अपने अधीन रखकर धर्म, अर्थ और काम को सिद्ध करते हुए बहुत वर्ष परिमित काल को बिताया। तदनन्तर अपने पुत्र को राज्यासन दे दिया। उस समय ध्रुवको पूर्ण ज्ञान एवं संसार से बैराग्य होगया था। ध्रुवजी ने अपने मनमें इस विश्व को अज्ञानवश स्वप्न में देखे हुए गन्धर्व नगर के समान मिथ्या एवं मायामय मानकर और शरीर, स्त्री, पुत्र, सुहृद सेना, भरा हुआ खजाना, अन्तःपुर रमणीय बिहार भूमि, सागरवेष्टित पृथ्वीमण्डल, सब काल पाकर नाश होजाने वाले अनित्य हैं, ऐसा विचार कर सब छोड़ दिया और अकेले तप करने के लिये बद्रिकाश्रम को चल दिये॥ ८-१२॥

तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य बद्ध्वासनं जितमरुन्मनसाहृताक्षः। स्थूलेदधारभगवति प्रतिरूप एतद्ध्या यंस्तदव्यवहितोव्यसृजत्समाधौ॥ १३॥ भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्नजस्रमानन्दवाष्पकलयामुहुरर्द्यमान। विक्लिद्यमानहृदय पुलकाचितांगोनात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिंगः॥ १४॥ सददर्श विमानाग्र्यं नभसोवतरद्ध्रुवः। विभ्राजयद्दशदिशो राकापतिमिवोदितम्॥ १५॥ देवावुचतुः-भो भो राजन्सुभद्रंते वाचं नोवहितः शृणु। यः पंचवर्षस्तपसा भवान्मीनमती तृपत्॥ १६॥ तस्याखिलजगद्धातु रावां देवस्यशार्गिणः। पार्षदा विहसं प्राप्तौनेतुं त्वाभगवत्पदम्॥ १७॥ अत्रास्थितं तेपितृभिरन्यैरप्यंगकर्हिचित् आतिष्ठ जगतां वंद्यं तद्विष्णोः परंपदम्॥ १८॥ एतद्विमान प्रवर मुत्तम श्लोक मौलिना उपस्थापितम्मायुष्मन्नाधिरोढुं त्वमर्हसि॥ १९॥

भा० टी०—ध्रुवजी ने बद्रिकाश्रम में जाकर अष्टांग योग का आरम्भ किया-प्रथम जल में स्नान करके शरीर की बाहरी शुद्धि की, फिर काम क्रोधादि एवं विषय-वासना त्यागकर अन्तःकरण को शुद्ध किया, फिर आसन बाँधकर प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से निवृत्त किया। फिर उस मनको भगवान् के विश्वमय विराट्रूप में लगाया, विराट्रूप का ध्यान करते २ जब मैं ध्यान करने वाला हूँ और भगवान ध्यान करने योग्य (विषय) वस्तु हैं इस प्रकार का भेदभाव जाता रहा तब तन्मय होकर समाधि में स्थित हुए। निरंतर हरि भगवान् में पूर्ण भक्ति होनेसे उनको ब्रह्मानन्द प्राप्त हुआ, बारंबार उनके नेत्रों से आनन्द की उमंग से आँसू बहने लगे, देहभर में रोमांच हो आया। भक्तिभाव व आनन्दरस से हृदय विगलित होगया। उनका देहाभिमान नष्ट होगया अतएव मैं राजा ध्रुव हूँ ऐसी भावना मिटगई। इस अवस्था को प्राप्त होने पर ध्रुव ने देखाकि अपने प्रकाश से दश

दिशाओं को प्रकाशित कर रहा एक श्रेष्ठ विमान आकाश से पृथ्वी पर उतर रहा है, जिसे देखने से जान पड़ता है कि मानों आकाश में चन्द्रमा का उदय हुआ है। विमान में रहे हुए नंद सुनंद दोनों देव बोले–हे राजन् तुम्हारे कल्याण की सीमा नहीं है। हमारी वाणी को सावधान होकर सुनो। तुमने पांच वर्ष की अवस्था में तप करके जिन मीन भगवान् को संतुष्ट किया था, उन्हीं शार्ङ्गपाणी विश्वनाथ के पार्षद हम तुमको इसी देहसे मीन धाम, ध्रुवलोक में लेजाने के लिये आये हैं। हे राजन्! आपके पूर्वज मीनगण एवं अन्यान्य पुण्यात्मा लोग भी कभी जिस पदको नहीं पहुंचे हैं उसी त्रिभुवन वंदित विष्णु के परमपद में चलकर निवास कीजिये। हे आयुष्मन्! भगवान् हरि के भेजे हुए इस श्रेष्ठ विमान पर आप सदेह चढ़िये ॥ १३–१६ ॥

निशम्य वैकुण्ठनियोज्यमुख्ययोर्मधुच्युतं वाचमुरुक्रमप्रियः। कृताभिषेकः कृतनित्यमंगलोमुनीन्प्रणम्या शिषमभ्यवादयत् ॥ २० ॥ तदोत्तानपादःपुत्रोददर्शान्तकमागतम्। मृत्यों मूर्ध्नि पदं दत्वा आरु रोहाद्भुतं गृहम् ॥ २१ ॥ तदादुन्दुभयो नेदुमृदंगपण वादयः। गन्धर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुम वृष्टयः ॥ २२ ॥ इत्युत्तानपादः पुत्रो ध्रुवोमीनपरायणः। अभूत्त्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥ २३ ॥ शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्व भूतानुरंजनाः। यान्त्यञ्जसाच्युतपदमच्युत प्रिय बान्धवाः ॥ २४ ॥ एतत्तेभिहितं सर्वं यत्पृष्टोहमिहत्वया। ध्रुवस्योद्दामयश सश्चरितं संमतं सताम् ॥ २५ ॥ धन्यं यशस्य मायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनंमहत्। स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥२६॥ श्रुत्वैतच्छ्रद्धया भीक्ष्णमच्युतप्रिय चेष्टितम्। भवेद्भक्तिर्भगवति यथास्यात्क्लेश संक्षयः ॥२७॥ महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शोलादयोंगुणाः। यात्रतेजस्तदिच्छूनां मनो यत्र मनस्विनाम् ॥ २८ ॥ प्रयतः कीर्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् सायं च आदि भक्तस्य ध्रुवस्य चरितंमहत् ॥ २९ ॥

भा० टी०—भगवान् के प्रधान पार्षदों के मुख कमल से ये अमृतसम मधुर वचन सुनकर भगवत्प्रिय ध्रुवने स्नान किया, तब उत्तानपाद के पुत्र ध्रुवने अपना अन्त समय देखा और मृत्यु के मस्तक पर पैर देकर उस अद्भुत विमान में चढ़ बैठे। उस समय देवगण ने मृदंग, पणव, दुन्दुभी आदि बाजे बजाये, श्रेष्ठ गन्धर्वगण गुण गाने लगे। और आकाश से कल्पवृक्षों के फूलों की वर्षा होने लगी। उत्तानपाद के पुत्र भगवद्भक्त शुद्ध चित्त ध्रुवजी इस भांति मीन भगवान् के ध्यान व पद में उपस्थित होकर त्रिलोकी के मस्तक पर चूड़ामणी के समान सुशोभित हुए। उस विष्णुपद में वे लोग अनायास जाते हैं जो शान्त स्वभाव, समदर्शी, शुद्ध पवित्र हृदयवाले, सब प्राणियों का मनोरंजन करने

वाले, और जो अच्युत भगवान् को ही अपना प्रिय बान्धव जानते हैं। सूतजी कहते हैं कि हे शौनक! तुम्हारे प्रश्न के अनुसार अति यशस्वी ध्रुवका यह चरित्र मैंने तुमसे वर्णन किया। यह ध्रुव चरित्र साधु-जनों को प्रिद है। यह ध्रुव चरित्र यश और आयुको बढ़ानेवाला, पवित्र, पुण्यरूप, मंगलमय, मनको प्रसन्न करनेवाला, पाप नाशक, और प्रशंसनीय है। इससे धन, स्वर्ग, एवं ध्रुवलोक प्राप्त होता है। यह अच्युत के प्रिय ध्रुवका चरित्र श्रद्धापूर्वक नित्य सुनने से भगवान् में दृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है, जिस भक्ति के होने से संसार के समस्त क्लेशों का क्षय होता है। श्रोता को यदि महत्त्व लाभ करने की इच्छा हो, या मनस्वी, अथवा क्षात्र तेज बढ़ाने की इच्छा हो तो उसे ध्रुव चरित्र सुनना उचित है। इसीसे उसकी कामना पूर्ण होगी। यह चरित्र तीर्थ के समान पवित्र है। इसके सुननेवाले को सुशीलता आदि सद्गुण शीघ्र ही मिलते हैं। पवित्र होकर प्रातःकाल और सायंकाल को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति की सभा में यह आदि भक्त एवं महा यशस्वी ध्रुव का उत्तम चरित्र कीर्तन करना चाहिये॥ २०–२६॥

पौर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणेथवा। दिनक्षय व्यतीपाते संक्रमेर्कदिनेपिवा॥ ३०॥ श्रावयेच्छ्रद्दधानानांतीर्थ पादपदाश्रयः। नेच्छंस्तत्रात्मनात्मानं संतुष्टइति सिध्यति॥ ३१॥ ज्ञानम ज्ञात तत्त्वाय योदद्यात्सत्पथेमृतम्। कृपालोर्मीन नाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते॥ ३२॥ इतिश्री मीनपु० द्वि० स्कं० अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

भा० टी०—पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी इन तिथियों में श्रवण नक्षत्र, व्यतीपात योग, संक्रान्ति का दिन, रविवार, दिनक्षय, इन पर्वों में अवश्य इसका पाठ करना चाहिये। और स्वयं निष्काम होकर श्रद्धालु लोगों को सुनाना चाहिये। इस प्रकार हरि की चरण शरण ग्रहण करके यह चरित्र पढ़ने या सुनाने से मनुष्य आप ही आप अपने आत्मा (मन) में संतुष्टि पाकर सिद्ध अर्थात् सांसारिक क्लेशों से मुक्त हो जाता है। हे मुने! जो कोई मीन भगवान् का तत्त्व नहीं जानने वाले, अज्ञानी लोगों को अमृतरूप ज्ञान का प्रकाश दिखाकर सुमार्ग में ले आता है उस जगद्बन्धु दयालु व्यक्ति पर सब देवगण अनुग्रह करते हैं॥ ३०–३२॥

॥ इतिश्रीमद्भागवत् मीनपुराणे द्वितीयस्कंधेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्याय प्रा० मीन ज्ञातीय धर्म व० ॥ सूत उवाच- मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः । प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥ १ ॥ ऋषयऊचुः भगवन् सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः । अन्तरप्रभवाणां च धर्म्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥ सूतउवाच- ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिमनुना भृगुः । तानब्रवीदृषीन् सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ३ ॥ भृगुरुवाच- स्वायंभुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोपरे । सृष्टवंतः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मनो महौजसः ॥ ४ ॥ स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा । चाक्षुषश्च महामीनः विवस्वत्सुत एव च ॥ ५ ॥ स्वायंभुवाद्यास्सप्तैते मनवो भूरितेजसः । स्वे स्वेन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—अब नवमाँ अध्याय शुरू होता है । इस अध्याय में महर्षि भृगुजी के द्वारा मीन जाति के मनुष्यों का धर्म प्रति वादन किया गया है । एकदा सुखसे बैठे हुए स्वायंभुव मनुजी के पास बड़े २ ऋषि लोग आये और यथा न्याय उनके चरणों का पूजन करके यों पूछते हुए । ऋषि बोले— भगवन् ! चारों वर्ण और उनमें एक दूसरे के संयोग से उत्पन्न हुई जातियों के सभी धर्मों का हमसे आप यथानुक्रम से वर्णन करिये । सूतजी कहते हैं कि-ऋषियों के इस प्रकार पूछने पर मनुजी ने अपने प्रधान शिष्य भृगुजी की तरफ इशारा करते हुए कहा कि-हे महर्षियों आप यह बात हमारे प्रतिनिधि भृगु से पूछें । इस प्रकार मनुजी के कहने पर सभी महर्षि लोग भृगुजी के पास आये, और मनुजी के आदेशानुसार उन सबसे प्रसन्नात्मा भृगुजी बोले कि सुनिये । इन्हीं स्वायंभुव मनुजी के वंशमें क्रम से छः मनु दूसरे और होंगे जो महा पराक्रमशील और अपने २ समय में भिन्न २ प्रजा की सृष्टि करेंगे । उन्हों के नाम ये हैं-स्वारोचिष २, उत्तम ३, तामस ४, रैवत ५, महामीन चाक्षुष ६ और सातवाँ विवस्वत् का पुत्र वैवस्वत मनु है । अपने २ मन्वन्तर में चराचर सभी प्रजा की उत्पत्ति एवं पालन पोषण करने वाले, स्वायंभुवादी ये सातों ही मनु बड़े तेजस्वी होते हैं ॥ १-६ ॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे । अन्ये कलियुगे नॄणां युगह्रासानुरूपतः ॥ ७ ॥ चतुष्पात् सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे । नाधर्म्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान् प्रतिवर्त्तते ॥ ८ ॥ तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते । द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ ९ ॥ त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् । द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगे ॥ १० ॥ कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च । द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतितकर्मणां ॥ ११ ॥ कृते त्वस्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसमाश्रिता । द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्ना-

दिषु स्थिताः ॥ १२ ॥ अभिगम्य कृतेदानं त्रेतास्वाहूय दीयपे। द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ ॥ १३ ॥ अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम्। अधमं याचमानाय सेवा-दानं तु निष्फलम् ॥ १४ ॥

भा० टी०—चढ़ते पड़ते जमानों के कारण मनुष्यों के धर्म नियम चारों ही युगों में विभिन्न रूपसे होते हैं। कृतयुग में सत्य एवं धर्म के सम्पूर्ण चार पाये होते हैं। त्रेता में तीन, द्वापर में दो और कलियुग में एक पाया होता है। सत्ययुग में मनुष्यों के द्रव्यादि का आगमन अधर्म से नहीं होता। तप, ज्ञान, यज्ञ और दान ये धर्म के चार पाये होते हैं। कृतयुग में श्रेष्ठ तपसे मुक्ति होती है। त्रेता में ज्ञान से, द्वापर में यज्ञ से और कलियुग में तो केवल दान ही से मुक्ति हो जाती है। कृतयुग में तो पाप करने वालों के देश ही को सज्जन लोग छोड़ देते हैं। त्रेता में ग्राम को, द्वापर में कुल को और कलियुग में केवल एक अधर्म करने वाले व्यक्ति को ही छोड़ दिया जाता है। कृतयुग में तो अधर्म के करने वालों से भाषण कर लेने पर ही मनुष्य पतित हो जाता है। त्रेतायुग में पापी का स्पर्श करने पर, द्वापर में उसका अन्न खाने पर और कलियुग में तो पतित कर्मों के आचरण करने पर मनुष्य पतित होता है। कृतयुग में मनुष्यों के प्राण उनकी हड्डी के भीतर रहते हैं। त्रेता में मांस के भीतर, द्वापर में मनुष्यों के रुधिर में प्राण रहते हैं और कलियुग में तो प्राण अन्न के भीतर हैं, खाने को न मिले तो मनुष्य मर जाता है। कृतयुग में सुपात्रों को स्थान पर जाकर दान दिया जाता है। त्रेता में बुलाकर दान दिया जाता है। द्वापर में मांगने पर, और कलियुग में पहले सेवा बजवाकर फिर दान दिया जाता है। जाकर देना उत्तम दान है। बुलाकर देना मध्यम है। मांगने पर देना अधम दान है और सेवा करवा कर दान देना निष्फल है ॥ ७–१४ ॥

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः। आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मपराङ्मुखः ॥ १५ ॥ मीनपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः। दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥ १६ ॥ संध्या स्नानं जपो होमो गुरुदेवप्रपूजनम्। आतिथ्यं वैश्वदेवं च वर्णधर्मो दिने दिने ॥ १७ ॥ वैश्वदेवो बलिर्भिक्षा गोग्रासो हंतकारकः। गृहस्थः प्रत्यहं कुर्यात्सूनादोषैर्न लिप्यते ॥ १८ ॥ कंडनी पेषणी चुल्ली। उदकुंभो च मार्जनी पंचसूना गृहस्थस्य अहन्यहनि वर्त्तते ॥ १९ ॥ आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एवचः तस्मा-दस्मिन्सदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥ २० ॥

भा० टी०—चारों ही वर्णों के धर्म की रक्षा करने वाला एक आचार है। जिस मनुष्य का देह आचार से भ्रष्ट हो गया तो धर्म भी उससे पराङ्मुख है। मीन भगवान की पूजा, गुरु सेवा, शास्त्रों

की स्वाध्याय, धार्मिक नियमों का परिपालन, चान्द्रायण तपकर्म और सुपात्र दान ये गृहस्थों के प्रति दिन करने के षट् कर्म्म हैं। तथा संध्या, स्नान, जप, होम, गुरु एवं देवों का पूजन, अतिथि सत्कार श्राद्ध देवों को नैवेद्य, ये चारों ही वर्णों के प्रति दिन करने के धर्म हैं। वैश्व देव, बलि पूजा, भिक्षा दान, गोग्रास और हन्तकार, ये पांच कर्म गृहस्थ को सूना दोषों से निवृत्त होने के लिये नित्य करना चाहिये। ओखली, चक्की, चुल्ही, पनहंडी, और बुहारी गृहस्थ के ये पांच सूना (हिंसा के कारण) प्रतिदिन वर्तते हैं। श्रुति और स्मृतियों में कहा हुआ आचार ही परम धर्म है। अतएव द्विजातियों को चाहिये कि सदा आचार युक्त हैं ॥ १५-२० ॥

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः। हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह च नश्यति ॥ २१ ॥ आचारात्फलतेधर्म आचारात्फलते धनम्। आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हंत्यलक्षणम् ॥ २२ ॥ सर्वलक्षणहीनोपि यः सदाचारवान्नरः। श्रद्धानोनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ २३ ॥ दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निंदितः। दुःखभागी च सततं व्याधितान्पायुरेव च ॥ २४ ॥ आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरंगैः। छन्दास्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव तापतप्ताः ॥ २५ ॥ अव्रताश्चानधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः। तं ग्रामं दंडयद्राजा चौरभक्तददंडवत् । २६ ।

भा० टी०—आचार यह चारों ही वर्णों का परम धर्म है। हीनाचार एवं धर्म वर्जित आत्मा वाले मनुष्यों के इहलोक और परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। धर्म भीं आचार से ही फल देता है। धन भी आचार के पालने पर ही सफल होता है। आचार का पालन करने पर ही लक्ष्मी मिलती है। और आचार ही संपूर्ण अपलक्षणों को नष्ट कर देता है (श्रद्धावान् और ईर्ष्याविर्जित, सदाचार को पालने वाला मनुष्य सर्व लक्षणहीन होने पर भी पूरे सौ वर्षों तक जीता है। दुराचारी मनुष्य सदा दुःखी, लोकों में निन्दा पानेवाला, और अल्पायु होता है। छः अङ्गों सहित पढ़े हुए चारों ही वेद आचार भ्रष्ट मनुष्य को तार नहीं सकते। मृत्यु काल आने पर उसको वे सब यों छोड़ जाते हैं जैसे वृक्षों में आग लगने पर पक्षीगण घौंसले को छोड़ जाते हैं। चोर और डाकुओं को भोजन देनेवालों को जैसे दण्ड दिया जाता है, वैसे ही मारण जाति के राजाओं का यह धर्म है कि, वे नहीं पढ़े हुए अव्रती अनाचारी ब्राह्मणों को भिक्षा देनेवाले सम्पूर्ण ग्राम को दण्ड दें ॥ २१-२६ ॥

विद्वद्भोज्यमविद्वांसो येषु राष्ट्रेषु भुंज्यते। तेष्वनावृष्टिमिच्छन्ति महद्वा जायते भयम् ॥ २७ ॥ कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः। प्रतिग्रहोध्यापनं च याजनं चेति वृत्तयः ॥ २८ ॥ क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः। शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणां चेति

वृत्तयः ॥ २९ ॥ गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः । चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थो हि विशिष्यते ॥ ३० ॥ यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रं यान्ति संस्थितिम् । एमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे लान्ति संस्थिनिम् ॥ ३१ ॥ यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः । एवं ग्रहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति भिक्षवः ॥ ३२ ॥ पुनाति पंक्तिं वंश्यांश्च सप्त सप्त परावरान् । पृथिवीमपि चैवेमा कृत्स्नामेकोपि सोर्हति ॥ ३३ ॥ दुष्टस्य दंडः सुजनस्य पूजा न्यायेन कोशस्य च संप्रवृद्धिः । अपक्षपातोर्थिषु राष्ट्ररक्षा पंचैव यज्ञाः कथितो नृपाणाम् ॥ ३४ ॥ यत्प्रजापालने पुण्यं प्राप्नुवंतीह मारणाः । न तु क्रतुसहस्रेण प्राप्नुवन्ति द्विजोत्तमाः ॥३५॥

भा० टी०—जिस राजा के राज्य में विद्वानों के योग्य भोजन को अविद्वान् (आचार भ्रष्ट लोग) खाते हैं वहां अवश्य ही अनावृष्टि आदि महान् भय होते हैं । ब्राह्मणों के छः कार्य हैं उनमें यजन, दान, और अध्ययन ये तीन तपस्या हैं । और दान लेना, पढ़ाना, यज्ञ कराना ये तीन जीविका है । क्षत्रियों के पांच कार्य हैं, उनमें यजन, दान, अध्ययन (पढ़ना) ये तीन तपस्या हैं । और शस्त्र का व्यवहार, एवं प्राणियों की रक्षा करना यह दो आजीविका है । गृहस्थाश्रम में ही यजन होता है, गृहस्थ ही तप करता है चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम की ही विशेषता है । जैसे सभी नदी नाले समुद्र में जाकर मिलते हैं, वैसे ही सर्व आश्रम गृहस्थाश्रम में मिल जाते हैं । जैसे माता व पृथ्वी का आश्रय लेकर सर्व जन्तु जीते हैं वैसे सबही आश्रमों के भिक्षुक गृहस्थाश्रम का आश्रय लेकर जीते हैं । गृहस्थाश्रमियों में कोई २ ऐसे महात्मा उत्पन्न हो जाते हैं जो कि आगे पीछे की सात २ पीढ़ियों का उद्धार कर देता है । और सारी पृथ्वी पर आप सबका एक ही परम पूजनीय हो जाता है । दुष्टों को दण्ड, अच्छे मनुष्यों का सत्कार, न्याय से खजाने की वृद्धी, विचार के निमित्त आये हुए अर्थियों पर पक्षपात का न करना । और सब प्रकार से देश की रक्षा करना ये पांच राजाओं के यज्ञ (आवश्यक) हैं । मारण (क्षत्रिय) प्रजा के पालने में जो पुण्य उपार्जन करते हैं, हजार यज्ञ करने पर भी श्रेष्ठ ब्राह्मण उतना पुण्य प्राप्त नहीं कर सकता ॥ २७–३५ ॥

एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनियो गतिम् - सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥ ३६ ॥ य एवं कुरुते राजा गुणदोषपरीक्षणम् । यशः स्वर्गं नृपत्वं च पुनः कोशं च सोर्जयेत् ॥ ३७ ॥ आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु । विनश्येत्तत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं रसाश्च ते ॥ ३८ ॥ एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमश्वं मही तिलान् । अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दारुवत् ॥ ४० ॥ ब्राह्मणान् वेदविदुषः सर्व शास्त्रविशारदान् । तत्र वर्षति पर्जन्यो यत्रैतान् पूजयेन्नृपः ॥ ४१ ॥ त्रयोलोकास्त्रयोवेदा आश्रमाश्च त्रयोग्नयः ।

एतेषां रक्षणार्थाय संसृष्टा ब्राह्मणाः पुरा ॥ ४२ ॥ उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मस्य शाश्वती । स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ४३ ॥

भा० टी०—इस प्रकार एक आचार से ही सर्व धर्म की प्राप्ति देखकर मुनियों ने सर्व तपों के मूल उत्तम आचार को ग्रहण किया है। जो राजा गुण और दोषों की परीक्षा इस प्रकार से करता है, वह कोश (खजाने) का संचय करके इस लोक में यश, परलोक में स्वर्ग और पुनः राजा की पदवी को पाता है। कच्चे पात्र में डाला हुआ दुग्ध, दही, घृत, मधु आदि रस जैसे पात्र की दुर्बलता के कारण उस पात्र को नष्ट कर स्वयं नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही गौ, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, भूमि और तिल आदि दानों को ग्रहण करनेवाला अविद्वान् ब्राह्मण उक्त वस्तुओं को नष्ट करके अग्नि में काष्ठ के समान खुद भी भस्म हो जाता है। पानी की सुवृष्टी वहीं होती है जहां पर राजा लोग वेद के जाननेवाले, और सर्व शास्त्र विशारद विद्वान् ब्राह्मणों का पूजन करते हैं। क्योंकि तीन लोक, तीन वेद, तीन आश्रम, तीन अग्नि आदि की रक्षा के लिये ही ब्रह्माजी ने सबसे पहले ब्राह्मणों की सृष्टी की है। ब्राह्मण की उत्पत्ति यह धर्म की शाश्वती मूर्त्ति है। क्य कि यह धर्म का प्रचार के लिये ही उत्पन्न होकर स्वयं ब्रह्म तुल्य माना गया है ॥ ३६-४३ ॥

जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे । ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेन्द्रिय-वृत्तयः ॥ ४४ ॥ तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरारसवेदिनः । तेभ्यो गन्धविदः श्रेष्ठास्ततरूप-विदो वराः ॥ ४५ ॥ शब्दभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदतः । तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पा-दस्ततो द्विपात् ॥ ४६ ॥ ततोवर्णाश्चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः । ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थ-ज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥ ४७ ॥ अर्थज्ञात्संशयच्छेत्तातः श्रेयान्स्वकर्मकृत् । मुक्तसंगस्ततो भूयान् दोग्धा धर्ममात्मनः ॥ ४८ ॥

भा० टी०—देखो अचेतन पदार्थों से सचेतन पदार्थ श्रेष्ठ है। उनसे जिनके प्राण का संचार होता है वह श्रेष्ठ है। पृथ्व्यादिक प्राणधारियों की अपेक्षा ज्ञान जिनको है, वे जीव श्रेष्ठ हैं। उनसे स्पर्शेन्द्रिय के ज्ञानवाले वृक्षादि श्रेष्ठ हैं। उनसे रस के ज्ञानवाले जलोकादि श्रेष्ठ है। उनसे गन्ध के ज्ञानवाले पिपीलकादि श्रेष्ठ है। उनसे रूपके ज्ञानवाले पतंगादि श्रेष्ठ हैं। उनसे शब्द के ज्ञानवाले सर्पादिक श्रेष्ठ हैं। उनसे जिनके मुखमें नीचे ऊपर दोनों जगह दन्त है वे श्रेष्ठ हैं। उनसे बहुत पैर वाले श्रेष्ठ हैं। उनसे चार पैरवाले जीव श्रेष्ठ हैं। उनसे दो पैरवाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं। उन वर्ण संकर मनुष्यों में शुद्ध चार वर्ण श्रेष्ठ ने। उनमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। उनमें भी वेद का जानने वाला श्रेष्ठ है। उनसे वेद का अर्थ जानने वाला श्रेष्ठ है। उससे संशय को दूर करने वाला श्रेष्ठ है। उससे जो

अपने धर्म कर्म के आचरणों में निष्ठ हैं वे श्रेष्ठ हैं। उससे भी मुक्त संग जिसने स्त्रियादि संग त्याग दिया वा जीवन्मुक्त जनों का संग करने वाला श्रेष्ठ है। क्योंकि वह निष्काम धर्म करता है। उससे अधिक मैं किसी को नहीं देखता ॥ ४४-४८ ॥

शौचमंगलानायासा अनसूयाऽस्पृहा दमः। लक्षणानि च विप्रस्य तथा दानं दयापि च ॥ ४६ ॥ अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिंदितैः। आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ॥ ५० ॥ प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रस्तविवर्जनम्। एतद्धि मंगलं प्रोक्तमृषिभिर्धर्मवादिभिः ॥ ५१ ॥ शरीरं पीड्यते येन शुभेन ह्यशुभेन वा। अत्यन्तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥ ५२ ॥ न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति चान्यान् गुणानपि। न हसेचान्यदोषांश्च सानसूया प्रकीर्त्तिता ॥ ५३ ॥ यथोत्पन्नेन कर्त्तव्यः संतोषः सर्ववस्तुषु। न स्पृहेत्परदारेषु साऽस्पृहा च प्रकीर्त्तिता ॥ ५४ ॥ बाह्य आध्यात्मिके वापि दुःख उत्पादिते परैः। न कुप्यति न चाहन्ति दम इत्यभिधीयते ॥ ५५ ॥ अहन्यहनि दातव्यमदीनेनान्तरात्मना। स्तोकादपि प्रयत्नेन दानमित्यभिधीयते ॥ ५६ ॥ परस्मिन् बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा। आत्मवद्वर्तितव्यं हि दयैषापरिकीर्तिता ॥ ५७ ॥ यश्चैतैर्लक्षणैर्युक्तो गृहस्थोपि भवेद्द्विज। स गच्छति परं स्थानं जायते नेह वै पुनः ॥ ५८ ॥

भा० टी०—शौच, मंगल, अनायास, अनसूया, अस्पृहा, दम, दान और दया ये ब्राह्मण के आठ लक्षण हैं। मांस मदिरादि अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग तथा अच्छे मनुष्यों का संग, और शुभाचारों का परिपालन शौच (शुद्धि) कहलाता है। प्रशस्त (तारीफ के लायक) कर्मों का आचरण और अप्रशस्त (निन्दित) कर्मों के त्याग को धर्म के जानने वाले ऋषि लोग मंगल कहते हैं। जिन जिन शुभाशुभ आचरणों से शरीर को अत्यन्त पीड़ा पहुँचती हो, उनाका ज्यादे नहीं करना अनायास (बिना क्लेश) है। गुणीजनों के किसी भी गुणको न छुपाकर सभी गुणों की तारीफ करना, और किसी के अवगुण को प्रकाशित नहीं करना, अनसूया (गुणों में दोष का आरोपण न करना) है। अपने प्रयत्न वा भाग्य से प्राप्त हुई सभी वस्तुओं में संतोष रखना और पर स्त्री या पर वस्तुओं में इच्छा का न होना अस्पृहा है। अपने को शारीरिक व मानसिक दुःख देनेवाले किसी मनुष्यादि पर कुपित न होना और न उसको मारने की चेष्टा करना, दम कहलाता है। यथा न्याय उत्पन्न की हुई थोड़ी भी अपनी वस्तु में से प्रतिदिन मनमें दीनता रहित होकर कुछ न कुछ देता रहे उसको दान कहते हैं। दूसरे बन्धुवर्ग, मित्र, द्वेषी तथा रिपु आदि सभी पर अपनी आत्मा के समान वर्त्ताव करें, उसे दया कहते हैं। इन लक्षणों से युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यदि गृहस्थ हों तो भी वह परम स्थान (मुक्ति) को पाता है और फिर लौटकर संसार चक्र में नहीं आता ॥ ४६-५८ ॥

इष्टापूर्ते च कर्त्तव्यं ब्राह्मणेनैव यत्नतः। इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षो विधीयते ॥ ५६ ॥ अग्निहोत्रं तपः सत्यं मीनानां धर्मपालनम्। आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ६० ॥ वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च। अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥ ६१ ॥ इष्टपूर्ते द्विजातीनां सामान्ये धर्मसाधने। अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मेन वैदिके ॥ ६२ ॥ यमान्सेवेत सततं न नित्यंनियमान्बुधः। यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥ ६३ ॥ आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमार्जवम्। प्रीतिप्रासादोमाधुर्य्यं मार्दवं च यमादशः ॥ ६४ ॥ शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः। व्रतमौनोपवासं च स्नानं च नियमादशः ॥ ६५ ॥ श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयनेद्व प्रकीर्त्तिते। काणः स्यादेकहीनोपि द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्त्तितः ॥ ६६ ॥ देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूद्रो निषादकः। पशुर्म्लेच्छोपि चंडालो विप्रा दशविधाः स्मृताः ॥ ६७ ॥

भा० टी०—ब्राह्मण को इष्ट और पूर्तकर्म अवश्य करना चाहिये। इष्ट से स्वर्ग और पूर्तकर्म से मोक्ष मिलता है। अग्निहोत्र, तप, सत्य, मीन ज्ञातीय वा मीनपुराणोक्त वैदिक धर्मों का पालन, आतिथ्य कर्म, वैश्वदेव (सब देवताओं की बली) इनका नाम इष्ट है। बावड़ी, कूप तालाब, इत्यादि जलाशयों का बनाना। देवताओं के मन्दिरों की प्रतिष्ठा, अन्न दान और बगीचों का लगाना, इनका नाम पूर्त है। इष्ट और पूर्तकार्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यों को समान अधिकार है। यद्यपि शूद्र भी पूर्तकार्य में अधिकारी हैं। परन्तु उसके अन्तगर्त जो वैदिक कर्म है उसका अधिकार उसे नहीं है। बुद्धिमान मनुष्य सर्वथा यमों का सेवन करे, नियमों का अनुष्ठान यथा समय में किया जाता है सर्वदा नहीं। और जो यमों का त्यागकर केवल नियम ही करता है तो वह पतित होता है। अक्रूरता, क्षमा सत्यवादिता, अहिंसा, दान, सरलता, प्रीति, प्रसन्नता, मधुरता, मृदुता इन दशों का नाम यम है। शौच, यज्ञ का अनुष्ठान, तपस्या (वेद का पढ़ना) दान, स्वाध्याय विधि रहित रति का त्याग, व्रत, मौन उपवास, और स्नान यह दश नियम हैं। ब्राह्मणों के श्रुति (वेद) और स्मृति ये दोनों नेत्र हैं। एक के न होने पर वह काणा और दोनों के नहीं होने पर वह अन्धा है। देव, मुनि, द्विज, राजा, वैश्य, शूद्र, निषाद, पशु, म्लेच्छ, चांडाल, ये दश प्रकार के ब्राह्मण कहे हैं ॥ ॥ ५६–६७ ॥

सन्ध्यां स्नानं जपं होमं देवतामीनपूजनम्। अतिथिं वैश्वदेवं च देवब्राह्मण उच्यते ॥ ६८ ॥ शाके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः। निरतोपरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ॥ ६९ ॥ वेदान्तं पठते नित्यं गर्वसंगं परित्यजेत्। सांख्ययोगविचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते ॥ ७० ॥ अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसंमुखे। आरंभे निर्जिता ।न स विप्रः

त्र उच्यते ॥ ७१ ॥ कृषिकर्मरतो यश्च गवां च प्रतिपालकः । वाणिज्यव्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते ॥ ७२ ॥ लाक्षालवणसंमिश्र कुसुंभक्षीरसर्पिषः । विक्रेता मधुमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥ ७३ ॥ चोरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशकस्तथा । मीनमांसे सदा लुब्धो विप्रो निषाद उच्यते ॥ ७४ ॥ ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः मीनरूपं च नावेत्ति विप्रः पशुरुदाहृतः ॥ ७५ ॥ वापीकूपतडागानामारामस्य सरःसु च । निश्शंकं रोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥ ७६ ॥ क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः । निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चांडाल उच्यते ॥ ७७ ॥ असूयकः पिशुनश्चैव कृतघ्नो दीर्घरोषकः । चत्वारः कर्मचांडाला जन्मतश्चापि पंचमः ॥ ७८ ॥ दीर्घवैरमसूया च असत्यं ब्रह्मदूषणम् । पैशुन्यं निर्दयत्वं च जानीयाच्छूद्रलक्षणम् ॥ ७९ ॥

भा० टी०—प्रति दिन संध्या, स्नान, जप, होम, मीनदेव का पूजन, अतिथि की सेवा, और जो वैश्वदेव करते हैं उनको देव ब्राह्मण कहते हैं। शाक, पत्ते, फल, मूलको भक्षण करने वाला और जो वन में निवास कर नित्य श्राद्ध में रहता है ऐसे ब्राह्मण को मुनि कहा है। जो प्रतिदिन वेदान्त पढ़ता है और जिसने सबका संग त्याग दिया है। सांख्य और योग के ज्ञान में जो तत्पर है। उस ब्राह्मण को द्विज कहा है। जिसने रणभूमि में सबके सन्मुख धान्वीयों को युद्ध के आरम्भ में जीता हो। और अस्त्रों से परास्त किया हो उस ब्राह्मण को क्षत्रिय कहते हैं। खेती के कार्य में रत, और गौ की पालना में लीन एवं वाणिज्य के व्यवहार में जो ब्राह्मण तत्पर हो उसको वैश्य कहते हैं। लाख, लवण, कुसुम, घी, मिठाई, दूध और मांस को जो ब्राह्मण बेचता है उसको शूद्र कहते हैं। चोर, तस्कर (बल पूर्वक दूसरे के धनको हरनेवाला) सूचक (बुरी सलाह देनेवाला) दंशक (कड़वा बोलने वाला) और सर्वदा मत्स्य मांस के लोभी ब्राह्मण को निषाद कहते हैं। जो ब्रह्म वेद और परमात्मा के तत्त्व को कुछ नहीं जानता और केवल यज्ञोपवीत के बलसे ही अत्यन्त गर्व करता है। और जो मीन भगवान् के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानता उस ब्राह्मण को पशु कहते हैं। जो निःशंक भाव से (पाप का भय न करके) बावड़ी, कूप, तालाब, बाग, छोटा तालाब, इनको बन्द करता है। उस ब्राह्मण को म्लेच्छ कहा है। क्रिया (संध्यादि नित्य नैमित्तिक कर्मों से) हीन, मूर्ख, सर्व धर्मों से रहित, और सर्व प्राणियों पर दया रहित होता है उस ब्राह्मण को चांडाल कहते हैं। निंदक, चुगलखोर, कृतघ्नी, क्रोधी, यह चारों जने कर्म चांडाल हैं और इसके अतिरिक्त पांचवाँ जाति चांडाल है। अधिक वैर, निन्दा, झूंठ, ब्राह्मणों पर मिथ्या दोष लगाना, चुगलपन, निर्दयता यह सब लक्षण शूद्र के जानने ॥ ६८-७९ ॥

वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः । पुराणहीनाः कृषिणो

भवंति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ॥ ८० ॥ ऋषयऊचुः—के केनु ब्राह्मणा प्रोक्ताः किं वा ब्राह्मणलक्षणम् । एतददिच्छामि विज्ञातुं तन्मे कथय सुव्रत ॥ ८१॥ मनुरुवाच–सर्वजातिषु चांडालाः सर्वजातिषु ब्राह्मणाः । ब्राह्मणेष्वपि चांडालाश्चांडालेष्वपि ब्राह्मणाः ॥ ८२ ॥ शूद्रोपि शीलसंपन्नो गुणवान्ब्राह्मणो मतः । ब्राह्मणोपि क्रियाहीनः शूद्रादप्यधमो भवेत् ॥८३॥ ब्राह्मणो ब्रह्मचर्य्येण यथा शिल्पेन शिल्पिकः । अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपककीटवत् ॥ ८४ ॥ सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म ब्रह्म चेन्द्रियनिग्रहः । सर्वभूतदया ब्रह्म एतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ ८५ ॥ क्षमा दंमो दया दानं सत्यं शीलं धृति घृ‍णाः । विद्याविज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ ८६ ॥ यागस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम् । विद्या० ॥ ९० ॥ गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् । गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते जनैर्द्विजाः ॥ ९१ ॥ किंचिद्वेदमयं पात्रं किंचित्पात्रं तपोमयम् । पात्राणामपि तत्पात्रं यो मीनं समुपास्यते ॥९२॥ सर्वत्र दान्ताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधे निवृत्ताः । प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥ ९३ ॥

भा० टी०—जिनकों वेद नहीं आता वह स्मृतियों को पढ़ते हैं। जिन्हें शास्त्र (स्मृतियें) नहीं आती वह पुराणों को पढ़ते हैं। जिन्हें पुराण नहीं आता वह खेती करते हैं। और जिन्हें खेती करना भी नहीं आता वह वैरागी भक्त व रासधारी हो जाते हैं। ऋषि लोग बोले—चारों वर्णों में कौन कौन ब्राह्मण हैं और हे सुव्रत मनुजी हम यह भी जानना चाहते हैं कि शुद्ध ब्राह्मणों के और क्या २ लक्षण हैं। मनुजी बोले—ब्राह्मण और चांडाल यह चारों ही वर्णों में होते हैं। ब्राह्मणों में भी चांडाल और चांडालों में भी ब्राह्मण हैं। शील सम्पन्न और गुणवान शूद्र को भी ब्राह्मण जानना चाहिये। और क्रिया हीन ब्राह्मण शूद्र से भी पतित है। जैसे चित्र कलादि कर्म्म करनेवाला शिल्पी (कर्मकर) कहलाता है, वैसे ही ब्राह्मण यह गुण निष्पन्न नाम ब्रह्मकर्म्म से हुआ है। जो ब्रह्मचर्य्य नहीं पालता और ब्राह्मण कहलाता है वह इन्द्रगोप कीड़े के समान कहने मात्र का ब्राह्मण है। सत्य, तप, इन्द्रियनिग्रह, और दया आदि का नाम ब्रह्म है जो इन्हींको धारे सो ही ब्राह्मण कहलाता है। क्षमा, अदम्भ, दया, दान, सत्य, शील, धृति, करुणा, विद्या, पदार्थ विज्ञान, आस्तिकता, यह ही ब्राह्मण के लक्षण हैं। योग, तप, दम, दान, सत्य शौच, दया, शास्त्र का ज्ञान, और विद्यादि यही ब्राह्मण के लक्षण हैं। गायत्री और ब्रह्मतत्त्व के जानने वाले ब्राह्मणों को सभी लोक पूजते हैं। गायत्री रहित ब्राह्मण शूद्र से भी ज्यादह अशुद्ध होता है। केवल वेद जानने वाला और तप करनेवाला ब्राह्मण अल्प पात्र है किन्तु सबमें उत्तम पात्र वह है जो ज्ञान क्रिया सहित श्रीमीन भगवान् का भी उपासक हो। गृहस्थ होने पर भी मीनोपासक ब्राह्मणगण

जगत् को तारने के समर्थ होते हैं, क्योंकि वे सदा दान्त, वेदों को पढ़ने और सुनने वाले, जितेन्द्रिय, जीवहिंसा से वर्जित और दान लेने में संकुचित हस्त वाले होते हैं ॥ ८०-९३ ॥

यो नहिंस्यादहं ह्यात्मा भूतग्राम चतुर्विधं। तस्य देहाद्वियुक्तस्य भयं नास्ति कदाचन ॥ ९४ ॥ ऋतुकाले व्यतिक्रान्ते यस्तु सेवेत मैथुनम्। ब्रह्महत्याफलं तस्य सूतकं च दिने दिने ॥ ९५ ॥ हस्ततलप्रमाणां तु यो भूमिं कर्षति द्विजः। नश्यते तस्य ब्रह्मत्वं शूद्रत्वं त्वभिजायते ॥ ९६ ॥ अव्रतानामशीलानां जातिमात्रोपजीविनाम्। सहस्रमुचितानां तु ब्रह्मत्वंनैव जायते ॥ ९७ ॥ अग्निकार्यात्परिभ्रष्टाः सन्ध्योपासनवर्जिताः। वेदं चैवानधीयानाः सर्वे ते वृषलाः स्मृताः ॥ ९८ ॥ सन्ध्या नोपास्ते यस्तु ब्राह्मणो हि विशेषतः। स जीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः श्वा चैव जायते ॥ ९९ ॥ अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्। आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति ॥ १०० ॥ विहितस्याननुष्टानान्निंदितस्य सेवनात्। अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥ १०१ ॥ यद्वत्काष्टमयो हस्ती यद्वच्चर्ममयो मृगः। ब्राह्मणस्तु क्रियाहीनस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ १०२ ॥ शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पंडितः। वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा नवा ॥ १०३ ॥ न रणे विजयाच्छूरो ध्ययनाच्च च पंडितः। न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः ॥ १०४ ॥ इन्द्रियाणा जये शूरो धर्म्मं चरति पंडितः। हितप्रायोक्तिभिर्वक्ता दाता सन्मानदानतः ॥ १०५ ॥ इति श्रीमीनपुराणे द्वितीय स्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

भा० टी०—सर्व प्राणियों में मैं ही हूँ ऐसा जानकर चार प्रकार के जीवों की जो हिंसा नहीं करता, उसको देह से वियुक्त होने पर भी कोई प्रकार का भय नहीं है। ऋतु स्नान के १६ दिन व्यतीत होने पर जो ब्राह्मण स्व-स्त्री से भी गमन करता है तो उसको ब्रह्म हत्या के समान दोष होता है। एवं उसका घर से सूतक नहीं जाता। हाथ की हतेली के बराबर भूमि को भी जौतने वाले ब्राह्मण के ब्रह्मत्व नष्ट होकर शूद्रत्व आ जाता है। अव्रती, अशील, (अब्रह्मचारी) एवं केवल जाति मात्र से ही आजीविका करने वाले हजारों की संख्या में हो तो भी ब्राह्मण कहलाने के योग्य नहीं हो सकते। अग्नि होमादि कार्यों से भ्रष्ट, सन्ध्या उपासना से वर्जित, और वेदों को नहीं पढ़ने वाले वे सब वृषल (शूद्र) है। जो कभी सन्ध्या उपासना नहीं करता वह ब्राह्मण उसी जन्म में शूद्र कहाता है और मरने पर कुत्ते की योनी में जन्म लेता है। वेदों का अभ्यास नहीं करने पर एवं आचार से वर्जित और आलस्य के दोष से ब्राह्मणों को मृत्यु नष्ट कर देता है। एक ब्राह्मण ही क्या शास्त्रोक्त आचार के नहीं पालने पर, एवं निंदित

कर्मों के सेवन करने से, और इन्द्रियों का निग्रह नहीं करने से चारों ही वर्णों के मनुष्य स्व २ धर्मों से पतित हो जाता है। काष्ट का हाथी, चमड़े का मृग, और क्रियाहीन ब्राह्मण ये तीनों गुण रहित केवल नाम मात्र के होते हैं। सौ मनुष्यों में एक शूरवीर निकलता है। हजार में एक पंडित होता है। लाख मनुष्यों में एक वक्ता होता है। और दातार तो इन सब में एक मुश्किल से निकलेगा। युद्ध में लड़ने से शूर नहीं कहाता, शास्त्रों के पढ़लेने से पंडित नहीं होता, वचन की चातुरी को वक्ता नहीं कहा जाता, द्रव्य के देनेवाला दाता नहीं होता, किन्तु इन्द्रियों को जीते वह शूर है। धर्म का आचरण करै वह पंडित है। हित की बात कहे वह वक्ता है। और सन्मानपूर्वक दे वह दाता है॥ ६४-१०५॥

॥ इतिश्रीमद्भागवत् मीनपुराणे द्वितीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः॥ ६॥

अथ दशमोध्यायः प्रारंभः॥ मनुरुवाच—विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्व षरागि भिः हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधतः॥ १॥ सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं मीननिर्मितं देशम् ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते॥ २॥ तस्मिन्देशे च मीनानां पारंपर्यक्रमागतः। आचारः सर्ववर्णानां सदाचारः स उच्यते॥ ३॥ कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः एष ब्रह्मर्षिदेशो वै बृह्मावर्तादनन्तरः॥ ४॥ एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ ५॥ हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्त्तितः॥ ६॥ आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥ ७॥ एतान् द्विजातयो देशान् संश्रयेरन् प्रयत्नतः। शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्शितः॥ ८॥ क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम्। कृषिगोरक्षवाणिज्यं विशश्च परिकीर्तितम्॥ ६॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पानि वाप्यथ। क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः॥ १०॥

भा० टी०—अब दशवाँ अध्याय शुरू होता है॥ विशेष धर्म वर्णन॥ मनुजी बोले—जिन २ नियमों का सज्जन लोगों ने नित्य ही पालन किया और राग-द्वेष रहित महात्माओं ने सच्चे दिल से जिन्हों का अनुमोदन किया एवं पालन करने का आदेश दिया। उसी को धर्म जानना चाहिये। सरस्वती और दृषद्वती दोनों देव नदियों के बीच का जो मीनगणों का निर्माण किया हुआ देश है उसको ब्रह्मावर्त्त देश कहते हैं। इस देश में मीन क्षत्रियों की शुद्ध परंपरा से चला आया हुआ जो चारों वर्णों का धर्म, वह सदाचार कहाता है। कुरु, मत्स्य, पांचाल, और शूरसेन ये ब्रह्मावर्त देश के अनन्तर ब्रह्मर्षि देश हैं। इन देशों में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों से संपूर्ण पृथ्वी के मनुष्यों को अपना २ आचार सीखना

चाहिये। हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य का प्रदेश, तथा विनशना नदी से पूर्व एवं प्रयाग से पश्चिम इन चार सीमावाले भू-खण्ड को मध्य प्रदेश कहते हैं। पूर्व पश्चिम में समुद्र पर्यंत और उत्तर दक्षिण में हिमाचल विंध्याचल, तक इस प्रकार चार सीमा वाले भू-खण्ड को विद्वान लोक आर्य्यावर्त्त कहते हैं। द्विजातियों को चाहिये कि वह इन्हीं देशों का आश्रय लेकर रहैं और शूद्र तो अपनी आजीविका के बस चाहे इनसे बाहर भी किसी देश में रह सकता है। क्षत्रियों का विशेष धर्म प्रजा पालन है। कृषि वाणिज्य और गोरक्षा यह वैश्यों के विशेष धर्म है एवं द्विजातियों की सेवा करना तथा सर्व प्रकार के शिल्प (कारीगरी) से अपना निर्वाह करना यह शूद्रों का विशेष धर्म है। और क्षमा, सत्य, दम, शौच यह चारों ही वर्ण का साधारण धर्म है॥ १-१०॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वेश्यस्त्रयोवर्णा द्विजातयः। तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं मौंजिबन्धनम्॥ ११॥ आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा। ब्राह्मणक्षत्रियविशां मौंजीबन्धनजन्मनि॥ १२॥ वृत्त्या शूद्रासमास्तावद्विज्ञेयास्ते विचक्षणैः। यावद्वेदे न जायन्ते द्विजा ज्ञेयास्ततः परम्॥ १३॥ वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्। कार्या शरीरसंस्काराः पावनाः प्रेत्य चेह च॥ १४॥ गार्भैर्होमैर्जातकर्म चौलमौंजीनिबन्धनैः बेजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते॥ १५॥ स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्संस्कारेणेज्यया श्रुतैः। महाव्रतैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥ १६॥ गर्भस्य स्फुटता ज्ञानं निषेकः परिकीर्तितम्। पुरा तु स्यन्दनात्कार्यं पुंसवनं विचक्षणैः॥ १७॥ षष्ठेष्टमे वा सीमन्तो जाते वै जातकर्म च। अशौचे च व्यतिक्रान्ते नाम कर्म विधीयते॥ १८॥

भा० टी०—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णों को द्विजाति कहते हैं, इनका दूसरा जन्म यज्ञोपवीत से जानना। इनोंके यज्ञोपवीत के जन्म में आचार्य पिता और माता गायत्री कही है। जबतक इनको वेद शास्त्र का अधिकार न हो तबतक पंडितों ने इनको शूद्र के समान कहा है, और वेदाध्ययनपूर्वक यज्ञोपवीत होजाने पर द्विज कहना उचित है। इस लोक और जन्मान्तर में भी पुण्यरूप निषेकादिक वेद में कहे हुए षोड्शसंस्कार द्विजों को अवश्य करना चाहिये। होम, जातकर्म, चूडाकर्म, मौञ्जीबंधन, आदि संस्कारों से द्विजों के बीज और गर्भ सम्बन्धी समस्त दोषों का मार्जन हो जाता है। स्वाध्याय, व्रत, होम, संस्कार, पूजा, दान शास्त्र, महाव्रत, और यज्ञ आदि के द्वारा यह काया ब्राह्मणीय हो जाती है। गर्भ के भलीभांति से प्रकाशपाने पर निषेककर्म करना कहा है। और गर्भके चलने से पूर्व पंडितों को पुंसवन संस्कार करनाचाहिये। छठे या आठवें महीने में सीमन्त और संतान के उत्पन्न होने पर जातकर्म एवं सूतक से निवृत्त होने पर नामकरण संस्कार करना उचित है॥ ११-१८॥

नामधेयं तु कर्तव्यं मैनानांच शुभाक्षरैः। मांगल्यं ब्राणस्योक्तं क्षत्रियस्य बला-
न्वितम् ॥ १९ ॥ वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्। शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं
वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु। धनान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं चान्त्यजन्मनः ॥ २० ॥ चतुर्थे
मासि कर्तव्यं बालस्यादित्यदर्शनम्। षष्ठेन्नप्राशनं मासि चूडाकार्या यथाकुलम्। प्रथमेब्दे
तृतीये वा कर्णवेधो विधीयते ॥ २१ ॥ द्वे जन्मनी द्विजातीनां मातुः स्यात्प्रथमं तयोः।
द्वितीयं छंदसां मातुर्ग्रहणाद्विधिवद्गुरोः ॥ २२ ॥ आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतोर्विशः ॥ २३ ॥ अत ऊर्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥ २४ ॥

भा० टी०—मीन भगवान के उपाशक चार ही वर्णों का नामकरण शुभ अक्षरों से करना चाहिये। ब्राह्मण का नाम मंगल सूचक, क्षत्रिय का नाम बल सूचक, वैश्य का नाम धन सूचक, और शूद्र का नाम सेवा (वंदगी) सूचक होना चाहिये। ब्राह्मण के नाम के अन्त में शर्मा, क्षत्रिय के वर्मा वैश्य के धन, और सेवक (शूद्र) के नाम के अन्त में दास पद का प्रयोग करना चाहिये। जन्म के दिन से चौथे महीने बालक को घर से बाहर निकाल कर सूर्य्य आदि अपने इष्टदेवों का दर्शन कराना चाहिये। छटे महीने अन्न प्रासन संस्कार कराना चाहिये। और चूडाकर्म (चोटी रखवाना) अपने कुल की रीत्यानुसार करना चाहिये एवं कर्णवेध संस्कार जन्म के प्रथम वर्ष व तीसरे वर्ष करना चाहिये। द्विजातियों का दो वार जन्म होता है, उनमें प्रथम तो माता की योनी के द्वारा और दुसरा विधिपूर्वक गुरु के पास छंदों की माता (गायत्री) से होता है। सौलह वर्ष की उम्र तक ब्राह्मण के सावित्री (गायत्री यज्ञोपवीत) का उलंघन नहीं होता, क्षत्रिय के बाईस और वैश्य के चौईश वर्ष की उम्र तक यज्ञोपवीत संस्कार हो सकता है। क्रम से इतने वर्षों के उपरान्त भी यदि ये लोक असंस्कृत ही रह जायें तो फिर, सावित्री से पतित, व्रात्य संज्ञा वाले, और आर्य्यों में निंदित हो जाते हैं ॥ १९-२४ ॥

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः। त्रिपदा चैव सावित्रा विज्ञेयं ब्राह्मणो
मुखम् ॥ २५ ॥ एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परंतपः। सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौना-
त्सत्यं विशिष्यते ॥ २६ ॥ क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोति यजति क्रियाः। अक्षरस्त्वक्षरं
ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥ २७ ॥ कर्म यज्ञाजपयज्ञो विशिष्टो दशभिः गुणैः। उपांशु
स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥ २८ ॥ प्राणायामत्रयं मीन कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः।
जपयज्ञं सदा कुर्याद्गायत्रा वेदमातरम् ॥ २९ ॥ त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य तत्त्वं निबो-

धत । वाचिकश्च उपांशुश्च मांनसश्च त्रिधाकृतिः । त्रयाणामपि यज्ञानां श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः ॥ ३० ॥ यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः । मंत्रमुच्चारयन्वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ॥ ३१ ॥ शनैरुच्चारयन्मंत्रं किंचिदोष्ठौ प्रचालयेत् । किंचिच्छ्रवणयोग्यं स्यात्स उपांशुर्जपः स्मृतः ॥ ३२ ॥ धियापदाक्षरश्रेण्या अवर्णपदमक्षरम् । शब्दार्थचिंतनाभ्यां तु तदुक्तं मानसं स्मृतम् ॥ ३३ ॥ जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति । प्रसन्ने विपुलान्गोत्रान्प्राप्नुवंति मनीषिणः ॥ ३४ ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाश्च भीषणाः । जपितान्नोपसर्पंति दूरादेव प्रयांति ते ॥ ३५ ॥ सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते ॥ ३६ ॥

भा० टी०—ओंकारपूर्वक अव्यया गायत्री का तीन वार जाप करे । भूर्भुवः स्वः इन तीन पदों (व्याहृतियों) वाली गायत्री को ब्रह्मा का मुख जानना चाहिये । ओं यह एक ही अक्षर श्रेष्ठ ब्रह्म है । प्राणायाम यह परम तप है । सावित्री (गायत्री) से अधिक कोई मंत्र नहीं है । मौन से भी सत्य में धर्म विशेष है । जुहोति यजति आदिक सब वैदिक क्रियाएं नष्ट हो जाती हैं किन्तु परब्रह्म प्रजापति स्वरूप ओं यह अक्षर नष्ट नहीं होता । कर्म (वाचिक) या अग्निष्टोमादिक यज्ञों से जप दशगुणा श्रेष्ठ है । और जप यज्ञ से उपांशु यज्ञ सौगुणा श्रेष्ठ है । और उपांशु यज्ञ से मानसिक यज्ञ सहस्र गुणा अधिक है । मीन ज्ञाति के राजपूतों को चाहिये कि वे सर्व प्रमादों को सर्वथा छोड़कर प्रतिदिन तीन प्राणायाम जरूर करें । और चारों ही वेदों की माता गायत्री का जपरूप यज्ञ सदा करें । वाचिक, उपांशु और मानसिक ये तीन प्रकार का जप यज्ञ है । जिन्हों में उत्तरोत्तर एक से एक अधिक श्रेष्ठ है । इन तीनों जप यज्ञों का स्वरूप कहता हूं सुनो ! जिसका ऊंचा और नीचा उच्चारण स्पष्ट पदाक्षरों के शब्दों से मंत्र पाठ किया जाता है उसी जप को वाचिक जप कहते हैं । और जिसमें कुछ २ होठ कंपित हों और धीरे २ मंत्र का उच्चारण हो कुछ २ शब्द सुनाई आता हो उसे उपांशु जप कहते हैं । बुद्धि से ही पद और अक्षर की पंक्ति का स्मरण हो वर्ण और पदाक्षर सुनाई न आवें, केवल शब्द और अर्थ का विचार ही जिसमें हो, उसका नाम मानसिक जप यज्ञ है । जप से स्तुति किये जाकर देवता प्रसन्न होते हैं । देवताओं के प्रसन्न होने पर मनुष्यों को बहुत-सी वंश की वृद्धि प्राप्त होती है । जप करने से भयंकर राक्षसगण, पिशाच, और सर्प यह निकट नहीं आ सकते । वरन् वह दूर ही से भाग जाते हैं । गायत्री का सहस्र जप श्रेष्ठ है । सौ मध्यम और दश निकृष्ट है । जो प्रति दिन गायत्री का जप करता है वह पाप से लिप्त नहीं होता ॥ २५-३६ ॥

जप्येन वै तु संसिद्ध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः । कुर्यादन्यं न वा कुर्यान्मैत्रो

ब्राह्मण उच्यते ॥ ३७ ॥ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु । संयमे यत्नमातिष्ठेद्वि-द्वान्यन्ते ववाजिनाम् ॥ ३८ ॥ एकादशेन्द्रियाण्याहुयानि पूर्वे मनीषिणः । तानि सम्यक् प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ३९ ॥ श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पंचमी । पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमीस्मृता ॥ ४० ॥ बुद्धीन्द्रियाणि पंचैषांश्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः । कर्म्मेन्द्रियाणि पंचैषां पायवादीनि प्रवक्षते ॥ ४१ ॥ एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणो नोभयात्मकम् । यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पंचकौ गणौ ॥ ४२ ॥ इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् । संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ ४३ ॥ न जातु कामः कामनामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृत्स्नवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ४४ ॥ यश्चैतान् प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत् । प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥ ४५ ॥ न तथैतानि शक्यंते संनियन्तुमसेवया । विषयेषुप्रजुष्टानि यथाज्ञानेन नित्यशः ॥ ४६ ॥

भा० टी०—मीन भगवान् के सेवकगण चाहे दूसरी धार्मिक क्रियाएं करें या न करें, किन्तु एक जप के द्वारा ही सिद्ध होकर ब्राह्मण कहलाता है इसमें कोई संशय नहीं। विद्वानों को चाहिये कि विषयरूपी उन्मार्ग में विचरण करने वाले, अपने इन्द्रियगण को प्रयत्न के द्वारा संयम में रक्खे, जैसे सारथी उन्मार्ग में जाते हुए रथ सहित घोड़ों का रक्षण करता है। पूर्वाचार्यों ने एकादश इन्द्रिगण कहा है वही अनुक्रम से कहता हूं। श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका, ये पांच और गुदा, जननेन्द्रिय, हाथ, पैर और मुख (वाणी) दशवां है। इन १० में बुद्धीन्द्रिय पांच श्रोत्रादि हैं। और पायु आदि पांच कर्मेन्द्रिय हैं। एवं इग्यारवाँ मन इन्द्रिय अपने ही गुणों से उभयात्मक है। अकेले उस मनको ही जीतलेने पर ज्ञान इन्द्रिय, एवं कर्मेन्द्रियगण स्वतः पराजित हो जाते हैं। अपने आधीन रहनेवाले मनुष्य को इन्द्रियां निःसंदेह अनेक दोषों का स्थान बना देती हैं। और जो उन्हों को अपने आधीन रखता है उसको वे अनेक सिद्धियां देती हैं। ज्यादह विषयभोग करने से इन्द्रियों की शान्ति नहीं होती बल्कि अग्नि में घृत की आहुति के समान विषय तृष्णा बढ़ती ही जाती है। एक मनुष्य तो समस्त काम भोगों को प्राप्त करता है और दूसरा केवल विषयों को छोड़ता है। इन दोनों में प्राप्त हुए सर्व काम भोगों का त्याग करने वाला मनुष्य विशेष श्रेष्ठ है। विषयों के नहीं सेवन करने से इन्द्रियां इतनी काबुमें नहीं आती कि जितनी सदा ज्ञान के द्वारा वश में आती हैं ॥ ३७-४६ ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च । न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ ४७ ॥ श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः । न हृष्यति

ग्लायतिवा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥४८॥इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् । तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृते छिद्रादिवोदकम् ॥ ४९ ॥ गिरिमृत्स्नां धनं पश्यन्धावतीन्द्रियमोहिताः । अनादिनिधनं ज्ञानं धनं पार्श्वे न पश्यति ॥ ५० ॥ वैरवैश्वानरो व्याधिवादव्यसनलक्षणाः । महानर्थाय जायन्ते वकाराः पञ्च वर्द्धिताः ॥ ५१ ॥ संसारपाशो नरके निवासः शिष्टेषु हासः सुकृतस्य नाशः । दास्यावकाशः कुयशो विलाशो भवंति नृणां विषयाभिषंगात् ॥५२॥ दन्तीन्द्रदन्तदलनैकविधौ समर्थाः सन्त्यत्र रोद्रमृगराजवधे प्रवीणाः । आशीविषोरगवशीकरणेपि दक्षाः पञ्चाक्षनिर्ज्जयपरास्तु न संति मृत्याः ॥ ५३ ॥ आदित्यचन्द्रहरिशंकरवासवाद्या शक्ता न जेतुमतिदुःखकराणि यानि । तानीन्द्रियाणि बलवंति सुदुर्ज्जयानि ये निर्जयन्ति भुवने बलिनस्त एके ॥ ५४ ॥ दासत्वमेति वितनोति विहीनसेवां धर्मं धुनाति विदधाति विनन्द्यकर्म । रेकश्चिनोतिकुरुते तिविरूपवेषं किं वा हृषीकवशतस्तनुते न मर्त्यः ॥ ५५ ॥

भा० टी०—दुष्ट भावों वाले ब्राह्मण को वेद, त्याग, यज्ञ, नियम, और तप आदि कुछ भी सिद्धिको प्राप्त नहीं होते। देख, सुन, सूंघ, भोग, और स्पर्श करके जो मनुष्य हर्ष व ग्लानि को प्राप्त नहीं होता वही जितेन्द्रिय है। पांचों इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय जब विचलित होकर क्षरने (टपकने) लगती है तो तभी से मनुष्य की बुद्धि फूटी दीवड़ी से टपकने वाले पानी के समान नष्ट होने लगती है। विनाश रहित और अनादि ज्ञान धन जो अपने पास है उसको तो लोक देखते नहीं और इन्द्रियों में मोहित होकर साफ मिट्टी को धन देखते हुए इधर उधर दौड़ते फिरते हैं। वैर, अग्नि, रोग, कलह, और व्यसन ये पाँच वकार बढ़ाय हुए बढ़कर मनुष्य के लिये महा अनर्थकारी होते हैं। विषयों के अभिषंग (व्यसन) से मनुष्य का संसार में फसना, नरक में निवास, बड़े लोगों में हास्य, सुकृत का नाश, दासपन और कुयश होता है। हाथियों के दांत उखालने में समर्थ, एवं रौद्र (भयंकर) सिंहों के वध करने में प्रवीण, और आशी विष (काले नाग) को दमन करने में दक्ष (चतुर) बहुत से होते हैं परन्तु पांचों इन्द्रियों को जीतने वाले तो हमने कोई भी नहीं देखे। सूर्य, चन्द्र, हरि, शंकर, और इन्द्रादि देवता भी जिन दुःखदाई इन्द्रियगण को जीतने में असमर्थ हुए, बलवान् और दुर्जय उसी इन्द्रियगण को जो मनुष्य जीत लेता है वह तीन भुवन में एक ही बली है। इन्द्रियों की गुलामी में ग्रस्त मनुष्य क्या क्या नहीं करता, वह दासत्व को पाता है। नीचों की सेवा करता है, धर्म को नष्ट कर देता है। चोरी आदि निंद्य कर्म करता है। पापों का संचय करता है और नाना प्रकार के विरूप वेश धारण करता हैं॥ ४७–५५ ॥

लोकार्चितं गुरुजनं पितरं सवित्रीम् बंधुं सनाभिमबलां सुहृदं स्वमारम् । भृत्यं

प्रभु तनयमन्यजनं च मर्त्यो नो मन्यते विषयवैरिवशः कदाचित् ॥ ५६ ॥ लोकार्चितोपि कुलजोपि बहुश्रुतोपि धर्मेस्थितोपि विरतोपि शमान्वितोपि। अक्षार्थपन्नगविषाकुलितो मनुष्यस्तन्नास्ति कर्म कुरुते न यदत्र निंद्यम् ॥ ५७ ॥ ते धत्तूरतरुं वपन्ति भवने प्रोन्मूल्य कल्प द्रुमम् चिंतारत्नमपास्यकाचशकलं स्वीकुर्वते ते जडाः। विक्रीय द्विरदं गिरीन्द्रसदृशं क्रीणंति ते रासभं ये लब्धं परिहृत्य धर्ममधमा धावन्ति भोगाशया ॥ ५८ ॥ विद्यादयाद्युतिरनुद्धता तितिक्षा सत्यं तपो नियमनं विनयो विवेकः। सर्वे भवन्ति विषयेषु रतस्य मोघाः मत्वेति चारुमतिरेति न तद्वशित्वम् ॥५९॥ वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संनियम्य मनस्तथा। सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनु ॥ ६० ॥

भा० टी०—विषयरूपी शत्रु के वशवर्त्ती मनुष्य लोक पूज्य गुरु को, पिता-माता को, जगत्स्रष्टा परमेश्वर को, सगे भाई को, स्त्री को, मित्र को, बहन को, नौकर, स्वामी, पुत्र, एवं अन्यजन आदि किसी को भी नहीं मानता। लोकपूज्य, अच्छे कुलमें जन्मा हुआ, बहुश्रुत, धर्मनियमों में स्थित, विषयों से विरक्त, और समदम आदि गुणान्वित होने पर भी मनुष्य, इन्द्रियों के विषयरूपी विष से आकुलित होने पर, ऐसा कोई भी निंद्य कर्म नहीं कि जिसको वह नहीं कर सक्ता हो। कल्पवृक्ष को वे जड़ से उखाड़ कर अपने मकान में धतूरे के पेड़को बोते हैं। चिन्तामणि रत्न को फेंककर वे मूर्ख काँच के टुकड़े को लेते हैं। गिरीन्द्र सदृश गजराज को बेचकर वे उसके बदले में गधहे को मौल लेते हैं, जो कि अधम प्राणी उपलब्ध हुए धर्म को छोड़कर भोगों की आशा से इधर उधर झक मारते फिरते हैं। विद्या दया, कान्ति, बड़प्पन, क्षमा, सत्य, तप, नियम, विनय, विवेक, आदि सभी गुण विषयाशक्त मनुष्यों के निष्फल हो जाते हैं। अतएव विद्वानों को चाहिये कि किसी भी प्रसंग पर इन्द्रियों के आधीन न हों। मनको रोककर तथा इन्द्रियगण को वशमें करके, शरीर को विशेष कष्ट नहीं देता हुआ, योग के द्वारा सर्व पुरुषार्थों को सिद्ध करे ॥ ५६–६० ॥

पूर्वसन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति। पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥ ६१ ॥ न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमां। स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ ६२ ॥ आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः। आप्तः शक्तोर्थदः साधुः स्वाध्याप्यो दशधर्मतः ॥ ६३ ॥ यः स्वाध्यायमधीतब्दं विधिना नियतः शुचिः। तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधुः ॥ ६४ ॥ धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा। तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥ ६५ ॥ विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्ते-

स्मि रक्ष माम् । असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥ ६६ ॥ यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम् । तस्मै मां ब्रूहि द्विजाय निधिपायाप्रमादिने ॥ ६७ ॥

भा० टी०—प्रातःकाल की सन्ध्या के अन्त में खड़ा हुआ जाप करने पर रात्री के किये हुए सर्व पाप नष्ट हो जाते हैं। एवं सायङ्काल की सन्ध्या के अन्त में बैठकर जाप करने से दिनभर के किये हुए समस्त पाप नष्ट होते हैं। साम सुबह दोनों वक्त जो सन्ध्या नियम नहीं करता वह मनुष्य शूद्रके समान हो जाता है, द्विजातियों से वह बाहर करदेने योग्य है। आचार्य, पुत्र, सेवा करके सुनने की चाह करने वाला, दूसरों को ज्ञान देनेवाला, धर्मात्मा, शुद्ध यथार्थ कहनेवाला, सर्व शक्तिमान धन देने वाला और साधु, इन्हीं दशों को धर्म की बुद्धि से पढ़ाना चाहिये। जो मनुष्य शुद्ध होकर नियम से एक वर्ष तक विधिपूर्वक स्वाध्याय करता है, उसके दूध दही, घृत, मधु आदि अच्छे २ पदार्थ सदा वर्षते रहते हैं। जिस शिष्य के पढ़ाने में न धर्म हो, न धन मिले, और न सेवा ही करता हो, तो ऊपर भूमि में शुभबीज बोने के समान उसको विद्या नहीं पढ़ाना चाहिये। वेद विद्या ने स्वयं पढ़ानेवाले ब्राह्मण के पास आकर यों कहा कि मैं तेरी सर्व सम्पत्ति का भंडार हूं तू मेरी रक्षाकर, तू ईर्षावाले को मुझे न देना, ऐसा करने से मैं तुझमें अधिक बलवान होकर रहूंगी। तू जिसको पवित्र तथा जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी-जाने उसी विद्या भण्डार के रक्षक, निरालस, द्विजन्मा को वेद विद्या पढ़ा॥ ६१–६७॥

लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च। आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥ ६८ ॥ वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यिके। नानुरोधोस्त्यनध्याये होममंत्रेषु चैव हि ॥ ६९ ॥ नीयमानं शवं दृष्ट्वा महीस्थं वा द्विजोत्तमाः। न पठेद्रुदितं श्रुत्वा सन्ध्यायां तु विशेषतः ॥ ७० ॥ विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे। आकालिकमनध्यायमेतेषुमनुरब्रवीत् ॥ ७१ ॥ निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने। एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ॥ ७२ ॥ कर्णश्रवेनिले रात्रौ दिवा पांसुसमूहने। उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रस्य विसर्जने ॥ ७३ ॥ नीहारे बाणशब्दे च सन्ध्ययोरेव चोभयोः। अमावस्या चतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च ॥ ७४ ॥ अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ। रुधिरे स्रवते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥ ७५ ॥ नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च। धर्मनपुण्यकामानां पुतिगन्धे च सर्वदा ॥ ७६ ॥ नाधीयीतामिषंजग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिंतयेत् ॥ ७७ ॥ नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गात्रजेपि वा। वसित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ ७८ ॥ चौरैरुपप्लुते ग्रामे संभ्रमे चाग्निकारिते। आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च ॥ ७९ ॥

भा० टी०—जिससे लौकिक ज्ञान, वैदिक कर्मकांड का ज्ञान, तथा ब्रह्मज्ञान पाया हो, उस गुरुको पहले प्रणाम करना चाहिये। वैदिक संस्कारों के समय जो श्रुतियां बोली व पढ़ाई जाती है, एवं नित्य नियम व स्वाध्याय में जो पाठ बोला जाता है, तथा होम के करते समय जो मंत्र कहे जाते हैं इन्हों में अनाध्याय का दोष नहीं होता। श्मशान भूमि में ले जाते हुए, या पृथ्वी पर रक्खे हुए मुरदे को देखकर, व रौने की आवाज सुनकर, और संध्या के समय स्वाध्यायन करें। बीजली की चमक, मेघ की गरज, और जल की वर्षा में तथा बड़ी भारी उलकापात (तारों के गिरने पर) स्वाध्यायन करें। आकाश में कड़ाके का शब्द होने पर, भूकम्प और सूर्य चन्द्रमा का ग्रहण होने पर, उतने समय को ही अनाध्याय जाने। तथा वर्षाकाल में भी ऐसा होय तो आकालिक अनाध्याय है। रात्री के समय कानों में वायु का सनसनाहट सुनाई आता हो उस समय और दिन में धूल उड़ती हो तब, पानी में आधीरात में, मल मूत्र का त्याग करते समय, स्वाध्याय न करे। कुहरे में बाण आदि शस्त्रास्त्रों का शब्द सुनने पर, प्रभात और सायङ्काल की सन्धियों में, अमावस्या चतुर्दशी, पूर्णिमा और अष्टमी को, अनाध्याय माने। ग्राम में मुरदा पड़ा हो, शूद्र व म्लेच्छ के समीप, शरीर में खून बहते, और शस्त्र से घायल होने पर, स्वाध्यायन करें। अधिक धर्म साधन करने वाले महात्माओं के लिये ग्राम, नगर, और दुर्गन्ध युक्त स्थानों में नित्य ही अनाध्याय है वह उक्त स्थानों में सदा न रहें। मांस भक्षण करके तथा जन्म मरण के सूतकवाले घरका अन्न खाकर स्वाध्यायन करें। झूठे मुंह और श्राद्ध में भोजन करके मनमें भी वेद के मंत्र का उच्चारण न करे। श्मशान के पास व मुरदे से छुए वस्त्र पहनकर, ग्राम के पास, गाइयों के बाड़े में, मैथुन के वस्त्र पहने हुए, और श्राद्ध का दान लेकर स्वाध्याय न करें। चौरों के उपद्रव वाले ग्राम में, भय के स्थान पर, ग्राम में अग्निकांड होने पर, आकाश भूतल आदि की सकल आश्चर्य भरी घटना होने पर, उतने समय भरको अनाध्याय मानै॥ ६८–७९॥

धर्मस्थाने ज्ञातिगोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ। स्वाध्याये भोजने चैव पादुकानां विसर्जनम् ॥ ८० ॥ सावित्रीमात्रसारोपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः। नायन्त्रितस्त्रिवेदोपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ ८१ ॥ अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ ८२ ॥ ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेन्मोनबन्धुमनामयम्। वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥ ८३ ॥ उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ ८४ ॥ एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः। योऽध्यापयति वृत्यर्थमुपाध्यायः सः उच्यते ॥ ८५ ॥ निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि। सर्वशिक्षां ददाति च स विप्रो गुरुरुच्यते ॥ ८६ ॥ अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान्। यः करोति वृत्तोयस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥ ८७ ॥

भा० टी०—देव मन्दिर मठादि धर्म स्थानों में पंचायती में साधु ब्राह्मणों के पास, स्वाध्याय के स्थान पर, जूतियाँ खोलकर जाना चाहिये। संयम युक्त ब्राह्मण केवल गायत्री का जप करने पर ही श्रेष्ठ है। और संयम रहित, सर्वभक्षी, सर्व व्यवसाई ब्राह्मण, तीनों वेदों का ज्ञाता होने पर भी धर्म भ्रष्ट है। नम्रशील गुणग्राही, सदा वृद्धों की सेवा करने वाला, जो मनुष्य होता है उसके आयु, विद्या, यश, और बल ये चार बातें बढ़ती रहती हैं। ब्राह्मण को कुसल, क्षत्रिय को आराम, वैश्य को क्षेम, और शूद्रको आरोग्य पूछना चाहिये। यज्ञोपवीत संस्कार होने पर अपने शिष्य को जो ब्राह्मण, सरहस्य एवं सांगोपांग वेदों को पढ़ाता है उसे आचार्य कहते हैं। अपनी आजीविकार्थ जो वेद और वेदांग के एक देश (हिस्से) को पढाता है उसको उपाध्याय कहते हैं। जो गृहस्थों को यथा विधि निषेकादि १६ संस्कार कराता है तथा धार्मिक और जीवनोपयोगी सर्व प्रकारकी जो शिक्षा देता है वह ब्राह्मण गुरु कह-कहलाता है अग्न्याधेय, पाक यज्ञ और अग्निष्टोम आदि यज्ञों को जो यजमान के द्वारा पुरोहित वृत्ति से स्वीकृत होकर यथा विधि करता कराता है उस ब्राह्मण को ऋत्विग् कहते हैं ॥ ८०-८७ ॥

वित्तं बंधुर्वयः कर्म विद्या भवति पंचमी। एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदु-त्तरम् ॥ ८८ ॥ पंचानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवंति च। यत्र स्युः सोत्र मानार्हः शूद्रोपि दशमीं गतः ॥ ८९ ॥ न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन नै बन्धुभिः। ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योनूचानः सनो महान् ॥ ९० ॥ विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्य्यतः वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥ ९१ ॥ यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा। स वै सर्वमवाप्नोति वेदांतोपगतं फलम् ॥ ९२ ॥ तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधि-चोदितैः। वेदः कृत्स्नोधिगन्तव्यो सरहस्यो द्विजन्मना ॥ ९३ ॥ शूद्रेण हि समस्तावद्याव-द्वेदेन जायते। कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ॥ ९४ ।

भा० टी०—धन बन्धुवर्ग वय, कर्मक्रिया, और पांचवाँ विद्या, यह संसार में जो कोई मनुष्य इन पांचों गुणों से अधिक गुणों को धारण करता है वह विशेष मान के योग्य है, और यदि शूद्र भी दशवीं अवस्थागत वृद्ध और गुणी हो तो सर्व वर्णों के ही मान्य होता है। ऋषियों ने वर्षों से, पलित केशों से, धन से, और बन्धुओं से धर्म को करने वालों के लिये महान्पद नहीं दिया, लेकिन वे कहते हैं कि जो अनूचान (शिक्षा आदि छः अङ्गों सहित वेदों को पढ़ाता) हैं वही हम लोगों में महाम् (बड़ा) है। ब्राह्मणों में ज्ञान से, क्षत्रियों में वीरता के गुण से, वैश्यों में धन धान्य से, और शूद्रों में प्रथम जन्म से जेष्ठ (सब से बड़ा) माना जाता है। जिसके मन और वाणी सदा शुद्ध और सम्यक् गुप्त रहते हैं वही वेदांत में कहे हुए सभी फलों को पाते हैं। सभी द्विजन्माओं को चाहिये कि वे विशेष तपों के द्वारा और विधि से शास्त्रमें कहे हुए विविध व्रतों के द्वारा, रहस्य सहित सम्पूर्ण वेदों को अवश्य पढ़ें।

जब तक वेद में प्रविष्ट नहीं होता, तब तक मनुष्य शूद्र के समान ही माना जाता है, क्योंकि उपनयन संस्कार के पश्चात् ही मनुष्य व्रत नियमों का अधिकारी हो सकता है ॥ ८८-९४ ॥

सेवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरौ वसन्। संनियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः ॥ ९५ ॥ नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद् वर्षिपितृतर्पणम्। देवताभ्यार्चनं चैव समिदाधानमेव च ९६ ॥ वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रयः। शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥ ९७ ॥ अभ्यंगनमंजनंचाक्ष्णोरुपानछत्रधारणम्। कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम् ॥ ९८ ॥ द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम्। स्त्रीणां च प्रेक्षणालंभमुपघातं परस्य च ॥ ९९ ॥ एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कंदयेत्क्वचित्। कामाद्धि स्कंदयेन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥ १०० ॥ स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः। स्नात्वार्कमर्चयित्वत्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् १०१ ॥

भा० टी०—गुरुकुल में रहा हुआ ब्रह्मचारी इन्द्रियगण को वस में करके तप की वृद्धि के लिये निम्नलिखित नियमों का पालन करै। सदा प्रातःकाल स्नान करके पवित्र मन से देवताओं का पूजन और देव, ऋषि, एवं पित्रों का तर्पण करै और गुरु लंगर के वास्ते, वा होम के लिये, वन में जा लकड़ी लावै (मधुर सहत व मिठाई) न खावै। मांस भक्षण न करै। शरीर पर अत्र चन्दनादि सुगन्ध चीजों का इस्तेमाल न करै, पुष्प माला आदि न पहने। षटरस भोजन न करै। स्त्री-संग न करै, कांजी, अम्लरस, व सर्व जाति के मांस और प्राणि हिंसा को छोडै। उबटन, आँख में अंजन, जूतियों का पहनना, छाता का धारण करना। काम (विषय सेवन), क्रोध, लोभ, नाच, गीत का गाना और बाजे का बजाना सर्वथा छोड़ दे। जुवे का खेलना, लोगों से लड़ाई, दूसरों की बदनामी, झूट का बोलना, स्त्रियों का देखना, पशु घात और किसी को मार-पीट न करै। दूसरे के साथ एक आसन पर न सौवै, कोई भी हालत में वीर्यपात कहीं न करै, जो काम में आशक्त होकर वीर्यपात कर देता है वह ब्रह्मचारी अपने व्रत नियमों को नष्ट कर लेता है। स्वप्न में यदि वीर्य पात हो जावें तो स्नान करके सूर्यदेव का पूजन करै और १०८ बार गायत्री का जाप करने के पश्चात् पुनर्मां० इस ऋचा का तीन बार जप करै ॥ ९५-१०१ ॥

मात्रा स्वस्रादुदित्रा वा नविविक्तासनो भवेत्। बलवानिन्द्रिय ग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १०२ ॥ उपनी तोमाणवको वसेद्गुरु कुलेषु च। गुरोः कुलेप्रियं कुर्यात्कर्मणा मनसागिरा ॥ १०३ ॥ अजिने दंड काष्ठं च मेखलां चोपनीतकम्। धारयेद् प्रमतश्च ब्रह्मचारी समाहितः ॥ १०४ ॥ यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरंकरः। संन्यास समर्य-

कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यया ॥ १०५ ॥ तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्यें यावदायुषम् । तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाथवाकुले ॥ १०६ ॥ न विवाहो न संन्यासो नैष्ठिकस्यविधीयते । नेह-भूयोपि जायेत त्यजेद्देहमतंद्रितः ॥ १०७ ॥

भा० टी०—माता, बहिन, बेटी, आदि के साथ भी एकान्त वास न करें, क्योंकि इन्द्रियगण बलवान् और बड़ा दुष्ट है, बड़े २ विद्वानों को भी उन्मार्ग में खेंच ले जाता है। यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् बालक को गुरुकुल में रक्खें और गुरुकुल को तन, मन, धन से सदा मदद दें। मृगचर्म, दण्ड, झोला और यज्ञोपवीत इन चारों को अप्रमत्त होकर ब्रह्मचारी सदा धारण करें। जिह्वा, उपस्थ इन्द्रिय, पेट और हाथ ये जिसके सुगुप्त (वसवर्ती) होते हैं वह संन्यास के समान जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य को धारण करके ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्राह्मण कहलाते हैं। जो आचार्य, आचार्य के पुत्र, आचार्य के शिष्य अथवा गुरुकुल में रह कर ताजिन्दगी ब्रह्मचर्य को पालन करें, उसको नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी, न तो विवाह करता, और न संन्यास ही लेता है, वह प्रमाद वर्जित एवं ब्रह्मचर्य ही में स्थित होकर शरीर छोड़ देता है और फिर संसार चक्र में नहीं आता (सदा मुक्त हो जाता है) ॥ १०२–१०७ ॥

आचार्यो ब्राह्मणोमूर्त्तिः पितामूर्त्तिः प्रजापतेः । माता पृथिव्यामूर्त्तिस्तु भ्रातास्वोमूर्तिरात्मनः ॥ १०८ ॥ तएवहि त्रयोलोकास्तएव त्रय आश्रमाः । त एव हि त्रयोवेदास्त एवोक्तास्त्रयाग्नयः ॥ १०९ ॥ पिता वैगार्हपत्योग्नि र्माताग्निदक्षिणः स्मृतः । गुरु राहवनीयस्तु साग्नित्रेतागरीयसी ॥ ११० ॥ आचार्यश्च पिताचैव माता भ्राता च पूर्वजः । नार्तेनाप्यवमन्तव्या मारणेन विशेषतः ॥ १११ ॥

भा० टी०—आचार्य मीन भगवान् की मूर्त्ति है, पिता ब्रह्मा की मूर्ति है। माता पृथ्वी की मूर्त्ति है और बड़े भाईयों को खुद अपनी मूर्त्ति जानना चाहिये। आचार्य, माता और पिता ये ही तीनों लोक, तीनों आश्रम, तीनों वेद और तीनों अग्नि है। पिता गार्हपत्यग्नि, माता दक्षिणाग्नि और गुरु (आचार्य) सब में श्रेष्ठ आहवनीयाग्नि है। मारण जाति के राजपूतों को चाहिये कि आचार्य, पिता, माता और बड़े भाई, इन सब का रोग पीडितावस्था में भी अपमान न करें ॥ १०८–१११ ॥

माता पितृविहीनंतु संस्कारोद्वाहनादिभिः । यः स्थापयतितस्येह पुण्य संख्या न मिद्यते ॥ ११२ ॥ जातमात्रः शिशुस्तावद्यावदष्टौ समावयः । सहिगर्भसमोज्ञेयो व्यक्तिमात्रप्रदर्शितः ॥ ११३ ॥ भक्ष्याभक्ष्येतथापेये वाच्यावाच्ये ऋतानृते । अस्मिन्बालेन दोषः

स्यात्सयावन्नोपनीयते ॥ ११४ ॥ उपनीतेतु दोषोस्ति क्रियमाणैर्विगर्हितैः । अप्राप्त व्यवहारोसौ बालः षाडशवार्षिकः ॥ ११५ ॥ अ ब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते । अनुम्राज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ॥ ११३ ॥ विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् । अमित्रादपि सद्वृत्तम मेध्यादपि कांचनम् ॥ ११७ ॥ स्त्रियोरत्नान्यथोविद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् । विविधानि च शिल्पानि समादेयानिसर्वतः ॥ ११८ ॥ क्षेत्रं हिरण्यं ग्रामश्वं छत्रोपानह मसानम् । धान्यं शाकं च वासांसिगुरवे प्रीतिमावहेत् ॥ ११६ ॥ स्वीकरोति यत्तवेदं चरेद्वेदव्रतानि च । ब्रह्मचारी भवेत्ताव दूर्ध्वंस्नातो भवेद्गृही ॥ १२० ॥ इति श्रीम० भा० मी० पु द्वितीयस्कंधदशमोध्यायः ॥ १० ॥

भा० टी०—जो कोई मनुष्य माता पिता रहित अनाथ बालक को विवाह आदि संस्कारों में स्थापित करता है संसार में उसको असंख्य पुण्य होता है। आठ वर्ष तक की उम्र के लड़के को गर्भ के समान ही जानना चाहिये, क्योंकि शास्त्रों में उसको पृथगात्मक जातमात्र बताया गया है। जबतक यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता, तब तक बालक के विषय में भक्ष्य, अभक्ष्य, पेय, अपेय, वाच्य, अवाच्य, कर्मफल और सत्यासत्य का दोष नहीं देखना चाहिये। शौलह वर्ष की उम्र तक का अप्राप्त व्यवहार, बालक कहा जाता है। इसके पश्चात् एवं यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने के बाद निंदित कार्य करने पर बड़ा दोष माना जाता है, जिसकी बिना प्रायश्चित किये शुद्धि नहीं हो सकती। आपत्काल में (काल दोष से) ब्राह्मणेतर के पास शास्त्र पढ़ने में दोष नहीं। जबतक ब्रह्मचर्य पूर्वक वेदाध्ययन करता रहै, तबतक अनुकूल आचरण करके गुरु की सेवा शुश्रूषा करना चाहिये। विष से भी अमृत ले लेना चाहिये। बालक से भी अच्छी बात सीखना चाहिये। शत्रु से भी अच्छी चाल चलन सीखना चाहिये। और अपवित्र स्थान में पड़ा हुआ भी सुवर्ण सभी के स्वीकार करने योग्य होता है। अच्छी स्त्रियें, विविध रत्न, सर्व प्रकार की विद्याएं, धर्म नियम, शुद्ध आचरण, पवित्रता, सुभाषित, और विविध प्रकार कीशिल्प चातुरी सभी जाति के मनुष्यों से ग्रहण करना चापिये। क्षेत्र, सोना, ग्राम, घोड़े छत्र, उपानह, आसन, धान्य, शाक, और वस्त्र ये सब प्रीति के साथ गुरु को देते रहना चाहिये। जबतक गुरुकुल व ब्रह्मचर्याश्रम में गुरु के पास वेदाध्ययन करता रहे तभी तक वैदिक व्रत नियम और ब्रह्मचर्य का पालन करता रहे। इसके पश्चात् समावर्त्तन स्नानपूर्वक गृहस्थाश्रम में आना चाहिये ॥ ११२–१२० ॥

॥ इतिश्रीमद्भागवत् मीनपुराणे द्विंदीयस्कंधेदशमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

मनुरुवाचः—षट् त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्। तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिक मेव च ॥ १ ॥ गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि। उद्वहेतद्विजो भार्य्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ २ ॥ असपिंडा च या मातुरस गोत्रा च यापितुः। सा प्रशस्ता द्विजातीनां दार कर्माणि मैथुने ॥ ३ ॥ महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधन धान्यतः स्त्री संबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥ हीन क्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्। क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्टि कुलानिच ॥ ५ ॥ नोद्वहेत्कपिलांकन्यां नाधिकांगी न रोगिणीम्। ना लोमिकां नाति लोमां नवाचाटां न पिंगलाम् ॥ ६ ॥ अजात व्यंजना लोम्नी न तयासह संविशेत्। अयूगूः काकवन्धाया जातातां न विवाहयेत् ॥ ७ ॥

भा० टी०—अथ ११वाँ अध्याय प्रारंभः ॥ विवाह वर्णन ॥—छत्तीस वर्षों तक पूर्ण ब्रह्मचर्य सहित गुरुकुल में रहकर तीनों वेद सांगोपांग कंठस्थ कर लेना चाहिये। अथवा १८ वर्ष ६ वर्ष यावत् ग्रहण करै तबतक अवश्य ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये। इसके पश्चात् गुरु दक्षिणापूर्वक यथा विधि समावृत्त स्नान करकै गुरु की आज्ञा से अपने घर आवै और अच्छे लक्षणों वाली अपनी जाति की कन्या के साथ यथा विधि व्याह करलै। कोनसी कन्या से व्याह करना सो ही कहते हैं। अपने माता पिता के गौत्र में जिसका जन्म सात पीढ़ियों तक न हो। उक्त दोनों गोत्रों को छोड़कर अन्य गोत्र में उत्पन्न हुई कन्या ही द्विजातियों में धर्मपत्नि बनाने के लिये प्रशस्त है। स्त्री संबन्ध में निम्न लिखित दशकुल चाहे वे गाय, भैंस, बैल, भेड, बकरी, धन, धान्य आदि महान् समृद्धिशाली भी क्यों न हो, छोड़ देने चाहिये क्रियाहीन, जिस कुल में कोंई पुरुष न हो अथवा जिस कन्या की मां के कोई पुरुष (लड़का) पैदा न होकर लड़कियें ही लड़कियें उत्पन्न होती हों, जिस कुल में कोई एक मुखिया न हो, ललाट, पीठ आदि पर विद्रूप केशों वाला कुल, मस्से की बिमारी वाला कुल, धातुक्षय एवं सांसखास की बिमारी वाले कुल अजीर्ण मंदाग्नि आदि रोगयुक्त कुल, मिरगी रोग वाले कुल और श्वेत कुष्ट रोग वाले कुल। पीले रंग की व पीली आंख वाली कन्या को न व्याहे। अधिक अंगवाली को, रोगीली को, मस्तक आदि में जिसके बाल न हो, ओष्ट, दाढ़ी, जंघा, आदि पर जिसके बड़े २ बाल हो, जो कन्या अति बाचाल हो, और जो कन्या बन्दर की सी आकृति व आंख वाली जो प्रायः बैश्या के समान होती है, न व्याहे। जिसके कांख व गुह्य स्थान पर बाल आये न हो, उस स्त्री के साथ संभोग न करना चाहिये। और जो उम्र भर में एक ही बार संतान उत्पन्न करती हो, उस काक वन्ध्या स्त्री की पुत्री से भी विवाह नहीं करना चाहिये ॥ १—७ ॥

आरोगाऽदुष्ट वंशोत्था मशुल्कादान दूषिताम्। स वर्णामसमानार्षा ममातृपितृ

गोत्रजाम् ॥ ८ ॥ अनन्यपूर्वि कांलघ्वीं शुभ लक्षण संयुताम् । धृताधोवसनां गौरीं विख्याता दशपुरुषाम् ॥ ९ ॥ ख्यातनाम्नः पुत्रवतः सदाचारवतः सतः । दातुमिच्छोर्दु हितरं प्राप्य धर्मेणचोद्वहेत् ॥ १० ॥ चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्ये चेहहिताहितान् । अष्टाविमान्समासेन स्त्री विवाहान्नि बोधत ॥ ११ ॥ ब्राह्मो दैवस्तथै वार्षः प्राजापत्यस्तथा सुरः । गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाच चाष्टमोऽधमः ॥ १२ ॥

भा० टी०—अब कौन कौनसी कन्याओं के साथ व्याह करना चाहिये सो कहते हैं—जो रोग रहित हो, अच्छे वंश में उत्पन्न हो, मोलकी न हो, विधिपूर्वक दी गई हो, अपनी जाति की हो, अपने गोत्र की न हो, पुराना वंश की हो, अपने मां बाप के गोत्र की न हो। पहिले जिसका किसी के साथ पत्नी सम्बन्ध न हुआ हो, अपनी वय से कम उम्र की हो, जिसका शरीर शुभ लक्षण हो। लहँगादि वस्त्रों को अच्छी तराह से धारण करने वाली हो, गौर वर्ण हो, गत दश पीढ़ियों से जिसका कुल विख्यात हो, जिसके मां बाप की प्रसिद्ध नामवरी है एवं वे पुत्रवान् हो, सदाचार वान हो, बड़े सत्ताधारी हो और वे अपनी पुत्री को धार्मिक रीति से देना चाहते हों तो मिलने पर ऐसी लड़की से व्याह करें। चारों ही वर्णों को इहलोक और परलोक में हिताहितकारी स्त्री के आठ विवाह होते हैं वे ही संक्षेप से कहता हूँ सुनो। १ ब्रह्म, २ दैव, ३ आर्ष, ४ प्रजापत्य, ५ असुर, ५ गान्धर्व, ७ राक्षस और ८ पिशाच ॥ ८-१२ ॥

आच्छाद्यचार्चयित्वा च श्रुति शीलवते स्वयम् । आहुयदानं कन्या या ब्राह्मोधर्मः प्रकीर्त्तितः ॥ १३ ॥ यज्ञेतुवितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते । अलं कृत्य सुतादानं दैव धर्म प्रचक्षते ॥ १४ ॥ एकंगो मिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः । कन्या प्रदानं विधिवदार्षौ धर्मः स उच्यते ॥ १५ ॥ सहोभौचरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च । कन्या प्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्योविधिः स्मृतः ॥ १६ ॥ ज्ञाति भ्योद्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः । कन्या प्रदानं स्वाच्छंद्यादासुरो धर्म उच्यते ॥ १७ ॥ इच्छयान्योन्य संयोगः कन्या याश्चवरस्य च । गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः काम संभवः ॥ १८ ॥ हत्वा छित्त्वा च भित्वा क्रोशतीं रुदतीं गृहात् । प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसोविधिरुच्यते ॥ १९ ॥ सुप्तांमत्तां प्रमत्तां वा रहोयत्रोपगच्छति । सपापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोधमः ॥ २० ॥ षडानुपूर्व्या विप्रस्व क्षत्रस्य च तुरोवरान् । विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्या न राक्षसान् ॥ २१ ॥

भा० टी०—वेद शास्त्र संपन्न एवं सदाचार वाले वर को स्वयं बुलाकर कन्या का पिता वर कन्या को वस्त्र पहिनावे और दोनों का पूजन सत्कार करके वरको कन्यादान दे तो वह धर्मरूप ब्रह्म विवाह

कहाता है। ज्ञाति भोज आदि विस्तार वाले यज्ञ में स्वयंवर की विधि से अथवा ऋत्विग् आदि कर्म करने वाले गुणवान् वर को विभूषित कन्या का दान करना दैव विवाह कहाता है। वर की तरफ से एक दो गाय एवं एक दो बैल लेकर बदले में कन्यादान कर देना पुराने वासियों का आर्ष विवाह है। तुम दोनों साथ रहकर धर्माचरण करो, ऐसा कहकर जो कन्यादान किया जाता है उसको प्राजापत्य विवाह कहते हैं। कन्या के पक्षवालों को निर्धन समझ कर वर के पक्षवाले अपनी इच्छानुसार यथा शक्ति धन देकर जो कन्यादान को ग्रहण करते हैं उसको आसुर विवाह कहते हैं। वर कन्या दोनों की काम वासना से संभोग के लिये जो अपनी इच्छा से मिलकर विवाह होता है, उसको गान्धर्व विवाह कहते हैं। कन्या के सम्बन्धियों को हनन करके तथा घायल करके रोती और चिल्लाती हुई कन्या को घर में से बलात्कारपूर्वक हरण कर ले जाना, राक्षस विवाह कहाता है। सोती हुई, नसीले पदार्थ के नशे में पड़ी हुई, तथा बेसुध कन्या के साथ एकान्त में सभोग करना पैशाच विवाह कहाता है और यह सब में अधम विवाह है। इनमें क्रम से पहिले छः ब्राह्मण के और अन्त के चार क्षत्रिय के योग्य है। वैश्य तथा शूद्र के लिये असुर विवाह तक श्रेष्ठ माना है॥ १३ २१॥ (भृगुरुवाच)

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या मीन भार्याः प्रकीर्तिताः। आपद्यपिनकर्तव्या शूद्रा भार्या द्विजन्मना॥ २२॥ योयस्यैषां विवाहानां मनुना कथितो गुणः। सर्वं शृणुत तंविप्राः सम्यक्कीर्तयतोमम॥ २३॥ दशपूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैक विंशकम्। ब्राह्मी पुत्रः सुकृत कृन् मोचयेदेन सः पितॄन॥ २४॥ दैवोढाजः सुतश्चैव सप्त सप्त परावरान्। आर्षोढाजः सुतस्त्रीं स्त्रीन्षट् षट् कायोढजः सुतः॥ २५॥ ब्रह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानु पूर्वशः। ब्रह्मवर्च्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः॥ २६॥ रूप सत्त्वगुणोपेता धनवंतो यशः स्विनः : पर्य्याप्त भोगा धार्मिष्ठा जीवन्ति च शतंसमाः॥ २७॥

भा० टी०—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की कन्याएं, मीन जाति के राजपूतों की भार्या हो सकी है। इनके अतिरिक्त शूद्र की कन्याएं को आपत्काल में भी भार्या (धर्मपत्नी) नहीं करना चाहिये। भृगुजी कहते हैं कि मनुजी ने धार्मिक विवाहों के करने में जो २ गुण बतलाये हैं, उन्हीं को मैं सम्यक् तया कहता हूँ सुनो। ब्रह्म व्याह की विधि से व्याही गई स्त्री से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह सुकृत के द्वारा अपने वंश की दश पूर्वज और दश अनागत एवं एक स्वयं मिलकर इकीस पीढियों को पाप से मुक्त कर सका है। वैसे ही दैव विधि से व्याही हुई स्त्री से उत्पन्न पुत्र, पूर्वा पर सात २ और एक स्वयं मिलकर पञ्चदश पीढ़ियों को तार सकता है। आर्ष विधि से व्याही हुई की संतान तीन २ पीढ़ी और प्राजापत्य विधि से व्याही गई की संतान छः २ पीढ़ियों का उद्धार कर सकती है। क्रम से ब्रह्म आदि चार विवाहों से जो संतान होती है वह ब्रह्म तेजस्वी और शिष्ट पुरुषों में मान्य होती है। तथा वे पुत्र

रूप, सत्त्वगुणी, धनवान, यशस्वी, पूर्ण ऐश्वर्य वाले, और धार्मिक होते हैं, तथा सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहते हैं ॥ २२-२७ ॥

अनिंदितैः स्त्री विवाहैरनिंद्या भवति प्रजा। निंदितैर्निंदितानॄणां तस्मान्निंद्यां विवर्जयेत् ॥ २८ ॥ स्त्रीषुदुष्टासु क्षत्रियणां जायते वर्ण संकरः। संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च। पतन्ति पितरोह्येषां लुप्तपिंडोदक क्रियाः ॥ २६ ॥ दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकर कारकैः। उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ३० ॥ उत्सन्न कुल धर्माणां मारणानां विशेषतः। नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ३१ ॥ पाणीग्रहण संस्कारः सवर्णास्पदिश्यते। असवर्णसुकन्यासुआपत्काले विधीयते ॥ ३२ ॥

भा० टी०--अनिंदित (निर्दोष) स्त्री के साथ विवाह करने से सन्तान भी निर्दोष ही होती है, और सदोष स्त्री की सन्तान भी प्रायः सदोष ही होती है अतएव हीन कुल की स्त्री से कभी व्याह नहीं करना चाहिये। स्त्री की दुष्टता ही के कारण क्षत्रियों में वर्णसंकरता आती है। और वही वर्णसंकर पुत्र कुलको कलंकित करने वाले अपने बापको तथा सारे के सारे उस कुलको लेकर स्वयं नरक में पड़ता है। और उस कुल में शुरु से प्रचलित उदकदान, पिंडदान आदि क्रियाओं के लुप्त होने पर उस कुल के पितरों का भी अधोपात हो जाता है। विषया कुल कुलघ्नों के इन वैवाहिक दोषों ही के कारण उनकी वर्णसंकर सन्तानों के द्वारा सनातन कुलधर्म और जातिधर्म जड़ से नष्ट हो जाते हैं। कुलधर्मों के विशेष उन्मूलन होने पर ही मारण क्षत्रियों का अवश्य नरक निवास होता है ऐसा हमने सुना है। अतएव पाणिग्रहज संस्कार अपनी जाति की कन्या से ही होना चाहिये। अन्य (ब्राह्मण वैश्य) वर्ण की कन्या से क्षत्रिय के लिये पाणिग्रहण (विवाह) आपत्काल में स्वीकृत है ॥ २८-३२ ॥

अल्पेनापिहिशुल्केन पिता कन्यां ददातियः। रौरवेबहुवर्षाणि पुरीषमूत्रमश्नुते ॥ ३३ ॥ स्त्री धनानि तु ये मोहादुपजीवंति बान्धवाः स्वर्ण यानानिवस्त्राणि तेपापा यात्यधोगतिम् ॥ ३४ ॥ पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा। पूज्या भूषयितव्याश्च वहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ३५ ॥ यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूजयन्ते सर्वास्तत्राऽफला क्रियाः ॥ ३६ ॥ शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशुतत्कुलम्। न शोचन्तितु यत्रैता वद्ध तेतद्धि सर्वथा ॥ ३७ ॥ जामयोयानि गेहानि शपन्त्य प्रतिपूजिताः। तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समंततः ॥ ३८ ॥ तस्मा देताः सदा पूज्याभूषणच्छादनाशनैः! भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ३६ ॥ संतुष्टोभार्य या भर्ता

भर्त्राभार्या तथैवच। यस्मिन्नेवकुले नित्यं कल्याणं तत्रवैध्रुवम् ॥ ४० ॥ इतिश्री म० भा० मी० पु० द्वि० स्कं० एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

भा० टी०—वर की तरफ वालों से थोड़ा भी मूल्य लेकर जो पिता अपनी कन्या देता है तो वह बहुत वर्षों की यातना वाले रौरव नामक नरक में उत्पन्न होता है और वहाँ वह मलमूत्र आदि अशुचि पदार्थों का भक्षण करता है। मोह के अधीन होकर जो कोई सोना, चाँदी, सवारी, वस्त्र पात्रादि स्त्री (कन्या) के धन से अपना जीवन निर्वाह करते हैं वे पापी मनुष्य अधो (नींच) गती को प्राप्त होते हैं। बहुत कल्याण चाहने वाले पिता, भाई, पति, देवर आदि को चाहिये कि वे अपने से सम्बन्ध रखने वाली सभी स्त्री कन्या, बहिन, बेटी आदि का वस्त्र भूषणादि से पूजन करे। जिस कुल में स्त्रियों का आदर होता है वहाँ देवता लोक रमण करते हैं और जहाँ २ स्त्रियों का पूजन सन्मान नहीं होता वहाँ २ सारी क्रियाएं निष्फल होती हैं। वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, जहाँ स्त्रियों को सदा सन्ताप रहता है। और वह कुल हमेशा बढ़ता ही रहता है जहाँ स्त्रियों को हर बात की आजादी होती है। अपमानित होकर स्त्रियें जिस कुल को शाप देती हैं वे कुल राक्षसी व साकिनी के द्वारा मारे गये हुओं के समान सर्व प्रकार से नष्ट हो जाते है। अतएव सदा लक्ष्मी चाहने वाले मनुष्यों का यह नित्य कर्तव्य है कि वह अन्न, वस्त्र, आभूषण आदि से स्त्री गण का सदा पूजन करें और उत्सव आदि में विशेष सत्कार करें। जिस कुल में भार्या से भरतार और भरतार से भार्या सन्तुष्ट रहती है उसी कुल में सभी कल्याणों की नियम से वृद्धि होती है ॥ ३३-४० ॥

॥ इतिश्री० मद्भगवन्मीनपुराणे द्वितीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ११ ॥

॥ अथ द्वादशोऽध्याय प्रा० ॥ गृहस्थाश्रम व० ॥ भृगुरुवाचः ॥ कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदा न ध्यायनेन च। कुलान्यकुलतां यान्ति मीनानांमनुरब्रवीत् ॥ १ ॥ साध्वाचारा न तावत्स्याद्र जोयावत्प्रवर्त्तते। रजोनिवृत्तौ गम्याखी गृहकर्मणि चैवहि ॥ २ ॥ प्रथमेऽहनिचंडाली द्वितीय ब्रह्म घातिनो। तृतीयेरजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ ३ ॥ ऋतुस्नातातुया नारी भर्तारंनोपसर्गति। सामृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥ ४ ॥ ऋतुस्नाता तुयोभार्यां सन्निधौनाप गच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥ ५ ॥ दारिद्रं व्याधितं मीनं भर्तारंयाव मन्यते। साशुनी जायते मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥ ६ ॥ रजोदर्शनं तो दोषात्सर्वमेव परित्यजेत् सर्वैरलक्षितां शीघ्रं लज्जितांत गृहे-

वसेत ॥ ७ ॥ एकाम्बरावृतादीना स्नानालंकार वर्जिता । मौनिन्यधोमुखी चक्षुः पाणिप-दृभिरचंचला ॥ ८ ॥ अश्नीयात्केवलं भक्तं नक्तं मृन्मयेभाजने । स्वपेद्भूमाव प्रमत्तात्पेदेवमहस्त्रयम् ॥ ९ ॥ स्नायीत्त च त्रिरात्रान्ते सचेलमुदितेरवौ । विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ॥ १० ॥

भा० टी०—अब १२वाँ अध्याय प्रारम्भ होता है । इसमें गृहस्थाश्रम और स्त्रीधर्म का वर्णन है । भृगुजी बोले कि कुस्त्री के साथ एवं अविधि से अधर्म विवाह करने पर, कुल क्रमागत धार्मिक क्रियाओं के लोप कर देने पर और वेद विद्या के नहीं पढ़ने पर, मीन राजपूतों के शुद्ध कुल में भी अकुलीनता आजाती है ऐसा हमारे धर्म गुरु मनुजी ने कहा है (अतएव सबसे पहिले स्त्री समाज के शुद्धार की अत्यन्त आवश्यकता है) जबतक स्त्री के रजोदर्शन (ऋतुस्राव) होता है तबतक वह धार्मिक क्रियाओं के, एवं घर के सब काम काज के और पति सहवास के योग्य नहीं है । रजोदर्शन की निवृत्ति होने पर ही सब कुछ कर सकी है । रजोदर्शन के पहिले दिन चांडालिनी है, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी (हत्यारी) है, तृतीय दिन वह रजकी (धौबन) है और चौथे दिन स्नान करने पर शुद्ध होती है । ऋतु स्नान कर पति के पास यदि स्त्री नहीं जाती तो वह मरने के पश्चात् नरक में पड़ती है और मनुष्य योनी में जन्म लेने पर वारंवार विधवा होती है । जो कोई पुरुष ऋतुस्नान करने पर अपनी औरत के पास नहीं जाता तो उसके सिर पर भ्रूण हत्या का पाप रहता है इसमें कोई संशय नहीं है । अपने मीन जाति के पति को निरधन और रोगी समझकर जो स्त्री उसका अपमान करती है, या उसकी बंदगी नहीं करती, तो वह मरने के पश्चात् कुत्ती और भंडसूरी की योनी में वारंवार जन्म लेती है । रजोदर्शन के दोष से निवृत्त होने के लिये स्त्री तीन दिनों तक सर्व कार्यों को शीघ्र ही छोड़ दें और किसी को दर्शन नही देती हुई लज्जित होकर एकांत भूमि गृह में तीन दिन तक निवास करे । किसी से बातचीत भी नहीं करती हुई, अधोमुखी, चक्षु (नेत्र) और हाथ पैरों को चंचलता से इधर उधर नहीं फैंकती हुई, स्नान अलंकार वर्जित, एक ही वस्त्र पहनकर मौन से रहें । केवल चाँवल या एक ही भोजन मिट्टी के वर्तन में रात के समय खाकर, आलस्य रहित, भूमि पर ही शयन करके तीन दिन व्यतीत करै । इस प्रकार तीन रात्री के पश्चात् सूर्योदय होने पर वस्त्र सहित स्नान करके पतिव्रत्ता धर्म पालने वाली स्त्री अपने पति का मुख देखकर शुद्ध हो जाती है ॥ १—१० ॥

रजोदर्शन तोयाःस्युरात्रयः षोड शर्तवः । ततः पुंबीजमक्लिष्टं शुद्धक्षेत्रेप्ररोहति ॥ ११ ॥ प्रच्छादितादित्य पथेपुमान् गच्छेत्स्वयोषितः । गुणालंकृदवाप्नोति पुत्रं पूजित लक्षणम् ॥ १२ ॥ ऋतुकालेभिगम्यैवं ब्रह्मचर्य व्यवस्थितः गच्छन्नपि यथा कामं न दुष्टः

स्यादनन्यकृत् ॥ १३ ॥ भ्रूणहत्यामवाप्नोति ऋतौभार्या पराङ्मुखः। सात्वावाप्यान्यतो गर्भं त्याज्या भवति पापिनी ॥ १४ ॥

भा० टी०—रजोदर्शन के पहिल दिन से लेकर शीलहरात्री तक बच्चादानी खुली रहती है। स्त्री का योनीक्षेत्र यदि शुद्ध है तो उसमें पुरुष का शुद्ध बीज (वीर्य) अंकुरित हो निकलता है। चारों ओर से ढके हुए मकान में जहां सूर्य की किरणें नहीं पहुँचती है। पुरुष अपनी ही स्त्री से गमन करे तो अनेक गुणगणालंकृत, जगन्मान्य, और शुभ लक्षणों वाले पुत्र की प्राप्ति होती है। ब्रह्मचर्य में स्थित होकर फक्त एक ऋतुकाल में ही स्व स्त्री गमन करता हो तो वह गृहस्थाश्रम में रहा हुआ भी पुण्यात्मा है। जो कोई पुरुष ऋतुकाल में अपनी भार्या से लड़झगड़ कर अलग हो जाता है वह गर्भ-हत्या के दोष का भागी होता है एवं जो कोई स्त्री अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से गर्भ धारण कर लेती है तो वह महा पापिनी कहाकर अपनी जाति से बहार कर देने के योग्य है ॥११-१४॥

साभार्या या गृहेदक्षा साभार्या या पतिव्रता। साभार्या या पतिप्राणा सोभार्या या प्रजावती ॥ १५ ॥ लालनीया सदा भार्या ताडनीया कदाचन। ताडितालालिता चैव स्त्री श्रीभवति नान्यथा ॥ १६ ॥ न व्रतै र्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च। नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पति पूजनात् ॥ १७ ॥ पिता रक्षति कौमारे भर्तारक्षति यौवने। पुत्राश्च स्थाविरेभावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ १८ ॥

भा० टी०—उसी को भार्या कहते हैं जो गृहस्थ के हरएक कार्य में प्रवीण होती है। वही भार्या है पति की सेवा करना ही जिसका व्रत नियम है एवं पति को अपना प्राण समझती है और सुपुत्रवती है। भार्या का सदा लालन पालन ही करना चाहिये और कदाचित् अनुचित बर्ताव दीखै तो ताडन करना भी योग्य है। ताडन और पालन करने पर स्त्री लक्ष्मी हो जाती है। व्रत उपवास आदि विविध प्रकार के धर्म सेवन से स्त्री स्वर्ग नही पाती, किन्तु एक पति के पूजन से ही सब कुछ पा सकती है। कुमारी अवस्था में तो स्त्री की रक्षा उसका पिता करता है, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्रों के अधीन रहती है, स्त्री को स्वतन्त्र रहना योग्य नहीं ॥ १५-१८ ॥

नानावर्णं सुभार्या सुसवर्णा सहचारिणी। धर्माधर्मेषुधर्मिष्ठा ज्येष्ठा मारण जातिषु ॥ १९ ॥ पातितोयं द्विजाः पूर्वमेक देह स्वयंभुवा। पतयोर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्यो भूवन्निति श्रुतिः ॥ २० ॥ यावन्नविंदते जायां तावदर्द्धोऽभवत्पुमान्। नार्द्धप्रजायते सर्वं प्रजायेते

त्यपिश्रुतिः ॥ २१ ॥ एक चित्ततया भाव्यं समानव्रत वृत्तितः । न पृथाग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गविधि साधनम् ॥ २२ ॥

भा० टी०—मारण जाति के राजपूतों में अनेक वर्ण की स्त्रियें होने पर स्त्री वर्ग में वही स्त्री सबमें बड़ी मानी जायेगी जो कि सवर्णा (अपनी जाति) की और धर्मात्मा हो । और वही धर्माधर्म में सहचारिणी हो सकती है । हे द्विजो सृष्टि की सुरुआत में ब्रह्मा ने मानव देह को दो विभागों में विभाजित किया था, उन्हों में आधे से पति और आधे हिस्से से पत्नी का निर्माण किया ऐसी वेद में श्रुति है । जबतक वैवाहिक सम्बन्ध से स्त्री का पाणिग्रहण नहीं होता, तबकत पुरुष आधा है । आधे से कुछ भी नहीं होता संपूर्ण ही से प्रजोत्पत्ति आदि कार्य होते हैं ऐसी भी वेद की श्रुति है । स्त्री को चाहिये कि व्रत और वृत्ति से एक चित्त होकर पति के साथ दुःख सुख में समान वरते, क्योंकि स्त्रियों के त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की विधि का साधन पति से भिन्न नहीं है ॥ १६–२२ ॥

पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च । उत्थाप्यशयनाद्यानि कृत्वा वेश्मनि शोधनम् ॥ २३ ॥ मार्जनैर्लेपनैः प्राप्यसाग्नि शालं स्वमंगणम् । शोधयित्वाम्बु पात्राणि पूरयित्वातु धारयेत् ॥ २४ ॥ महानसस्यपात्राणि वहिः प्रक्षाल्य सर्वथा । मृद्‌भिश्च शोधयेच्चूल्हीं तत्राग्निं विन्यसेत्ततः ॥ २५ ॥ स्मृत्वानि योग पात्राणि रसांश्च द्रविणानि च । कृतपूर्वाह्णकार्या च स्वगुरु नभिवादयेत् ॥ २६ ॥ ताभ्यां भर्तृ पितृभ्यां वा भ्रातृ मातुल वान्धवैः । वस्त्रालंकार रत्नानि प्रदत्तान्येव धारयेत् ॥ २७ ॥

भा० टी०—पति से पहिले उठे और जल से देह शुद्धि करके, शयन वस्त्रों को उठाकर, सारे मकान के झाड बुहार कर साफ करें । धातु के वर्त्तनों को मांजकर साफ करें । होमशाला (पूजा स्थान) को और अपने चौके तथा प्रांगण को लीपकर ठीक २ करे । पानी के वर्त्तनों को मांज धौकर स्वच्छ पानी से भरकर रक्खे । रसोई करने के पात्रों को बहार भीतर से धौकर मिट्टी से मांजे और जल से शुद्ध करे, चुल्ही को बुहार लीपकर उसमें अग्नि स्थापन करे । भोजन के पात्रों को यादकर उन्हों में अलग २ खाद्य पदार्थों को नियुक्त करे । टके पैसे और सब रसों को सम्भाल कर रखे । इस प्रकार पूर्वान्ह के सर्व कार्यों को करके पश्चात् अपना गुरु, सासु, स्वसुर आदि वृद्धों को नमस्कारपूर्वक भोजन के लिये निमन्त्रण करे । उन्हीं करके तथा भाई, पति, पिता, मामा आदि वान्धवों के दिये हुए ही वस्त्रालंकार रत्न आदिकों को धारण करे ॥ २३–२७ ॥

मनोवाक्कर्मभिः शुद्धापति देशानुवर्त्तिनी । छायेवानुगतास्वच्छासखीवहितकर्मसु

॥ २८ ॥ दासीवादिष्टकार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत् । ततोन्नसाधनं कृत्वापतये विनिवेद्य तत् ॥ २६ ॥ वैश्वदेव कृतैरन्नै र्भोजनीयांश्च भोजयेत् । पतिं चैवाभ्यनुज्ञाता सिद्धमन्नादिनात्मना ॥ ३० ॥ भुक्त्वानये दहः शेषमाय व्ययचिन्तया । पुनः सायं पुनः प्रातर्गृह शुद्धिं विधाय च ॥ ३१ ॥ कृतान्न साधना साध्वी सुभृशं भोजयेत्पतिम् । नातितृप्ता स्वयं भुक्त्वा गृहनीतिं विधाय च ॥ ३२ ॥ आस्तीर्य साधु शयनं ततः परिचरेत्पतिम् सुप्ते पतौतदभ्याशे स्वपेत्तद्गत मानसा ॥ ३३ ॥ अनग्ना चा प्रमत्ता च निष्कामा च । जितेन्द्रिया नोच्चैर्वदेन्नपरुषं न बहून्नत्पुरप्रियम् ॥ ३४ ॥

भा० टी०—उस स्त्री को पतिव्रता कहना चाहिये जो कि मन, वचन और कर्म (काया) से शुद्ध हो, पति की आज्ञानुसार चलै, शरीर की छाया के समान सुख दुःख में साथ रहै । स्वच्छ (निर्मल) हृदया और मित्र के समान हितकर्म करने वाली हो। पति के द्वारा कहे हुए कार्यों को सदा दासी के समान करती रहै । सर्व प्रकार के भोजनों का साधन (तैयार) करके भोज करने के लिये पति से प्रार्थना करै, एवं वैश्वदेव करने के पश्चात् उसी अन्न से प्रथम भोजन कराने के योग्य व्यक्तियों को भोजन देकर, फिर पति की आज्ञा होने पर अपने ही हाथ के पकाए हुए अन्न से स्वयं भोजन करै । भोजन के पश्चात् घर की शुद्धि करके, फिर सायंकाल और प्रातःकाल वैसे ही आवश्यक गृह कार्य करती ही रहै । वित्तानुसार बहुत से भोजन पकाकर पहिले पति को भोजन करावे और फिर स्वयं थोड़ा-सा भोजन करकै घर की मर्यादा मुजब अच्छी शय्या बिछाकर पति की सेवा करै । पति में ही लगा हुआ है दिल जिसका वह स्त्री पति के सौने के बाद पति के पास ही सोजावें (किस तरह सोवै सो ही कहते हैं) अनग्न, अप्रमत्त, निष्काम और जितेन्द्रिय होकर सचेत शोना चाहिये । रात के समय पति के साथ ऊंची आवाज से बात न करै, कठिन वचन न कहै और ज्यादह वह बात भी न कहै जो अपने पति को अप्रिय हो ॥ २८-३४ ॥

न केन चिद्विवदेच्च अप्रलापविलापिनी । न चापव्यय शोलास्याच्च धर्मार्थविरोधिनी ॥ ३५ ॥ प्रमादोन्मादरोषेर्ष्या वचनं चाति मानिताम् । पैशुन्य हिंसा विद्वेष मदाहंकार धूर्तताः ॥ ३६ ॥ नास्तिक्य साहसं स्तेयं दम्भान्साध्वी विवर्जयेत् । एवं परिचरन्ती सापतिंपरमदैवतम् ॥ ३७ ॥ धन्यापति व्रतानारी नान्यापूज्या विशेषतः । पावनी सर्व लौकानां सर्व पापौघ नाशिनी ॥ ३८ ॥ पतिव्रता च सावित्री लोपामुद्राह्यरुन्धती । शांडिल्या शतरुपांनुसूया लक्ष्मीः स्वधासती ॥ ३६ ॥ संज्ञा च सुमतिः श्रद्धा मैना स्वाहा शतंगुणा । ब्रह्मा विष्णु हरैश्चापि मान्यामीन मुनीश्वरैः ॥ ४० ॥

भा० टी०—किसी के साथ विवाद (लड़ाई) न करे, एवं बकवाद न करे, रोकर बात न कहे। गैर तरीके पैसा न खर्चे, धर्म और अर्थ का विरोध न करे। प्रमाद (बेपरवाही) उन्माद (चित्तविभ्रम) और रोष रहित हो। ईर्ष्या वचन न कहे, अतिमान न करे, पैशुन्य (चुगलखोरी) हिंसा, विद्वेष (दुश्मनी) मद अहंकार धूर्तता रहित हो। नास्तिकता, साहस (अविवेक) चौरी, दम्भ (गरूर) को साध्वी स्त्री छोड़े। इस प्रकार सेवा करतीं हुई पति को परम देवता समझे। पतिव्रता नारी संसार में धन्यवाद की पात्र, विशेष पूजनीय, सर्व लोकों को पवित्र करनेवाली, और सर्व पापों के समूह को नष्ट करने वाली मानी जाती है। पतिव्रता धर्म पालने वाली कतिपय स्त्रियों के नाम बताते हैं। सावित्री, लोपामुद्रा, अरुन्धती, शांडिल्या, शतरूपा, अनुसूया, लक्ष्मी, स्वधा, पार्वती, संज्ञा, सुमति, श्रद्धा, मैना, स्वाहा, सौगुणा (मैना की माता) ये सब स्त्रियें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मीन और मुनीश्वरों के भी परम मान्य है॥ ३५-४०॥

भर्तादेवोगुरुर्भर्ता धर्मतीर्थ व्रतानि च। तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ॥ ४१ ॥ या भर्तारं परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः। उल्लूकी जायते क्रूरा वृक्ष कोट रशायिनी ॥ ४२ ॥ याभर्त्तारं परित्यजं मिष्टमश्नाति केवलम्। ग्रामे वा सूकरी भूयाद्वल्गुर्वापि स्वविड्भुजा ॥ ४३ ॥ साधन्या जननी लोके सधन्यो जनकपिता। धन्य स च पतिर्यस्य गृहेदेवी पतिव्रता ॥ ४४ ॥ पितृवंश्याः मातृवंश्याः पतिवंस्यास्त्रयस्त्रयः। पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गे सौख्यानि भुञ्जते ॥ ४५ ॥

भा० टी०—स्त्री मात्र के लिये भर्तार ही देव है, भर्तार ही गुरु है, धर्म, तीर्थ, व्रत जो कुछ भी कहो भर्तार (पति ही) है अतएव सबको छोड़कर एक पति ही की आराधना करनी चाहिये। जो दुर्मति स्त्री अपने पति को छोड़कर एकान्त में अन्य पुरुष से रमण करती है, वह मरने पर वृक्ष की कोटर में रहने वाली क्रूर उल्लुकी बनती है। जो स्त्री अपने भर्तार को वञ्चित करके अकेली ही मिष्ट खानपान कर लेती है, वह अपनी ही विष्ठा को भक्षण करने वाली बग्गुल व भंडसूरी होती है। उस माता पिता और पति को धन्यवाद देने चाहिये कि जिसके घर में पतिव्रता देवी का जन्म और निवास होता है। क्योंकि पतिव्रता स्त्री के पुण्य योग से माता, पिता और पति के तीन २ वंशों को स्वर्ग के सुख भोग मिलते है॥ ४१-४५॥

शील भंगेनदुर्वृत्ताः पातयान्ति कुलत्रयम्। पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्रापि दुःखिताः ॥ ४६ ॥ भार्या मूल गृहस्थस्य भार्य्या मूल सुखस्य च। भार्या धर्म फलावाप्त्यै भार्या संतान वृद्धये ॥ ४७ ॥ गृहे गृहेन किंनार्यो रूपलावण्य गर्विताः। परं मीनेश

भक्त्यैवलभ्यते स्त्री पतिव्रताः ॥ ४८ ॥ गृहस्थस्सहि विज्ञेयो यस्य गेह पतिव्रता । ग्रस्यते-ऽन्यान् प्रतिदिनं राक्षस्या जरया यथा ॥ ४६ ॥ यथा गंगांव गाहेन शरीरः पावनं भवेत् । तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सकलं पावनं भवेत् ॥ ५० ॥ नगंगया तया भेदो या नारी पतिदेवता । उमा शिव समौ साक्षात्तस्मात्तौ पूज्येद्बुधः ॥ ५१ ॥ पत्नीं मूलं गृहंपुंसांयदिच्छंदानु वर्तिनी । तयाधर्मार्थ कामानां त्रिवर्ग फलमश्नुते ॥ ५२ ॥

भा० टी०—शील (ब्रह्मचर्य) भंग करके दुश्चरित्र वाली स्त्री अपने पिता, माता और पति इन तीनों के कुलों को पतित कर देती है और इस लोक तथा परलोक में दुःख पाती है। गृहस्थाश्रम के सभी सुखों की जड़ स्त्री है एवं धर्म के फल और सन्तानों की वृद्धि का भी मूलकारण भार्या ही है। रूप और चातुर्य का अभिमान रखने वाली स्त्रियें तो सभी के घरों में होती है लेकिन पतिव्रता स्त्री तो एक भाग्यशाली पुरुष के घर में ही होंगी, जिसके हृदय में मीनेश भगवान् की असाधारण भक्ति हो। उसी को ही गृहस्थ समझना चाहिये कि जिसके घर में पतिव्रता स्त्री हो। अन्य पुरुषों को तो स्वेच्छा-चारिणी स्त्रियें जरा राक्षसी के समान ग्रसित करती रहती है। गंगा स्नान से जैसे शरीर पवित्र हो जाता है वैसे ही पतिव्रता स्त्री के दर्शन मात्र से सब लोक पवित्र हो जाते हैं। गंगा और पतिव्रता स्त्री में कोई विशेष भेद (फर्क) नहीं है, पतिव्रता स्त्री और उसका गुणवान् पति ये दोनों ही शिव पार्वती के समान हैं, ऐसा समझकर विद्वानों को चाहिये कि उन्हों का अवश्य पूजन करे - पुरुषों के घर की मूल (नींव) स्त्री है यदि वह पति की इच्छानुसार चलती है तो समझो कि, धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों वर्गों के फल को वही चक्खेंगे ॥ ४६–५२ ॥

प्राकाम्ये वर्त्तमानाया स्नेहान्नतु निवारिता । अवश्या साभवेत्पश्चाद्यथा व्याधि रुपेक्षिता ॥ ५३ ॥ अनुकूला न वाग्दुष्टा दक्षा साध्वी प्रियंवदा आत्मगुप्ता स्वामि भक्ता देवतासानमानुषी ॥ ५४ ॥ अनुकूल कलत्रोयः स्वर्गस्तस्य इहैवहि । प्रतिकूल कलत्रस्य नरको नात्र संशयः ॥ ५५ ॥ स्वर्गेपि दुर्लभंह्य तदनुरागः परस्परम् । रक्त एको विरक्तो-न्यस्त दाकष्टतरंनुकिम् ॥ ५६ ॥ गृहवासः सुखार्थोहि पत्नीमूलं च तत्सुखम् । सापत्नी याविनी तास्याश्चितज्ञा वशवर्तिनी ॥ ५७ ॥ दुःखायान्या सदा खिन्ना चित्तभेद परस्परम् । प्रतिकूल कलत्रस्य द्विदारस्य विशेषतः ॥ ५८ ॥ जलौका इवताः सर्वा भूषणाच्छदना शनैः । सुभृतापि कृतानित्यं पुरुषंह्यपकर्षति ॥ ५६ ॥ जलौका रक्त मादत्ते केवलं सातपस्विनी । इतर तु धनं रूपं मांसं वीर्यं बलं सुखम् ॥ ६० ॥

भा० टी०—स्वेच्छाचारिणी स्त्री को यदि उसका पति शुरु से ही स्नेहवस निवारण नहीं करता तो फिर वह उपेक्षित (बेइलाज) व्याधि (रोग) के समान उसके काबू से बाहर हो जाती है। जो स्त्री पति के अनुकूल (आज्ञाकारिणी) होती है, कठिन वचन नहीं बोलती, सर्व कार्यों में चतुर, सुशील, प्रिय वचन बोलने वाली, आत्म संयम करने वाली, और पति की भक्ति करनेवाली होती है वह देवता है मनुष्य योनि नहीं। जिसकी स्त्री अनुकूल होती है उसी के यहीं स्वर्ग है, और जिसके स्त्री प्रतिकूल है उसके यहीं नरक है, इसमें कोई संशय नहीं। पति और पत्नी दोनों के आपस में अनुराग (प्रेम) स्वर्गलोक में भी दुर्लभ है और दोनों के आपस में विरोध हो तो फिर कष्ट (दुःख) की सीमा (हद) नहीं रहती। क्यों कि गृहवास का अर्थ ही सुख होता है और उस सुख का मूल कारण स्त्री है, पत्नी वही कहला सकती है कि जो विनीत (नम्रशील) अभिप्राय को जानने वाली और पति के हुक्म में रहने वाली हो। इसके सिवाय दूसरी स्त्री तो सदा दुःख, खेद और परस्पर मन को फाड़ देनेवाली होती है। विशेष करके ये सारी सिकायतें वहां ही होती रहती है कि जहां पर एक ही पति के दो स्त्रियें होती है और वे दोनों ही आपस में पति के प्रतिकूल (विपरीत) आचरण करती है। भूषण, आच्छादन और अशनपान आदि से नित्य उन्हों का भरण-पोषण करने पर भी वे जौंक के समान पुरुषों के खून को चूशती ही रहती है। विचारी भूखी जलौका तो फ़क़ एक रक्त को ही चूषती है परन्तु स्त्री तो पुरुष के धन, रूप, मांस, वीर्य, बल, बुद्धी आदि सभी सुखों को नष्ट कर देती है ॥ ६० ॥

शिष्यो भार्या शिशु भ्राता मित्रोदासः समाश्रितः। यस्यैतानि विनीतानी तस्य लोकेहि गौरवम् ॥ ६१ ॥ अदुष्टांऽपतितां भार्यां यौवनेयः परित्यजेत्। सजीवनान्ते स्त्री त्वंच वन्ध्य त्वंच समाप्नुयात् ॥ ६२ ॥ दरिद्रं व्याधितं वृद्धम् भर्तारं यावमन्यते। शुनीगृध्री च मकरी जायतेसा पुनः पुनः ॥ ६३ ॥ अपृष्ट्वा चैव भर्तारं या नारी कुरुतेव्रतम्। सर्वतद्राक्षसा न् गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ६४ ॥ बान्धवानां सजातीनां दुवृत्तं कुरुतेतुया। गर्भपातं च कुर्यात् न तांसंभाषयेत् कचित् ॥ ६५ ॥ नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ६६ ॥ यत्पापं ब्रह्महत्या या द्विगुणं गर्भ पातने। प्रायश्चितं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागोविधीयते ॥ ६७ ॥ मृतेभर्तरिया नारी ब्रह्मचर्य व्रतेस्थिता। सामृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ ६८ ॥ तिस्रः कोट्योर्ध कोटी च यानि लोमानि मानवे। तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति ॥ ६९ ॥ इतिश्रीम० मीनपु० द्वि० स्कं० द्वादशोध्यायः ॥ १२ ॥

भा० टी०—लोक में उसी मनुष्य का बड़ा गौरव (मान) होता है जिसके शिष्य, भार्या,

पुत्र, भाई, मित्र, दास और आश्रित जन विनीत होते हैं। जो मनुष्य अपतित एवं अदुष्ट अपनी भार्या को यौवनावस्था में बिना ही कसूर परित्याग कर देता है तो वह मरने पर बारंवार स्त्री की पर्याय में जन्मता और वन्ध्यापन पाता है। जो स्त्री धन रहित, रोगी और वृद्ध (बूढ़ा) अपने पति को अपमान करती है तो वह जन्मान्तर में बारंवार कुत्ती गीध, और मकरी बनती है। मनुजी कहते हैं कि जो कोई स्त्री अपने पति को बिना पूछे ही व्रतोपवासादि तप करती है तो उसके सर्व पुण्य को राक्षस भक्षण कर लेते हैं। जो स्त्री अपने भाई और पति के जाति वालों को कलंकित करती है तथा स्वपर का जो गर्भ पात करती है तो उसके साथ कहीं संभाषण भी नहीं करना चाहिये। बाल अवस्था में ही पति के परदेश गमन कर जाने पर, मरजाने पर, साधु हो जाने पर, नपुंसक होने पर, जाति से पतित होने पर, इन पांचों ही कारणों से स्त्री दूसरा कोई अपनी जाति का योग्य पति बना सकती है। ब्रह्महत्या करने पर जो पाप-होता है उससे दुगना पाप गर्भपात करने में है, गर्भपात करने का प्रायश्चित नहीं हो सकता, उस स्त्री के प्राण त्याग करने पर ही वह पाप उत्तर सकता है। अपने पति के मरने पर जो स्त्री ब्रह्मचर्य में सदा स्थित रहती है वह मरने पर ब्रह्मचारी महात्माओं के ही समान स्वर्गलोक पाती है। जो स्त्री अपने पति के साथ सती हो जाती है वह साढ़े तीन करोड़ वर्षों तक स्वर्गलोक में सुख भोगती है ॥ ६१–६६ ॥

॥ इतिश्रीमद्भागवत् मीनपुराणे द्वितीयस्कंधेद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ अथ त्रयोदशोऽध्याय प्रा० ॥ गृहस्थधर्माः ॥ भृगुरुवाच–चतुर्थमायुषो भागं मुषित्वाद्यं गुरौद्विजः। द्वितीय मायुषोभागं कृतदारो गृहेवसेत् ॥ १ ॥ अद्रोहेणैव भूतांना मल्प द्रोहेण वापुनः। या वृत्तीस्तां समास्थाय मीनोजीवेदनापदि ॥ २ ॥ यात्रा मात्र प्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिर गर्हितैः। अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धन संचयम् ॥ ३ ॥ न्यायो पार्जित वित्तेन कर्त्तव्यह्यात्म रक्षणम्। अन्यायेन तुयो जीवेत्सर्व कर्म वहिष्कृतः ॥ ४ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय विशस्त्रयोवर्णा द्विजातयः। श्रुति स्मृति पुराणोक्त धर्म योग्यास्तुनेतरे ॥ ५ ॥ शूद्रो वर्णश्चतुर्थोपि वर्णत्वाद्धर्म मर्हति। वेदमन्त्रस्वधा स्वाहा वषट्कारादिभिर्विना ॥ ६ ॥

भा० टी०—अब १३वाँ अध्याय सुरु होता है। भृगुजी बोले—मनुष्य की आयु प्रायः एकसौ वर्ष की होती है उसके पहिले चौथे भाग में तो गुरुकुल में रहकर केवल विद्याध्ययन ही करना चाहिये। दूसरे भाग में गुरुकुल से आकर दारापाणिग्रहणपूर्वक गृहस्थाश्रम में वसना चाहिये। प्राणियों से अ-द्रोह वृत्तिया अल्पद्रोह वृत्ति (आजीविका) से अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करता हुआ, उपद्रव रहित

मीन क्षत्रिय सुख से जीवे। अपने परिवार का निर्वाह मात्र के लिये, अपने शरीर को ज्यादा कष्ट न देकर, अपने वर्णोचित्त कर्मों के द्वारा धन संचय करना चाहिये। स्वधर्मानुसार न्यायोपार्जित धन से ही आत्मरक्षण (कुटुम्ब पालन) करना चाहिये, क्षत्रिय जाति की क्षुद्रता दिखाकर जो अन्याय से धनोपार्जन पूर्वक जीता, वह जाति से बहार कर देने योग्य है। वेद, स्मृति और पुराणों में कहे हुए सभी धर्मों के करने की पूर्ण योग्यता ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीन द्विजातीयों में ही है। वेद के मन्त्रों को उच्चारण के विना शूद्र भी सभी धर्मों के योग्य है॥ १-६॥

ब्राह्मेमुहूर्त्ते चोत्थायचिंतयेद्धित मात्मनः। शक्ति मान्मतिमाश्रित्य धर्म कर्म समाचरेत्॥ ७॥ गुरुभक्तो भृत्यपोषी दयावान न सूयकः। नित्य जापी च होमी च सत्यवादीर्जितेन्द्रियः॥ ८॥ स्वदारे यस्य संतोषः परदाराश्रि वर्तनम्। अपवादोपिनोयस्य तस्यतीर्थ फलंगृहें॥ ९॥ परदारान्परद्रव्यं हरतेयो दिने दिने। सर्व तीर्थाभिषेकेण पापं तस्यन नश्यति॥ १०॥ ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा। नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथा शक्ति नहापयेत्॥ ११॥ दानेन पाणिनतु कंकणेन स्नानेन शुद्धिर्नतु चंदनेन। मानेन तृप्तिर्नतु भोजनेन ज्ञानेन मुक्तिर्नतु मंडनेन॥ १२॥ वर्णानामा श्रमाणां च चातुवर्णस्य भोद्विजाः। दान धर्म प्रवक्ष्यामि भाषितं मनुनायथा॥ १३॥ यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिनेदिने। तच्चवित्त महंमन्ये शेषं कस्यापि रक्षति॥ १४॥ यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनोधनम्। अन्ये मृतस्य क्रीडंति दारैरपि धनैरपि॥ १५॥

भा० टी०—नित्य चार घड़ी रात शेष रहते पर शयन से ऊठकर, शक्तिमान् एवं बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि, आत्महित चिंतन करते हुए, धर्म कर्म का सदा सेवन करे। जो गृहस्थ गुरुभक्त अनुचरों का पोषण करने वाला, दयावान गुणग्राही, नित्य गायत्री का जाप करने वाला, यज्ञ होम करने वाला, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, स्व दारा (स्त्री) में संतोषी, परस्त्री त्यागी और जिसका संसार में कहीं अपवाद (बदनाम) नहीं होता उसकों घर बैठे ही तीर्थों की यात्रा का फल होता है। जो पुरुष प्रतिदिन परस्त्री और परधन का हरण करता हो, तो सर्व तीर्थों के जलाभिषेक से भी उसके पाप नष्ट नहीं होते। ऋषियों के लिये यज्ञ (दान देना और आदर करना) देवयज्ञ (पूजन) भूतयज्ञ (पशुओं को घाँस और पक्षिओं को चुगा देना) नृयज्ञ (जन समाज की सेवा करना) और पितृतर्पण, इन्हों को यथा शक्ति नहीं छोड़ना चाहिये। दान देने से हाथों की शोभा है कंकणों से नहीं, स्नान से शरीर की शुद्धी होती है किन्तु चन्दन से नहीं। मान देने से मनुष्य को तृप्ति (खुसी) होती है केवल भोजन से नहीं। ज्ञान से मुक्ति होती है खंडन मंडन से नहीं। हे द्विजो! चारों वर्ण एवं आश्रमों के दान धर्म

को कहता हूँ जैसा मनुजी ने कहा है—जो गुणवानों को देता है और खुद प्रतिदिन खाता है उसीके वित्त को मैं धन कहता हूँ, बाकी तो किसी की धरोड़, की रखवाली करता है। धनी का धन वही है जो दिया और खाया जाता है, मरने के पश्चात् तो उसी की स्त्री और धन से दूसरे ह लोक गुलछर्रे उड़ाते हैं ॥ ७–१५ ॥

अनित्यानि शरीराणि विभवोनैव शाश्वतः। नित्यं सन्निहितोमृत्युः कर्तव्यो धर्म संग्रहः ॥ १६ ॥ यदि नाम न धर्माय न कामायन कीर्तये। यत्परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किंनदीयते ॥ १७ ॥ जीवंतिजीविते यस्य विप्र मित्राणि बान्धवाः। जीवितं सफलं तस्य आत्मार्थे कोनजीवति ॥ १८ ॥ ग्रासादर्द्धमपिग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते। इच्छानुरूपो-विभवः कदाकस्य भविष्यति ॥ १९ ॥ दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यदः। पानं प्रदस्त्व रण्येषु स्वर्गलोके महीयते ॥ २० ॥ ग्रहणोद्वाह संक्रान्तौ स्त्रीणां च प्रसवे तथा। दानं नैमित्तिकंज्ञेयं प्रदातव्यं च मारणैः ॥ २१ ॥

भा० टी०—शरीर अनित्य है, संपत्ति शाश्वत नहीं; मृत्यु प्रतिदिन समीप आरही है, ऐसा समझकर धर्म का संग्रह करना चाहिये। धनको छोड़कर अवश्य परलोक में जाना होगा, मरने के पश्चात् धन से धर्म काम, कीर्त्ति कुछ नहीं होते, उस धनको अपने ही हाथ से क्यों नहीं देना चाहिये। जिसके जीने से ब्राह्मण, मित्र, कुटुम्बिक एवं साधारण जन समाज जीते हैं उसी का जीना सार्थक है अन्यथा अपना ही पेट भरके कौन नही जीता। अये मारण! अपने एक ही ग्रास में से आधा ग्रास अर्थियों को तू क्यों नहीं देता, इच्छानुरूप धन कब किसके हो सकता है। दुर्भिक्ष में जो अन्न देता है, सुभिक्ष में जो धन वितरणकरता है, जंगलों में जो पानी का दान देता है वह स्वर्गलोक में आदर पाता है। सूर्य चन्द्र ग्रहण, विवाह, सूर्य की संक्रान्ति, और पुत्र जन्म में मारण क्षत्रियों को नैमितिक दान अवश्य कर्त्तव्य है ॥ १६–२१ ॥

क्षोमजंवाथ कार्पासंपट सूत्रमथापि वा। यज्ञोपवीतं योदद्याद्वस्त्र दानफलं लभेत् ॥ २२ ॥ जन्मप्रभृति यत्पापं मातृकं पैतृकं तथा। तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं वस्त्रदानान्न संशयः ॥ २३ ॥ आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमोहुताशनः। शूलपाणिस्तु भगवान भिनन्दन्ति भूमिदम् ॥ २४ ॥ पुत्रादि स्वजनेदद्याद्विप्राय न च कैतवे। सकामः स्वर्ग-माप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥ २५ ॥

भा० टी०—वल्कल, रेशम व सन का बना हुआ, कपास का बना हुआ और वस्त्र का बना

हुआ, यज्ञोपवीत ब्रह्मचारीको जो देता है उसको वस्त्रदान का फल मिलता है। जन्म से लेकर जो २ पाप अथवा मां बाप सम्बन्धी जो दोष होते हैं वे सब वस्त्रदान से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। सूर्य, वरुण, विष्णु, (मीन) ब्रह्मा, चन्द्र, लोकपाल, अग्नि और भगवान् शिवजी ये सब भूमि का दान देनेवाले पर प्रसन्न होते हैं। पुत्र आदि अपने संबन्धियों को भूमि आदि उचित दान देना चाहिये। और ब्राह्मण आदि को धर्म दान देना चाहिये। दान देने वाला यदि सकाम (विषयार्थी) हो तो उसको स्वर्ग मिलता है, यदि वह निष्काम (निःस्वार्थी) हो तो उसको मोक्ष मिलता है ॥२२-२५॥

ज्ञानस्यदानं खलु वित्तदानं ज्ञानस्यदानं खलु भोज्यदानम्। ज्ञानस्यदानं खलु सौख्यदानं ज्ञानस्यदानं ह्यभयप्रदानम् ॥ २६ ॥ ज्ञानस्यदानं किलपात्र दानं ज्ञानस्यदानं किलनाक दानम्। ज्ञानस्यदानं किलमोक्ष दानं ज्ञानेहितानीह समाविशंति ॥ २७ ॥ पीयूषमसमुद्रोत्थं रसायनमनौषधम्। अनन्यापेक्षमैश्वर्यं ज्ञानमाहुर्मनीषिणः ॥ २८ ॥ न ज्ञान तुल्यं भुविकिंचिदस्ति हिताहितार्थ प्रतिबोध दक्षम्। ज्ञानेनहीनो गदितोबुधैशैर्जनः पशुः पुच्छ विषाणहीनः ॥ २९ ॥ न ज्ञानतुल्यः किल कल्पवृक्षो न ज्ञानतुल्या किल काम धेनुः। न ज्ञानतुल्यः किलकाम कुम्भो ज्ञानेन चिंतामणि रप्यतुल्यः ॥ ३० ॥ क्रोधाग्नि निर्वाणप वारिवाहो मानोग्रदन्तावल केसरीशः। मायातमीध्वंस न चंडभानुर्ज्ञानंहि लोभाम्बुधिकुम्भ जातः ॥ ३१ ॥ ज्ञानाप्तितो द्रव्यमुपार्जयंति द्रव्यार्जने नैवसुखी भवन्ति। सौख्येन धर्माचरणं चरन्ति जनाः पुनर्मोक्ष सखी भवन्ति ॥ ३२ ॥

भा० टी०—ज्ञान का दान ही वित्त (धन) दान है। ज्ञान का दान ही अच्छा भोजन दान है। ज्ञान का दान ही सुख का दान है। ज्ञान का दान ही अभयदान है, ज्ञान का दान ही सुपात्रदान है, ज्ञान दान ही स्वर्गदान है, ज्ञान का दान ही मोक्षदान है, ज्ञान में ये सब कुछ प्रविष्ट होते हैं। ज्ञान यह बिना ही समुद्र के अमृत है एवं बिना औषध ही रसायन है। दूसरों की अपेक्षा के बिना ही पंडित लोग ज्ञान को बड़ा भारी ऐश्वर्य कहते हैं। ज्ञान के समान पृथ्वी पर हिताहित का बोध कराने वाला कोई पदार्थ नहीं है। विद्वान् लोक ज्ञानहीन मनुष्य को बिना सींग पूंछ का पशु कहते हैं। कल्पवृक्ष ज्ञान की तुलना नहीं कर सकता, कामधेनु भी ज्ञान की बराबरी नहीं कर सकती, एवं कामकुंभ और चिंतामणी रत्न से भी अधिक ज्ञान ही है। ज्ञान यह क्रोधरूप अग्नि को शान्त करने के लिये पुष्करावर्त्त मेघ है, मानरूप हाथी को मारने के लिये केशरी सिंह है। मायारूपी रात्री को नष्ट करने के लिये प्रचंड सूर्य है। और ज्ञान ही लोभ समुद्र को सुका देने के लिये अगस्त ऋषि है। ज्ञानको प्राप्त करके ही मनुष्य द्रव्य उपार्जन क. सक ा है, द्रव्योपार्जन करने पर ही गृहस्थ सुखी हो सकता है, और

सुख में ही मनुष्य को धर्माचरण सूझता है एवं धर्म से ही मनुष्य मुक्ति को अपनी दासी बना सकता है ॥ २६-३२ ॥

ज्ञानं विनांधा भववारिराशौ सदानिमज्जन्ति शरण्यहीनाः। ज्ञाना जनैर्निर्मल नेत्र युग्माः प्रयान्ति संसार समुद्र पारम् ॥ ३३ ॥ भवार्क तापैः परिता पितानां ज्ञानं जनानां जलयंत्र तुल्यम्। यत्प्राप्यनैवातु भवन्ति तापं नाना प्रकारं भवयोनि भूतम् ॥ ३४ ॥ ज्ञान प्रदीपेशलभी भवन्ति कषाय वृन्दानि सदाजनानान्। ज्ञान प्रदीपे परिभासयन्ति जगन्ति हस्तामल कंगितानि ॥ ३५ ॥ चौरारिदाया दतनूज भूपैरहार्यं मर्त्यं सकलेपि लोके। धनं परेषां नयनैरदृश्यं ज्ञानं नराधन्य तमावहन्ति ॥ ३६ ॥ तमोधुनीते कुरुते प्रकाशं शमं विधत्त विनिहन्ति कोपम्। तनोति धर्मं विधुनोति पापं ज्ञानं न किंकिं कुरुतेनराणाम् ॥३७॥

भा० टी०—ज्ञान के बिना मनुष्य नेत्र होते हुए भी अन्धा है और वह आश्रय हीन होकर सदा संसार समुद्र में डूबता ही रहता है और ज्ञानरूपी अंजन से जिसके दोनों नेत्र निर्मल हो गये हैं वह शीघ्र ही संसार समुद्रका का पार पाता है। भवरूपी सूर्य की प्रचंड ताप से परितप्त मनुष्य को ज्ञान जलयंत्र (फोहारा) के तुल्य है कि जिसको पाकर फिर कभी नाना प्रकार भव योनीरूप तापका अनुभव नहीं होता। ज्ञानरूपी दीपक में मनुष्यों के कषाय तमोगुण रूप पतंग सदा भस्म होते रहते हैं एवं अपने हाथ की रेखाओं के समान पृथ्वी के सभो पदार्थ ज्ञानरूपी दीपक से सदा प्रकाशित रहते हैं। चौर, शत्रु, भाई, पुत्र, राजा, आदि कोई भी ज्ञानको छीन नहीं सकते, ज्ञान यह दूसरों को नहीं दीखनेवाला अखुट धन है, इसको जो मनुस्य सम्यकतया धारण करते हैं वह इस लोक में ही धन्यवाद के पात्र बनते हैं। ज्ञानरूप सूर्य लोगों के घोर अन्धेर को नष्ट करके सम्यक् प्रकाश करता है, क्रोध को नष्ट करके शान्ती को धारण कराता है। पापों को नष्ट करके धर्म का विस्तार करता है, कहांतक कहें मनुष्यों के सभी गुणों का विस्तार एक ज्ञान ही कर सकता है ॥ ३३-३७ ॥

यथा यथा ज्ञानवले मीनाज्ञानाति तत्त्वं गुरुदेवदृष्टम्। तथा तथा धर्ममति प्रशक्तः प्रजायते पापविनाश शक्तः ॥ ३८ ॥ धर्मार्थ काम व्यवहार शून्यो विनष्टनिश्शेष विचारबुद्धि रात्रिं दिवं भक्षण शक्त मीनो ज्ञानेनहीनः पशुरेव शुद्धः ॥ ३९ ॥ ज्ञानंस्यात्कुमतान्धकार तरणि ज्ञानं जगल्लोचनम्। ज्ञानं नीतितरंगिणीं कुलगिरी ज्ञानंकलं कापहम्। ज्ञानंनिवृत्ति वश्यमन्त्रम मलं ज्ञानंमनः पावनं ज्ञानं स्वर्गगति प्रयाण पटहं ज्ञानं निदानश्रियः ॥ ४० ॥ ज्ञानं कर्ममहीध्रभेदकुलिशं शंसंतिमोहापहं ज्ञानं भूषण मंगिनां वरधनं ज्ञानं जगद्दीपनम्।

एतत्तत्त्वम तत्त्वमतदपर ज्ञानेन विज्ञायते लोकालोक विलोक नैक पटवः स्युर्ज्ञान दानात्सज्जनः ॥ ४१ ॥ पठति पाठयते पठतामसौवसन भोजन पुस्तक वस्तुभिः । प्रतिदिन कुरुतेय उपग्रहं सइह सर्व विदेव भवेन्नरः ॥ ४२ ॥ इतिश्रीम० भा० मीनपुरा० द्वितीय स्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

भा० टी०—मीन क्षत्रिय ज्ञान के बल से जैसे २ गुरुदेव के कहे हुए तत्त्व पदार्थ को जानता है वैसे २ धार्मिक कार्यों में भी मति (बुद्धि) की लगन बढ़ती ही जाती है एवं पापों को नष्ट करने के लिये भी वह पूर्ण समर्थ हो जाता है। और इसके विरुद्ध जो मीनक्षत्रिय, धर्म, अर्थ, काम आदि व्यवहारों में ज्ञान शून्य होता है तथा जिसकी विचार बुद्धि सर्वथा नष्ट होगई है, रात दिन जो अपना पेट पालन में ही रहता है वह ज्ञानहीन केवल पशु है। कुमतान्धकार को नष्ट करने के लिये ज्ञान ही सूर्य है, यथार्थ जगत् को देखने के लिये ज्ञान ही लोचन है, ज्ञान ही नाना प्रकार की नीतियों (नदियों) का उत्पत्ति स्थान कुलगिरी है। केवल ज्ञान से ही सब कलंक दूर हो जाते हैं, मुक्ति स्त्री को वश करने को ज्ञान ही निर्मल मन्त्र है। मनको शुद्ध करने का ज्ञान ही मूल कारण है, स्वर्गलोक को फतह करने के लिये प्रस्थान समय का ढोल ज्ञान ही है, कहांतक कहें, सर्व संपत्तियों का मूलकारण एक ज्ञान ही है पापकर्मरूपी पर्वतो को चूर्ण करने के लिये ज्ञान ही वज्र है, मोह को दूर करने का निश्चित उपाय एक ज्ञान है, मनुष्यों का प्रधान धन और भूषण एक ज्ञान है, जगत् में मनुष्य की कीर्त्ति को प्रदीप्त करने वाला ज्ञान है, सत्यासत्य पदार्थों का निर्णय ज्ञान से होता है, ज्ञान का दान करनेवाले मनुष्य लोकालोक के स्वरूप को जानने वाले ब्रह्मज्ञानी होजाते हैं। जो पुरुष स्वयं पढ़ता है एवं दूसरों को ज्ञान पढ़ाता है और पढ़नेवाले मनुष्यों को भोजन, पुस्तक, स्थान, औषध आदि वस्तुओं से जो प्रतिदिन ज्ञान की मदत करता रहता है, वह इस लोक में ही सर्वज्ञ भगवान् के समान परम आदरणीय होता है इसमें कोई संशय नहीं ॥ ३८–४२ ॥

॥ इतिश्रीमद्भागवत मीनपुराणे द्वितीयस्कंधेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ अथ चतुर्दशोऽध्याय प्रा० ॥ दान धर्म प्रशंसा व० ॥ भृगुरुवाच–दानं गुणो गुण शतैरधिको गुणानां विद्याविभूषयति तद्यदिकिं ब्रवीमि। यतद्वयं यदि सनाथयितुं विवेक एतत्त्रयं यदि मदोन नमोस्तुतस्मै ॥ १ ॥ भूताऽभय प्रदानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात् दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव सदा भवेत् ॥ २ ॥ सर्वेषामेव दानाना मेक जन्मानुगं फलम्

हाटक चितिनारीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ३ ॥ औषधं पथ्यमाहारं स्नेया भ्यंगं प्रति-श्रयम् । यः प्रयच्छति रोगिभ्यः सभवेद्व्याधि वर्जितः ॥ ४ ॥ सुवासिनीं कुमारीं च भोजयित्वानरानपि । बाल वृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुंजीतवागृही ॥ ५ ॥ अन्नदस्तु भवेन्नित्यं सुतृप्तोनिभृतः सदा । अम्बुदश्च सुखीनित्यं सर्व कर्म समन्वितः ॥ ६ ॥ यस्मादन्नात्प्रजाः सर्वाः कल्पेकल्पे सृजत्प्रभुः । तस्मादन्नात्परं दानं विद्यतेनहि किंचन ॥ ७ ॥

भा० टी०—अब चौदहवाँ अध्याय सुरु होता है इसमें गृहस्थ के दान धर्म की प्रशंसा और दान वर्णन अधिकार है भृगुजी बोले—मनुष्योचित सौगुणों में एक दान का गुण ही अधिक प्रशंसनीय है। यदि इस गुण को विद्या भी विभूषित करदें तो फिर कहना ही क्या, विद्या और दान इन दोनों गुणों के साथ यदि विवेक भी हों तो मनुष्य की और भी शौभा वढ़ जाती है। विद्या दान और विवेक इन तीनों गुणों के साथ यदि मद (अभिमान) न हों तो उस पुरुष को मेरा प्रणाम है। प्राणियों को अभय प्रदान करने वाला मनुष्य सर्व कामनाओं को पा लेता है और वह दीर्घायु होकर सदा सुखी रहता है। और तो सब दानों का फल एक ही जन्म में मिलता है किन्तु सौना पृथ्वी और कन्यादान दान का फल सात जन्मों तक साथ रहता है। औषध, पथ्य आहार, तैल और स्थान जो मनुष्य रोगियों को देता है वह हर एक भव में रोग रहित होता है। व्याह की हुई बहन बेटी, कुमारी लड़की, आए हुए महमान, रोगी और बाल वृद्धों को पहिले खिलाकर फिर स्वयं भोजन करना चाहिये। अन्न दान करने वाला मनुष्य नित्य सुतृप्त, सुशिक्षित, निश्चल और सदा विनीत होता है एवं जल दान करने वाला सदा सुखी और सर्व प्रकार के धर्म कर्मों को करने वाला होता है। क्योंकि प्रत्येक कल्प में प्रजापति (मीन भगवान्) अन्न से ही प्रजा को उत्पन्न करते हैं। अतएव अन्न दान के समान दूसरा कोई दान नहीं है ॥ १–७ ॥

दानैर्होमैर्जपैर्नित्यं प्राणायामैर्द्विजोत्तमः । पातकेभ्यः प्रमुच्येत वेदाभ्यासान्नसंशयः ॥ ८ ॥ वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च । अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरतिपौर्विकीम् ॥ ९ ॥ अयनेविषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये । चन्द्रसूर्य ग्रहेचैव दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ १० ॥ अमावास्यां द्वादश्यां च संक्रांतौ च विशेषतः । एताः प्रशस्तास्तिथयो भानु वारस्तथैव च ॥ ११ ॥ तत्र स्नानं जपोहोमो ब्राह्मणानां च भोजनम् । उपवासस्तथा दानमेकैकं पावयन्नरम् ॥ १२ ॥ स्नातः शुचिर्धौत वासाः शुद्धात्माविजितेंद्रियः । सात्विकंभावमास्थायदानंदद्याद्वि चक्षणः ॥ १३ ॥

भा० टी०—दान, होम, जप-प्राणायाम और नित्य वेदाभ्यास करने से हे द्विजों; मनुष्य

समस्त पापों से छूट जाता है इसमें कोई संशय नहीं। निरंतर वेदभ्यास, शौच, तप, और सर्व जीवों के साथ द्रोह (वैर) न करने से मनुष्य को जाति स्मरण (पूर्व भव की याद) ज्ञान होता है। दक्षिण से उत्तर और उत्तर से दक्षिण में सूर्य्य के आने पर, रात और दिन के बराबर होने पर, बड़ा उपद्रव होने पर, तीन तिथियें इकट्ठी आजाने पर, और ग्रहण के दिन दिया गया दान अक्षय फल दायक होता है। अमावास्या, द्वादशी, संक्रांती और आदित्य वार भी दान करने के लिये प्रशस्त है। इन दिनों में किया गया स्नान, दान, जप, होम, ब्रह्म भोजन और उपवास इनमें से अकेला भी व्रत नियम मनुष्य को पवित्र कर देता है। विचक्षण मनुष्य को चाहिये कि स्नान कर, पवित्र हो, धोए हुए शुद्ध वस्त्र पहन, शुद्ध अन्तः करणसे, जितेन्द्रियहो, सात्विक भाव धारण करके सुपात्र को दान दें।॥ ८-१३॥

यस्यत्वेक गृहेमूर्खोदूर स्थश्चगुणान्वितः। गुणान्विताय दातव्यं नास्तिमूर्खे व्यतिक्रमः॥ १४॥ ब्राह्मणा भिक्रमोनास्ति विप्र वेदवि वर्जिते। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहिभस्मनिहूयते ॥ १५॥ मैनाय मीन भक्ताय कुलीनायदरिद्रिणे। संतुष्टाय विनीताय सर्व भूतहितायच ॥ १६॥ वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिंद्रियाणां च संयमः। सदा युक्ताय विप्राय यद्दांहितदक्षयम्॥ १७॥

भा० टी०—अपने घर के पास ही यदि मूर्ख ब्राह्मण रहता हो और गुणवान्ब्राह्मण यदि दूर देश में रहता हो तो मूर्ख को न दे कर दूर स्थको ही बुलाकर दान देना चाहिये, इसमें मूर्ख ब्राह्मण का व्यती क्रम (अनादर) करने में कोई दोष नहीं है। वेदों के ज्ञान शून्य ब्राह्मण का बहिष्कार करने से धर्म का उलंघ नहीं होता, क्योंकि प्रज्वलित अग्नि को छोड़ कर भस्मि (राख) में घृत कौन होम सकता है। मीन भगवान्की संतान, वा मीन भगवान् की पूजा करने वाले, मीनो पासक, मीन भक्त, कुलीन, निर्धन, संतोषी, विनम्र, सर्व जीवों के हित चिंतक, वेदों को पढ़ने वाला, तपस्वी, और इन्द्रियों के संयम युक्त ब्राह्मण को जो दिया जाता है वह अक्षय पुण्य के लिये होता है।॥ १४-१७॥

वापी कूपतडागानि उद्यानोप वनानिच। पुनः संस्कार कर्त्ताचलभतेमौक्तिकं फलम्॥ १८॥ धनंफलतिदानेन जीवितं जीव रक्षणात्। रूप मारोग्य मैश्वर्य महिंसाफल मनुश्ते॥ १९॥ सुक्षेत्र वा पयेद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम्॥ सुक्षेत्र सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तंनन श्यति॥ २०॥ यतिहस्ते जलंदद्याद्भैक्षंदद्यात्पुनर्जलम्। तद्भैक्षंमेरुणातुल्यं तज्जलंसागरोपमम्॥ २१॥

भा० टी०—बावड़ी, कूआ, तालाब, उद्यान और बाग बाड़ी आदि का जीर्णोद्धार कराने वाला

मनुष्य मुक्ति पाता है। दान देन से धन सफल होता है, दूसरे जीवों का रक्षण करने से अपना जीवन सार्थक होता है, रूप, चातुरी, और ऐश्वर्य को मनुष्य अहिंसा से पाता है। अच्छे क्षेत्र में बीज बोना चाहिये और अच्छे पात्र को ही दान देना चाहिये। क्योंकि सुक्षेत्र और सुपात्र में ही बोया एवं दिया सार्थक होता है। अपने घरमें यदि कोई सुपात्र यति आजायें तो प्रथम तो उसको जल देना चाहिये और फिर उसको भिक्षा देना चाहिये फिर जल देना चाहिये। इस प्रकार वह भिक्षा तो सुमेरु पर्वत के समान हो जाती है और वह जल समुद्र के समान हो जाता है॥ १८-२१॥

अतिथिंतत्रसंप्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना। तथा सनप्रदानेन पादप्रक्षालनेनच॥ २२॥ श्रद्धयाचान्न दानेन प्रियप्रश्नोत्तरेणच। गच्छ्र तश्चानुयानेन प्रीति मुत्पादयेद् गृही॥ २३॥ अतिथिर्यस्यभग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्त्तते। पितरस्तस्यनाश्नंति दशवर्षा णिपञ्चच॥ २४॥ काष्ठ भारसहस्त्रेण घृतकुंभशतेनच। अतिथिर्यस्यभग्नाश स्तस्यहोमोनिरर्थकः॥ २५॥ चोरोवा यदि वा चाण्डालः शत्रुर्वा पितृघातकः। वैश्वदेवेतु संप्राप्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः॥ २६॥ माता पिता गुरु र्भार्याप्रजादीनः समाश्रित। अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्ग उदाहृतः॥ २७॥ भरणंपोष्य वर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्। नरकः प्रीडनेतस्य तस्माद्यत्नेनतंभरेत्॥ २८॥

भा० टी०—अपने घर यदि कोई अतिथि आजायें तो उसका स्वागत, आसन दान, पाद प्रक्षालन आदि से पूजन करना चाहिये। श्रद्धा पूर्वक दान देकर, प्रिय वचनों से और जाते हुए को दूर तक पहुंचाकर अतिथि को प्रसन्न करै। जिस गृहस्थ के घर से अतिथि निराश लोट जाता हो तो पन्नरह वर्षों तक उसके पितरों को भोजन नहीं मिलता। हजार भार काष्ठ और सौ कुंभों से प्रति दिन होम करना भी निरर्थक है यदि उस के घर से अतिथि निराश लोट गया। अतिथि चाहे चौर हो, चांडाल हो, बाप को मारने वाला चाहे शत्रु हो, भोजन के समय आगया तो वह स्वर्ग को देने वाला है। मात, पिता, बड़े, बूढे, स्त्री, अपनी संतान, अनाथ, रोगी, अपने आश्रय में रहने वाला, अपाहिज, अतिथि, और, अग्नि यह सब पोष्य वर्ग कहाते हैं। पोष्य वर्ग का सदा भरण पौषण करना चाहिये। इनका भरण पौषण प्रशस्त और स्वर्ग का साधन है, इसके अतिरिक्त इन्होंका पीडन नरक को देता है, अतएव इन्हों को कभी दुःख नहीं देना चाहिये॥ २२-२८॥

ददातिप्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति। भुंक्ते भोजयते नित्यंषड्विधं प्रीति लक्षणम्॥ २९॥ दानंप्रियवाक्य सहितं ज्ञानमगर्वंक्षमान्वितं शौर्य्यम्। वित्तंत्यागसमेतं दुर्लभमेत-

चतुर्विधंभद्रम् ॥ ३० ॥ दानं भोगस्तथानाशः स्याद्द्रव्यस्यगतित्रयम् ॥ योनददेन भुंक्ते च तृतीयातद्गतिर्भवेत् ॥ ३१ ॥ शतेषु जायते शूरः सहस्रेषुच पण्डितः । वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वानवा ॥ ३२ ॥ नरणेविजयाच्छूरोऽध्यय नाश्नच पंडितः । न वक्ता वाक्पटुत्वेन नदाताचार्थदानतः ॥ ३३ ॥ इन्द्रियाणांजये शूरो धर्मंचरति पंडितः । हितप्रायोक्तिभिर्वक्ता दातासन्मानदानतः ॥ ३४ ॥ इतिश्रीम०भा० मीनपुराणे द्वि० स्कं० चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

भा० टी०-- देना, लेना, गुप्त बात कहना, पूछना, खाना, खिलाना, प्रीति के ये छः लक्षण है। प्रिय वाक्य सहित दान, गर्व रहित ज्ञान, क्षमा सहित शौर्य, और दान सहित धन ये चार बातें कल्याणकारी मनुष्य को अति दुर्लभ है। दान, भोग, और नाश ये तीन गतियें होती है धन की, जो नहीं देता और नहीं भोगता उसके धन की तीसरी गती (नाश) होती है। सौ आदमियों में एक मनुष्य शूरवीर निकल सकता है। हजार मनुष्यों में एक पंडित मिल सकता है, लाख मनुष्यों में एक मनुष्य शास्त्र का वक्ता हो सकता है, किन्तु दातार तो किरोड़ों में कोई एक मुसकिल से मिलता है। लड़ाई में दुस्मनों को मार भगाने वाला शूर वीर नहीं कहा सकता, रात दिन रटते रहने से पंडित नहीं होता। वचन की चतुराई से वक्ता नहीं कहाता, केवल धन के लुटादेने से दाता नहीं कहला सकता। इन्द्रियों को जीते वह शूर वीर है, धर्म नियम को यथार्थ पाले, वही पंडित है, सब के हित की कहे, वही वक्ता है, सन्मान पूर्वक जो दें वह दाता है ॥ २६-३४ ॥

॥ इतिश्रीमद्भागवत् मीनपुराणे द्वितीयस्कंधे चतुर्दशोऽध्याय समाप्तः ॥ १४ ॥

अथपञ्चदशोऽध्याय प्रा० गृहस्थधर्मविशालता वर्णनम् (भृगुरु वाच) देवैश्चैव मनुष्यैश्चतिर्यग्भिश्चोपजीव्यते । गृहस्थः प्रत्यहंयस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठाश्रमोगृही ॥ १ ॥ त्रयाणा माश्रमाणांतु गृहस्थोयोनिरुच्यते, सीदमानेनते नैव सीदन्ती हेतरेत्रयः ॥ २ ॥ मूल प्राणे भवत्स्कन्धः स्कंधाच्छाखेतिपल्लवाः । मूले नैवविनष्टेन सर्व मेतद्विनश्यति ॥ ३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनरक्षणी योगृहा श्रमी ॥ राज्ञाचान्यैस्त्रिभिः पूज्योमाननीयश्चसर्वदा ॥ ४ ॥

भा० टी०—अब १५ वाँ अध्याय सुरु होता है। इस में गृहस्थ धर्म की विशालता का वर्णन है, भृगुजी बोले—देवता, मनुष्य, तिर्यंच आदि सब की उपजीवि का गृहस्थ बढ़ाता है अतएव सर्व आश्रमों

में गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है। अन्य तीन आश्रमों का उत्पत्ति स्थान गृहस्थाश्रम है, इसी के क्षीण होने पर सर्व आश्रम क्षीण होजाते हैं। मूल की रक्षा होने पर स्कन्ध शाखा पत्ते आदि सब की रक्षा होती है और मूल के नष्ट होने पर सब नष्ट हो जाते हैं। अतएव राजा माहाराजा आदिकों को चाहिये कि सर्व प्रयत्नों से गृहस्थों की रक्षा करै। एवं ब्राह्मणादि तीन वर्ण वालों के भी गृहस्थाश्रमी माननीय और पूजनीय होता है ॥ १-४ ॥

गृहस्थोपिक्रियायुक्तोगृहेण नगृहीभवेत्। न चैवपुत्रदारेण स्वकर्म परि वर्जितः ॥ ५ ॥ अहुत्वाच तथाजप्त्वा अदत्त्वायश्चभुंजते। देवा दी नामृणी भूत्वादरिद्रिश्चभवेन्नर ॥ ६ ॥ विभागशीलोयो नित्यंक्षमा युक्तोदयालुकः। देवतातिथिभक्तश्च गृहस्थःसतु धार्मिकः ॥ ७ ॥ दयालज्जाक्षमाश्रद्धा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता। गुणायस्यभवंत्येते गृहस्थो मुख्यएवसः ॥ ८ ॥

भा० टी०—स्व धर्म कर्म वर्जित मनुष्य यदि मैथुनादि क्रिया युक्त एवं पुत्र स्त्री घरबार सहित हो, तो भी गृहस्थाश्रमी कहलाने के योग्य नहीं हो सकता। अग्नि होम नहीं करने वाला, गायत्री मन्त्र का जाप नहीं करने वाला, और बिना दान दिये ही भोजन करलेने वाला गृहस्थ, देवतादिकों का ऋणि होकर सदा दरिद्रि रहता है। जो सब को बाँट कर खाता है, नित्य क्षमा और दयायुक्त रहता है, एवं देवता और अतिथि का जो भक्त होता है वही गृहस्थ धर्मी है। जिसमें दया लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, बुद्धि, दान और कीये हुए उपकारों का मान्ना आदि गुण होते हैं। वही गृहस्थाश्रमियों में मुख्य गणनीय है। ॥ ५-८ ॥

सुधान व गृहस्थस्यईषदानानि वैनव। न व कर्माणिच तथा विकर्माणि नवैवतु ॥९॥ मनश्चक्षुर्मुखंवाचं सौम्यंदद्याचतुष्टयम्। अभ्युत्थान मिहागच्छ पृच्छालापः प्रियान्वितः ॥ १० ॥ उपासनमनुव्रज्या कार्य्याण्येतानिनित्यशः ॥ ईषदानानि चान्यानि भूमिरापतृणा-निच ११ ॥ पाद शौचं तथा भ्यंग आश्रयः शयनानिच। किंचिद्द्याद्यथाशक्ति नास्या-नश्नन्गृहे वसेत्। संध्यास्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ॥ १२ ॥ वैश्वदेवंतमाति-थ्यमुद्धृतंचापि शक्तितः। पितृ देव मनुष्याणांदीनानाथ तपस्विनाम् ॥ १३ ॥ गुरु मातृ पितॄणांचसत्रि भागोयथार्हतः। एतानिनवकर्माणि विकर्माणितथापुनः ॥ १४ ॥

भा० टी०—गृहस्थ के नौ अमृत है, नौ ईषदान है, नौ कर्म और नौ विकर्म है। यदि सज्जन पुरुष अपने घर पर आवै तो मन, नेत्र, मुख, और वाणी इन चारों को सौम्य रक्खै, इनके पीछे देखते ही उठ खड़ा हो, आने का कारण पूछे। प्रीति सहित वार्त्तालाप करै, सेवा बन्दगी करै जाते समय

पीछे २ कुछ दूर तक चले। इस भांति नौ काम प्रति दिन करे। अब नौ ईषछान कहते हैं। मिट्टी, जल, तृण, पैर का धौना, उबटन, आश्रय, शय्या, अपनी शकित के अनुसार और भी कुछ पान तमाखु आदि, का देना, क्योंकि बिना कुछ खिलायें पीलायें घर में निवास नहीं है (याने घर की शौभा नहीं है) संध्या, स्नान, जप, होम, वेदपाठ, देव पूजा, बलिवैश्व देव, शक्तयानुसार अन्न देकर अतिथि का सत्कार और पितर, देवता, मनुष्य, दीन, अनाथ, तपस्वी, गुरु, माता, पिता, इन सब का यथारीति से विभाग, यह नौ कर्म है। अब नव विकर्मों को कहते हैं॥ ६-१४॥

अनृतंपारदार्यं च तथाऽभक्षस्य भक्षणम्। अगम्यागमनांपेय पानं स्तेयं च हिंसनम्॥ १५॥ अश्रौत कर्मा चरणं मीनधर्म बहिष्कृतम्। न वैतानिविकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत्॥ १६॥ पैशुन्यमनृतंमाया कामः क्रोधस्तथा प्रियम्। द्वेषोदंभः परद्रोहो न वैतान्यपिवर्जयेत्॥ १७॥ आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रो मैथुनभेषजे। तपोदानाप मानौ च न वगोप्यानि सर्वदा॥ १८॥

भा० टी०—झूट, पराई स्त्री, अभक्ष्य वस्तु का भक्षण, अगम्या स्त्री में गवन, पीने के अयोग्य वस्तु का पान, चौरी, हिंसा, वेद निषिध कर्मों का करना, मीन भगवान के कहे हुए धर्म का अनाचरण, यह नौ कर्म निन्दित है इन सब को त्याग दे। तथा चुगली, झूंट, माया, काम, क्रोध, अप्रिय वाक्य, द्वेष, दंभ, द्रोह, ये भी नौ विकर्म ही है इन को भी त्याग दे। अवस्था, धन, घर का छिद्र, मन्त्र, मैथुन, भेषज, तप, दान, और अपमान ये नौ सर्वथा छिपाने योग्य है॥ १५-१८॥

मातापित्रोगुरौमित्रे विनीते चोपकारिणि। दीनानाथ विशिष्टेषु दत्तं तत्सफलं भवेत्॥ १९॥ धूर्ते बंदिनिमल्ले च कुवैद्ये कितवेशठे। चाटुचारण चोरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम्॥ २०॥ यथैवात्मा परस्तद्वद्द्रष्टव्यः सुखमिच्छता। सुखदुःखानि तुल्यानि यथात्मनितथापरे॥ २१॥ सुखं वा यदि वा दुःखं यत्किंचित्क्रियते परे। यत्कृतंतु पुनः पश्चात् सर्वमात्मनितद्भवेत्॥ २२॥ नक्लेशेन विना द्रव्यं विना द्रव्येण न क्रिया। क्रियाहीने न धर्मःस्याद्धर्महीने कुतः सुखम्॥ २३॥ सुखं वांछन्ति सर्वेहितच्चधर्म समुद्भवम्। तस्माद्धर्मः सदाकार्यः सर्ववर्णैः प्रयत्नतः॥ २४॥

भा० टी०—माता, पिता, गुरु, मित्र, नम्र, उपकारी, दीन, अनाथ, और सज्जन इन को दिया हुआ सफ होता है। धूर्त, बन्दी (भाट) मल्ल, कुवैद्य, कपटी, शठ (मूर्ख) चाटु (खुशामदी) चारण और चौर इन सब को दिया गया धन निष्फल है (परलोक में नहीं मिलता) जो मनुष्य अपने सुख की

अभिलाषा करता है वह अपने ही समान दूसरे को भी देखै। कारण कि जिस भांति सुख दुःख अपने को होता है उसी भांति दूसरे को भी होता है, जो सुख दु ख दूसरे पर किया जाता है वह सब अपनी आत्मा में ही आकर प्राप्त होते हैं। परिश्रम के बिना धन नहीं मिलता और बिना धन के गृहस्थाश्रम की कर्म क्रियाएं नहीं होती। और क्रिया हीन के धर्म नहीं होता, धर्महीन मनुष्य को सुख नहीं मिलता। सुखों की वांच्छा तो सभी लोक रखते हैं। परन्तु वह सुख तो एक धर्म सेवन से ही मिलते हैं। इस कारण सभी वर्णों को यत्न सहित धर्म ही सेवन करना चाहिये॥ १६-२४॥

शौचेयत्नः सदा कार्यः शौचमूलोहिमारणः। शौचाचार विहीनस्य समस्ता निष्फ-लाः क्रियाः॥ २५॥ शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यंतरं तथा। मृज्जलाभ्यां स्मृतंबाह्यं भाव शुद्धि रथान्तरम्॥ २६॥ अशौचाद्विवरं बाह्यं तस्मादाभ्यन्तरंवरम्। उभाभ्यांतु शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरेशुचिः॥ २७॥ उषःकाले च संप्राप्ते शौचं कृत्वा यथाविधिः। ततः स्नानं प्रकुर्वीत दन्तधावत पूर्वकम्॥ २८॥ अत्यन्तमलिनःकायो नवच्छिद्र समन्वितः। स्रवत्येषदिवारात्रौ प्रातः स्नानं विशोधनम्॥ २९॥ क्लिद्यन्तेहि प्रसुप्तस्य इन्द्रियाणि स्रव-न्ति च। अस्नात्वा नाचरेत्किंचिज्जप्होमादिकं द्विजः॥ ३०॥

भा० टी०—शौच (शुद्धता में) सदा यत्न करना चाहिये। क्योंकि मारण जाति का धर्म ही शौच मूल है। शौच आचार हीन मनुष्य की समस्त क्रियाएँ निष्फल होती है। बाह्य और अभ्यन्तर भेद से शौच दो प्रकार का है, मिट्टी और जल आदि के द्वारा अपने शरीर को शुद्ध करना यह तो बाह्य शौच कहाता है और मन की शुद्धता को अभ्यन्तर शौच कहते हैं। अशौच रहने से तो बाह्य शौच प्रधान है, और बाह्य शौच से अभ्यन्तर सौच श्रेष्ठ होता है, इन दोनों ही प्रकार के शौचों से जो युक्त होता है वही शुद्ध एवं पवित्र है। प्रातः काल होने पर हाथ मूंह धौने के बाद दन्तून करके फिर स्नान करना चाहिये। क्योंकि नौ छिद्र वाला यह मलीन शरीर रात दिन अशुचि पदार्थों को उग्गेलता रहता है। अतएव उन्हीं का विशोधन करने के लिये प्रातः स्नान करने की गृहस्थ को अत्यन्त आवश्यकता है। रात में सोने के बाद स्वप्न दोषादि से इन्द्रियां शुक्रपीक और मुत्रादि को टपका देती है अतएव बिना किये स्नान के मीन क्षत्रिये को जप होम आदि कुछ भी नहीं करना चाहिये॥ २५-३०॥

गुणादश स्नानपरस्य साधोरूपं च पुष्टिश्च बलं च तेजः। आराग्यमायुश्च मनोनुरुद्ध दुःस्वप्नघातश्च तपश्चमेधा॥ ३१॥ प्राणायम त्रयंकृत्वा स्नानकाले समाहितः। अहारात्र कृतात्पापात्तत्क्षणा देव मुच्यते॥ ३२॥ नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियांगं मलकर्षणम्। क्रियास्नानं तथा षष्टं षोढास्नानं प्रकीर्त्तितम्॥ ४८॥

भा॰ टी॰—अयेसज्जनो ! रूप, पुष्टि, बल, तेज, आरोग्य, आयुवृद्धि, मन की प्रसन्नता, दुस्वप्न घात, तप और बुद्धि की निर्मलता, स्नान करने में प्रत्यक्ष ये दश गुण तो सभी को दीखते हैं। चित्त में समाधी को धारण करने वाला पुरुष स्नान के समय प्रथम तीन प्राणायाम करके फिर स्नान करे तो दिन रात में किये हुए पापों से तत्काल छूट जाता है। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियांग, मलाप कर्षण, और क्रिया स्नान इस प्रकार स्नान के छः भेद होते हैं ॥ ३१-३३ ॥

अस्नातः पुरुषो नार्हो दान पूजादि कर्मसु। प्रातः स्नानंतदर्थंच नित्यंस्नानं प्रकीर्तितम् ॥ ३४ ॥ चंडालंशवपूयाद्यंस्पृ ष्टामर्लरजस्वालां। ग्रहणादिषुयः स्नातिस्नानं नैमित्तिकंचतत् ॥ ३५ ॥ पुष्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञविधि चोदितम् ॥ तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं ना कामतस्तत्प्रयोजियेत् ॥ ३६ ॥ जप्तु कामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवतांपितॄन्। स्नानंसमा-चरेद्यस्तु क्रियांगंतत्प्रकीर्त्तितम् ॥ ३७ ॥ मलापकर्षणार्थाय स्नानमभ्यंगपूर्वकम्। मलापकर्षणं स्नानं प्रवृत्तिस्तस्यनान्यथा ॥ ३८ ॥ सरित्सुदेवखातेषु तीर्थेषु चनदीषुच। क्रियास्नानंसमु-द्दिष्टं स्नानंतत्र महा क्रिया ॥ ३९ ॥ तीर्था भावेतु कर्तव्यमुष्णोंदक परोदकैः। अद्भिर्गा-त्राणिशुद्ध्यान्ति तीर्थस्नाना त्फलंलभेत् ॥ ४० ॥ तीर्थं प्रप्यानुषंगेण स्नानंतीर्थे समाचरेत्। स्नानजंफलमाप्नोति तीर्थ यात्रा फलेनतु ॥ ४१ ॥ सर्वतीर्थानि पुण्यानि पापघ्नानि सदा-नृणाम् ॥ परस्परानपेक्षाणि कथितानिमनीषिभिः ॥ ४२ ॥

भा॰ टी॰—विना स्नान किये पुरुष दान पूजादि कर्मों के अयोग्य होता है। अतएव उन्हीं धर्म क्रियाओं के करने के लिये प्रति दिन अवश्य प्रातः काल स्नान करना चाहिये, इसी को नित्य स्नान कहते हैं। चांडाल, मृतक, दुर्गन्धी पदार्थ, विष्टा, रजस्वाला स्त्री आदि का स्पर्श होने पर तथा ग्रहण आदि के आने पर जो स्नान किया जाता है उसको नैमित्तिक स्नान कहते हैं। अपने हित की कामना के उद्देश से ज्योतिषी की बताई हुई विधि से पुष्यादि नक्षत्रों में जो स्नान किया जाता है उसी को काम्य स्नान कहते हैं। पूजनीय देवताओं का एवं पवित्र मंत्रों का जाप करने के लिये जो स्नान किया जाता है उसी को क्रियांग स्नान कहते हैं। तैल पीठि मर्दनादि पूर्वक जो अपने शरीर का मल दूर करने के लिये स्नान किया जाता है उस को मलापकर्षण स्नान कहते हैं। दरिया, अकृत्रिम जलाशय, तीर्थ नदी, कुण्ड आदि में जो पुण्य निमित्त स्नान किया जाता है उसको क्रिया स्नान कहते हैं। कारण क्षत्रियों को जहां तक हो सके नित्य तीर्थ के जल से स्नान करना चाहिये। अगर तीर्थ का यथेष्ट संयोग न मिले तो उष्णोदक, व सब से अच्छा जल में स्नान करना चाहिये। तीर्थ जल से पुण्य-फल मिलता है और दूसरे अच्छे जल से शरीर शुद्ध होता है। अपने घर से बहार कहीं जाने पर मार्ग में प्रसगानुसार कोई तीर्थ आगया और

उसमें स्नान किया जावे तो केवल स्नान का ही फल मिलता है, किन्तु तीर्थ यात्रा का फल नहीं मिलता। एक दुसरे की अपेक्षा (जरूरत) नरख कर सभी तीर्थ मनुष्यों को सदा महान्पुण्य का उदय स्वरूप और पापों को नष्ट करने वाले होते हैं। ऐसा बड़े २ महात्माओं का कथन है ॥ ३४-४२ ॥

सर्वेप्रस्रवणाः पुण्याः सरांसिच शिलोच्चयाः। नद्यः पुण्यास्तथा सर्वाजाह्नवीतु-विशेषतः ॥ ४३ ॥ वसा शुक्रमसृङ्मज्जामूत्रविट् कर्ण विएनखाः। श्लेष्मास्थि दुषिका-स्वेदोद्वादशैतेनृणांमलाः ॥ ४४ ॥ षएणा षएणा क्रमशै व शुद्धिरुक्तामनीषिभिः मृद्वारिभि श्चपूर्वेषामुत्तरेषांतु वारिणा ॥ ४५ ॥ गृहाद्दशगुणंकूपं कूपाद्दशगुणंतटम्। तटाद्दशगुणंनद्यां गंगासंख्या नविद्यते ॥ ४६ ॥ नद्यांतुविद्यमानायां नस्नायादन्य वारिणि। नस्नायादल्पतो-येषु विद्यमानेबहूदके ॥ ४७ ॥

भा० टी०—निरन्तर बहने वाले सभी झरने पुण्य स्वरूप है, एवं सरोवर, पर्वत, पुण्य नदियां जिन्हों में गङ्गाजी विशेष पुण्य स्वरूप है। चर्वी, शुक्र, रक्त, अस्थिसार, मूत्र, विष्टा, कान का मल, नाखुन का मल, कफ, हाड़, आखों का गीड़, पसीना, मनुष्यों के ये बारह मल होते हैं। पहिली के छः मलों की शुद्धि पण्डितों ने मिट्टी सहित पानी से कही है, और अगले छः मलों की शुद्धि, केवल पानी से धोडालने पर ही हो जाती है। घर के न्हाने से कूवे पर न्हाने का दश गुणां पुण्य ज्यादे है, और कूवे के स्नान से नदी के तीर पर स्नान करने का दश गुणां फल है, एवं सामान्य नदी के तीर के स्नान से नदी में प्रवेश करके स्नान में दश गुणां विशेष पुण्य होता है और गंगाजी में स्नान करने के पुण्य की संख्या कोई नहीं बता सकता। अपने ग्राम के निकट यदि नदी विद्यमान हों तो उसको छोड़ कर दूसरे जल में कभी स्नान नहीं करना चाहिये। और यदि गहरे जल वाला जलाशय विद्यमान हो तो अल्पजल वाले जलाशय में कभी स्नान नहीं करना चाहिये ॥ ४३-४७ ॥

यस्यपादौचहस्तौच मनश्चैव सुसंयतम्। विद्यातपश्चकीर्त्तिश्च सतीर्थफलमश्नुते ॥ ४८ ॥ नृणांपापकृतांतीर्थे पापस्यशमनंभवेत्। यथोक्त फलदंतीर्थं भवेच्छुद्धात्मनांनृणाम् ॥ ४९ ॥ ज्ञानं तपोग्निराहारोमृन्मनोवार्युपाञ्जनम्। वायुः कर्मार्क कालौचशुद्धेकर्तृणिदेहि-नाम् ॥ ५० ॥ क्षांत्याशुद्धयन्ति विद्वांसो दानेनाकार्य कारिणः। प्रच्छन्नपापाजप्येन तपसावेदवित्तमाः ॥ ५१ ॥ मृत्तोयैः शुद्ध्यतेशोध्यं नदीवेगेनशुद्ध्यति। रजसास्त्री मनोदुष्टा संन्यासेनद्विजोत्तमः ॥ ५२ ॥ अद्भिर्गात्राणिशुद्ध्यन्तिमनः सत्येनशुद्ध्यति। विद्या तपोभ्यां-भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेनशुद्ध्यति ॥ ५३ ॥

भा० टी०— जिस के हाथ पाँव और मन वसी कृत हो, एवं जो विद्यावान् कीर्त्तिमान और तपस्वी हो वही तीर्थ यात्रा के फल को पाता है। तीर्थों में पापीयों के सभी पाप शान्त हो जाते हैं और शुद्धात्माओं कोही तीर्थ यथोक्त फल देते हैं। ज्ञान अग्नि, सात्विक आहार, मृति का, मन, पानी, शुभलेप, वायु, कर्म, सूर्य्य, और काल ये १२ शुद्धि के कारण है। विद्वानों की शुद्धि क्षमा करने से होती है, अकार्य करने वाले की शुद्धि दान देने से होती है, प्रछन्न गुप्त, पाप करने वाले की शुद्धि जाप करने से होती है, ब्राह्मणों की शुद्धि तप से होती है। मकान आदि पदार्थों की शुद्धी मिट्टी और पानी से होती है, नदी की शुद्धी प्रवाह से होती है, मनो दुष्टास्त्री रजस्वाला होने पर शुद्ध होती है। ब्राह्मण कीशु० संन्यास लेने पर होती है। जल से शरीर की शुद्धी होती है, मन की शुद्धी सत्य से होती है। जीवात्मा की शुद्धी विद्या और तप से होती है और बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है ॥ ४८-५३ ॥

सर्वेषामेव शौचानामर्थं शौचंपरंस्मृतम् । योर्थेशुचिर्हिसशुचिर्नमृद्वारि शुचिः शुचिः ॥ ५४ ॥ कुचैलिनंदन्तमलोप धारिणं बह्वाशिनंनिष्ठुर भाषिणंच । सूर्योदेव चास्तमिते-शयानं विमु चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥ ५५ ॥ स्वभावेन हितुष्यन्तिदेवाः सत्पुरुषाः पिता । ज्ञातय अन्नपानाभ्यांवाक्यदानेन पंडिताः ॥ ५६ ॥ दृष्टिपूतंन्य सेत्पादं वस्त्रपूतंपिवेज्जलम् । शास्त्रपूतंवदेद्वाक्यंमनः पूतं समाचरेत् ॥ ५७ ॥ शुद्धंभूमिं गतंतोयंशुद्धा नारी पतिव्रता । शुचिर्धर्मपरोराजा ब्रह्मचारि सदा शुचिः ॥ ५८ ॥ सत्यशौचंतपः शौचं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । सर्वभूतदया शौचंजल शौचंतुपश्चमम् ॥ ५९ ॥ एषः शौचस्यवः प्रोक्तः शारीरस्यविनिर्णयः । नानाविधानांद्रव्याणां शुद्धेः श्रृणुतनिर्णयम् ॥ ६० ॥ इतिश्रीमीनपुराणे द्वितौ० स्कं० पञ्चदशोऽध्याय ॥ १५ ॥

भा० टी०—सर्व प्रकार की शुद्धियों में अर्थ (धन) की सुद्धि श्रेष्ठ है, जो द्रव्य में शुद्ध है वही पवित्र है बिना धन के कोरे मिट्टी और पानी से गृहस्थ शुद्ध नहीं हो सकता। खराब मैले कुचेले वस्त्र पहन्ने वाले को, दांतून नहीं करने और कभी स्नान नहीं करने वाले को, ज्यादे खाने वाले को, कठोर वचन कहने वाले को, सूर्योदय और सूर्यास्त समय सुते रहने वाले को लक्ष्मी छोड़ देती है, चाहे वह इन्द्र भी क्यों न हो। देवता, सत्पुरुष, और माता पिता, गुणी जन पर स्वभाव से ही संतुष्ट हो जाते हैं, और ज्ञाति लोक खिलाने पिलाने पर तथा पंडित लोक मृदुवाक्य एवं दान मान से खुस होते हैं। दृष्टी से देख कर पैर रखने चाहिये, वस्त्र से छान कर जल पीना चाहिये, शास्त्रानुसार वचन कहने चाहिये, और पहले मनसे विचार कर काम करने चाहिये। पृथ्वी पर रहा हुआ जल शुद्ध माना जाता है, पतिव्रता स्त्री शुद्ध है, धर्म परायण राजा शुद्ध है और ब्रह्मचारी सदा पवित्र होता है। सत्य, तप, इन्द्रियनिग्रह,

सर्व प्राणियों की दया, और जल यह ५ पवित्रता के कारण है। इस प्रकार से शारीरिक शुद्धि का निर्णय हुआ, नाना प्रकार के द्रव्यों की शुद्धी का निर्णय कहता हूं सुनो ॥ ५४–६० ॥

॥ इतिश्रीमद्भागवत मीनपुराणे द्वितीयस्कंधे पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १५ ॥

अथषोडशोऽध्याय प्रा० ॥ वस्तु शुद्धी व० । भृगुरुवाच तेजसानांमणीनांच सर्वस्याश्ममयस्यच, भस्मनाद्भिर्मृदाचैव शुद्धिरुक्तामनीषिभिः ॥ १ ॥ निर्लेपं कांचनंभांड-मद्भिरेवविशुद्ध्यति । अब्जमश्ममयंचैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥ २ ॥ अपामग्नेश्च संयोगद्धैमं-रौप्यंचनिर्बभौ । तस्मात्तयोः स्वयोन्यैवनिर्णे को गुणवत्तरः ॥ ३ ॥ ताम्रायः कांस्यरैत्या-नांत्रपुणः सीसकस्यच । शौचेयथार्हं कर्तव्यंक्षाराम्लोदक वारिभिः ॥ ४ ॥ अद्भिस्तु प्रोक्षणं-शौचं बहूनांधान्यवाससाम् । प्रक्षालनेनत्वल्पानामद्भिः शौचंविधीयते ॥ ५ ॥

भा० टी०—अब १६ वाँ अध्याय सुरु होता है इसमें अशुद्ध हुई वस्तुओं की पुनः शुद्धि का वर्णन है। भृगुजी बोले चमकीले एवं प्रकाश वाले पदार्थ और मणी तथा सर्व प्रकार के पत्थर एवं लोहे के पदार्थों की शुद्धि भस्म पानी एवं मिट्टी से हो जाती है। सोने के बर्तन निर्लेप होने पर पानी से ही शुद्ध हो जाते हैं। शंख, पत्थर के और चांदी के बर्तन भी केवल जल से शुद्ध हैं। पानी और अग्नि के योग से ही तो पृथ्वी के भीतर चांदी सोनादी धातु बनते हैं अतएव उन्हीं से इन्हों की सफाई करना ठीक है। ताम्बा, लोहा, कांसा, पीतल, तरवा, और सीसे के वर्तनों की सफाई क्षार, आँमली आदि के खट्टे पानी से करनी चाहिये। बहुत से धान्य और वस्त्रों की शुद्धीचारों ओर पानी के छींटे डालने से हो जाती है और यदि वे अल्प हो तो जल में प्रक्षालन करने से शुद्ध है ॥ १–५ ॥

चैलवच्चर्मणां शुद्धि र्वैदलानांतथैवच । शाकमूलफलानांच धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६ ॥ कौशेयाविकयोरूषैः कुतपानामरिष्टकैः । श्रीफलैरंशुपट्टानांक्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥ ७ ॥ क्षौमवच्छं खशृंगाणांमस्ति दन्तमयस्यच । शुद्धिर्विजानताकार्या गोमूत्रेणोदकेनवा ॥ ८ ॥ प्रोक्षणात्तृण काष्ठंच पलालंचैव शुद्ध्यति । मार्जनोपांजनैर्वेश्म पुनः पाकेनमृन्मयम् ॥ ९ ॥ मद्यै र्मूत्रैः पुरीषैर्वाष्ठीवनैः पूयशोणितैः । संस्पृष्टंनैवशुद्ध्येत पुनः पाकेनमृन्मयम् ॥ १० ॥ संमार्जनोपांजनेनसेकेनोल्लेखनेनच । गवांचपरिवासेन भूमिः शुद्ध्यतिपञ्चधा ॥ ११ ॥

भा० टी०—पके चमड़ों की शुद्धि वस्त्रों के समान है, वैसे ही दो दाल वाले धान्यों की तथा शाकभाज़ी मूल फलों की शुद्धि धान्यवत है। कीड़ों के रेशमी, और उनी, वस्त्रों की शुद्धीचार से होती है। नेपाली कम्बलों की शुद्धी अरिष्ठे के फलों से होती है। वृत्तों की रेशम के वस्त्र श्रीफल बिल्वादि से शुद्ध होते हैं। कार्पास के वस्त्र श्वेत सरस्व से शुद्ध होते हैं, अलसी, बल्कल, रेशम, सनका बना हुआ कपड़ा, तथा शंख, शींग, अस्ती, और दान्त के बने हुए पदार्थों की शुद्धी गोमूत्र एवं जल से होती है, जल के छिड़कने से, तृण, काष्ठ, और पराल की शुद्धी होती है। रगड़ कर भाड़ने और लीपने से मकान की शुद्धी होती है, आग में पकालेने पर मिट्टी के वर्त्तनों की शुद्धी होती है, परन्तु मद्य, मुत्र, विष्टा, श्लेश्म, थूक, राद, खून, आदि परम अपवित्र पदार्थों से अशुद्ध हुआ मिट्टी का वर्त्तन पुनः पकाने पर भी शुद्ध नहीं होता। भूमि की शुद्धी भाड़ने, लीपने, जल छिड़कने, खोदने, और गाइयों के निवास करने से हो जाती है॥ ६-११॥

यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गन्धोलेपश्चतत्कृतः तान्मृद्वारिचादेयं सर्वासुद्रव्यशुद्धिषु ॥ १२ ॥ आपः शुद्धाभूमिगता वैतृष्ण्यंयासुगोर्भवेत्। अव्याप्ता श्चेदममेध्येन गन्धवर्ण-रसान्विताः ॥ १३ ॥ नित्यंशुद्धः कारुहस्तः पण्येयच्चप्रसारितम् ॥ ब्रह्मचारिगतंभत्त्यंनित्यं-मेध्यमितिस्थितिः ॥ १४ ॥ मत्तिकाविप्रुषश्छाया गोरश्वः सूर्यरश्मयः। रजोभूर्वायुरग्निश्च-स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥ १५ ॥ वापी कूपतडागानांदूषितानांच शोधनम्। उद्धरेत्षट् शतंपूर्णं पंचामृतेनशुद्ध्यति ॥ १६ ॥

भा० टी०—सभी द्रव्यों की शुद्धी में पानी और मिट्टी का बारंबार तब तक इस्तेमाल करते रहना चाहिये कि जब तक उस अशुद्ध पदार्थ का लेप और गन्ध सर्वथा दूर न हों। भूमि पर रहा हुआ उतना पानी शुद्ध माना जायेगा कि जितने में प्यासी गौ तृप्त हो सकती हों। और मारण त्तत्रिय उस पानी को तभी काम में ले सकता है कि यदि वह मूमि अशुचि वर्ण गन्धरस से व्याप्त न हो। कारीगर का हाथ सदा शुद्ध माना जाता है, बेचने के लिये। दुकानों में रक्खी हुई सभी चीजें शुद्ध है, एवं साधू के पात्र में आई हुई सभी वस्तु सदा शुद्ध है। मक्खि का और उसके मुंह का बिन्दू, तथा मनुष्यादि की छाया, गौ, अश्वादि पशु, सूर्य की कीर्ण, रज, भूमि वायु, पानी, अग्नि, आदि कुदरती पदार्थों का स्पर्श सदा शुद्ध ही माने जाते हैं। बावड़ी, कुवा, कुण्ड, तालाब आदि अप्रमित जल वाले जलाशय यदि मृतक आदि से अशुद्ध हो जावें तो, छः सौ घड़े पानी निकाल कर पञ्चामृत डाल देने पर शुद्ध होजाते हैं। ॥ १२-१६ ॥

गोदोहने चर्म पुटेचतोयं यन्त्राकरेकारुकशिल्पिहस्ते। स्त्री बाल वृद्धाचरितानि

यान्यप्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनितानि ॥ १७ ॥ प्राकाररोधेविषमप्रदेशे सेवा निवेशे भवनस्यदाहे । विवाह यज्ञे महोत्सवेषु मीनेनदोषानविकल्पनीयाः ॥ १८ ॥ जातौविप्रोदशाहेन द्वादशाहेन-भूमिपः । वैश्यपंचदशाहेन शूद्रोमासेन शुद्ध्यति ॥ १९ ॥ रात्रिभिर्मासतुल्याभि गर्भस्रावे विशुद्ध्यति । अजातदंतबालेतु सद्यशौचंविधीयते ॥ २० ॥ अहोरात्रा त्तथा शुद्धि बालेत्व-कृतचूडके । तथैवानुपनी तेतुत्र्यहाच्छु द्ध्यन्ति बांधवा ॥ २१ ॥

भा० टी०—गौ दोहना सदा शुद्ध है, गौ दोहने एवं चमड़े की मस्क में रहा हुआ जल भी शुद्ध माना जाता है, यन्त्र में रहा हुआ या बनाया गया तैल, ईख आदि शुद्ध है। आकर में रहे हुए या उत्पन्न हुए सभी पदार्थ शुद्ध है। कारुक और शिल्पियों के हाथ शुद्ध है, स्त्री, बाल और वृद्धों के आचरण जो किसी के प्रत्यक्ष दीखने में न आये हों शुद्ध है। कोट किले का जल दुश्मन आदि से निरोध होने पर, जंगल पहाड़ आदि विषम प्रदेश में, देव मुनी और राजे आदि की सेवा के मोके पर, घर में अगलगने पर, विवाह में, यज्ञ में, मेला खेल आदि महोत्सवों में मीन जाती के राजपूतों को स्पर्शास्पर्श आदि दोषों की कल्पना नहीं करनी चाहिये। बालक के जन्म का सूतक ब्राह्मण के दश दिन, क्षत्रिय के १२ दिन, वैश्य के १५ दिन और शूद्र के एक मास तक रहता है। चारों ही वर्णों में गर्भस्राव का सूतक जितने महीनों का गर्भ गिरे उतनी रात्री तक रहता है। दांत नहीं ऊगे हुए बालक के मरने का सूतक जादे नहीं ठहरता, चूड़ा संस्कार नहीं किये हुए बालक के सूतक एक अहोरात्री रहता है। और जिस का यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ उसके मरने का सूतक तीन दिन तक रहता है ॥ १७-२१ ॥

यतिव्रति ब्रह्मचारि नृपकारु कदीक्षिताः । नाशौचभाजः कथिता राजाज्ञाकारिणश्चये ॥ २२ ॥ शुद्धाभर्तु श्चतुर्थेह्नि स्नानेस्त्रीरजस्वला । दैवे कर्मणिपित्र्येचपञ्चमेहनिशुद्ध्यति ॥ २३ ॥ व्याधितस्य कदर्यस्यऋण ग्रस्तस्य सर्वदा । क्रियाहीनस्यमूर्ख स्यस्त्री जितस्यविशेषतः ॥ २४ ॥ व्यसनासक्तचितस्य पराधीनस्य नित्यशः । श्रद्धात्यागविहीनस्य भस्मान्तंसूतकं भवेत् ॥ २५ ॥

भा० टी०—यति, व्रती, ब्रह्मचारी, राजा, कारुक, दीक्षित, और राज कर्मचारी के मरने पर सूतक नहीं माना जाता। रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करने पर शुद्ध हो पति के पास जा सकती है परन्तु देव पूजादि धर्म कर्म करने के लिये तो पाँचवें दिन शुद्ध मानी जाती है। बिमार आदमी व बादी के शरीर वाला, घबरा कर रोने वाला, सदाऋणी, क्रिया हीन, मूर्ख, विशेष कर स्त्री के आधीन रहने वाला, व्यसनी, दूसरों की गुलामी में रहने वाला, श्रद्धा और त्याग वर्जित मनुष्य की शुद्धी उसके मरण तक भी नहीं हो सकती ॥ २२-२५ ॥

नमीनंस्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेणनीययेत् । अस्वर्ग्याहिगतिर्यास्याच्छूद्रसंस्पर्शदुषिता ॥ २६ ॥ अनुगम्येच्छयाप्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेवच । स्नात्वासचैलः स्पृष्ट्वाग्नि घृतंप्राश्यवि शुद्ध्यति ॥ २७ अंगीकारेणज्ञातीनां ब्राह्मणानुग्रहेणच । पूयन्तेतत्रपापिष्ठा महापातकिनोपिये ॥ २८ ॥ इतिश्री मी० पु० द्वि० स्कं० षोडशोऽध्याय: ॥ १६ ॥

भा० टी०—मीन जाति के राजपूतों को चाहिये कि अपनी जाति के मृतक मीन क्षत्रिये की बैंकुंटी में शूद्र को कभी न जोड़े, क्योंकि शूद्र के स्पर्श से दुषित स्वर्ग नहीं पाता। मीन क्षत्रिय अपनी ज्ञाती या अन्य ज्ञाती के मृतक के साथ श्मशान भूमि में खुसी से जा सकता है वस्त्रों सहित स्नान करने के पश्चात् अग्नि का स्पर्श कर एवं घृत का प्राशन करके शुद्ध हो जाता है। अपनी जाति के स्वीकार करने से या ब्राह्मणों के अनुग्रह से माहापात की पापी भी शुद्ध हो जाते हैं ॥ २६–२८ ॥

॥ इतिश्रीमद्भागवत् मीनपुराणे द्वितीयस्कंधे षोडशमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १६ ॥

—अथसप्तदशोऽध्याय प्रा० । श्राद्धव० भृगुरुवाच । यस्मिन्राशौगते सूर्येविपत्तिः स्याद्द्विजन्मनः । तस्मिन्नहनिकर्तव्या दानपिंडोदकक्रिया॥ १ ॥अपुत्रायेमृताः केचित्पुरुषा-वास्त्रियोपिवा । तेभ्यएवप्रदातव्य मे कोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥ २ ॥ नश्रुतिर्नस्मृतिर्यस्य नशीलं-नकुलंयतः । तस्यश्राद्धंनदाव्यंत्वंधकस्याब्रवीन्मनुः ॥ ३ ॥ सूर्ये कन्यागते कुर्याच्छ्राद्धंयोन गृहाश्रमी । धनंपुत्राः कुलंनश्येत्पितृनिः श्वासपीडया ॥ ४ ॥ कन्यागतेसवितरि पितरोयान्ति-सत्सुतान् । शून्याप्रेतपुरी सर्वायावद्वृ श्चिकदर्शनम् ॥ ५ ॥ ततोवृश्चिकसंप्राप्तौनिराशाः पितरौगताः । पुनः स्वभवनंयान्ति शापंदत्त्वासुदारुणम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—अब १७ वाँ अध्याय सुरु होता है, इस में मृतक पित्रों के श्राद्धों का वर्णन है, भृगुजी बोले कि द्विजन्माओं के मरते समय जिस राशी पर सूर्य नारायण हो, उसी राशी के दिन मृतक के उद्देशय से दान पुन्य और जल तर्पण क्रिया करनी चाहिये। जो विना पुत्र के पुरुष वास्त्री मरे हो, उन्हीं के लिये एकोद्दिष्ट (एक ही नाम से) श्राद्ध करना चाहिये, किंतु उनों का पार्व श्राद्ध नहीं होता। जिस ब्राह्मण को श्रुति स्मृति का ज्ञान न हो, और जिस का शील कुल अच्छा न हो, मनुजी कहते हैं कि उस अज्ञानांध को श्राद्ध का भोजन कभी नहीं देना चाहिये। सूर्य नारायण जब कन्या राशी पर आता है उस समय यदि गृहस्थाश्रमी श्राद्ध न करै तो पित्रों के निः श्वास की पीड़ा से उसके धन,

पुत्र और कुल का नाश हो जाता। क्योंकि सूर्य के कन्यागत होने पर सभी पितर लोक अपने वंशधरों के यहां आजाते हैं और जब तक सूर्य वृश्चिक राशी पर नहीं जाता, प्रे तपुरी शून्य रहती है। यदि उस मोके पर श्राद्ध एवं जल तर्पण नहीं किया जायेगा तो पितर लोक अपने वंश जों को भयंकर शाप देकर वृश्चिक राशी के आने पर निराश होकर पुनः अपने भवन को लौट जाते हैं। अतएव मारण जाति के राजपूतों को कन्यागत में अवश्य श्राद्ध कर्तव्य है ॥ १–६ ॥

पुत्रंवाभ्रातरंवापि दौहित्रंपौत्रकंतथा। पितृ कार्येप्रसक्तायेतेयांति परमांगतिम् ॥ ७॥ यः प्राप्नोतितदा सर्वे कन्यागतेचगंगया सर्व शास्त्रार्थंगमनं सर्व तीर्थावगाहनम्। सर्वयज्ञफलं-विद्याच्छ्राद्धदानान्नसंशयम् ॥ ८ ॥ महापातक संयुक्तोयोयुक्त श्चोपपातकैः। घनैर्मुक्तोयथा-भानुराहु मुक्तश्चचन्द्रमाः सर्वपापविनिर्मुक्तः संतापंचविलंघयेत् ॥ ६ ॥ सर्वेषामेवदानानां श्राद्धदानं विशिष्यते। मेरुतुल्यं कृतंपापंश्राद्धदानंविशोधनम् ॥ १० ॥

भा० टी०—अब अपने किस २ वंशज को पितृगण प्राप्त होते हैं सोही कहते हैं। पुत्र को, भाई को, दोहित्र को, और पोते को, जो २ लोग पितृ कार्य में संलग्न होते हैं वह परमगति को प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य सूर्य कन्यागत होने पर गंगा तट पर जाके श्राद्ध करता है वह गंगा के द्वारा सर्व शास्त्रों के अर्थ को, सर्व तीर्थों को, और सर्व यज्ञों के फलों को प्राप्त होते हैं इसमें कोई संशय नहीं। जो मनुष्य महा पातक एवं उपपातकों से संयुक्त होता है वह भी यदि कन्यागत सूर्य में श्राद्ध करै तो सर्व पापों से और संतापों से वैसे मुक्त हो जाता है जैसे निविड़ बद्लों से सूर्य और चन्द्रमा राहु से मुक्त हो जाता है। क्योंकि सर्व दानों में श्राद्ध दान विशेषता रखता है, मेरु के तुल्य बड़े २ पापों को भी यह नष्ट कर देता है ॥ ७–१० ॥

स्वेनभर्त्रासहश्राद्धं माताभुक्त्वासदैवतम् । पिता महयपिस्वेनैव स्वेनैवप्रपितामही ॥ ११ ॥ षण्णांदेयास्त्रयः पिण्डाएवंदातानमुह्यति। वर्षेवर्षेतुकुर्वीतमातापित्रोस्तु सत्कृतिम् ॥ १२ ॥ नित्यंनैमित्तिकं काम्यं वृद्धि श्राद्धमथापरम्। पार्वणंचेतिविज्ञेयं श्राद्धंपश्चविधंबुधैः ॥ १३ ॥ ग्रहोपरागेसंक्रान्तौपर्वोत्सवमहालयोः निर्वपेत्त्रीन्नरपिण्डानेक मेवमृतेहनि ॥ १४ ॥

भा० टी०—अपने पति के साथ ही अपनी माता भी पुत्र प्रदत्त श्राद्धान्न के पुण्य फल को भोग कर देवताओं के सहित तृप्ती को प्राप्त हो जाती है। वैसे ही पितामही (दादी) भी अपने २ पतियों के साथ तृप्त हो जाती है। इन छओं को प्रति वर्ष तीन ही पिण्ड देने चाहिये। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि, और पा र्वण ये पांच प्रकार के श्राद्ध जान्ने चाहिये। ग्रह उपराग, और संक्रांति तथा

पर्वोत्सव और महालय में ही तीन पिंड देने चाहिये और मृत्यु के दिन तो एक ही पिंड दिया जाता है ॥ ११-१४ ॥

ब्रह्मचर्यमनाधायमास श्राद्धेषुपर्वसु । द्वादशाहेत्रिपक्षेऽब्देयस्तु भुंक्ते द्विजोधमाः । पतन्तिपितरस्तस्य ब्रह्मलोकेगताअपि ॥ १५ ॥

भा० टी०—पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण किये बिना ही जो अधम ब्राह्मण, मास श्राद्ध, पर्व श्राद्ध, द्वादशाह श्राद्ध, त्रिपक्ष श्राद्ध, वार्षिक श्राद्ध, आदि में भोजन करते हैं एवं जो अयोग्य ब्राह्मण को भोजन देता है तो उसके पितृगण ब्रह्म लोक में गये हुए भी पतित हो जाते हैं। अतएव श्राद्ध में गुणी ब्राह्मण को ही भोजन देना चाहिये ॥ १५ ॥

सूतउवाच । भोजयेयुर्महान्नेन नतेविंदंतिदुर्गतिं यस्तुभाद्रपदेमासे कृष्ण पक्षे महालयम् ॥ १६ ॥ स्वशक्त्यनुगुणंविप्रमेकं द्वौत्रीनकिंचनः भोजयेन्नहि दौर्गत्यं भवेदस्यकदाचन ॥ १७ ॥ कालोभाद्रपदमासमारभ्य वृश्चिकावधि । महालयस्यकथितोमुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १८ ॥ वेदज्ञे ब्राह्मणेभुक्ते प्रथमायांमहालये । दशकल्पसहस्राणि पितरोयांति तृप्तताम् ॥ १९ ॥ द्वितीयायांतुयोभक्त्या कुर्याच्छ्राद्धं महालयम् । तस्य प्रीणातिभगवन्भवानीपतिरीश्वरः ॥ २० ॥ सकैलासमवाप्नोति शिवेनसहमोदते । विपुलांसंपदंतस्मै प्रीतोदद्यान्महेश्वरः ॥ २१ ॥ वेदज्ञे ब्राह्मणे भुक्ते द्वितीयायां महालये । विंशत्कल्पसहस्राणि पितरोयान्तितृप्तताम् ॥ २२ ॥ अनुग्रहात्पितॄणांचसंततिश्चास्य वर्द्धते । तृतीयायां नरोभक्त्याकुर्याच्छ्राद्ध महालयम् ॥ २३ ॥ तस्यप्रीणाति भगवाँल्लोकपालोधनाधिपः । महापद्मादि निधयोवर्तंते तस्य वैवशे ॥ २४ ॥ तस्यानुगास्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णु महेश्वराः । तृप्यन्ति पितरस्तस्य त्रिंशत्काल्पसहस्रकम् ॥ २५ ॥ चतुर्थ्यां तुनरो भक्त्याश्राद्धं कुर्यान्महालयम् । तस्यप्रीणाति भगवान्हेरम्बः पार्वती सुतः ॥ २६ ॥ तस्यविघ्नाश्च नश्यंति गजवक्त्रप्रसादतः । पितरः कल्पसहास्रं चत्वारिंशत्प्रहर्षिताः ॥ २७ ॥ पंचम्यांतुतिथौ मर्त्यो यः करोतिमहालयम् । तस्य तृप्यंति पितरः पंचकल्पसहस्रके ॥ २८ ॥ संततिं चाप्यवि च्छिन्नमस्मै दास्यंति तर्पिताः । पार्वती च प्रसन्नास्यान्महदैश्वर्य दायिनी ॥ २९ ॥ षष्ठ्यां तिथौनरोभक्त्या श्राद्धं कुर्यान्महालयम् । तस्यप्रीणाति भगवान्षण्मुखः पार्वतीसुतः ॥ ३० ॥ तस्यपुत्राश्च पौत्राश्चषण्मुखस्य प्रसादतः । ग्रहैर्बालग्रहैश्चैव न बाध्यन्ते कदाचन ॥ ३१ ॥ षष्टिकल्पसह-

स्रं तु पितरोयांतितृप्तताम् । पुत्रानपि प्रदास्यंति संपदंविपुलांतथा ॥ ३२ ॥ सप्तम्यांतु तिथौ मर्त्यः श्राद्धंकुर्यान्महालयम् । हिरण्य पाणि र्भगवानादित्यस्तस्यतुष्यति ॥ ३३ ॥ अरोगो-दृढ गात्रस्याद्भास्करस्य प्रसादतः ॥ सप्ततिकल्पसाहस्रं प्रीणंतिपितरोस्यवै ॥ ३४ ॥ योष्टम्यां श्रद्धयाश्राद्धं नरः कुर्यान्महालयम् । अशीतिकल्पसाहस्रं तृप्यंति पितरोस्यवै ॥ ३५ ॥ आशीर्भिर्वर्द्धयंत्येनं विघ्नश्चास्यव्यपोहति । संततिंचाप्यविच्छिन्नांदद्यु: पितृगणाः सदा ॥३६॥ नवम्यांतुतिथौ मर्त्यः श्राद्धं कुर्यान्महालयम् । दुर्गा देवी भगवती तस्यप्रीणातिशांभवी ॥३७॥ क्षयापस्मार कुष्ठादीन्क्षुद्रप्रेतपिशाचकान् । नाशयत्तस्यसन्तुष्टा दुर्गामहिषमर्दिनी ॥ ३८ ॥ नवतिंकल्पसाहस्रं तृप्यंति पितरोस्यवै । संततिंचाप्यविच्छिन्नांदद्यु: पितृगणाः सदा ॥ ३९ ॥ दशम्यांतु तिथौ मर्त्यः श्राद्धं कुर्यान्महालयम् । तस्यामृतकलश्चन्द्रः षोडशात्माप्रसीदति ॥ ४० ॥ औषधीनामधीशेस्मिञ्छ्राद्धे नानेनतोषिते । व्रीह्यादीनितुधान्यानि दद्यु रोषधयः सदा ॥ ४१ ॥ दशम्यांयस्तिथौमर्त्यः श्राद्धं कुर्यान्महालयम् । शतकल्पसहस्राणि तृप्यंति-पितरोस्यवै ॥ ४२ ॥ एकादश्यांनरोभक्त्या श्राद्धं कुर्यान्महालयम् । संहर्तासर्वलोकस्य तस्यरुद्रः प्रसीदति ॥ ४३ ॥ शत्रून्पराजयत्येष श्राद्धकर्तानिरन्तरम् । ब्रह्महत्यायुतंचापि तस्यनश्य ति तत्क्षणात् ॥ ४४ ॥ अग्निष्टोमादि यज्ञानांफलमाप्नोतिपुष्कलम् । द्वि शतं कल्पसाहस्रं तृप्यंतिपितरोस्यवै ॥ ४५ ॥ द्वादश्यांतु तिथौमर्त्यः कुर्याच्छ्राद्धं महालयम् । तस्य लक्ष्मीपतिः साक्षात्प्रसीदति जनार्दनः ॥ ४६ ॥ प्रसन्नेसतिदेवेशे देव देवे जनार्दने । चराचरंजगत्सर्वं प्रीतमेवनसंशयः ॥ ४७ ॥ भूमिर्हरिप्रिया चास्यसस्यं संवर्द्ध यत्यपि लक्ष्मीश्च वर्द्धतेतस्य मंदीरे हरिवल्लभा ॥ ४८ ॥ गदाकौमोदकी नाम नारायणकर स्थिता । अपस्मारादिभूतानि नाशयत्येव सर्वदा ॥ ४८ ॥ तीक्ष्णधारं तथा चक्रं शत्रूनस्य दहत्यपि । यातुधाना पिशाचादीञ्छं खश्चास्य व्यपोहति ॥ ४९ ॥ एवं सर्वात्मनापीडांवारय त्यस्यके-शवः । षट्शतं कल्पसाहस्रं प्रीणंति पितरोस्यवै ॥ ५० ॥ त्रयोदश्यांनरोभक्त्या श्राद्धं कुर्यान्महालयम् । प्रसोदत्यस्य भगवान्कंदर्पोरति नायकः ॥ ५१ ॥ स्रग्चंदनादयो भोगा ललनाश्च मनोरमाः । कामदेवप्रसादेन तस्य सिद्ध्यंति सर्वदा ॥ ५२ ॥ आजन्म मरणां-तंच सुखमेवस विंदते । सहस्र कल्पसाहस्रं प्रीणंति पितरोस्यवै ॥ ५३ ॥ चतुर्दश्यांनरो भक्त्या श्राद्धं कुर्यान्महालयम् । तस्याभीष्ट प्रदानाय जागर्ति भगवांच्छिवः ॥ ५४ ॥

उपदिश्य शिवज्ञानं सायुज्यंचददात्यपि । सुरापाना युतं चापि स्वर्णस्तेयायुतंतथा ॥ ५५ ॥
नश्यंति तत्क्षणादेव चतुर्दश्यांमहालयात् । चंडालवृषली स्त्रीणां संगदोषोपि नश्यति ॥५६॥
अश्वमेध सहस्रस्य पौंडरीकायुतस्यच । पुष्कलाफल सिद्धिः स्याच्चतुर्दश्यांमहालयात् ॥५७॥
लक्षकोटि सहस्राणि लक्षकोटि शतानिच । कल्पानि पितरस्तस्य तृप्यंत्येवन संशयः ॥५८॥
नरकस्थाश्च पितरः स्वर्गयांति प्रहर्षिताः । संततिंचाप्यविच्छिन्नादद्यु : पितृगणास्तदा ॥५९॥
अमायांतुनरोभक्त्या श्राद्धं कुर्यान्महालयम् । पितॄणांतस्य तृप्तिः स्यादनन्ता नात्रसंशयः
॥ ६० ॥ सुधामास्वाद्यया तृप्तिर्देवानां दिविवैभवेत् । अनंताताद्दशी तृप्तिरमावास्यांमहालयात्
॥ ६१ ॥ शांता ह्येषातुपरमा शिवस्यच महाप्रिया । अमावास्या महापुण्या पितृदेव
नमस्कृता ॥ ६२ ॥ तस्यांमहालये श्राद्धे भोजयेद्द्विवित्तमान् । तेनतृप्तिः पितॄणांस्या
दनंतातुष्यते शिवः ॥ ६३ ॥ ब्रह्महत्यादयः पंच पातकानाशमाप्नुयुः । कृताश्च स्युर्विधानेन
सर्वेयज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ६४ ॥ अनुष्ठिताः स्युर्विधिवत्सर्वेधर्माः सनातनाः । अमावास्या-
दिनेयेन कृतंश्राद्धं महालयम् ॥ ६५ ॥ वासश्च स्वर्गलोकेस्याद्यावदा चन्द्र तारकम् । प्रत्यग
ब्रह्म कतांज्ञात्वासायुज्यं यात्यसंशयम् ॥ ६६ ॥ भोजयेद्द्विन्मुख्यांस्तृप्तिस्तेषां यथाभवेत् ।
तेन ब्रह्माहरिः शंभुस्तृप्ताः स्युर्नात्रसंशयः ॥ ६७ ॥ अग्निष्वात्तादिपितर स्तथैवेन्द्रादिदेवताः ।
बहुनात्रकिमुक्तेनतुष्टंतेन जगत्रयम् ॥ ६८ ॥ महालयंप्रकुर्वंति श्रद्धावन्तः पितॄन्प्रति ।
नतेषांसंततिच्छेदो भवेत्संपदभंगुरा ॥ ६९ ॥ आलयंह्यास्पदं प्रोक्तं महः कल्याणमुच्यते ।
कल्याणा नामास्पदत्वान्महालय मुदीर्यते ॥ ७० ॥ पुरादशरथोराजा वसिष्ठस्योपदेशतः ।
मासिभाद्रपदे प्राप्ते कृत्वा श्राद्धं महालयम् ॥ ७१ ॥ रामादींश्चतुरः पुत्रान्प्राप्तवांल्लो-
कसंमतान् । विश्वातिशायिनीं लक्ष्मीं प्रपेदेकीर्तिमुत्तमाम् ॥ ७२ ॥ महालयस्य करणाद्ययाती-
राजसत्तमः । यदुमुख्यान्महापुत्रान्प्रपेदेवंशवर्द्धनान् ॥ ७३ ॥

भा० टी०—अर्थ इन्हों का सुगम ही है महान्कल्याणों के प्राप्ति स्थान को महालय श्राद्ध कहते हैं । भाद्रपद से यह सुरु होकर वृश्चिक राशी के प्रारंभ तक रहता है ॥ ५६–७३ ॥

येन येन तुवर्णेनयाकन्यापरिणीयते । तत्समंसूतकयातितथापिंडोदकेपिच ॥ ७४ ॥
अनूढानपृथकन्या पिंडेगौत्रेचसूतके । पाणिग्रहणमन्त्राभ्यां स्वगोत्राद्भ्रश्यतेततः ॥ ७५ ॥

विवाहेचैवसंवृत्ते चतुर्थेहनिरात्रिषु । एकत्वंसाव्रजेद्भर्तुः पिंडेगोत्रेचसूतके ॥ ७६ ॥ अनिष्ट्वा-तुपितॄञ्श्राद्धे नकुर्यात्कर्म वैदिकम् । तत्रापिमातरः पूर्वंपूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ ७७ ॥ गौरी-पद्माशची मेधासावित्री विजयाजया । मीनादेवी स्वधास्वाहामातरो लोकमातरः ॥ ७८ ॥ धृतिः पुष्टिस्तथातुष्टिरात्म देवतयासह । गणेशेनाधिकाह्येता वृद्धौपूज्याश्चषोडश ॥ ७९ ॥

भा० टी०—जिस २ वर्ण वाले के साथ जिस २ कन्या का व्याह होता है तो उस कन्या का भी सुतक तथा पिंड एवं उदक दान अपने पति के वर्णानुसार होने चाहिये । व्याह नहीं । की गई कन्या के गोत्र, सूतक, और पिंडोदक उनके पिता के गोत्र से अलग नहीं है । क्योंकि पाणि ग्रहण और मन्त्रों के द्वारा ही वह अपने पिता के गोत्र से पृथक्की जाती है । वैवाहिक क्रियाओं के निवृत्त होने पर चौथे दिन की रात में अपने पति के वर्ण, पिंड, गौत्र, और सूतक में एक भाव को प्राप्त हो जाती है । श्राद्ध में अपने पित्रों का पूजन विना किये कोई भी वैदिक कर्म नहीं करना चाहिये । उन्हों में भी सबसे पहिले अपने पूर्वजों की कुल देवियों का पूजन करना चाहिये । उन्हों के ये नाम है गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, मीना देवी, स्वधा, स्वाहा, धृति, पुष्टि, तुष्टि, और अपनी २ वर्तमान नाम वाली कुल देवता के साथ सब तथा गणेशजी एवं षोडश कुल देवताओं का वृद्धि श्राद्ध में प्रथम पूजन करना चाहिये ॥ ७४–७६ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् । होमोदेवोबलि र्भौतोनृयज्ञोतिथिपूजनम् ॥ ८० ॥ श्राद्धंवापितृयज्ञःस्यात्पित्र्योबलिरथापिवा । यश्चश्रुति जपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञः सचोच्यते ॥ ८१ ॥ यदाचतुर्दशीयामं तुरीयमनु पूरयेत् । अमावास्याक्षीयमाणात दैव श्राद्ध-मिष्यते ॥ ८२ ॥ पितामहः पितुः पश्चात् पञ्चत्वंयदिगच्छति । पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं-श्राद्धषोडशम् ॥ ८३ ॥ द्वादशप्रतिमास्यानि आद्यं षांणमासिकेतथा । सपिंडी करणं चैवएतद्वै श्राद्धषोडशम् ॥ ८४ ॥

भा० टी०—ब्रह्मचारियों को वेद पढ़ाना ब्रह्म यज्ञ कहाता है । पितरों को तर्पण करना पितृ यज्ञ कहाता है, होम को देव यज्ञ कहते हैं । बलि (प्रसादी) का देना भूत यज्ञ कहाता है । अतिथि का पूजन करना नृयज्ञ कहलाता है । अथवा श्राद्ध करने को पितृ यज्ञ कहते हैं, पित्रों को बलिदेने का भी यही अर्थ है, श्रुति (वेदों के मंत्रों) का जप करना भी ब्रह्म यज्ञ ही कहाता है । चतुर्दशी का चौथा पहर में क्षीण अमावस्या की घड़ियां आ जाय तो उस वक्त हर किसी महीने में श्राद्ध हो सकता है । दादे के बैठे हुए ही यदि गुजर गया हो तो उसका श्राद्ध गुजरने वाले का बेटा कर सकता है अपने बेटे

का श्राद्ध बाप नहीं कर सकता। एवं जीवते हुए बाबे का श्राद्ध भी पोता नहीं कर सकता। दादे की मोजुदगी में पोता ही एकादशाह आदि शोलह श्राद्धों का अधिकारी है। बारह महीनों के १२ श्राद्ध १३ वाँ प्रथम एकादशाह श्राद्ध, दो छः मासी और सपिंडी करण एवं १६ प्रकार के श्राद्ध होते हैं। ॥ ८०—८४ ॥

मातुः श्राद्धंतुपूर्वंस्यात्पितॄणांतदनन्तरम्। ततोमातामहानांच वृद्धौ श्राद्धत्रयंस्मृतम् ॥ ८५ ॥ क्रतुर्दक्षोवसुः सत्यः काल कामौधूरिलोचनौ। पुरुरवा आर्द्रवाश्च विश्वदेवाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ८६ ॥ इष्टिश्राद्धे क्रतुर्दक्षोवसुसत्यश्चदैविके। कालः कामोग्नि कार्येषु अधरे-धूरिलोचनौ। पुरुरवा आर्द्रवाश्चपार्वणेषुनियोजयत् ॥ ८७ ॥ त्रीणिश्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतुपस्तिलाः। त्रीणि चान्नं प्रशंसंति शौचमक्रोधमत्वरम् ॥ ८८ ॥ दिवसस्याष्टमे भागेमंदी-भवति भास्करः। सकालः कुतुपोनाम पितॄणादत्तमक्षयम् ॥ ८९ ॥

भा० टी०—माता का श्राद्ध पहिले करै, फिर पिताओं के पक्ष वालों का, इसके बाद नानाओं का करै इस प्रकार वृद्धि श्राद्ध तीन प्रकार का है। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धूरि, लोचन, पुरुरवा, और आर्द्रवा ये १० श्राद्धों के विश्वदेव हैं। इष्टि श्राद्ध में क्रतु और दक्ष, दैविक श्राद्ध में वसु और सत्य, अग्नि कार्य में काल और काम, एवं अधर श्राद्ध में धूरि और लोचन तथा पार्वण श्राद्ध में पुरुरवा और आर्द्रवा विश्व देव का नियोग करना चाहिये। श्राद्धों में तीन वस्तुएँ पवित्र (लेन) है दोहिता, (बेटी का बेटा) कुतुपकाल और तिलों का होम दान, एवं तीन प्रकार के अन्न प्रशस्त है शुद्ध, अक्रोध और अशीघ्र,। दिवस के आठवें भाग में जब सूर्य की घाम मंदी हो जाती है उसी काल का नाम कुतुप है उस समय का श्राद्ध पित्रों को अक्षय तृप्ती देता है ॥ ८५—८९ ॥

श्राद्धं दत्वाचभुक्त्वाच मैथुनंयोधिगच्छति। भवन्ति पितरस्तस्यतन्मांसरेतसीभुजः ॥ ९० ॥ पिता पितामहश्चवै तथैवप्रपितामहः। उपासतेसुतंजातं शकुन्ताइवपिप्पलम् ॥९१॥ अधुनादास्यति श्राद्धं वर्षासुच मघासुच। संतानंवर्द्धनंपुत्रंतृप्यन्तं पितृकर्मणि ॥ ९२ ॥ मीनं ब्राह्मण संपन्नंमभिनन्दन्ति पूर्वजाः। नंदन्ति पितरस्तस्य सुवृष्टैरिवकर्षकाः ॥ ९३ ॥ जात मांत्रेणपुत्रेण पितॄणामनृणी पिता। तदहूनि शुद्धिमाप्नोतिनरका त्त्रायतेहिसः ॥ ९४ ॥

भा० टी०—श्राद्ध देकर और श्राद्ध में भोजन करके, उसी दिन जो यजमान या ब्राह्मण मैथुन को प्राप्त होजायें तो, उन दोनों ही के पितर गण उन्हीं के मांस एवं वीर्य का भक्षण करते हैं। मीन क्षत्रिय के घर में उत्पन्न हुए बालक को उसके पिता, पितामह, और प्रपितामह आदि इस प्रकार सेवन करते हैं जैसे पक्षीगण पीपल के पेड़ को सेवन करते हैं। अब देगा श्राद्ध वर्षा ऋतु में, यामघा नक्षत्र

में ऐसा मानते हुए ब्राह्मण सहित धनाढ्य मीन क्षत्रिय को एवं पित्रों के तर्पण कर्म में तल्लीन, सन्तानों की वृद्धि करने वाले अपने वंशजों को देख कर उनके पूर्वज और पितृगण ऐसे खुस होते हैं जैसे खुश्क में मेघ की घटा को देख कर कर्षक लोग खुस होते हैं। पुत्र के जन्मने पर पिता के उपर से अपने पितरों का ऋण उत्तर जाता है और उसी दिन वह शुद्ध होजाता है क्योंकि पुत्र शब्द का अर्थ ही यह होता है कि पितरों को नरक से तारै ॥ ९०–९४ ॥

महानदी मुपस्पृश्यतर्पयेत्पृतृदेवताः । अक्षयांल्लभतेलोकान्कुलंचैव समुद्धरेत् ॥ ९५ ॥ देवकार्याणिपूर्वान्हे मनुष्याणांतुमध्य में । पितृणामपरान्हेतु कार्याण्येतानियत्नतः ॥ ९६ ॥ पौर्वान्हि कंतुयत्कर्म यदि तत्सांयमाचरेत् । नतस्यफलमाप्नोति बन्ध्यास्त्री मैथुनंयथा ॥९७॥

भा० टी०—महा नदी (गङ्गायमुनादि) के तीर पर जाकर श्राद्ध करने से पितृगण परम तृप्त होते हैं और वह अक्षय लोकों को प्राप्त होकर अपने कुल का उद्धार कर देते हैं। देव कार्य (पूजादि) पूर्वान्ह में करने चाहिये, मनुष्यों के कार्य (भोजनादि) मध्यान्ह में होते हैं, और पितरों का श्राद्ध जल-तर्पणादि कार्य अपरान्ह (दिन का शेष भाग) में होते हैं। पूर्वान्ह के कार्यों को यदि सांयकाल में किये जावें तो वन्ध्यास्त्री के मैथुन के समान उन्हों का कुछ भी फल नहीं मिलता ॥ ९५–९७ ॥

आपोदेवगणाः प्रोक्ता आपः पितृगणास्तथा । तस्मादप्सुजलंदेयं पितृणांहितमिच्छता ॥ ९८ ॥ नाभिमात्रेजलेस्थित्वा हृदयेनानुचिंतयेत् । आगछन्तुमेपितरोगृण्हंत्वेतांजलांजलिम् ॥ ९९ ॥ हस्तौकृत्वातुसंयुक्तौ पूरयित्वाजलेनच । गोश्रृंगमात्रमुद्धृत्य जलमध्येजलंक्षिपेत् ॥ १०० ॥ आकाशेचक्षिपेद्वारि वारिस्थोदक्षिणामुखः । पितृणांस्थान माकाशं दक्षिणादिक्तथैवच ॥ १०१ ॥ प्रजांपुष्टिं यशः स्वर्गमारोग्यंच धनंतथा । नृणांश्राद्धैः सदाप्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ १०२ ॥ एषश्राद्ध विधिः कृत्स्नउक्तः संक्षेपतोमया । येविन्दंतिनमुह्यन्ति श्राद्धकर्मसुतेक्वचित् ॥ १० ॥ इतिश्रीमीनपुराणे द्वितीयस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

भा० टी०—जल के प्रत्येक परमाणु में देवगणों का निवास है एवं पितृगण भी जल स्वरूप है। अतएव पितरों का हित चाहने वाले लोग जल में ही जलांजली छोड़ते हैं। नाभि प्रमाण जल में स्थित होकर हृदय से पितरों का चिंतन करै और शुद्ध चित्त से आह्वान करै कि मेरे पितृगण आवें और मेरी दी हुई जलांजली को ग्रहण करें, ऐसा कह कर अपने दोनों हाथों को नवाकार जोड़ कर जल से पूर्ण करै, गाय के शींग प्रमाणे हाथों को उंचा उठा कर जलांजली को जल में छोड़ दे। आकाश की तर्फ जल

छोड़ै, एवं दक्षिण दिशा की ओर छोड़ै, क्योंकि पितरों का स्थान आकाश और दक्षिण दिशी है। मनुष्यों को श्राद्ध से सदा प्रसन्न होकर पितामह आदि पितृगण संतान, पुष्टि, यश, स्वर्ग, आरोग्य और धन देते हैं। यह संपूर्ण श्राद्धों की विधि मैंने संक्षेप से कही, इसको जो सम्यकतया जान लेता है वह श्राद्ध कर्म में कहीं मोहित नहीं होता।

॥ इतिश्रीमद्भागवत् मीनपुराणे द्वितीयस्कंध्ये सप्तदशमोऽध्याय: समाप्त ॥

अथाष्टादशोऽध्याय प्रा०। श्राद्धेमांस निषेधाधिकार ॥ (भृगुरुवाच) नाकृत्वा-
प्राणिनांहिसां मांसमुत्पद्यतेक्कचित्। नचप्राणि वधस्वर्ग्यतस्मान्मांसंविवर्जयेत् ॥ १ ॥ समुत्प-
त्तिंचमांसयवधबधौचदेहिनाम्। प्रसमीक्ष्यनिवर्तेत श्राद्धेमांसस्यभक्षणात् ॥ २ ॥ देवानाम-
ग्रतः कृत्वाघोरंप्राणिबधंनराः। येभक्षयतिमांसंच तेव्रजंत्यधमांगतिम् ॥ ३ ॥ अमेध्यत्वाद्
भक्ष्यत्वान्मानुषैरपिवर्जितम्। दिव्यभोगान्भुंजन्तोमांसंदेवानभुञ्जते ॥ ४ ॥

भा० टी०—अब १८ वाँ अध्याय सुरु होता है। श्राद्धों में मांस निषेध यह इसमें अर्थाधिकार है। भृगुजी बोले, हे मुनिजनो! प्राणियों की हिंसा के विना मांस की उत्पत्ती कहीं नहीं होसकती, और प्राणियों का वध स्वर्ग का कारण नहीं है। अतएव श्राद्धों में मांस भक्षण कभी नहीं करना चाहिये। मांस की उत्पत्ति (शुक्र शोणित मल मूत्र हत्या आति) और भावी वधबन्धन आदि को अच्छी तराह से देखकर श्राद्धों में मांस भक्षण करने से सर्वथानि वृत्ति करना चाहिये। जो मनुष्य देवताओं के आगे घोर प्राणि वध करके मांस भक्षण करते हैं वह अवश्य ही अधम गति को पाते हैं। अपवित्र, एवं अभक्ष्य मानकर मनुष्य भी जब मांस भक्षण नहीं करते तो दिव्य पदार्थों का भोग करने वाले देवता लोग मांस क्यों खायेंगे ॥ १–४ ॥

जलाशयान्वाटिकांश्चविष्णवर्थमुपकल्पयेत्। सदन्नैः सुरसैः साधून् ब्राह्मणांश्चैवतर्पयेत्
॥ ५ ॥ अहिंसान्वैष्णवान्यज्ञान्कुर्याच्छ क्त्यायथाविधि। व्रत जन्मोत्सवान्विष्णोः संभारेणच-
भूयसा ॥ ६ ॥ नश्राद्धेकापिमांसंतुदद्या आद्याचमारणः। मुन्यन्नैः क्षीरसर्पिर्भ्यांतृप्यन्ति-
पितरोभृशम् ॥ ७ ॥ अहिंसाप्राणिमात्रस्यमनोवाक्तनुभिस्तुया। तयैवपितरः सर्वेतृप्यन्त्यति
दयालवः ॥ ८ ॥ तस्मात्कुसंगतः क्वापि शास्त्रहार्दमबुध्यच। श्राद्धेमांसं नैवदद्याद्वासुदेवपरः
पुमान् ॥ ९ ॥ प्रमाणिकृतशास्त्राणि यैर्वधः क्रियतेऽधर्मैः। सह्यतेपरलोकेतैः श्वभ्रे शूलाधि-

रोहणम् ॥ १० ॥ गन्धैश्चपत्रपुष्पैश्च धूपैर्दीपैश्चभारण । वासोभिभूषणैश्चैव यथा विभवमर्च-येत् ॥ ११ ॥

भा० टी०—भगवान् विष्णु के अर्थ जलाशय और वन वाटिकाओं का निर्माण करना चाहिये। एवं शुद्ध और निर्दोष अन्नपान से साधु और ब्राह्मणों का सत्कार करना चाहिये। विधि के साथ यथा शक्ति अहिंसक वैष्णव यज्ञों को करना चाहिये और विष्णु (मीन) भगवान्के जन्म आदि के व्रत और उत्सव, मीन जयंती बड़े विस्तार के साथ करने चाहिये । हेमारण क्षत्रियों ! श्राद्धों में न तो कभी कहीं मांस भक्षण करो और न किसी को दो, क्यों कि मुनियों के योग्य दुग्ध, घृत सहित शुद्ध अन्न से ही पितृगण अतिशय तृप्त होते हैं। पितर लोग बड़े दयालु होते हैं। वह मन वचन और काया से प्राणिमात्र की अहिंसा के द्वारा हि सर्व संतुष्ट रहते हैं। अतएव शास्त्र के रहस्य को जान कर वासुदेव भगवान्की भक्ति में परायण पुरुषों को चाहिये कि कुसंगत के दोष से श्राद्धों में कहीं भी मांस भक्षण न करै और न कीसि को मांस का दान दें। अनेक शास्त्रों के प्रमाण देकर जो अधम लोक देवताओं के नाम से एवं श्राद्धों में जीव वध करते हैं, वह परलोक में नरक के गड्ढे के भीतर, शूली पर चढ़ाये जाते हैं। अतएव ऐसा न कर हेमारणों ! देवताओं का पूजन सुगन्धित पत्र, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, वासक्षेप, अन्न, भूषण आदि से यथा विधि करना चाहिये ॥ ५-११ ॥

पितॄन्यर्जन्तियेश्राद्धे तैस्तुर्मीनः प्रपूजितः । तस्मिंस्तुष्टेजगन्नाथे सर्वास्तुष्यंतिदेवताः ॥ १२ ॥ पितरोदेवताश्चैवगन्धर्वाप्सरसस्तथा । यक्षाश्चसिद्धामनुजाहरिरेव सनातनः ॥१३॥

भा० टी०—जो श्राद्धों में पितरों का पूजन करते हैं वे स्वयं मीन भगवान को पूजते हैं, क्यों कि जगन्नाथ मीन भगवान के ही संतुष्ट होने पर सर्व ३३ कोटि देवतेलोक संतुष्ट होजाते हैं। पितर, देवता, गन्धर्व, अप्सरायें, यक्ष, सिद्ध, और मनुष्य ये सर्व सनातन मीन भगवान्की ही तो अंशकलायें हैं ॥ १२-१३ ॥

गृद्धिं विनाभक्षयतो नदोषोमांसंनरस्यान्नवदस्तदोषम् ॥ एवंवचः केचिदुदाहरन्ति युक्त्याविरुद्धं तदपीहलोके ॥ १४ ॥ आहार वर्गेसुलभेविचित्रेविमुक्तपापे सुविविद्यमाने । प्रारंभदुःखंविविधंप्रपोष्य चेदस्तिगृद्धि र्नकिमत्सिमांसम् ॥ १५ ॥ सर्वेषामेवमांसानां महान्दोष-स्तुभक्षणे । निवर्तनेमहत्पुण्यमितिप्राह प्रजापतिः ॥ १६ ॥ अनुमन्ताविशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी संस्कृताचोपहर्त्ताच खादकश्चेतिघातकाः ॥ १७ ॥

भा० टी०—कितने कही लोक कहते हैं कि अगृद्धी (लालचरहित) भावों से यदि श्राद्धों में मांस भक्षण किया जाय तो उसमें अन्न के समान कोई प्रकार का दोष नहीं होता, यह कहना भी उन्हों का

लोक विरुद्ध है। क्योंकि पृथ्वी पर आहरके योग्य पाप रहित अनेक शुभ वस्तुएँ सुलभ विद्यमान है, उन्हों को छोड़कर स्थूल जीवों के वध से निष्पन्न मांस को क्यों भक्षण करना चाहिये। क्योंकि प्रारंभ से ही विविध प्रकार के दुःखों को भुक्त कर प्राणी अपने शरीर का पालपोषण करते हैं उन्हों को मृत्यु रूप महान्दुःख देकर अपने शरीर को पुष्ट करने के लिये यदि गृद्धि भाव नहीं तो मांस भक्षण किस वास्ते किया जाता है। श्राद्धों में सभी प्रकार के मांसों का भक्षण करना महान्दोष है और मांसों से सर्वथा निवृत्ति करना महान्पूण्य है ऐसाप्रजापति स्वायंभुवमनुजी का कथन है। आज्ञा देने वाला, शस्त्र देनेवाला, मारणे वाला, बेचने वाला, साफ करने वाला, रांधने वाला, परोसने वाला और खाने वाला ये सब घातक ही होने हैं ॥ १४-१७ ॥

शुक्र शोणितसंभूतं विष्ठारसविवर्द्धितम्। लोहितंस्त्यानतामाप्तंकोश्नीयाद कृमिपलम् ॥ १८ ॥ शुक्र शोणितसंभूतं मांसंयोभक्षतेनरः। जलेनकुरुतेशौचं हसन्तेतत्रदेवताः ॥१९॥ यावन्तिपशुरोमाणि पशुगात्रेषुचानघः। तावद्वर्ष सहस्राणिपच्यन्तेनारकेजनाः ॥ २० ॥ किं जापहोमनियमैस्तीर्थ स्नानैश्चमारण यदिखादतिमांसानि सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥ २१ ॥ किं लिंगवेषग्रहणैः किं शिरस्तुण्डमुण्डनैः यदि खा० ॥ २२ ॥ दीक्षितोब्राह्मणश्चैव यस्तु-मांसंप्रभक्षयेत्। व्यक्तं सनरकेयातिह्यधर्मः पापप्रेरितः ॥ २३ ॥ हिंसाप्रवर्द्ध कंमांसमधर्मस्य-विवर्द्धनम्। दुःखस्योत्पादकंमांसं तस्मान्मांसंनभक्षयेत् ॥ २४ ॥

भा० टी०—शुक्र और रक्त से उत्पन्न हुआ, और विष्ठा के रस से वृद्धी को प्राप्त हुआ। खून और आलस्य को इकट्ठा करने वाले, मांस को कृमी (कीड़ों के) सिवाय दूसरा कौन खा सकता है। जो ब्राह्मण शुक्र शोणित निष्पन्न मांस को भक्षण करके जल से शौच करता है उसे देख देवता लोक भी हन्सते हैं कि यह कैसा मुर्ख है। यज्ञ में जो पशु मारा गया उसके शरीर पर जितने भी रोमकूपहो उतने ही हजार वर्षों तक पशु की हत्या करने वाले घोर नरक में पचते हैं। हेमारण! कोरे जाप होम, नियम, तीर्थ, स्नान व्रत आदि से क्या होता है? ब्राह्मण यदि मांस भक्षण करता है तो उक्त सब बातें व्यर्थ हैं। लिंग एवं वेष धारण करने से क्या होता है, और शिर मुंडाने व जटा रखाने से क्या होता है यदि मांस खाता है तो सब ही निरर्थक है। चाहे दीक्षित हो या ब्राह्मण हो यदि मांस भक्षण कर लिया तो अधर्म और पाप की प्रेरणा से वह साफ ही नरक में जाता है। क्योंकि मांस भक्षण हिंसावृद्धी और अधर्म की वृद्धी करता है। और अनेक दुःखों को उत्पन्न करता है अतएव श्राद्ध में कभी मांस भक्षण नहीं करना चाहिये ॥ १८-२४ ॥

अल्पायुषोदरिद्रश्च परकर्मोपजीविनः। दुःकुलेषुप्रजायन्तेये नरामांसभक्षकाः ॥२५॥ एकतश्चतुरोवेदान्ब्रह्मचर्य्यं मथैकतः। एकतसर्वपापानि मद्यमांसंतथैकतः ॥ २६ ॥ मांस-

भक्षयितामुत्रयस्य मांसमिहादम्यहम् । एतन्मांसस्यमासत्वं निरुक्तमनुरब्रवीत् ॥ २७ ॥ येभक्षन्तिपिशितं दिव्यभोज्येषु सत्स्वपि । सुधारसंपरित्यज्य भुञ्जन्तंतेहलाहलम् ॥ २८ ॥ स्वमांसंदुर्लभंलोके लक्षेणापिनलभ्यते । अल्पमूल्येनलभ्येत पलंपरशरीरजम् ॥ २९ ॥ स्वमांसं-परमांसेनयोवर्द्धयितु मिच्छति । उद्विग्नंलभतेवासं यत्रयत्रोपजायते ॥ ३० ॥

भा० टी०—जो मनुष्य मांस भक्षण करते हैं वह परलोक में नीच कुल में जन्म पाते हैं और अल्पायुष वाले, एवं दरिद्री रहते हैं तथा दूसरे लोगों की गुलामी करके ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। चारों वेदों के पुण्य फल को तराजु के एक पलड़े में रक्खो और ब्रह्मचर्य्य के पुण्य को एक पलड़े में रक्खो तो ब्रह्मचर्य का पुण्य फल विशेष उतरेगा। एक पलड़े में सर्व प्रकार के पापों को रक्खो और एक पलड़े में मद्य मांस के भक्षण करने का पाप को रक्खोतो मद्य मांस का पाप ज्यादा निकलेगा। जिसको मैं यहां खाता हूं वह मुझको परलोक में अवश्य ही खायेगा, मांस शब्द की मनुजी ने यही निरुक्ति की है। अनेक दिव्य २ भोजनों के होने पर भी जो मनुष्य मांस खाते हैं वह अमृत को छोड़ कर मानो हलाहल जहर को खाते हैं। अपना मांस दुर्लभ है लोक में एक लाख मोहरें देने पर भी कोई मनुष्य अपना मांस नहीं बेच सकता किंतु दूसरों का मांस थोड़े मूल्य में खरीदलेते हैं। दूसरे जीवों के मांस से जो मनुष्य अपना मांस बढ़ाना चाहता है वह परलोक में जहां २ भी जाता है वहां २ उद्वेग का स्थान पाता है ॥ २५-३० ॥

मांसंपुत्रोपमंकृत्वा सर्वमांसानिवर्जयेत् । दयादानविशुद्धयर्थं मारणैर्वर्जितंपुरा ॥ ३१ ॥ तिलसर्षपमात्रंतुयोमांसंभक्षयेन्नरः । सयातिनरकंघोरं यावचन्द्रदिवाकरौ ॥ ३२ ॥ नगंगान चकेदारोनप्रयागोनपुष्करम् । नज्ञानं नचहोमश्चनतपो न जपः क्रिया ॥३३॥ नध्यानं नैवस्नानं दानं मौन व्रतानिच । सर्वेतेनिष्फलायान्ति यस्तुमांसंप्रयच्छति ॥ ३४ ॥

भा० टी०—अपने पुत्र के मांस के ही समान सर्व प्राणियों के मांसों को मान कर न खाना चाहिये। क्योंकि दया और दान की विशुद्धी के अर्थ पहिली के सभी मारण क्षत्रियों ने श्राद्धों में मांस भक्षण निषेध किया है। तिल और सरसों के दाने के बराबर भी यदि कोई श्राद्धों में मांस खा लेता है तो वह घोर नरक में गिरता है और वह आचन्द्रार्क नरक में ही रहेगा। श्राद्धों में मांस खाने वालों के और देने वालों के गंगा, केदार, प्रयाग, पुष्कर, आदि कोई भी तीर्थ नहीं होते अर्थात् सर्व निष्फल हैं; एवं ज्ञान, होम, तप, जपआदि क्रियाएँ और ध्यान, स्नान, मौन, दान, और व्रतादि सर्व निष्फल हो जाते हैं ॥ ३१-३४ ॥

अस्थ्नि वसतिरुद्रश्च मांसे वसतिकेशवः। शुक्रेवसति ब्रह्माचतस्मान्मांसंन भक्षयेत्

॥ ३५ ॥ तनूद्भवंमांसमदन्नमेध्यं कृम्यालयंसाधुजनैः प्रनिद्यम् । निस्त्रिंशचित्तोविनिकृष्टगन्ध शुनीविशेषंलभतेकथंन ॥ ३६ ॥ विद्यादयासंयम सत्यशौचध्यानव्रत ज्ञानदमक्षमाद्याः । संसार निस्तारनिमित्तभूताः पलाशिनः सन्तिगुणानसर्वे ॥ ३७ ॥ वरं विषंभक्षितमुग्रदोषंयदेकवारं कुरुतेऽसुनाशम् । मांसंमहादुःखमनेक वारं ददातिजग्धं मनसापिपुंसाम् ॥ ३८ ॥ नभक्षयतियोमांसंदयांहित्वा पिशाचवत् । सलोकेप्रियतांयाति व्याधिभिश्चनपीड्यते ॥ ३९ ॥ इतिश्रीमद्भागवन्मीनपुराणे द्विती० स्कं० अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

भा० टी०—हड्डियों में शिवजी का वासा है, मांस में केशव (श्रीकृष्ण) का वासा है, और शुक्र में ब्रह्मा का निवास है। अतएव मांस भक्षण नहीं करना चाहिये। प्राणियों के शरीर से उत्पन्न हुआ अशुद्ध, कीड़ों का घर, दुर्गन्ध और साधुजनों के द्वारा निंदित मांस को खाता हुआ निर्दय प्राणी को कुत्ता क्यों न कहा जाये। मांसाहारी मनुष्य के हृदय में विद्या, दया, संयम, सत्य, शौच, ध्यान, व्रत, ज्ञान, दम, और क्षमा आदि असंख्यगुण जो संसार सागर से निस्तार के कारण रूप माने जाते हैं, एक भी नहीं रहते। अत्यन्त भयंकर विष को खा लेना तो अच्छा है क्योंकि वह एक ही बार मृत्यु को देता है किंतु महान् २ दुःखों को अनेक बार देने वाले मांस का मन करके भी भक्षण कभी नहीं करना चाहिये। दया को छोड़ कर पिशाच के समान जो मनुष्य मांस भक्षण नहीं करता वह सर्व प्राणी मात्र का संपूर्ण लोक में प्यारा होकर रहता है और आधि व्याधि वगेराह से कभी पीड़ित नहीं होता ॥ ३५–३९ ॥

इति श्रीमीनपुराणे द्वितीयस्कंधेत्र अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १८ ॥

अथएकोनविंशोंऽध्याय प्रा० साधारणोपदेशव० भृगुरु वाच । कः कालः कानि मित्राणिकोदेशः कोव्ययागमौ । कस्याहं काचमेशक्तिरिति चिंत्यंमुहुर्मुहुः ॥१॥ त्यजेद्धर्मंदयाहीनं विद्याहीनं गुरुंत्यजेत् । त्यजेक्रोधमुखीं भार्यां निस्नेहान्बाधवांस्त्यजेत् ॥ २ ॥ सत्येनधार्यते पृथ्वी सत्येनतपतेरविः । सत्येनवातिवायुश्च सर्वं सत्येप्रतिष्ठितम् ॥ ३ ॥ चलालक्ष्मीश्चलाप्राणाश्चलेजीवित मन्दीरे । चलाचलेचसंसारे धर्म एकोहिनिश्चलः ॥ ४ ॥ अहिंसासत्यमस्तेयंम् शौचमिन्द्रियनिग्रहः । एवंसामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ५ ॥ मांस भक्षैः सुरापानैर्मूर्खैश्चाक्षर वर्जितैः पशुभिः पुरुषाकारैर्भारा क्रान्तास्तिमेदिनी ॥ ६ ॥

भा० टी०—अब १९ वाँ अध्याय सुरु होता है। इस में चारों ही वर्णों को साधारण धर्म का

प्रतिपादन किया गया है। भृगुजी बोले हरएक मनुष्य को प्रति दिन सुते उठते ही बारंवार चिंतवन करना चाहिये कि यह कोनसा समय है, मेरे मित्र और द्वेषी कौन २ है। यह कौनसा देश है, मेरे खर्च और आमदनी क्या है, मैं किस का उपासक और अनुयायी हूं, और कार्य करणे में मेरीं क्या शक्ति है, ऐसा विचार कर सत्य को स्वीकार करें। दया हीन धर्म को, विद्याहीन गुरु को दुष्टास्त्री को, और स्नेह हीन बान्धवों को छोड़ देना चाहिये। सत्य (धर्म) के द्वारा पृथ्वी स्थित है, सत्य से ही रवितपता है, सत्य से ही वायु चलती है, आदि सभी को सत्य का आधार है। संसार में लक्ष्मी, प्राण, स्थान और जीवित आदि सभी एक धर्म के सिवाय चंचल है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, शौच, और इन्द्रिय निग्रह ये मनुजी ने संक्षेप से चारों ही वर्णों का धर्म कहा है। मांस भक्षण करने वाले, शराब पीने वाले, मूर्ख और अक्षर ज्ञान शुन्य पुरुष के आकार वाले पशुओं से भारा क्रान्त होकर पृथ्वी दुःख पाती है॥ १-६॥

यस्यनास्तिस्वयं प्रज्ञा शास्त्रस्त स्यकरोतिकिम् । लोचनाभ्यांविहीनस्य दर्पणंकिं करिष्यति ॥ ७ ॥ अन्तः सारविहीना नामुपदेशोन जायते । मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्द- नायते ॥ ८ ॥ गृहासक्तस्यनोविद्या नोदयामांसभोजिनः । द्रव्यलुब्धस्यनोसत्यंस्त्रैणस्यन- पवित्रता ॥ ९ ॥ क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलि क्रियाः । नक्षीयतेपात्रदान मभयंसर्वदेहि- नाम् ॥ १० ॥ नग्राह्याणिनदेयानिषड्वस्तुनिच मारणैः । अग्निर्मधुविषं शस्त्रंमद्य मांसं- तथैवच ॥ ११ ॥

भा० टी०—स्वयं जिस मनुष्य के बुद्धि नहीं उसका शास्त्र क्या कर सकता है अन्धे मनुष्य के लिये दर्पण क्या कर शक्ता है। भीतर सारशून्य मनुष्यों को उपदेश नहीं लगता, मलयाचल में पैदा होने वाला पोला बांश क्या कभी चंदन बन सकता है? घर मे आसक्त मनुष्य के विद्या नहीं होती, मांस खाने वालों के दया नहीं होती, धन लुब्धों में सत्य नहीं होता, और जोस्त्री का गुलाम होता है इसमें पवित्रता नहीं होती। यज्ञ होम बलि क्रिया और सर्व दानों का फल कालान्तर में क्षय हो जाता है किन्तु सर्व प्राणियों को अभय दान और सुपात्र दान का फल कभी क्षय नहीं होता। मारण क्षत्रियों को चाहिये कि अग्नि, मधु, विष शस्त्र, मद्य और मांस ये छः वस्तुएं न किसी को दे और न किसी का लें ॥ ७-११॥

दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिवेज्जलम् । सत्यपुतांवदेद्वाचामनः पूतंसमाचरेत् ॥ १२ ॥ संवत्सरेणयत्पापं कुरुतेमत्स्यबन्धकः । एकाहेनतदाप्नोति अपूतजलसंग्रही ॥१३॥ यः कुर्यात्सर्व कर्माणि वस्त्र पूतेनवारिणा । समुनिः सयतिसाधुः सयोगी समहाव्रती ॥१४॥

जलेनवस्त्र पूतेनयः स्नापयति मारणम् । सर्व पापविनिर्मुक्तो विष्णुनासहमोदते ॥ १५ ॥ षट्त्रिंशदंगुलंवस्त्रं चतुर्विंशति विस्तृतम् ॥ तद्वस्त्रंद्विगुणि कृत्यतोयंतेनचगालयेत् ॥ १६ ॥ तत्रस्थानेस्थिताञ्जीवान्स्थापयेज्जलमध्यतः । जीवरक्षणहेतुश्चइत्येवंमनुरब्रवीत् ॥ १७ ॥

भा० टी०—दृष्टि से पवित्र (देख) करके पैर आगे रखने चाहिये, वस्त्र से पवित्र (छान) कर के जल पीना चाहिये । सत्य से पवित्र (विचार) करके वचन निकालने चाहिये, मन से पवित्र (नतिजा सोच) कर के काम करना चाहिये । एक वर्ष भर में जो माच्छी पाप करता है वही पाप विना छाना हुआ जल पीने वाला मनुष्य एक ही दिन में कर लेता है (क्योंकि इसी से आत्म विराधना तक हो जाती है) जो मनुष्य सभी काम वस्त्र से छाने हुए जल से करता है वही मुनी, यति, साधु, योगी, और महाव्रती है । जो मनुष्य मीन भगवान् की मूर्त्ति को वस्त्र के द्वारा छन्ने हुए जल से स्नान कराता है वह सर्व पापों से मुक्त होकर विष्णु भगवान् के साथ मौज में रहता है । छत्तीस अंगुल लम्बा और चौईश अंगुल चौड़ा वस्त्र के दोतय कर के जल को छान्ना चाहिये । उस जल में से निकले हुए जीवों को उनों की दया के वास्ते जलाशय में ही पहुचा देना चाहिये ऐसा मनुजी कहते हैं ॥ १२-१७ ॥

सूक्ष्माणि जंतूनिजलाश्रयाणि जलस्यवर्णा कृतिसंस्थितानि । तस्माज्जलंजीवदया-निमित्तंनिर्ग्रन्थमैनाः परिवर्जयन्ति ॥ १८ ॥ जलंगलन वस्त्रेणविवेकेनगुणव्रजः । सद्दानेन-गृहारंभो वचः सत्येनशुद्ध्यति ॥ १९ ॥ पृथिव्यांत्रीणिरत्नानिजल मन्नंसुभाषितम् । मूढैः पाषाणखंडेषुरत्नसंज्ञाऽनिवेशिता ॥ २० ॥ नास्तिमेघसमंतोयं नास्तिचा त्मसमं बलम् । नास्तिचक्षुः समंतेजो नास्तिचान्नसमंप्रियम् ॥ २१ ॥

भा० टी०—जल के आश्रय में रहने वाले जल के जंतु बहुत ही सूक्ष्म होते हैं क्योंकि उन्हों का वर्ण आकृति संस्थान आदि सभी जलमयी होते हैं । अतएव मीन भगवान् के भक्त निर्ग्रन्थ (साधु) जन अगालित जल को वर्जित करते हैं । वस्त्र से जल, विवेक से गुण वृन्द, अच्छे दान से गृहस्थाश्रम, और सत्य से वचन की शुद्धि होती है । जल, अन्न, और सुभाषित, ये पृथ्वी पर तीन ही रत्न हैं । इनके सिवाय मूर्ख लोगों ने पाषाण के टुकड़ों में रत्न संज्ञा रख छोड़ी है । मेघ के समान शुद्ध जल नहीं, अपनी आत्मा के समान बल नहीं आंखों के समान तेज (प्रकाश) नहीं, और अन्न के समान प्रिय (जीवनोप योगी) वस्तु नहीं ॥ १८-२१ ॥

स्वर्गस्थितानामिहजीवलोके चत्वारि चिन्हानि वसन्तिदेहे । दानप्र संगोमधुराचवाणी देवार्चनंब्राह्मण तर्पणंच ॥ २२ ॥ सानंदंसदनसुतास्तुसुधियः कांताप्रियालापिनी । इच्छापूर्त्ति

धनं स्वयोषितिरतिः स्वाज्ञापरा सेवकाः। आतिथ्यंशिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे, साधोः संगमुपासते च सततं, धन्योगृहस्थाश्रमः ॥२४॥ एतद्वोभिहितं सर्वं, निःश्रेयसकरं परम्। तस्माद् प्रच्युतो मीनः, प्राप्नोति परमां गतिन् ॥२५॥ इति श्री मद्भा० मी० पु० द्वि० एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

भा० टी० इस मनुष्यलोक में स्वर्गस्थित जीवों के चार लक्षण हैं। दान, वाणी की मधुरता, देवपूजा और ब्राह्मणों की सेवा। आनन्दपूर्वक रहने का स्थान, विद्वान पुत्र, प्रियभाषिनी स्त्री, यथेष्टधन, अपनी ही स्त्री में रति और आज्ञाकारी सेवकों का होना, अतिथि और शिव का पूजन, प्रतिदिन अपने घर में यथेष्ट मिष्टान्न पान का होना, साधु सन्तों की निरन्तर सेवा का संयोग आदि सभी शुभ २ बातें हो तो गृहस्थाश्रम भी धन्य है। भृगुजी कहते हैं कि हे शौनक! सर्व कल्यानों के करने वाले गृहस्थाश्रम के धर्मों का मैंने तुम लोगों के सामने संक्षेप से प्रतिपादन कर दिया। मीन क्षत्रिय जो इस धर्म से पतित नहीं होते वे अवश्य ही मुक्ति पाते हैं।

इति श्री मीनपुराणे द्वितीय स्कन्धे एकोनविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्याय प्रा०। नीति शिक्षाव०। भृगुरुवाचः—

श्रुत्वा धर्मं विजानाति, श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्। श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति, श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ मानुष्यं विफलं वदन्ति हृदयं व्यर्थं वृथा श्रोत्रयोर्निर्माणं गुणदोषभेदकलनां तेषामसंभाविनीम्। दुर्वारं नरकान्ध कूपपतनं मुक्तिं बुधा दुर्लभां, सार्वज्ञ समयोदया रसमयो येषां न कर्णातिथिः ॥ २ ॥ मूर्खशिष्योपदेशेन, दुष्टास्त्री भरणेन च। दुःखितैः संप्रयोगेण, पण्डितोप्यवसीदती ॥ ३ ॥

भा० टी०— अब बीसवां अध्याय शुरू होता है। इसमें सर्व साधारण को संक्षिप्त नीति शिक्षा का वर्णन है। भृगुजी बोले, मीनपुराण के सुनने से ही मनुष्य धर्म के स्वरूप को जान सकता है, एवं मीनपुराण को सुन कर ही मनुष्य खराब बुद्धि को छोड़ देता है, इसके सुनने से ही ज्ञान प्राप्त होता है, और इस शास्त्र के सुनने से ही मुक्ति मिलती है। यह दया रस मयी सर्वज्ञ मीन भगवान का सिद्धान्त जिस मनुष्य के कर्णगोचर न हुआ उसका मनुष्य-जन्म, हृदय एवं कानों की रचना आदि व्यर्थ ही है, क्योंकि गुण और दोषों के भेदों की पहिचान वह नहीं कर सकता तथा नरकान्धकूप गिरना

उसका अनिवार्य होता है, और सदा के लिये विद्वान लोग उसको मुक्ति का मिलना दुर्लभ कहते हैं। मूर्ख शिष्यों को उपदेश, दुष्टा स्त्री का भरण-पोषण, और दुखियों के संग रहने पर पण्डित भी दुखी हो जाता है ॥१-३॥

यस्मिन्देशे न सम्मानो, न वृत्ति नच बान्धवाः। नच विद्यागमोप्यस्ति, मीनस्तत्र न संवसेत् ॥ ४ ॥ धनिकः श्रोत्रियो राजा, नदीवैद्यस्तुमारण। पंच यत्र न विद्यन्ते, न तत्र दिवसं वसेत् ॥ ५ ॥ लोकयात्रा भयं लज्जा, दाक्षिण्य त्यागशीलता। पंच यत्र न विद्यन्ते, न कुर्यात्तत्र संगतिम् ॥ ६ ॥ जानीयात्प्रेषणेभृत्यान्बान्धवान्व्यसनागमे। मित्रं चापत्तिकालेषु भार्यां च विभव क्षये ॥ ७ ॥ आतुरे व्यसने प्राप्ते, दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे। राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥ ८ ॥

भा० टी०— जिस देश में अपनी मीन जाति का सम्मान न हो, अपनी आजीविका पूर्ण न चलती हो, अपने जाति बान्धव रहते न हों और उत्तम विद्या की प्राप्ति भी नहीं हो तो उस देश में मारण क्षत्रिय को नहीं रहना चाहिये। पुनः जिस प्रान्त में नदी न हो, मारण जाति का धनाढ्य, वेदपाठी, राजा, वैद्य वगैरह कोई न हो तो वहां एक दिन भी नहीं रहना चाहिये। जिस मनुष्य में लोक यात्रा (लौकिक रीति रिवाज) न हो, ईश्वर का भय न हो, लोकापवाद की लज्जा न हो, अनुकूल आचरण कर दूसरे की इच्छा पूर्ण कर देने का लिहाज़ा न हो, दान देने का स्वभाव न हो तो ऐसे की संगत कभी नहीं करना चाहिये। मुश्किल काम सौंपने पर नौकर की परीक्षा होती है, भयङ्कर संकट के आने पर बान्धवों की पहिचान होती है, आपत्काल में मित्र की परीक्षा होती है, धन का क्षय होने पर धर्मपत्नी के प्रेम की परीक्षा होती है। रोग और कष्ट के प्राप्त होने पर दुर्भिक्ष और शत्रु का संकट आने पर, एवं राजदरबार में और मरने पर श्मशान भूमि तक जो साथ में रहता है वही भाई है ॥ ८ ॥

वरयेत्कुलजां मीनो विरूपामपि कन्यकाम्। रूपशीलांननीचस्य विवाहः सदृशेकुले ॥ ९ ॥ नखी नांचनदी नांच शृंगिणांशस्त्रपाणिनाम्। विश्वासोनैवकर्तव्यः स्त्रीषुराजकुलेषुच ॥ १० ॥ विषादप्यमृतंग्राह्यममेध्या दपिकांचनम्। नीचादप्युत्तमांविद्यांस्त्री रत्न-दुष्कुलादपि ॥ ११ ॥ कस्यदोषः कुलेनास्ति व्याधिनाकेनपीडिताः। व्यसनंकेननप्राप्तं-कस्यसौख्य निरन्तरम् ॥ १२ ॥ आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम्। संभ्रम-स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥ १३ ॥ सत्कुलेयोजयेत्कन्यांपुत्रंविद्यासुयोजयेत्। व्यसनेयोजयेच्छत्रुमिष्टं धर्मेणयोजयेत् ॥ १४ ॥ दुर्जनस्यचसर्पस्य वरंसर्पोनदुर्जनः। सर्पोदशतिकालेतु दुर्जनस्तुपदेपदे ॥ १५ ॥

भा० टी०—मीन क्षत्रिय को चाहिये कि सुकुलोत्पन्न अपनी ज्ञाती की विरूप कन्या को भी ग्रहण करलें, किन्तु विजाति की सुरूप कन्या को ग्रहण न करें, क्यों कि विवाह क्षत्रिय ज्ञाती में सदृश कुल की कन्या से ही होता है। नखों वाले शेर आदि जानवर, नदी, शींग वाले पशु, शस्त्र धारी मनुष्य, पर स्त्री और राजकुल का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। विष के भीतर से भी अमृत को ग्रहण कर लेना चाहिये, अपवित्र विष्टा आदि में रहा हुआ भी कांचन लेने योग्य है। नीच जाति के मनुष्य से भी उत्तम विद्या शीख लेनी चाहिये, अपनी जाती का स्त्री रत्न यदि कलंकित (गरीब) कुल में हो तो भी ग्रहण करने के योग्य है। किस के कुल में दोष (कलंक) नहीं आता! अर्थात् सभी के कुल में थोड़ा बहोत कलंक आही जाता है, व्याधि से कौन मनुष्य नहीं पीड़ा गया, थोड़ा बहुत कष्ट किस में नहीं आता! निरन्तर सुख ही सुख में कौन रहता है। मनुष्य का आचार विचार ही उसके कुल को कह देता है, भाषा ही उसके देश को कह देती है, दिल का वेग ही स्नेह को कह देता है और मनुष्य का शरीर ही उसके भोजन का प्रमाण को बतादेता है। अपनी कन्या को अच्छे कुल में देना चाहिये। अपने पुत्रों को विद्या में जोड़े, शत्रु को संकट में फंसाता रहै, और अपने इष्ट मित्रों को धर्म में जोड़ना चाहिये। दुर्जन मनुष्य और काला साँप इन दोनों में से सर्प ही अच्छा है किन्तु दुर्जन अच्छा नहीं, क्यों कि सर्प तो काल की प्रेरणा होने पर ही काटता है और दुर्जन तो पद २ पर दुःख देता है ॥ ६-१५ ॥

एतदर्थं कुलीनानां नृपाः कुर्वन्ति संग्रहम् । आदिमध्यावसानेषु नत्यजन्ति हिते नृपम् ॥ १६ ॥ रूप यौवनसंपन्ना विशालकुलसंभवाः । विद्याहीनानशोभन्ते निर्गन्धाइव किं शुकाः ॥ १७ ॥ कोकिलानांस्वरोरूपं स्त्रीणांरूपंपतिव्रतम् । विद्यारूपकुरूपाणां क्षमारूपंतपस्वीनाम् ॥ १८ ॥ उद्योगेनास्तिदारिद्र्यं जपतोनास्तिपातकम् । मौनेनचकलहोनास्ति नास्ति जागरितेभयम् ॥ १९ ॥ एकेनापिसुपुत्रेण विद्यायुक्तेनसाधुना आह्लादितंकुलं सर्वं यथा चन्द्रेणशर्वरी ॥ २० ॥ किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोक संतापकारकैः वरमेककुलालम्बी यत्र विश्राम्यतेकुलम् ॥ २१ ॥

भा० टी०—राजा लोक कुलीन मनुष्यों को अपने पास इस वास्ते रखते हैं कि वे हमेशा दुःख-सुख में उनको कभी नहीं छोड़ते। रूप योवन संपन्न और श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने पर भी विद्या के विना शोभा नहीं होती, जैसे सुगन्ध रहित के शुके के फूल की शोभा नहीं होती है। कोयल का रूप उसकी आवाज है, स्त्रियों का रूप उनका पातिव्रत्य धर्म है, कुरूपे मनुष्य का भी रूप उसकी पढ़ी हुई विद्या है, और तपस्वी मुनियों का रूप क्षमा है। उद्योग करने से दारिद्र नष्ट हो जाता है, जाप करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, मौन पकड़ लेने पर लड़ाई बन्ध हो जाती है, और जागते हुए रहने से चौर आदि का भय नष्ट हो जाता है। जैसे चन्द्रमा से रात्री सुशोभित हो जाती है वैसे एक ही गुणवान् अच्छे पुत्र से संपूर्ण कुल आनन्दित हो जाता है। शोक संताप के करने, कराने वाले अनेक कुपुत्रों होने

से क्या गरज सरती है, जिसी से सारे कुल को विश्राम मिलता हो वह कुल का आधार स्वरूप एक ही पुत्र काफी है ॥ १६-२१ ॥

कुग्रामवासः कुलहीन सेवा कुभोजनं क्रोधमुखीचभार्या । पुत्रश्चमूर्खो विधवाच कन्या विनाग्निनाषट् प्रदहन्ति कायम् ॥ २२ ॥ अपुत्रस्य गृहंशून्यं दिशः शून्यास्त्वबान्धवाः । मूर्खस्यहृदयं शून्य सर्वं शून्यादरिद्रता ॥ २३ ॥ अनभ्यासेविषंशास्त्रमजीर्णे भोजनंविषम् । निर्धनस्य विषंगोष्ठी वृद्धस्यतरुणी विषम् ॥ २४ ॥ तावद्भयेषुमेतव्यं यावद्भयमनागतम् । आगतंतुभयंदृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशंकया ॥ २५ ॥ आलस्योपहता विद्या परहस्तगतंधनम् । अल्प-बीजहतं क्षेत्रंहतंसैनमनायकम् ॥ २६ ॥

भा० टी०—खराब ग्राम कानिवास, नीच कुल के मनुष्यों की नौकरी, खराव अन्न पानी, क्रोध स्वभाव की स्त्री, वेपढ़ लड़का, विधवा पुत्री, ये छः मनुष्यों को विना आग के ही बालते रहते हैं। जिसके पुत्र नहीं उस गृहस्थ का घर शून्य है, जिसके भाई बान्धव नहीं उसकी सर्व दिशाएँ शून्य है, मूर्ख मनुष्य का हृदय मंदीर शून्य होता है, और जो मनुष्य धन हीन होता है उसके सब कुछ शून्य ही शून्य है। नहीं अभ्यास क्रिया हुआ शास्त्र पंडित के भी विष (अहित कर) है, अजीर्ण में भोजन जो किया जाता है वह विष (जहर) है, निर्धनावस्था में बाप का नुकता आदि कर लोगों को भोजन खिलाना विष है, एवं वृद्धावस्था में व्याह करना विष है। जब तक भय अपने सामने नहीं आता, तभी तक भय से भय खाना चाहिये और जब भय अपने सामने आगयातो फि निडर होकर शस्त्रों से लड़ना चाहिये। आलस विद्या को नष्ट कर देता है, दूसरे के हाथ में गया हुआ धन नष्ट हो जाता है, अल्प (खराब) बीज खेत को नष्ट कर देता है मालिक विना की फोज शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ २२-२६ ॥

अभ्यासाद्धार्यते विद्या कुलंशीलेनधार्यते । गुणेनज्ञायतेत्वार्य्यः कोपोनेत्रेणगम्यते ॥ २७ ॥ वित्तेनरक्ष्यतेधर्मो विद्या योगेनरक्ष्यते । मृदुनारक्ष्यतेभूपः सत्स्त्रियारक्ष्यतेगृहम् ॥ २८ ॥ दारिद्र्य नाशनं दानं शीलंदुर्गतिनाशनम् । अज्ञाननाशिनी प्रज्ञाभावनाभयनाशिनी ॥ २९ ॥ यस्यार्थ स्तस्यमित्राणि यस्यार्थस्तस्य बान्धवाः । यस्यार्थोमारणोलोके यस्यार्थः सपंडितः ॥ ३० ॥ वरंवनेव्याघ्रगजेन्द्रसेविते द्रुमालये पत्रफलाम्बुसेवनम् । तृणेषुशय्या-शतजीर्ण वल्कलं नबन्धुमध्येधनहीन जीवनम् ॥ ३१ ॥

भा० टी०—अभ्यास करने वाला कोई भी मनुष्य विद्या को धारण कर सकता है। शील आचार से ही कुल की रक्षा हो सकती है, गुणों के देखने से ही आर्य जाति का ज्ञान होता है और नेत्रों को

देखने से ही क्रोध का पता लग जाता है। धन से धर्म की रक्षा होती है, योग से विद्या की रक्षा होती है, नम्रता एवं कोमलता के द्वारा राजा के कोप की रक्षा होती है, और अच्छी स्त्री से ही घर की रक्षा होती है। दान दारिद्रय को नष्ट कर देता है, शील (ब्रह्मचर्य) दुर्गति को नष्ट करता है, बुद्धि अज्ञानता को नष्ट करती है, और भावना भयया भय को नष्ट करती है। जिस के पास धन है संसार में उसी के लोग मित्र होते हैं। उसी के भाई हैं, वही मारण (बहादुर) और पंडित है। घने वृक्षों से व्याप्त, एवं व्याघ्र और गजेन्द्र सेवित, विकट वन में रहना श्रेष्ठ है, तथा घॉस फूस की शय्या और सैंकड़ों चीथड़े वाले वल्कल के वस्त्र पहिन कर वन के पत्र फल जल का सेवन करना अच्छा है, किन्तु धन हीन होकर अपने भाईयों में जीवन व्यतीत करना ठीक नहीं ॥ २७–३१ ॥

धर्मार्थ काम मोक्षाणांयस्यैकोपिनविद्यते । अजागलस्तनस्येवतस्यजन्म निरर्थकम् ॥ ३२ ॥ आदरंलभतेलोकोन क्वापि धनवर्जितः । कांतिहीनोयथाचन्द्रोवासरेनलभेत्प्रथाम् ॥ ३३ ॥ विद्यावृद्धास्तपोवृद्धायेच वृद्धाबहुश्रुताः । सर्वेतेधनवृद्धस्यद्वारि तिष्ठन्तिकिंकराः ॥ ३४ ॥ यस्यास्तिवित्तंसनरः कुलीनः सपंडितः सश्रुतवान्गुणज्ञः । सएववक्ता सचदर्शनीयः सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ॥ ३५ ॥ यथाविहंगास्तरु माश्रयन्ति न द्योयथा सागरमाश्रयन्ति । यथातरुण्यः पतिमाश्रयन्तिसर्वेगुणा काञ्चनमाश्रयंत ॥ ३६ ॥

भा० टी०—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों में से जो मनुष्य एक का भी सेवन नहीं करता, उसका जीवन बकरी के गले में दीखते हुए स्तनों के समान निरर्थक है। निर्धन मनुष्य कहीं आदर नहीं पाता, जैसे कान्ति (प्रकाश) हीन चन्द्रमा दिन में प्रसिद्धी नहीं पाता है। जो विद्या एवं तप में वृद्ध होते हैं और जो बहुश्रुत होते हैं वह भी सब धन वृद्ध (धनाढ्य) के द्वार पर किंकरके समान घूमते फिरते हैं। जिस के पास धन है वही कुलीन, वही पंडित, श्रुतवान् (सर्व शास्त्र वेत्ता) गुणों का ज्ञाता, प्रसिद्ध वक्ता, और सभी के देखने योग्य है, क्यों कि संसार के सभ गुण कांचन में रहते हैं। जैसे सभी पक्षीगण आकर वृक्ष का आश्रय लेते हैं, सभी नदियां समुद्र का आश्रय लेती हैं, तरुण स्त्री अपने पति का आश्रय लेती है, वैसे ही सर्व ही गुण कंचन का आश्रय लेते हैं ॥ ३२–३६ ॥

वाणी दरिद्रस्यशुभाहितापि हय्यर्थेन शब्देनचसंप्रयुक्ता । न शोभतेवित्तवतः समीपे-भेरीनिनादोपहतेववीणा ॥ ३७ ॥ आलस्यस्थिरतामुपैति भजते चापल्यमुद्योगिताम् कत्वमित-भाषितांवितनुतेमौढ्यं भवेदार्जवम् । पात्रापात्रविचारणाविरहितायच्छत्युदारात्मतां मातर्लक्ष्मी तवप्रसादवशतोदोषा अमीस्युर्गुणाः ॥ ३८ ॥

भा० टी०—दरिद्र (धन रहित) मनुष्य की वाणी यदि शुभ, हितकारी, अर्थ से भरी हुई, और शब्दों से अलंकृत हों तो भी, धनाढ्य की बातों के पास शोभा नहीं देती, जैसे भेरी (ढोल) की आवाज में वीणा की आवाज काम नहीं देती है। मालदार आदमी अगर आलसु हों तो उस को दूसरे लोक स्थिरतावान् शंतोषी धार्धैर्यवान् कहने लगते हैं, चपल हो तो उद्योगी, मूक हो तो मित भार्षी, मूढ़ हो तो भद्रक, पात्र अपात्रे के विचार रहित हो तो उदार आत्मा वाला कहने लगते हैं, हे मा। लक्ष्मी। तुम्हारी कृपा से दोष भी गुण हो जाते हैं ॥ ३७–३८ ॥

यतन्तेरक्षितु'भार्या भर्त्तारोदुर्बलाअपि । स्वांप्रसूतिंचरित्रंच कुलमात्मानमेवच । स्वंच-धर्मंप्रयत्नेन जायांरक्षन्हिरक्षति ॥ ३९ ॥ पति भार्यासंप्रविश्य गर्भोभूत्वेहजायते । जाया-यास्तद्धि जायात्त्वंयदस्यांजायतेपुनः ॥ ४० ॥ यादृशंभजतेहिस्त्री सुतंसूतेतथाविधम् । तस्मा-त्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियंरक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ४१ ॥ नकश्चिद्योषितः सक्तः प्रसह्यपरिरक्षितुम् । एतैरुपाया योगैस्तुशक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥ ४२ ॥ अर्थस्यसंग्रहे चैनांव्ययेचैवनियोजयेत् । शौचेधर्मेन्नपक्त्यांच पारिणाह्यस्यवेक्षणे ॥ ४३ ॥ अरक्षितागृहेरुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः । आत्मानमात्मनायास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः ॥ ४४ ॥

भा० टी०—दुर्बल पति भी अपनी स्त्रियों की रक्षा करने का यत्न करते हैं, दुराचरणों से अपनी स्त्री की रक्षा करने वाला अपनी संतानों को वर्ण संकर होने से बचाता है, अपने चरित्र को निर्दोष रखता है। अपने कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाता है, तथा, अपनी एव अपने धर्म की भी रक्षा करता है। पति अपनी स्त्री में वीर्य रूप से प्रवेश होकर पुत्र रूप से इस जगतमें जन्म लेता है, क्योंकि अपनी स्त्री में फिर संतान रूप से जन्मता है इसी से स्त्री जाया कहलाती है। स्त्री जैसे २ पुरुष को सेवती है तैसी ही संतान उत्पन्न करती है, अतएव श्रेष्ठ संतान होने के लिये पुरुषों को प्रयत्न पूर्वक दुराचार से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये। कोई भी मनुष्य बलात्कार से स्त्रियों की रक्षा नहीं कर सकता, परन्तु इन नीचे के उपायों से उनकी रक्षा हो सकती है। धन को इकट्ठा करके अपने पास रखने से, उन्हीं के वास्ते खर्च करने से, हर बात की सफाई और शुद्धी रखने से, शुरू से ही पति सेवा की शिक्षा देने से, देवगुरु पूजनादि धार्मिक कार्यों में जोड़ देने से, रसोई आदि घर के कामों में जुड़ी रखने से, घर के सामान की सम्हाल में स्त्री को लगी रखने से, आज्ञाकारी विश्वास पात्र मनुष्यों के द्वारा स्त्रियों को घरों में रुकी रखने से स्त्रियों की रक्षा नहीं होती, परन्तु वह यदि चाहें तो अपने को आपही सुरक्षित रख सकती है ॥ ३९–४४ ॥

पानंदुर्जन संसर्गः पत्याचविरहोटनम् । स्वप्नोन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानिषट्

॥ ४५ ॥ शय्यासनमलंकारं कामंक्रोधमनार्जवम् । द्रोहभावं कुचर्य्याचस्त्रीभ्योमनुरकल्पयत् ॥ ४६ ॥ अध्यग्न्यध्यावाहनिकंदत्तंच प्रीति कर्मणि । भ्रातृमातृपितृप्राप्तंषड्विधंस्त्री धनंस्मृतम् ॥ ४७ ॥ अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञानित्यमितिस्थितिः । इतरेषांतुवर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥ ४८ ॥

भा० टी०—मद्यपान, दुर्जनों का संग, पति से अलग रहना, घूमती फिरना, चाहे जहां सोजाना, और पराय घर में रहना, ये स्त्रियों को बिगाड़ने वाले छः दोष हैं । पलंग पर सुती रहना, बातों में बैठी रहना, गहने पर प्रेम, काम, क्रोध, उत्तावलपन, दूसरों से द्रोह और दुराचार ये अवगुन स्त्रियों में स्वभाव से ही होते हैं, ऐसा मनुजी ने कहा है। विवाह काल में अग्नि के समीप पिता आदि का दिया हुआ धन, सुसरालियों ने सुसराल में बुलाते समय जो आभूषण आदि दिया हो वह धन, प्रीति के कारण पति का दिया हुआ धन, तथा भाई माता और पिता से पाया हुआ धन, यह छः प्रकार का स्त्री धन है। कोई लेने वाला हकदार न हो तो भी ब्राह्मण का धन राजा नहीं लेकर ब्रह्म भोज आदि धर्म कार्य में लगा दे, यह सदा की मर्यादा है, परन्तु अन्य वर्णों का धन यदि कोई हकदार न हो तो राजा उसको अपने खजाने में ले सकता है ॥ ४५-४८ ॥

दाक्षिण्यं स्वजनेदयापरजने शाठ्यंसदादुर्जने प्रीतिः साधुजने स्मयः खलजने विद्वज्जनेचार्जवम् । शौर्यं शत्रुजनेक्षमागुरुजने नारीजने धूर्त्तता इत्थंयेपुरुषाः कलासुकुशलास्तेष्वेवलोके स्थितिः ॥ ४९ ॥ गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुभूकर्षकान् । प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥ ५० ॥ श्रोत्रियं व्याधितार्तौंच बाल वृद्धावकिंचनम् । मीनं कुलीनमार्यंच राजासंपूजयत्सदा ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भा० मी० पु० द्वितीय स्कंधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

भा० टी०— स्वजनों पर अनुकूलता, दूसरे जनों पर दया, दुर्जनों से कपट का रखना, साधुजनों से प्रीति, नीच लोगों से अहंकार का रखना, विद्वानों में सरलता का रखना, शत्रुजनों पर शूरवीरता का रखना, गुरु (बड़े) जनों पर क्षमा करना, स्त्रीजनों में धूर्त्तता का रखना, इस प्रकार की कलाओं में जो पुरुष कुशल होते हैं उन्हीं की लोक में प्रतिष्ठा होती है। रुजगार के लिये पशुओं को पालने वाले, व्यापार करने वाले, कारीगरी करने वाले, नौकरी करने वाले, गायन करने वाले, और व्याज खोर ब्राह्मण को शूद्र के समान जानना चाहिये। वेदज्ञ, रोगी, दुःखी बालक, बुड्ढा, साधु वा निर्धन,

मीन भगवान् के अनुयायीयों को धर्मात्मा और किसानों को राजा सदा सन्मान की दृष्टि से देखें ॥४६-५१॥

इति श्रीमद्भागवन्मीनपुराणे द्वितीय स्कन्धे विंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ॥ २० ॥

अथएक विंशोऽध्याय प्रा० । चातुर्वर्णोत्पत्ति व० (भरद्वाज उवाच) ब्राह्मणः केनभवतिक्षत्रियोवाद्विजोत्तमः । वैश्यशूद्रश्च विप्रर्षेतद्ब्रूहि वदतांवर ॥ १ ॥ (भृगुरुवाच) पारावारेषांभूताना मात्मायः पुरुषः परः । सएवासी दिदंविश्वंकल्पान्तेऽन्यंनकिंचन ॥ २ ॥ तस्यनाभेः समभवत्पद्मकोशोहिरण्यमयः । तस्मिञ्जज्ञेसमीनात्मा स्वयभूश्चतुराननः ॥ ३ ॥ ब्रह्मास्वयंभूर्भगवान्दृष्ट्वा सिद्धिन्तुकर्मजाम् । ततः प्रभृतिचौषध्यः कृष्टपच्यास्तुजज्ञिरे ॥ ४ ॥ संसिद्धायांतुवार्त्तायांततस्तासांस्वयंभुवः । मर्यादाः स्थापयामासयथारब्धाः परस्परम् ॥ ५ ॥

भा० टी०—अब २१ वाँ अध्याय शुरु होता है। इसमें चारों वर्णों की मूल उत्पत्ति का वर्णन है। भर द्वाज मुनि ने पूछा कि हे धर्म के स्वरूप को कथन करने वालों में श्रेष्ठ विप्रर्षे भृगुजी ! किस कर्म से मनुष्य ब्राह्मण कहलाता है, एवं हे द्विजोत्तम ! क्षत्रिय किसको कहते हैं, और वैश्य तथा शूद्र किस को कहते हैं। भृगुजी बोले—पूर्व कल्प के अन्त में यह संपूर्ण विश्व अन्तपार रहीत सर्व भूतों के आत्मा परम पुरुष स्वरूपथा, उस ईश्वर के सिवा और कोई भी वस्तु न थी। किरोड़ों वर्षों के बाद उस परम पुरुष की नाभी से हिरण्यमय एक पद्म कोश उत्पन्न हुआ, और उसी में वही मीनात्मा परम पुरुष स्वय चतुर्मुख ब्रह्मा के नाम से प्रगट हुए। ब्रह्मा स्वयंभू भगवान्ने कर्म से उत्पन्न होने वाली सिद्धि को देख कर उसी से फल मूल कृष्ट पच्य। रूप भेद से सृष्टी की। जब ओषधी एवं अन्न की सृष्टि कर चुके तब प्रजागण की वृत्ति का उपाय स्थिर होने पर स्वयंभू ने उनमें परस्पर मर्यादा स्थापन की ॥ ५ ॥

येवै परिगृहीतारस्ता सामासन्बलीयसः। इतरेषां कृतत्राणान्स्थापयामास क्षत्रियान् ॥ ६ ॥ उपतिष्ठन्ति येतान्वै यावन्तोनिर्भयास्तथा । सत्यंब्रह्म यथा भूतंब्रुवन्तो ब्राह्मणाश्चते ॥ ७ ॥ येचान्यबलास्तेषां वैश्यसंकर्म संस्थताः । की नाशा नाशयन्तिस्म पृथिव्यां प्रागतन्द्रिताः ॥ ८ ॥ वैश्यानेवतुतानाहुः कीनाशान्वृत्तिसाधकान् ॥ शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासुयेरता, निस्तेजसोल्पवीर्याश्च शूद्रास्तानब्रवीत्तु सः ॥ ६ ॥ तेषां कर्माणिधर्मांश्च ब्रह्मातुव्यधात्प्रभुः । असृजद्ब्राह्मणानेवंपूर्वं ब्रह्मप्रजापतीन् । आत्मतेजोभिनिर्वृत्तान्भास्कराग्निसम प्रभान् ॥ १० ॥

भा० टी०—उस सृजन की हुई प्रजा समूह में जो परि गृहीता (सबके जाने हुए) बलवान् और प्रजा की रक्षा करने में समर्थ थे, उनको क्षत्रिय; और जो क्षत्रियों के आश्रित होकर निर्भय चित्त से सर्वभूतों में एकमात्र ब्रह्म विद्यमान है इस चिन्ता में दिन व्यतीत करते थे उनको ब्राह्मण, और जो उनसे अल्प बल वाले, खेती करने वाले, पशुओं को पालने वाले और मारने वाले, वैश्य कर्म द्वारा जो जीविका करते थे उनको वैश्य और जो दुःख शोक परायण, तेज हीन अल्प वीर्य, एवं जो अन्य जातियों की सेवा में नियुक्त थे, उनको शूद्र कह कर निर्देश किया गया। इस प्रकार ब्रह्मा जी ने उन चारों वर्णों के कर्म धर्म और मर्यादाओं की स्थापना की, तथा ब्रह्म के जानने वाले ब्राह्मणों को एवं प्रजापतियों को ब्रह्मा ने सबसे पहिले सृजन किया, जो ब्रह्मा के आत्म तेज से उत्पन्न होने के कारण सूर्य की अग्नि के समान प्रभावशाली थे ॥ ६-१० ॥

ततः सत्यंचधर्मंचतपो ब्रह्म चशाश्वतम् । आचारंचैवशौचंच स्वर्गायविदधेप्रभुः
॥ ११ ॥ देवदानवगन्धर्वा दैत्यासुरमहोरगाः । यक्षराक्षस नागाश्चपिशाचामनु जास्तथा
॥ १२ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम । येचान्ये भूतसन्त्वानांवर्णास्तां
श्चापिनिर्ममे ॥ १३ ॥ ब्राह्मणानांसितोवर्ण क्षत्रियाणांचलोहितः । वैश्यानांपीतकोवर्णः
शूद्राणाम सितस्तथा ॥ १४ ॥

भा० टी०—इसके पश्चात् प्रभु ब्रह्माजी ने सत्य, धर्म, तप, ब्रह्मचर्य, शाश्वत आचार, और शौच आदि कृतव्यों का निर्माण स्वर्ग के लिये किया। फिर देव, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महोरग, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच और मनुष्यों की विविध जातियों का प्रति पादन किया। वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्णों के भेदोप भेद और अन्य भी बहुत से जीवों के वर्ण एव भेदों की रचना की। ब्राह्मणों का श्वेत वर्ण माना गया (यदि स्वभाविक श्वेत रंग न हो तो शरीर पर गोपी चंदन भस्म आदि श्वेत वस्तु का लेप करें) क्षत्रियों का लाल वर्ण माना गया (यदि स्वभाविक चमड़ी लाल न हो तो केशर रक्त चन्दन आदि लाल व गेहूँ वर्ण वस्तु का लेप करे) वैसे ही वैश्यों का पीत और शूद्रों का श्याम वर्ण माना गया है। ११-१४ ॥

(भरद्वाज उवाच) चातुर्वर्णस्य वर्णेनयदिवर्णो विभिद्यते । सर्वेषांखलुवर्णानां दृ-
श्यतेवर्णसंकरः ॥ १५ ॥ सर्वेसर्वाप्यपत्यानि जनयन्तिसदानराः । वाङ् मैथुनमथोजन्म
मरणंचसमंनृणाम् ॥ १६ ॥ काम क्रोधोभयंलोभः शोक श्चिन्ताक्षुधाश्रमः । सर्वेषांनः
प्रभवति कस्माद्वर्णोविभिद्यते ॥ १७ ॥ जंगमानामसंख्येयाः स्थावराणाच जातयः, तेषां-
विविधवर्णानां कुतोवर्णविनिश्चयः ॥ १८ ॥

भा० टी०—भरद्वाज बोले शरीर के वर्ण से ही यदि वर्ण व्यवस्था मानली जायेगी तो चारों ही वर्णों में वर्ण संकरता दोष अनिवार्य होता है। क्यों कि सभी वर्णों के लोक सदा चारों ही वर्णों की स्त्रियों में संतानोत्पत्ति करते रहते हैं और वाणी, मैथुन, जन्म, मृत्यु, आदि सभी बातें चारों ही वर्ण के मनुष्यों में एक समान होते हैं। और काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिंता, भूक, थकन, आदि हम सभी मनुष्यों के एक समान होते हैं, तो फिर चमड़ी का रंग देख कर वर्णों का भेद कैसे मालुम हो सकता है। जंगम (चलने वाले) और स्थावर प्राणियों की सभी वर्ण की असंख्य प्रकार की जातियां होती हैं, तो फिर विविध वर्ण वाले पुरुषों का वर्ण निश्चय कैसे हो सकता है ॥ १५-१८ ॥

(भृगुरुवाच) नविशेषोस्तिवर्णानां सर्वंब्राह्ममिदंजगत् । ब्रह्मणापूर्वंसृष्टंहि कर्मभिर्वर्णतांगताः ॥ १९ ॥ काम भोगप्रियास्तीक्षणाः क्रोधनाः प्रियः साहसाः । मारणधर्मारक्तांगास्तंद्विजाः क्षत्रतांगताः ॥ २० ॥ गोभ्योवृत्तिंसमास्थायपीता कृष्युपजीविनः । स्वधर्मेनानुतिष्ठन्ति ते द्विजावैश्यतांगताः ॥ २१ ॥ हिंसानृतप्रियालुब्धाः सर्व कर्मोपजीविनः । कृष्णा शौचपरि भ्रष्टाः स्तेद्विजाशूद्रतांगताः ॥ २२ ॥ इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ताद्विजावर्णान्तरंगताः । धर्मोयज्ञ क्रियातेषां नित्यंनप्रति षिध्यते ॥ २३ ॥

भा० टी०—भृगुजी बोले मनुष्यों में एक दूसरे से कोई विशेषता नहीं है क्यों कि चारों ही वर्ण ब्रह्मा से उत्पन्न हैं, मनुष्य गण प्रथम ब्रह्मा से उत्पन्न होकर धीरे २ कर्मों के द्वारा ही वर्णों में विभक्त हुए हैं। जिन्हों को काम भोग प्यारे थे, तीक्षण स्वभाव वाले थे, एवं क्रोधी और साहसिक थे, वेद विध्वंसकों को मार कर जो मीन भगवान के धर्म में दीक्षित हो गये थे, और जो रक्त अंग वाले थे वे द्विज क्षात्र भाव को प्राप्त हुए। और जो पशु और कृषि के द्वारा उप जीवन करने लगे, पीत वर्ण, कमजोर, अपने धर्म में सदा नहीं ठहरने वाले द्विज वैश्यपन को प्राप्त हुए। और जो क्षत्रिय हिंसक, लुब्धक, कृष्ण वर्ण सर्व कर्मोप जीवी, मिथ्यावादी, एवं शौच भ्रष्ट हुए वे द्विज शूद्रत्व को प्राप्त हुए। इस प्रकार भिन्न २ कार्य करने से ब्राह्मण और क्षत्रि यही पृथक् २ वर्णों को प्राप्त हुए हैं। इन सभी का नित्य नियम और यज्ञ, धर्म आदि क्रियाओं में अधिकार है उनका कोई प्रतिषेध नहीं कर सकता ॥ १९-२३ ॥

ब्रह्मचैवपरंसृष्टंयेनजानन्ति मारणाः । तेषांबहुविधास्त्वन्यास्तत्रतत्रहिजातयः ॥ २४ ॥ पिशाचाराक्षसाः प्रेताविविधाम्लेच्छ जातयः । प्रनष्टज्ञानविज्ञानाः स्वच्छंदाचार चेष्टिताः ॥ २५ ॥ सर्वासांखलुजातीनां मारणंमूल कारणम् । म्लेच्छ वाचश्चार्य वाचः सर्वेतेमारणाः स्मृताः ॥ २६ ॥ तपोबीजप्रभावैस्तुतेगच्छन्तियुगेयुगे । उत्कर्षंचापकर्षंच मनुष्ये ष्विहजन्मतः ॥ २७ ॥

भा० टी०—जो मारण जाति के लोग विद्वानों के द्वारा निश्चय किये हुए पर ब्रह्म को नहीं जानते उन्हीं की उत्पन्न की हुई बहुत प्रकार की अन्य २ जातियां जहां तहां निवास करती है । ज्ञान विज्ञान जिन्हों का नष्ट हो गया है, स्वच्छंदाचारी होकर जो मन मानी चेष्टा करती है, ऐसी पिशाच, राक्षस, और प्रेत आदि विविध प्रकार की म्लेच्छ जातियों तथा सर्व प्रकार की आर्य जातियों का मूल कारण (जड़ वा बीज) मारण जाती ही है, वर्तमान में चाहे वे म्लेच्छ भाषा बोलते हो चाहे आर्य भाषा बोलते हो, सभी सुरु में मारण थे और अब उन्हों की शुद्धी अनिवार्य मान्नी चाहिये । कर्म के कारण से तो जातियां ऊंच नीच होती ही हैं, इसके सिवाय दूसरे तप और बीज के कारण भी हरएक युग में उत्कर्ष अपकर्ष भाव आता रहेता है, अर्थात् तप और उत्तम बीज के कारण नीच वर्ण स्त्री की संतान भी उत्कर्ष (उत्तम) मानी जाती है और तप (आचार शुद्धी) छोड़ कर व उच्च वर्ण की स्त्री नीच कर्म करने वाले से सहयोग करलै तो वह सन्तान अपकर्ष (नीच) भाव को प्राप्त होती है । इनके सिवाय मनुष्यों में तीसरे जन्म के कारण भी उच्च नीच भाव माने जाते हैं । अर्थात् ब्राह्मण व क्षत्रिय जाती में जिस मनुष्य का जन्म हुआ, तो वह उच्च और वैश्य तथा शूद्र वर्ण में जिस का जन्म हुआ तो वह नीच माना जाता है ॥ २४-२७ ॥

जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः । वेदाध्ययन संपन्नः षट्सुकर्मस्ववस्थितः ॥ २८ ॥ शौचाचारस्थितः सम्यग्ब्रह्मनिष्ठो गुरु प्रियः । नित्यव्रती सत्यपरः सवैब्राह्मणउच्यते ॥ २९ ॥ सत्यंदानदमोऽद्रोहः आनृशंस्यंत्रपाघृणा । तपश्च दृश्यतेयत्रसब्राह्मण इतिस्मृतः ॥ ३० ॥ क्षतात्त्रायतेस्वपरंदस्युमारणतत्परः । राष्ट्रसेवारतोयस्तु सवैक्षत्रियउच्यते ॥ ३१ ॥ तेजः सत्यंधृतिर्दाक्ष्यं संग्रामेष्वनिवर्तिता । दानमीश्वरभावश्चक्षत्र धर्मः प्रकीर्तितः ॥ ३२ ॥ त्रीणि कर्माणि कुर्वीतराजन्यस्तु प्रयत्नतः । दानमध्ययनंयज्ञं ततोयोगनिषेवणम् ॥ ३३ ॥ क्षत्रियस्यपरो धर्मः प्रजानांपरिपालनम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनरक्षयेन्नृपतिः प्रजाः ॥ यशः स्वर्गंनृपत्वंचपुनः कोशंचसोर्जयेत् ॥ ३४ ॥ दुष्टस्यदंडसुजनस्य पूजान्यायेनकोशस्यचसंप्रवृद्धिः । अपक्षपातोर्थिषुराष्ट्र रक्षापंचैवयज्ञाः कथितानृपाणाम् ॥ ३५ ॥ दद्याद्दानमनाथेभ्योधर्मबुद्धिसमन्वितः । स्वभार्यानिरतोनित्यं षड्भागार्हसदानृपः ॥ ३६ ॥ नीतिशास्त्रार्थकुशलः संधिविग्रहतत्त्ववित् ॥ देव ब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्य परस्तथा ॥ ३७ ॥ धर्मेणयजनंकार्यमधर्मपरिवर्जनम् । उत्तमागतिमाप्नोतिक्षत्रियोप्ये वमाचरन् ॥ ३८ ॥

भा० टी०—जात कर्म आदि १६ संस्कारों से शुद्ध, वेदों को पढने वाला, छः कर्मों में अवस्थित, शौच आचार में रहा हुआ, ब्रह्म ज्ञान में परिपूर्ण, गुरुओं का प्यारा, नित्य ही व्रत नियमों में

रहने वाला, और सदा सत्य पर आरूढ़ रहने वाले को ब्राह्मण कहते हैं । सत्य परायण, दानशील, इन्द्रियों को दमन करने वाला, किसी भी प्राणी से द्रोह (वैर) नहीं करने वाला, दयावान, लज्जावान, निंदा रहित, और जिसमें तप संयम दीखता हो वही ब्राह्मण है । और जो घाव एवं अन्याय से स्वपर आत्मा का रक्षण करें, जो चोर डाकुओं को मारणे में सदा तत्पर रहै, और जो देश भर की सेवा में सदा तत्पर रहैं, वही क्षत्रिय कहाता है तेज, सत्य, धैर्य, दाक्षिण्यता, संग्राम में पीछा न हटना, दान और ईश्वर भाव, ये क्षत्रियों के स्वभाविक धर्म है । राजाओं को तीन कर्म प्रयत्न से करने चाहिये वे यह है दान देना, वेदों का पढ़ना, और यज्ञ करना, फिर वृद्धावस्था में योग का सेवन करना यह भी मारण क्षत्रियों का आवश्यक कर्म है । क्षत्रियों का पहिला धर्म प्रजा की प्रति पालना है, अतएव राजाओं को चाहिये कि खूब प्रयत्न से प्रजा की रक्षा करें । इसी से उनको यश, स्वर्ग का राज्य और फिर भी मनुष्य लोक में नृपति पन मिलता है, फिर अखंड खजाना भी वही पाता है । दुष्टों को दंड देना, अच्छे मनुष्यों की रक्षा एवं पूजा करना, न्याय से कोश (खजाने) की वृद्धि करना, इन्साफ में किसी का पक्ष-पात न करना, और अपने देश की सर्व प्रकार से रक्षा करना ये राजाओं के पाञ्च महा यज्ञ है । धर्म की बुद्धि से अनाथों को दान देना, अपनी ही भार्या में सदा संतोष रक्खै, प्रजा से जमीन की लगान स्वरूप पैदावारी का छट्टा हिस्सा ग्रहण करै, । नीति और शास्त्रों के अर्थ जान्ने में चतुर, संधि (मिलाप) और विग्रह (युद्ध) के तत्व (सार) को जानने वाला, देव और ब्राह्मणों का भक्त, पितृकार्य (पिंडदान) आदि में तत्पर, धर्म से यज्ञ करने वाला और अधर्म को अपने देश से मिटा देने वाला, इत्यादि इन शुभ और सार्वजनिक हितकारी कार्यों को करने वाला क्षत्रिय (राजा) उत्तम गति को प्राप्त होता है। ॥ २८-३८ ॥

विशत्याशु पशुभ्यश्चकृष्या दानरतिः शुचिः । वेदाध्ययनसंपन्नः सवैश्यइतिसंज्ञितः
॥ ३९ ॥ सर्वभक्षयरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः । त्यक्तवेदस्त्वनाचारः सवैशूद्रइतिस्मृतः
॥ ४० ॥ शूद्रेचैतद्भवेल्लक्ष्म द्विजेतच्चनविद्यते । नवैशूद्रोभवेच्छूद्रो ब्राह्मणोनच ब्राह्मणः
॥ ४१ ॥ यस्तुशूद्रोदमेसत्येधर्मेचसततोत्थितः । तंब्राह्मणमहंमन्ये वृत्तेनहिभवेद्द्विजः ॥४२॥
शनकैस्तुक्रियालोपादिमाक्षत्रिय जातयः । वृषलत्वंगतालोके ब्राह्मणाऽदर्शनेनच ॥ ४३ ॥
पौंड्रकाश्चौडद्रविडा कम्बोजायवनाःशकाः। पारदापल्हवाश्चीनाः किरातादरदाः खशाः॥४४॥
यत्रब्रह्मचक्षत्रंच सम्यश्चौचरतः सह । तंलोकंपुण्यप्रज्ञेयंयत्रदेवाः सहाग्निना ॥ ४५ ॥

भा० टी०—जो प्रवेश करता है शीघ्र पशुओं के लिये भयंकर वनादी में, वा उपभोग करता है पशुओं का, और जो खेती करता है, व्यापार करता है, और जो दान पुण्य करने में तल्लीन रहता है, एवं खान पान शरीर और वस्त्रों की जो सदा पवित्रता रखता है, वेद पढ़ता है और जो श्री संपन्न होता

है उस द्विज की वैश्य संज्ञा है । जो नित्य सभी वस्तुओं को खाता पीता है, सभी प्रकार के उच्च नीच कर्मों को करता है, जों सदा अपवित्र रहता है, वेदों में लिखे हुए शुभाचारों को जिसने सर्वथा छोड़ ही दिया है, और जो हमेशा अनाचारों को ही सेवन करता है वह शूद्र है । शूद्र में यदि शूद्र के लक्षण न होकर द्विजों के हो, और द्विजों में द्विजों के लक्षण न होकर यदि शूद्रों के लक्षण हों तो वह शूद्र, शूद्र नहीं होता और वह ब्राह्मण भी ब्राह्मण कहाने के योग्य नहीं है । जो शूद्र दम (बाहर विषयों से इन्द्रियों को रोकना) सत्य, और धर्म में निरंतर सावधान रहता है उसको मैं (भृगु) ब्राह्मण ही मानता हूँ शूद्र नहीं । क्योंकि वृत्त (गुरु का आदर, दया, शौच, सत्य, इन्द्रियों को रोकना, लोगों को हितकारी बातों में चलाने,) सेही तो ब्राह्मण कहाता है । सहज २ क्रियाओं के लोप होजाने पर और ब्राह्मणों के सत्संग में नहीं रहने के कारण ये जो आगे कहेंगें क्षत्रिय जातियां वृषल (म्लेच्छ या शूद्र भाव) को प्राप्त हो गई है । पौंड्रक, चौड, औड, द्रविड, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीन, किरात, दरद और खशादि । जहां ब्राह्मण और क्षत्रिय ये दोनों जातियां साथ में मिल कर विचरती है उस देश को पुण्य लोक समझना चाहिये और देवता लोग भी अग्नि के साथ वहींरते हैं ॥ ३६-४५ ॥

ज्ञातित्यक्तंतु पुरुषं ज्ञातौशीघ्रसमानयेत्, प्रायश्चित्ते न विधिना नोचेद्भ्रातिं व्रजत्यपि ॥४६॥ ज्ञातित्यक्तोहि कुरुते पापं ज्ञाति विवर्जितः । तत्पापं ज्ञातिबन्धूनां जायते नात्र संशयः ॥ ४७ ॥ ज्ञात्वापि विहितं कर्म ज्ञातिभि परिवर्जितम् । प्रायश्चित्तेन पुनर्जाति मानयेन्मनुरब्रवीत् ॥ ४८ ॥ इति श्री म० मीनपु० द्वितीय स्क० एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

भा० टी०—जाति से बहार किये हुए मनुष्य को विधिपूर्वक प्रायश्चित देकर शीघ्र जाति में लेना चाहिये । अगर उसको जाति में नहीं लोगे तो वह भ्रमण करता हुआ अनार्य जाति में जा मिलेगा । अथवा दूसरों को भ्रमा कर अपनी जमात में मिला लेगा । इसी से मूल जाति को ही नुकशान पहुंचता है । जाति से बाहर किया हुआ मनुष्य जाति में अनजान विवर्जित होकर जितने भी पाप करेगा वे सब पाप अपने जाति भाइयों के ही शिर ऊपर रहते हैं इसमें कोई संशय नहीं । महाराज मनुजी कहते हैं कि जातिपतित पाप-कर्म करने वालों के किये हुये कर्मों को अच्छी तरह से जानना चाहिये और उसको शिक्षा देने के लिये एक बार तो अवश्य ही जाति से बाहिर कर देना अच्छा है, मगर सदा के लिये जाति से बाहर रहने वाले का जो नतीजा निकलता है, उसको सोचकर जातीत्यक्त को ठीक २ प्रायश्चित देकर पुनः जाति में मिला लेने का ही परिणाम ठीक निकलता है ।

इति श्री मद्भागवन्मीनपुराणे द्वितीय स्कन्धे एक विंशतितमो अध्यायः समाप्तः ।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः प्रा० वर्णसंकर जात्युत्पत्ति व० ॥ भृगुरुवाच ॥

द्विजानां षोडशैवस्युः शूद्राणां द्वादशैव हि । पंचैवमिश्रजातीनां संस्काराः कुल-
धर्मतः ॥ १ ॥ संकरस्त्रिविधः प्रोक्तः पुरातनमहर्षिभिः । तत्रादौमारणौ ज्ञेयोवर्णसंकरसंज्ञकः
॥ २ ॥ प्रातिलोम्यानुलोम्येनवर्णैस्तज्जैः सवर्णतः । षष्ट्यं वान्यैः प्रजायेन्ते तत्प्रसूतैस्त्वन्तकैः
॥ ३ ॥ तेषांभेदानुभेदाश्चप्रभवन्ति कलौयुगे । असंख्यातास्तु जायन्ते तान्वक्तुं कः प्रगल्भते
॥ ४ ॥ अनुलोम्येन वर्णानांषड्भवन्तिनराः क्रमात् । प्रातिलोम्येनषट्तेस्युरिति द्वादशभेदतः
॥ ५ ॥ एतैर्द्वादशमिश्राः स्युश्चतुर्वर्णैर्विमिश्रिताः । तेस्युरष्टाब्धयोभेदाषष्टिर्द्वादशसंयुताः ॥६॥

भा० टी०—अब बाईशवाँ अध्याय सुरु होता है । इस में वर्ण संकर जातियों की उत्पत्ति का वर्णन है । भृगुजी बोले कि द्विजातियो में शोलह और शूद्र में बारह तथा मिश्र जातियों में अपने कुल के धर्मानुसार पांच संस्कार होते हैं । संकर (मिश्र) महर्षियों ने तीन प्रकार का कहा है उनमें से पहिला भेद वर्ण संकर संज्ञक है । प्रतिलोम (उच्च वर्ण की स्त्री में नीच वर्ण के पुरुष से) अनुलोम (नीच स्त्री में उच्च पुरुस से) उत्पन्न हुए और अपने २ वर्ण की स्त्रियों में उत्पन्न सर्व मिलकर साठ ६० भेद होते हैं और उन साठों ही भेदों की संताने अन्य अन्यों से त्पन्न होकर अनन्त प्रकार की हो जाती है । उनों के ये असंख्य भेद कलियुग में जाकर होते हैं उन्हों के भेदों की संख्या करने की किसी में सामर्थ्य नहीं है । अब साठ भेद बताते हैं । अनुलोम से ६ भेद यथा ब्राह्मण से क्षत्रिया में १ ब्राह्मण से वैश्या में २ ब्राह्मण से शूद्री में ३ क्षत्रिय से वैश्या में ४ क्षत्रिय से शूद्री में ५ वैश्य से शूद्री में ६ ॥ और प्रति लोम से ६ भेद होते हैं यथा शूद्र से वैश्या में १ शूद्र से क्षत्रिया में २ शूद्र से ब्राह्मणी में ३ वैश्य से क्षत्रिया में ४ वैश्य से ब्राह्मणी में ५ क्षत्रिय से ब्राह्मणी में ६ ये सब १२ भेद हुए । इन १२ मिश्र जातियों के एकैक वर्ण के साथ १२ बारह २ भेद होते हैं, चारो वर्णों के ४८ भेद हुए । इन्हों में बारह मूल की मिश्र जातियां मिलने पर ६० भेद होते हैं ॥ १–६ ॥

रथ कारादि संप्रोक्तोवर्ण संकीर्णसंकरः । वर्णसंकीर्ण संकीर्णः संकर स्त्रितयः स्मृतः
॥ ७ ॥ विप्रान्मूर्द्धावसिक्तोहि क्षत्रियायांविशः स्त्रियां । अम्बष्ठः शूद्रयांनिषादो जातः
पारशवोपिवा ॥ ८ ॥ वैश्या शूद्रयोस्तु राजन्यान्माहिष्योग्रौसुतौस्मृतौ । वैश्यात्तु करणः
शूद्रयांविन्ना स्वेषविधिस्मृतः ॥ ९ ॥

भा० टी०—वर्ण संकरादि तीन भेदों में दूसरा भेद रथ कार (खाती) आदि वर्ण संकीर्ण संकर कहाते हैं और तीसरा भेद वर्ण संकीर्ण संकीर्ण संकर जान्ना चाहिये । ब्राह्मण से व्याही हुई क्षत्रिया स्त्री में जो पुत्र होता है वह मूर्द्धावसिक्त कहाता है । वैसे ही वैश्या में अम्बष्ठ, और शूद्रा में

निषाद, अथवा पारशव, कहाता है। क्षत्रिय से व्याही हुई वैश्या में माहिष्य, और शूद्री में उग्र पुत्र होता है,। वैश्य से व्याही हुई शूद्रा में करण नामक पुत्र होता है। ये ६ अनुलोमज पुत्र है। यह छः ही विवाहित कन्याओं में होते हैं ॥ ७–६ ॥

ब्राह्मण्यांक्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहिकस्तथा । शूद्राज्जातस्तुचाण्डालः सर्वधर्म बहिष्कृतः ॥ १० ॥ क्षत्रिया मागधंवैश्याच्छूद्रात्क्षत्तारमेवच । शूद्रादायोगवं वैश्या जनयामासवैसुतम् ॥ ११ ॥

भा० टी०—क्षत्रिय से जो ब्राह्मणी में उत्पन्न हो वह सूत कहाता है, वैश्य से ब्राह्मणी में वैदेहिक होता है, और शूद्र से ब्राह्मणी में सब धर्मों से रहित चांडाल होता हैं। वैश्य से क्षत्रिय की कन्या में मागध होता है। वही कन्या शूद्र से क्षत्ता को उत्पन्न करती है। वैश्य की कन्या शूद्र से आयोगव नामक पुत्र को उत्पन्न करती है ॥ १०–११ ॥

माहिष्येण करण्यांतु रथकार प्रजायते । असत्संतस्तुविज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ १२ ॥ ब्राह्मण्यांक्षत्रिया चौराद्रथ कारः प्रजायते । वृत्त चशूद्रवत्तस्यद्विजत्वंप्रतिषिद्धयते ॥ १३ ॥ ब्राह्मणादुग्र कन्यायांमावृत्तोनाम जायते । आभीरोम्बष्ठकन्यायामायोगव्यांतु-धिग्वणः ॥ १४ ॥ जातोनिषादाच्छूद्रायांजात्याभवति पुक्कसः । शूद्राज्जातोनिषाद्यांतु कुक्कुटकः सम्मृतः ॥ १५ ॥

भा० टी०—माहिष्य जो क्षत्रिय से वैश्य की कन्याओं में उत्पन्न हो उस से करणी, वैश्य से शुद्रा में उत्पन्न हुई कन्या में जो पुत्र उत्पन्न होता है वह भी रथकार (खाती) कहाता है, यहां एक नाम की अनेक जातियां भिन्न २ कारण से लिखी गई है क्योंकि चौरी से, जोरी से, और रजामंदी विवाह के कारणे के ही कारण अनुलोम प्रतिलोम आदि विभिन्न जातियों की उत्पत्ती होती है। ब्राह्मणी में क्षत्रिय के द्वारा चौरी से भी, रथकार (खाती) होता है उसकी वृत्ति (अजीवि का) शूद्र के समान होती है, ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य होने का यह दावा नहीं कर सकता क्योंकि इनमें द्विजत्व का प्रतिषेध (सर्वथा अभाव) है। ब्राह्मण से उग्रकन्या में आवृत्त नाम पुत्र होता है, ब्राह्मण से अम्बष्ठ कन्या में आभीर (अहीर) होता है, ब्राह्मण से आयोगव कन्या में धिग्वण होता है। निषाद से शूद्र कन्या में पुकस होता है, शूद्र से निषाद कन्या में कुक्कुट होता है ॥ १२–१५ ॥

क्षत्तु र्जातस्तथो ग्रायांश्वपाक इति कीर्त्यते । वैदेहकेनत्वम्बष्ठ्यामुत्पन्नो वेण उच्यते

॥ १६ ॥ व्रात्यात्तु जायतेविप्रात्पापात्मा भूर्जकंटकः। आवन्त्य वाटधानौच पुष्पधः शैख-एवच ॥ १७ ॥ झल्लोमल्लश्चराजन्यात् व्रात्यान्निच्छविरेवच ॥ नटश्चकरणश्चैव खसोद्रविड-एवच ॥ १८ ॥ वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधनवाचार्य एवच । कारुषश्चविजन्माच मैत्रः सात्वत एवच ॥ १६ ॥

भा० टी०— क्षता से उग्रा कन्या में श्वपाक होता है। वैदेहक से अम्बष्ठा में वेण होता है, व्रात्य (यज्ञोपवीत संस्कार वर्जित) ब्राह्मण की सवर्णा स्त्री में पापकर्मा भूर्जकंट जाती होती है। जिसको आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध और शेख भी कहते हैं। व्रात्यक्षत्रिय से सवर्णा स्त्री में मल्ल, मल्ल, निच्छवि नट, करण, खस और द्रविड जाती होती है। व्रात्य वैश्य से सवर्णा स्त्री में उत्पन्न पुत्र को सुधन्वा आचार्य, कारुष, विजन्मा, मैत्र और सात्वत जाति कहते हैं॥ १६–१६॥

स्त्री पुष्पशेखरानाम ब्राह्मणेनसुसंगता । सासूतेतनयंसोपि भोज को मगधाभिधः ॥ २० ॥ सूर्यपूजारतस्यास्य स्पष्टतः भूर्जकंठतः ॥ तस्यमागधजातेस्तुकन्यका विप्रसंगता। तत्पुत्रशाश्वतो कश्च कथितोदेवलाभिधः ॥ २१ ॥ प्रतिमांपूजयद्विष्णोरसौ शंखादिचिन्हतः। सपर्या जानितांतासांद्रविणं तस्यजीवितम् ॥ २२ ॥ अपांक्त योप्य भोज्यान्नो वर्णत्रय बहिष्कृतः। असौ देवलकोनाम सर्व कर्मसुगर्हितः ॥ २३ ॥

भा० टी०—पुष्प शेखराजा तिकी स्त्री ब्राह्मण से संगम करके भोजक (सेवक) मागध, पुत्र को उत्पन्न करती है, यह सूर्य की पूजा किया करै, स्पर्श करने में यह मागध भूर्ज कंठ से दूर नहीं है। इस मागध जाति की कन्या यदि ब्राह्मण जाति के पुरुष से समागम करै तो उस का पुत्र शाश्वतीक, वा देवलक नाम वाला होगा, यह शंखादिक चिह्न धारण करके विष्णु की प्रतिमा की पूजा किया करै, और जो पूजा का एवं पूजा की एक से अधिक बोली का द्रव्य आवै, उससे अपनी आजीविका करै। यह द्विजों की पंक्ति में बैठ कर भोजन करने के लायक नहीं है। क्योंकि तीन वर्ण से यह बाहार है। यह देवलक (भोजक वा सेवक) विवाह आदि सर्व वैदिक कर्मों में निंदित है॥ २०–२३॥

आयोगवी पारशवाभ्यां यः स्यात्कैवर्तकाभिधः । सहीनस्त्वन्त जातिभ्यो जालं स्वीकृत्यसर्वशः ॥ २४ ॥ नाव्यंकर्म प्रवहणंनद्यांवर्षासु वाहयेत् । नदीमुत्तारयेल्लोकांस्तेभ्य-श्चैच्छ न्दनंमुदा ॥ २५ ॥ कारावारी यदानारी वैदेहाज्जनये त्सुतम् । समेदसंज्ञः कथितस्तु न्योसोफलजीविना । वितंडवेशः सवसेदरण्ये वृक्षपदेते ॥ २६ ॥ कारावारी यदानारी धीव-

राज्जनयेत्सुतम् । समिल्लसंज्ञः कथितः कन्दमूलादि जीवनः। बीभत्सवेशः सवसेदरण्ये वृक्षपर्वते ॥ २७ ॥

भा० टी०—आयोगवी में पारशव जाति के पुरुष से कैवर्त (धीवर) होता है, यह अन्त्य जाति से हीन जाल बना कर उसके द्वारा पक्षी और सर्व प्रकार के जलचर जीवों से आजिविका चलाता है, तथा वर्षा काल में नदी में नाव डाल कर लोगों को पार करता है (यह धीवर मल्लाह तारु और कीर नाम से भी प्रसिद्ध है) यदि कारा वारी स्त्री वैदेहिक पुरुष से पुत्र उत्पन्न करे तो उसकी मेद संज्ञा होती है, यह फल जीवियों के समान होता है, यह कुदालधारी होकर वितंड (बूरे) वेश से वन और वृक्षों वाले पर्वतों में निवास करे। कारावारी स्त्री में धीवर से जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह भील कहाता है, कंदमूल-फल उसका जीवन है, वह भयानक वेश से वन वृक्ष युक्त पर्वतों में निवास करते हैं ॥२४-२७॥

वैदेहायांनिषादेन कारावारः प्रजायते। योमागधीक्षत्रिययो र्जात उल्मुक संज्ञकः। सलोहकर्मणा जीवेद्वर्णतोहीनएवसः ॥ २८ ॥ नृपायांवैश्यत श्चौर्यात्पुलिंदः परिकीर्तितः। कुक्कुट्याभीरसंयोगा न्नीलीकर्तासकथ्यते ॥ २९ ॥ मेदवंशस्य वनिताहस्तकेनयदारहः पुत्रंठट्ठारंसासूतेनीचः सर्वासुजातिषु ॥ ३० ॥ त्रपुलाक्षा ताम्रकांस्यैः कुर्यात्सोऽपिविभूषणम्। तद्विक्रय तोलब्धंतदेवतस्य जीवनम् ॥ ३१ ॥

भा० टी०—वैदेहा स्त्री में निषाद से कारा वार होता है। मागधी स्त्री क्षत्रिय के संग से उल्मुक (लोहार) को उत्पन्न करती है, वह लोहे के कर्म से आजीविका करे, यह भी वर्ण ३ से हीन है। क्षत्रिया स्त्री चोरी के द्वारा वैश्य से पुलिंद को उत्पन्न करती है। कुक्कुटी स्त्री आभीर (अहीर) से नीलगर को उत्पन्न करती है। मेद वंश की स्त्री यदि छिप कर हस्तक के साथ समागम करे तो उस पुत्र का नाम ठट्ठारा होता है, यह सब जातियों से निकृष्ट होता है, सीसा, लाख, तांबा, कांसी के गहनों का बनाना, इस का काम है, और उनके बेचने से जो धन मिले यही उसकी आजीविका है ॥ २८-३१ ॥

क्रव्याधि वनितासंगाच्चंडालाद्धस्तको भवेत्। प्लवस्त्रियांश्वपाकेनजातः क्रव्याधिरुच्यते ॥ ३२ ॥ क्षत्रिणीकन्यका वैश्याज्जनयामासवंदिनम्। सावन्दिनी द्विजात्सूतेतनयं मंगुसंज्ञकम् ॥ ३३ ॥ समंगुकुंभकारस्य महिष्यां यदि कामयेत् तस्यांचजनयेत्पुत्रं सस्याच्छालमलाभिधः ॥ ३४ ॥ सहीनः शूद्रधर्मेभ्यः पर्णवल्ली विधायकः। ताम्बूलवल्ली संभूतंद्रव्यंतस्योपजीवनम् ॥ ३५ ॥

भा० टी०—चांडाल के संग से क्रव्याध स्त्री में हस्तक जाति का पुत्र होता है। प्लव स्त्री में

श्वपाक से क्रव्याध जाति होती है। क्षत्रियाणी में वैश्य से बंदी (भाट) होता है वंदिनी स्त्री ब्राह्मण से मंगु पुत्र को उत्पन्न करती है। वह मंगु कुंभकारी में शालमल पुत्र को उत्पन्न करता है, वह शुद्र धर्म से हीन होता है और वल्ली के मंडपों को बनाता है तथ ताम्बुल वल्ली से उत्पन्न द्रव्य ही उसकी आजीविका है ॥ ३२-३५ ॥

माहिष्य वनितापुत्रं वैदेहाद्यः प्रसूयते । स कायस्थ इतिप्रोक्त स्तस्य कर्मविधीयते ॥ ३६ ॥ लिपीनांदेश जातानांलेखनंससमभ्यसेत् । गणकत्वंविचित्रंच बीजपाटी विभेदतः ॥ ३७ ॥ वृत्त्यानया वर्तनंस्यात्कायस्थस्यविशेषतः । अधमः शूद्र जातिभ्यः पञ्चसंस्कार वानसौ ॥ ३८ ॥ काकाल्लौल्यंयमात् क्रौर्यं स्थपतैरथ कृंतनम् । आद्यक्षराणिसंगृह्य कायस्थ इति कीर्तितः ॥ ३९ ॥

भा० टी०—माहिष्य स्त्री में वैदेह से जो पुत्र होता है वह कायस्थ कहाता है उसका कर्म यह है सब देशों की भाषाओं को सीख कर लिखने का अभ्यास करै, बीज औरपाटी के भेदों से गणित विद्या सीखै, कायस्थ की लिखने पढ़ने की वृत्ति है यह शूद्र जाति से अधम एवं पांच संस्कार वान् मिश्र जाती है। काक (कौआ) से चपलता, वा मांस भक्षण में लौलुपता, यम राज से क्रूर (निर्दयता) और स्थपति (बढ़ई खाति) से काटना, इन तीनो अर्थों के जताने के लिये इन तीनों शब्दों के पहले २ अक्षर को लेकर, इसको 'कायस्थ' कहा है ॥ ३६-३९ ॥

उग्रामागधसंयोगाज्जातः कुन्तलकाभिधः सनापित इतिप्रोक्तः क्षौरकर्म विधानकृत् ॥ ४० ॥ श्मश्रुकृन्तनंचैव नखकृन्तन कोविदः । वृत्यानयाग्राम मध्येतिष्ठन्वर्णेषुसेवकः ॥ ४१ ॥ माहिष्य स्त्री ब्राह्मणेन संगताजनयत्सुतम् । आभीरपत्न्यामाभीरमिति तंमनुरब्रवीत् ॥ ४२ ॥ तेषांसंघोवसेद्‌घोषे बहुशस्य जलाशये आविकं गोमहिष्यादि पोषयत्तृणवारिणा ॥ ४३ ॥ दुग्धंदधि घृतंतक्रंविक्रयीतधनायच । शूद्रेभ्योन्यूनता धर्मेतस्यसर्वस्य विश्रुता ॥ ४४ ॥

भा० टी०—उग्रा स्त्री और मागध पुरुष के योग से कुन्तल होता है वह नापित (नाई) नाम से प्रसिद्ध और क्षौर (हजामत) कर्म करने वाला होता है। डाढ़ी मूंछ और नाखूनों को काटना और पगचंपी आदि सेवा का करना ये इसके क्षौर कर्म से अधिक कर्म है, तैल मालिश आदि वृत्ति (आजीविका) करता हुआ यह ग्राम में रहै। भृगुजी ने कहा कि ब्राह्मण पुरुष आभीर और महिष्या पत्नि में भी आभीर (अहीर जाति को ही उत्पन्न करता है,) इन अहीरों का संघ (समुह) जहां

रहता हो उसको घोष कहते हैं (इसी कारण अहीर का दूसरा नाम घोषी है) इनों का घोष वहां होता है जहां पर बहुत से जलाशय हों, खेतों में धान्य हो, वृक्षों में फल हो, और तृण घाँस जहां बहुत हों। भैड़, बकरी, गौ महिष्य आदि दूधाले जानवरों को यह तृण जल आदि से पाले और दूध, दही, घृत, छास आदि को धन के लिये बेच कर अपना गुजारा करें। शूद्र से इस जाति का धर्म न्यून, सर्व जनता में प्रसिद्ध ही है ॥ ४०-४४ ॥

शूद्रा दायोगवी जाता वैश्यागर्भसमुद्भवा । आयोगवीसासैरन्ध्रं कायस्थाज्जनयेत्सु-तम् ॥ ४५ ॥ सहीन शूद्रधर्मेभ्यः । सेवाकुर्याद् द्विजातिषुपादयोः चालनंतेषां धम्मिल्लानां प्रसाधनम् ॥ ४६ ॥ अभ्यंगमर्दनं चैवचंदनस्यानुलेपनम् । मृगनाभेरिन्दुयोगाच्छृंगाररच-नाद्भनम् । जीविकातस्यसंप्रोक्तातत्स्त्री सैरन्ध्रि का स्मृता ॥ ४७ ॥

भा० टी०—वैश्या स्त्री के गर्भ में शूद्र से आयोगवी कन्या होती है, उस आयोगवी में कायस्थ से सैरन्ध्र होता है। वह सैरन्ध्र शूद्र धर्म से हीन है और द्विजातियों के चरणों का धोना उनके शिर के केशों को संवार कर बान्धना, अभ्यंगन, मर्दन, चन्दन लेप, कस्तुरी कपूर आदि के योग से श्रृंगार रचना करके धन कमाना, इनकी जीविका है, इनकी स्त्री सैरन्ध्री कहाती है ॥ ४५-४७ ॥

ब्राह्मण्यां कटधानेनवृतोसौपुष्पशेखरः । वंदिनीशूद्रसंयोगाज्जातः सिन्दोलकाभिधः ॥ ४८ ॥ द्विजशूद्री समायोगान्निषादी वनिताभवेत् । निषादीद्विजतः सुतेतनयान्पौष्टिका भिधान् ॥ ४६ ॥ तेदोलावाहकाराज्ञांविशेषाद्द्रुतगामिनः । छागलावाहकास्तेस्युः कावडी वाह कामताः । काहाराइति लोकेस्मिन् गर्दभैरुपजीविनः ॥ ५० ॥

भा० टी०—ब्राह्मणी में कटधान से जो पुत्र होता है उसको पुष्प शेखर कहते हैं। वंदिनी (भाटनी) में शूद्र के संयोग से जो पुत्र होता है उस को सिन्दोल कहते हैं। द्विज और शूद्री के संयोग से निसादी कन्या होती है और निषादी तथा द्विज के संयोग से जो पुत्र होता है उस को पौष्टिक (पोट्ठिया) कहते हैं उसकी जीविका पालखी उठाना, हमाली करना, राजाओं की डौलियां उठाकर शीघ्रता से भागना, पहाड़ी रास्ते बकरों पर बजन लाद कर लेजाना, युद्ध में दूध और मांस पहुँचाना, हरएक वजन को या जल को कावड़ी (बैंगी) में डाल कर शीघ्र लेजाना, लोक में आम जनता इनों को कहार नाम से पुकारते हैं। गदहों से भी ये लोग अपनी जीविका चलाते हैं। ॥ ४८-५० ॥

कुमारीसंभवस्त्वेक सगोत्रायांद्वितीयकः । ब्राह्मण्यांशूद्रजनितश्चंडालस्त्रिविधः स्मृतः ॥ ५१ ॥ वर्द्धकिनापितोगोपनाइकः कुंभ कारकः । वणिकिरातकायस्था मालाकार कुटुम्बिनः

॥ ५२ ॥ वरटोमेदेश्चांडाल दासः श्वपचकोलकाः । एतेन्त्यजाः समाख्याता ये चान्येचगवाशनाः ॥ ५३ ॥

भा० टी०—चांडाल तीन प्रकार के होते हैं, एक तो वह जो ब्राह्मण की कुंवारी (बिना ब्याही) कन्या से उत्पन्न हुआ, दूसरा वह जो किसी द्विज ने अपनी स्वगोत्रा स्त्री में उत्पन्न किया हो, तीसरा वह जो ब्राह्मणी में शूद्र से उत्पन्न हुआ हो। वर्द्ध की (बढ़ई खाती) नापित (नाई) गोप (ग्वाला, गडरिया) नाङ्क (गुणों को याद नहीं करने वाला) नायक, कुंभकार, वणिक् (वणियां) किरात (किराड़ धाकड़) कायस्थ, माली, कुलमी, बरड़, मेद, चांडाल, दास (धीवर) श्वपच, कोली और गौभत्तक जातियां ये सब अंत्यजः कहाते हैं ॥ ५१-५३ ॥

शंकुकारात्मजाः सर्वेबभूवुश्चित्रकारिणः । कुविन्दकात्मजौजातौकेरी कुर्मीतिसंज्ञकौ ॥ ५४ ॥ ब्राह्मणोगायकोलोके सवैष्णव इतीरितः । शास्त्रेसकटधानाख्यो विप्रस्त्री गर्भसंभवः ॥ ५५ ॥ कटधानः समंगुतां कामतोयदिगच्छति । तयोर्योजायतेपुत्रः सछागलिक संज्ञकः ॥ ५६ ॥ कुक्कुटस्येहवनिता कुंभकारेणसंगता । तस्याः सुतः सविख्यातः कुरुविन्द इति स्फुटम् ॥ ५७ ॥ कौशेयानि सवस्त्राणि रचयेदात्मवृत्तये । तुल्योसावन्त्य जातीनांतद्धर्म मनुपालयेत् ॥ ५८ ॥

भा० टी०—शंकु कार (मच्छी पकड़ने के हतियार बनाने वाला) के पुत्र जो हैं वे सबही चित्र करने वाले, होते हैं कुविन्दक (जुलाहे) के पुत्र केरी, और कुरमी नाम से होते हैं। रासधारी ब्राह्मण को वैष्णव कहते हैं। उससे विप्र स्त्री में कटधान नामक पुत्र होता है। कटधान से मंगु स्त्री में छागल (खटीक) उत्पन्न होता है। कुक्कट स्त्री कुंभकार के संयोग से कुरुविन्द पुत्र को उत्पन्न करती है। वह सूती ऊनी वस्त्रों को बनाकर अपनी जीविका करै, इसका धर्म अन्त्यजों के समान है ॥ ५४-५८ ॥

कुंभकारधिग्वणी संगात्पुत्रोयस्तु प्रजायते । सचित्रकारोलोकेस्मिन्नामतः परिकीर्त्तितः ॥ ५९ ॥ चित्राणिप्रतिबिम्बानि पुरुषाकृतिमेवच । यत्तद्विक्रयतोलब्धंधनंतस्येह जीवनम् ॥ ६० ॥ कुलटायांचशूद्रायां चित्रकारस्यवीर्यतः । बभूवाट्टालिका कारः । पतितोजारदोषतः ॥ ६१ ॥ अट्टालिका कार बीजात्कुंभकारस्ययोषितः । बभूवकोटकः सद्यः पतितोगृहकारकः ॥ ६१ ॥

भा० टी०—कुंभ कार से धिग्वणी (मोचिन) स्त्री में चित्रकार (चितारा) होता है। विविध प्रकार के चित्र, तस्वीरें, खिलोने, बना कर बेचे और उनसे अपनी आजीविका करै। चित्रकार के

वीर्य से कुलटा (व्यभिचारिणी) शुद्रा स्त्री में अट्टालिका कार (राज, कारीगर) होता है। माता के जार दोष के कारण यह पतित माना जाता है। अट्टालिका कार के बीज से कुंभकार स्त्री में कोटक (मिस्त्री) मकान चुनने वाला होता है ॥ ५६-६१ ॥

समाहिष्यो निषादस्त्री संगमाज्जनयेत्सुतम् । मालाकार मसौलोके मालीतिचप्रकीर्तितः
॥ ६२ ॥ कुसुमानिचशाकानि वर्द्धयेद्धनवृद्धये । सहो न शूद्रधर्मेभ्यः समुहेसप्तकं प्रभुः ॥६३॥
मालाकारः शाम्बरश्चशाल्मलो मौकलस्तथा । कारावारः पुल्कसश्चश्वपाकः सप्तचप्रजाः
॥ ६४ ॥ चांडालः पुल्कसी संगाच्छ्वपचंजनयेत्सुतम् । स्थानान्तरंस नगरेकर्तु मर्हत्यशेषतः
॥ ६५ ॥ गोगर्दभपशूनाचग्रामाभिः सरणंबहिः । साजीविकास्यकथिता सर्व तोलोकविश्रुता
॥ ६६ ॥

भा० टी०—इस पूर्व कथित माहिष्य से निषाद स्त्री में माली होता है। धन वृद्धि एवं आजीविका के वास्ते विविध प्रकार के फूल और शाकपात की यह वृद्धि करै, इसका धर्म शूद्रों से हीन है, यह सप्तक प्रजा समूह में मुख्य है। मालाकार, (माली) बाजीगर, कौली, खारी बाल, कारावार, पुल्कस, और श्वपाक, ये सात, जातियां हैं। पुल्कसी के योग से चांडाल श्वपच को उत्पन्न करता है यह नगर के एक कोने में रहैं और गौगर्दभ, आदि पशुओं के मृतक कलेवरों को उठा कर बहार लेजायें, यही इसकी प्रसिद्ध आजीविका है ॥ ६२-६६ ॥

उग्रापारशवाभ्यांयोजातोमौष्कलाभिधः । वहेदसौतैलयंत्रमुत्तमश्चान्त्य जातितः
॥ ६७ ॥ जीविकातस्यकथिता शुद्धतैलस्य विक्रयः । तिलहिंसा यंत्रखाकरणात्पापसंभवः ।
अतोमौष्कलिकोनित्यं निर्वास्यो नगराद्बहिः ॥ ६८ ॥ उग्रावैदेहिकाभ्यांचजातो मंजूषसंज्ञकः ।
रजकः शूद्र तोहीनः प्रथमश्चान्त्यजेषुच ॥ ६९ ॥ शूद्र कन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेनतु संस्कृतः ।
संस्कृतस्तु भवद्दासोह्य संस्कारैस्तुनापितः ॥ ७० ॥

भा० टी०—उग्रा में पारशव से मौष्कलिक (तेली) होता है यह अन्त्यजों से उत्तम है, शुद्ध तैल बेच कर यह अपनी आजीविका करे, घाणी में असंख्य तिलों की हिंसा होती है अतएव लोक उसकी आवाज सुन्ने में भी पाप मानते हैं, इसी कारण तेली शहर से बहार ही रहै, उग्रा स्त्री में वैदेहिक से मंजूस व रजक (धोबी) होता है, यह शूद्र से हीन और अन्त्यजों में प्रथम है। ब्राह्मण से शूद्रा स्त्री में जो पुत्र उत्पन्न होता है उसका यदि यज्ञोपवीत संस्कार हो जायें तो वह दास (सेवक) और यदि उसका यज्ञोपवीत न हुआ हो तो यह नाई (हजाम) कहाता है ॥ ६७-७० ॥

मैनायांविधिनामीनाज्जातो नृपइतिस्मृतः । नृपायांनृपसंसर्गा त्प्रमादाद्गूढ जातकः ॥ ७१ ॥ सोपिक्षत्रिय एव स्याद भिषेकेचवर्जितः । अभिषेकंविनाप्राप्य गोजइत्य भिधायकः ॥ ७२ ॥ मारणाच्छूद्र कन्यायां समुत्पन्नस्तुयः सुतः । सगोपाल इतिख्यातो भोज्योविप्रैर्न संशयः ॥ ७३ ॥ मैनायांविप्रसंयोगाज्जाता मूर्द्धावसिक्तकः । सकरोतिमनुष्याणां चिकित्सां-क्षत्रियोधिकः ॥ ७४ ॥ अश्वंरथंहस्तिनंवा वाहयेद्वै नृपाज्ञया । सैनापत्यंभेषजंच कुर्याज्जीवन वृत्तिषु ॥ ७५ ॥

भा० टी०—मीन जाति की क्षत्रियाणि को मीन क्षत्रि ये विधि पूर्वक ब्याह किया है और उनसे जो पुत्र उत्पन्न होता वह नृप (राजा) कहाता है । नृप के गुप्त संसर्ग से जो विषयासक्त मीन क्षत्रियाणी पुत्र उत्पन्न करती है वह गूड कहाता है, वह भी क्षत्रिय ही है; राज्या भिषेक बिना वह गोज इस नाम को प्राप्त करके राज कार्य करता है । मारण क्षत्रिय के द्वारा शूद्र कन्या में गोपाल नामक पुत्र उत्पन्न होता है ब्राह्मण को चाहिये कि उसके यहां भोजन करने में कोई प्रकार का दोष न समझै । मीन क्षत्रियाणी में ब्राह्मण के योग से मूर्द्धावसिक नामक पुत्र होता है; कन्यादान की विधि से ब्याही गई हो तो वह क्षत्रिय से भी उत्तम है । मनुष्यों की चिकित्सा करना, अश्व, रथ, एवं हाथियों को चलना सिखाना, राजा की आज्ञा से सैनापति का काम करना, और डाक्टरी करना उसकी आजीविका है ॥ ७१–७५ ॥

वंदनी शुद्रसंयोगाज्जातः सिन्दोल काभिधः । वर्णतोहीनएवस्यान्मजिष्ठारंग कारकः ॥ ७६ ॥ तेनरंगेण वासांसिचित्राणिरचयेत्सदा । सएवसूचिकः ख्यातः कर्त्तरीसूचिकार्जकः ॥ ७७ ॥ आवर्त्तनायां सूताद्वै संजातोरोमसंज्ञकः । सक्षारोदकमानीय व ध्दा केदार खंडके । तज्जातंलवणंतस्य जीवनंलवणविक्रयः ॥ ७८ ॥ जातो मैत्रेयशुक्रेण जांघिकायांतुयः सुतः । असौवन्धुलसंज्ञोवैऽधमः सर्वासुजातिषु । सुवर्णकारविपणो धूल्यांहेमंसपश्यति ॥ ७९ ॥

भा० टी०—वंदिनी स्त्री के शूद्र के संयोग से सिन्दोल (छींपा) होता है वर्ण में वह शूद्र से हीन है मजिष्ठा आदि का रंग बना कर उसमें कपड़े रंगै, वस्त्रों में रंग विरंगी चित्र छाप कर बेचै । वही अगर सिलाई का काम करै तो सूचिक (दरजी कहाता है, और वह सूई कतरणी से जीविका करै । आवर्त्त स्त्री में सूत से रोम नामक (खारवाल) पुत्र होता है वह खारा जल को क्यारों में अलग २ विभाजित कर के लवण बनावै, और उसी को बेच कर आजिविका चलावै । मैत्रेय के वीर्य से जांघि का स्त्री में वन्धूल (धूलिया भंगी) उत्पन्न होता है । यह सर्व जातियों में अधम है, सौनारों की दुकानों के पास में धूल में से सोने की कणियें देखता है ॥ ७६–७९ ॥

कुरुविन्दाङ्गनासूतेधीवरात्किशु काधम् । असावन्त्यजइत्युक्तो वंशपात्रानुजीवनः ॥ ८० ॥ अन्धस्यवनितासंगाचांडालोजनयत्सुतम् । प्लवसंज्ञोसोहाडीतिलोके सर्वत्रविश्रुतः ॥ ८१ ॥ अश्वोष्ट्रगर्दभानांच मृतानां कालयोगतः । कुर्यान्निर्हरणंसोपि मांस भक्षण जीवनः ॥ ८२ ॥ निषादवनितासूते चांडालात् डोम्बसंज्ञकम् । असावन्त्यावसायीच श्मशाननिलयेवसेत् ॥ ८३ ॥ तत्ररक्षांप्रकुर्वीत प्रेतानांवस्त्रजीवनम् । डोम्बिन्यांप्लवसंयोगान्मातङ्गोनाम जायते ॥ ८४ ॥

भा० टी०—कुरु विन्दा स्त्री धीवर से अधम किं शुक पुत्र को उत्पन्न करती है। यह अन्त्यज होता है और बांस के पात्र बना कर उनों से आजीविका करै। अन्ध जाति की स्त्री चांडाल से प्लव नामक पुत्र को उत्पन्न करती है, लोक में वह हाडी (हेला) नाम से प्रसिद्ध है, घोड़े ऊंट, गर्दभ, आदि के मृतक कलेवरों को यह भी बाहर ले जाता है और मांस खाना इसकी जीवन वृत्ति है। निषाद स्त्री चाँडाल से डौम नामक पुत्र को उत्पन्न करती है। यह अन्त्यावसायी (ग्राम से बहार रहने वाला) होता है, श्मशान भूमि के निजदीक में घर बना कर रहैं, और मृतकों के वस्त्रों से अपना गुजारा करै। डौम्बिनी स्त्री प्लव (हेला) के योग से मातग पुत्र को उत्पन्न करती है॥ ८०-८४ ॥

वैदेहीतनयंसूतेनिषादादहितुण्डकम् । सप्तानामन्त्यजातीनांसधर्मे सदृशः स्मृतः ॥ ८५ ॥ महाफणीन्करंडके क्षिप्त्वाविषधरान्बहून् । तैः खेलनंजीविकातु कथितास्यविशेषतः ॥ ८६ ॥ आभिरीवेनसं योगात्सौष्कलं जनयत्सुतम् । असावधर्मइत्युक्तः सर्वधर्म वहिष्कृतः । सुरांकृत्वा विक्रयोत कुर्यात्तद्धनजीवनम् ॥ ८७ ॥ सावैदेहीस चाम्बष्ठस्तयोर्जातः कुशीलवः । नृत्यकर्तासंगीत ज्ञोदेशदेशान्तरं व्रजेत् । सास्यवर्त्तात्रकथिता चारणस्य स्वयंभुवः ॥ ८८ ॥

भा० टी०—वैदेही स्त्री निषाद से अहितुंड (कालबेलिया) पुत्र को उत्पन्न करती है। यह सात अन्त्यजों के समान होता है, बड़े २ सर्पों को पकड़ २ कर यह करंडिये (पिटारों) में रक्खैं और उन्हीं के खेल दिखा २ कर आजीविका करै। अहीरिनी स्त्री बैन पुरुष से सौष्कल (कलाल) को उत्पन्न करती है। यह सभी धर्मों से रहित होता है सराब निकाल २ कर बेचै, यही इसकी आजीविका है। वैदेही स्त्री अम्बष्ट पुरुष से कुशी लव (चारण) को उत्पन्न करती है, यह गीत गाने और नाचने में कुशल होता है, यह बड़े २ लोगों को अपनी विद्या से खुस करता हुआ देश परदेशों में घूमें यही इसकी जीविका है ॥ ८५-८८ ॥

क्रमेणहड्डिकन्यायांसद्य चांडालवीर्यतः । बभूवुरतिदुष्टाश्चपुत्रा वनचराश्चते
॥ ८९ ॥ ब्राह्मणंहन्तियः शूद्रस्तंमुशल्यंविदुर्बुधाः । तत्संयोगात्तीवर स्त्री जनयेत्तनयांस्तुयान्
॥ ९० ॥ श्वपाकास्तेसमाख्याता वृत्तिर्वीथीषुमार्जनम् । तथा नगर वासीनांविट्गृहाणां
प्रमार्जनम् ॥ ९१ ॥ अपराह्णे तथा सायंतदुच्छिष्टंसमानयन् । सर्वेतेभोजनंकुर्युर्मृतकर्पट
संग्रहम् । इतितेषांजीविकाच कथिताविश्व कर्मणा ॥ ९२ ॥

भा० टी०—हड्डी (हेली) स्त्री चांडाल के वीर्य से दुष्ट पुत्र वनचर (कांजर) को उत्पन्न करती है, जो शूद्र ब्राह्मण को मारता है उसको मुशल्य (अनार्य) कहते हैं, उसके संग से तीवर स्त्री श्वपाक (कुत्ते को पका कर खाने वाले) पुत्रों को उत्पन्न करती है, वे बजारों में झाडु दें, तथा नगर के टारतखाने साफ करें, दुपहर के बाद तथा सांयकाल को लोगों की ऐंठ झूंट ले आवें और अपने घर आकर उन सब का भोजन करलें, श्मशान भूमि से मृतकों का खप्पन लाकर पहने, यही इन्हों की आजीविका है ॥ ८९-९२ ॥

लोभीविप्रश्चशूद्राणामग्रेदानं गृहीतवान् । ग्रहणेमृतदानानामग्रदानीव भूवसः
॥ ९३ ॥ सूत उवाच-कश्चित्पुमान्ब्रह्मयज्ञे यज्ञकुण्डात्समुत्थितः । ससूतोधर्मवक्ताचमत्पूर्वपुरुषः
स्मृतः ॥ ९४ ॥ वैश्यायांसूतवीर्येण पुमानेकोब भूवह । सभट्टोवावदुकश्च सर्वेषांस्तुतिपाठकः
॥ ९५ ॥ सूचिकाद्विप्रकन्यायां जातस्तक्षक उच्यते । शिल्पकर्माणि चान्यानिप्रासादलक्षणं
तथा ॥ ९६ ॥ यैः कर्मभिः संचरितैः शुश्रूष्यन्तेद्विजातयः । तानिकारुककर्माणि कर्तव्यानि
धनाशया ॥ ९७ ॥ विश्वकर्माचशूद्रायांवीर्याधानंच कारसः । ततोबभूवुः पुत्राश्चनवेति
शिल्पकारिणः ॥ ९८ ॥ मालाकार शंखकार कर्मकार कुविन्दकाः । कुंभकारः कांस्यकारः
षडेतेशिल्पिनांवराः ॥ ९९ ॥ सूत्रधारश्चित्रकारः स्वर्णकारस्तथैवच । पतितास्तेब्रह्मशापादया
ज्यावर्णसंकराः ॥ १०० ॥

भा० टी०—लोभी ब्राह्मण जो शूद्रों के आगे मांग २ कर दान लेते हैं, तथा ग्रहण दान, सूतक दान, आदि निन्दनीय दानों को जो लेते हैं वह अग्रदानी कहाते हैं। सूतजी कहते हैं कि ब्रह्माजी के यज्ञ कुण्ड से एक पुरुष निकला, वह मेरा पूर्वज धर्म वक्ता सूत कहाया, वैश्या स्त्री में सूत के वीर्य से भट्ट (भाट) और वावदूक होता है। सब लोगों का स्तुति पाठ करना इसकी आजीवि का है। सूचिक (दरजी) से ब्राह्मणी में तक्षक (खाती) होता है, शिल्पी कर्म एवं काष्ट के मकानादि बनाना इसकी जीवन वृत्ति है, जिन २ शिल्प कर्मों से द्विजातियों की शुश्रूषा हो सके वह २ बढ़ई के कर्म तथा और

दूसरे शिल्प के कर्मों से ब्राह्मणादि तीन वर्णों की सेवा करें,। विश्वकर्मा ने शूद्रा में वीर्या धान किया, उससे नौ पुत्र उत्पन्न हुए, वे माली, खरादी, लोहार, जुलाह, कुंभार, कसेरा ये छः तो सिल्पियों में श्रेष्ठ हुए। और सूत्रधार (खाती) चितारा, सुनार, यह तीन ब्राह्मण शाप के कारण पतित माने जाते हैं, इन सभी वर्ण संकरों को यज्ञ कर्म करने का कोई अधिकार नहीं ॥ ६३–१०० ॥

तीवरस्यतु बीजेनतैलकारस्य योषिति। बभूवपतितोदस्युर्लेटश्च भृगुरब्रवीत् ॥१०१॥
लेटोधीवर कन्यायां जनयामासषट्सुतान्। मालुंमल्लंमातरंच भजंकौलंकलंदरम् ॥ १०२ ॥
तीवरेणचचांडाल्यांचर्म कारोबभूवह। चर्म कार्यांच चांडालान्मांसच्छेदी बभूवह ॥ १०३ ॥
मीनात्करण कन्यायां राजपुत्रो बभूवह। राजपुत्र्यांतु करणादागरीतिप्रकीर्त्तितः ॥ १०४ ॥
मीनवीर्येण शूद्रायामृतु दोषणपापतः। बलवन्तो दुरंताश्च बभूवुर्म्लेच्छ जातयः ॥ १०५ ॥
अविद्धकर्णाः क्रूराश्च निर्भयारणदुर्जयाः। शौचाचारविहीनाश्च दुर्धर्षाधर्म वर्जिताः ॥१०६॥

भा० टी०—भृगुजी कहते हैं कि तैली जाति की स्त्री तीवर के वीर्य से लेट जाति के दस्यु (चौर) को उत्पन्न करती है, धीवर की कन्या में लेट पुरुष ने छः जाति के पुत्रों को उत्पन्न किया है यथा मालू, मल्ल, मातर (महेतर) भज (भंगी) कौल, और कलंदर। चांडालनी में तीवर से चमार होता है, चमारी मे चांडाल से कसाई (खटीक) उत्पन्न होता है। मीन क्षत्रिय से करणी स्त्री में राजपुत्र (रज्जपूत) होता है। राजपुत्रा स्त्री में करण से आगरी जाति का पुत्र होता है। मीना क्षत्रिय के वीर्य से शूद्रा स्त्री में ऋतुदोष, और पाप कर्म के कारण बहुतसी दुरन्त और बलवंत म्लेच्छ जातियां उत्पन्न हुई है। जो बड़ी क्रूर, निरभय दुर्जय, दुर्धर्ष, धर्म वर्जित, और शौच आचार हीन होती है और १६ सस्कारों में कान तक भी नहीं विंधाती ॥ १–६ ॥

वनितामेदवंशस्य चेदिहमीनसंगता। सासूतेयवनंपुत्रंतुरुष्कः सप्रकीर्त्तितः॥ १०७ ॥
प्रत्यन्तोम्लेच्छ देशस्तु गोवधोनातिशास्त्रतः। तेषांहिनिष्ठुरत्वेन जीवनंसंप्रकीर्तितम् ॥१०८॥
निषादधिग्वणी जातः प्राणिकारोचराभिधः। सहीनस्त्वन्तजातिभ्यो जीवनंतस्य चोच्यते
॥ १०९ ॥ ग्रामाद्बहिः प्रकर्तव्यंवतुलंकुंडमेवच। आर्द्राणि गोमहिष्यादि चर्माणितत्र-
शोषयेत् ॥ ११० ॥ उपानदंगत्राणानि कुर्यादश्वस्यपाखरा। गोचर्मणा महिष्याश्च चर्मणा-
तस्यजीवनम् ॥ १११ ॥

भा० टी०—मेद वंश की स्त्री में मीन क्षत्रिय के द्वारा जो पुत्र हो, वह यवन वातुरुष्क (तुरुक) कहाता है। यह म्लेच्छ देशों के समीप निवास करें, धर्म शास्त्रों में निषेध होने पर भी यह गोवध

करता है, निष्ठुरता (निर्दयता वा झूट) ही इसकी आजीविका है। निषाद से धिग्वणी में प्राणी कार (रैगर) और चर (चर्म छेदी) पुत्र होता है। यह अन्त्यजो में हीन जाति है। ग्राम से बाहिर भूमि पर एक गोल कुण्ड बनावे, और उसमें आले व कच्चे चमड़ों को रंग कर सुकावे, जूते, अंगत्राण, दस्ताने, घोड़े के पाखर (जीन आदि) बनाना गोम हिष्यादि के चमड़ों को रंग कर बेचना इसकी आजीविका है॥ १०७–११॥

चतुर्णामपिवर्णानां जीवितामन्यसंभवः । कुंडस्तु संकरीज्ञेयोमृता नामथगोलकः ॥ ११२ ॥ अनुरागाद्धटाद्वापिप्रच्छन्नंस्पष्टमेववा । सप्रोक्तोजारजः कुण्डः क्षेत्रजोभर्तुराज्ञया ॥ ११३ ॥ मृतेभर्त्तरियानारीवरयेत्स्वेच्छयापतिम् । तज्जन्मागोलकः प्रोक्तोहठाद्वापिसएवहि ॥ ११४ ॥ यावद्गुणैर्भवेन्मातृ जातिर्जनकतोधिका । तावद्भिरंशैजनकः जातितोन्यूनतः सुतः ॥ ११५ ॥

भा० टी०—चारों ही वर्णों में पति के जीवतें अन्य पुरुष से जो पुत्र होता है वह कुंड कहाता है और पति के मरने पर जो अन्य पुरुष से उत्पन्न होता है वह गोलक कहाता है। अनुराग से, बाहट (जबरदस्ती) से प्रच्छन्न, वा चौड़े, पति की आज्ञा से जो पुत्र उत्पन्न हो वह भी क्षेत्रज, कुण्ड, वा जारज, कहाता है। पति के मरने पर जो स्त्री स्वइच्छा से वा किसी के उड़ा लेजाने पर जिस पुत्र को उत्पन्न करती है वह भी गोलक ही कहा जाता है। पिता की जाति से माता की जाती जितने दरजे उत्तम होंगी, उतने ही दरजे पुत्र नीच माना जाता है॥ ११२–१५॥

प्रायश्चित्ताद्विशुद्धिस्यात्क्षेत्रजेव्यवहारिके । एवंहिक्षेत्र जो जातिलभर्ताक्रमशः पितुः ॥ ११६ ॥ यत्रजातिविवेकोनयथेष्ट मिथुनाशनाः । यवनास्तेविमिश्रत्वान्म्लेच्छा इतिचकीर्तिताः ॥ ११७ ॥ सौनिकं कर्म चांडालात्सूते दासबधूसुतम् । सकुर्यादजमेषाणां हिंसांतन्मांसविक्रयम् ॥ ११८ ॥ शिलीन्ध्रोमारणींगच्छे ज्जनयेन्नटसंज्ञकम् । हीनोसौशूद्रधर्मेभ्योनाटकांनसमभ्यसेत् ॥ ११९ ॥ कौल्हाटिकः सएवोक्तो बहुरूपीतिविश्रुतः । अन्यकोपिनटोभूत्वा न शूद्रैः समतांव्रजेत् ॥ १२० ॥

भा० टी०—व्यवहारिक (पति की आज्ञा से वा चोरी से उत्पन्न हुआ) क्षेत्रज पुत्र प्रायश्चित से शुद्ध होकर पिता की जाति को प्राप्त कर सकता है। जिन्हों में जाति पांती का कोई नियम नहीं, हर किसी जाति की स्त्री को व्याह लेने वाले। सभी वस्तुओं को खाने वाले, यवन लोग वर्ण संकर होकर म्लेच्छ कहाते हैं। कर्म चांडाल पुरुष दास स्त्री में सौनिक (कसाई व खटीक) पुत्र को उत्पन्न करता

है। भेड़ बकरियों को मार कर उनका मांस और चमड़ा बेचना इसकी आजीविका है। शिलीन्ध्र पुरुष यदि मारण स्त्री से गमन करे तो उनसे नट जाति का पुत्र होता है, वह शूद्र के धर्मों से हीन, और नाटक का अभ्यासक है। कौल्हाटिक, और बहुरुपिया भी इसी को कहते हैं। उस जाति का मनुष्य यदि नाटक करे तो वह शूद्रों के समान नहीं हो जाता॥ ११६–२०॥

जातोनार्या मनार्या या मार्यादार्यो भवेद्गुणैः। जातोप्यनार्यादार्या या ऽनाय इति निश्चयः॥ १२१॥ संकरे जातमस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः। प्रच्छन्नावा प्रकाशोवा-वेदिव्याः स्वकर्मभिः॥ १२२॥ अष्टादशमितानी चाप्रकृतीनांयथा तथा। विधिर्नैव क्रियानैव स्मृतिमार्गोपिनैवच॥ १२३॥ तासां ब्राह्मणशुश्रूषा विष्णुध्यान शिवार्चनम्। अमन्त्रा त्पुण्यकरणंदानंदेयंचसर्वदा॥ १२४॥ शिल्पिचनर्तकश्चैव काष्ठकारः प्रजापतिः। धर्मक श्चित्रकश्चैवसूत्रकोरजकस्तथा॥ १२५॥ गच्छकस्तन्तु कारश्च चक्रिकश्चर्म कारकः। ध्वनि को ध्वनिकश्चैव कौल्हि को मत्स्यघातकः। औनामिकस्तु चांडालः प्रकृत्यष्टादशैवताः ॥ १२६॥

भा० टी०—अनार्य स्त्री में आर्यों से उत्पन्न हुआ पुत्र गुणों के द्वारा आर्य ही कहाता है। और अनार्य के द्वारा आर्या स्त्री में हुआ भी अनार्य ही है। माता पिता समेत यह सब संकर जातियां बताई गई। कितनी कही जातियां अभी तक निश्चित नहीं हुई हो तो उन छिपी हुई जातियों को, उनके कर्मों के द्वारा पहिचानना चाहिये। अठारह प्रकार की जो नीच जाती है उनके लिये विधि, क्रिया, और स्मृति मार्ग नहीं है, उनको वेद मंत्र के बिना ब्राह्मणों की सेवा, विष्णु का ध्यान, और शिव का आर्चन (पूजन) करना और दान देना चाहिये, यही उनका पुण्य साधन है। कारिगर, नर्तक, काष्ठकार, कुम्हार, धर्मक, चितेरा, जुलाहा, धोबी, धावक, तन्तुकार, तेली, चमार, वधिक, नगाड़ची, कौल्हिक, मच्छीमार, औनामिक, और चांडाल ये १८ कारू जातियां हैं॥ १२१–२६॥

मणि कांस्यघट स्वर्ण स्यन्दनं लोह कारकाः। सिन्दोला सोपिरानीली कर्त्ता किं शुक शौल्विकौ॥ १२७॥ पांशुलः कर्मचांडालोरौमिको वन्धुलस्तथा। कुक्टश्चाथट्द्वारः श्वपचोष्टादशम्मृताः॥ १२८॥ शिल्पिनः स्वर्णकारश्च दारुकः कांस्यकारकः। काइकः कुम्भकारश्च प्रकृत्या उत्तमाश्चषट्॥ १२९॥ खरवाहुष्ट्रवाही चहयवाही तथैवच। गोपाल-इष्टकाकारो अधमाधम पञ्चकम्॥ १३०॥ रजकश्चर्म कारश्च नटोवरुडएवच। कैवर्त्त मेद

भिल्लाश्च सप्तैतेचान्त्यजाः स्मृताः ॥ १३१ ॥ एतासांप्रकृतीनांच गुरुपूजाः सदोदिताः । विप्राणां प्राकृतोनित्यं दानमेवपरोविधिः ॥ १३२ ॥

भा० टी०—मणिकार, कांस्यकार, स्वर्णकार, रथकार, लोहकार, सिन्दोल, सोशिर, नीलकार, कूंचबन्धा, किंशुक, शौल्विक, (ताम्बा कूटन वाला) पांशुल (धूल धौया) कर्म चांडाल, रौमिक, बंधुल, कुक्कुट, टट्टारा, और श्वपच ये अठारह समूह कहाते हैं। शिल्पकार, सुनार, बढ़ई, कसेरा, रूपकार, और कुम्भकार ये छः प्रकृति से उत्तम माने जाते हैं। खिबर, ऊंट और टट्टु लादने वाले, (रैवारी बनजारादि) ग्वाले, और ईंटों को पकाने वाले ये सब अधमाधम माने जाते हैं। धौबी, चमार, नट, वरुड, कैवर्त्त, मेद और भील ये सात अन्त्यज कहाते हैं। इन सब प्रकृतियों को भगवान् के भजन, गुरुपूजन, और दान में अधिकार है ॥ १२७–३२ ॥

तेरवा छोर क्रव्यादहस्तकायश्चहिंसकः । सासेहिको भारुंडश्च मातंगोडौम्बगोपकौ । एताःप्रकृतयः प्रोक्ता एकादशमनीषिभिः । वर्णा नामाश्रमाणांच सर्वदातु वहिः स्थितिः ॥ १३३ ॥ वर्णा पेतमविज्ञातं नरंकलुषयोनिजम् । आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥ १३४ ॥ अनार्यतानिष्ठुरता क्रूरतानिष्क्रियात्मता । पुरुषं व्यंजयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ १३५ ॥

भा० टी०—तैरवा, छीर (कीर) क्रव्याद, (शिकारी) हस्त काय, हिंसक, सांसिये, भारुंड (सांप पकड़ने वाले) मातंग, डौम, और गोप (गूजर) यह ग्यारह जाति एकादश समुह में है, ये ११ वर्णाश्रम के निवास भूत ग्रामा दिसे बाहर रहैं। अनार्य वर्ण संकर जो अपने को छिपा कर आर्य के वेष मे रहते हैं, उनको नीचे लिखे हुए कर्मों (लक्षणों) से पहचानना चाहिये। कठोरता, निष्ठुरता, क्रूरता, और शास्त्रोक्त कर्मों से हीनता इत्यादि दुर्गुण, वर्ण संकर जाति को लोक में प्रकाशित कर देते हैं। ॥ १३३–३५ ॥

ऋषयः पितरः सर्वेब्रह्मवर्ण प्रकीर्तिताः । मीनाद्याः प्राय शोदेवाः क्षत्रवर्णा उदीरिताः ॥ १३६ ॥ देव वंशोद्भवामीनानिखिला श्चक्रवर्तिनः । क्षत्रियेष्वेवगण्यन्ते यतस्तेभुजतोऽभवन् ॥ ३७ ॥ इन्द्रप्रद्युम्नचन्द्रार्क वसुरुद्रादयोपरे । क्षत्रियाएवतेप्रोक्ताराचसा अपिशौर्यतः ॥ १३८ ॥ आर्षगोत्रंतु विप्राणांतदन्येषांगुरोरिव । शाखा भेदाद्गुरोर्भेदान्मारणानांतु सर्वशः ॥ १३९ ॥ द्वात्रिंशेक्षत्रियाणांतु गुरु भेदः प्रशस्यते । विशांपंचदशेप्रोक्तः शूद्रवर्णस्यचाष्टमे ।

विप्रस्यगुरुभेदेपिशाखागोत्रे भिधानहि ॥ १४० ॥ सापिण्ड्यं सप्तपुरुषंसोदका आचतुर्दशः ।
सगोत्राएकविंशास्युस्ततऊर्ध्वंतुगोत्रजाः ॥ १४१ ॥

भा० टी०—सनकादि सर्वऋषी, एवं पितृगण ब्राह्मण वर्ण में माने जाते हैं। भगवान् विष्णु के अंश स्वरूप मीनादि सर्व देव क्षत्रिय वर्ण में माने जाते हैं। देव वंश में उत्पन्न हुए मीन जाती के सभी चक्रवर्त्ति एवं मीन क्षत्रिय लोक क्षत्रिय वर्ण में ही माने जाते हैं क्योंकि वे ब्रह्मा की भुजाओं से उत्पन्न हुए हैं। इन्द्र, प्रद्युम्न, चन्द्र, सूर्य, वसु, और रुद्रादि देवता क्षत्रिय वर्णी है। तथा शूरवीरता के कारण राक्षस लोक भी क्षत्रिय वर्ण में माने जाते हैं। ब्राह्मणों के गोत्र ऋषियों के नाम पर होते हैं, दूसरे वर्णों के गोत्र गुरु के नाम पर होते हैं, शाखा और गुरु (वृद्ध पुरुषों) के भेदों से ही मारण जाति के सर्वक्षत्रियों के गोत्र भेद होते हैं,। मारण क्षत्रियों में बत्तीस पीढ़ी के पश्चात्, वैश्यों में पन्द्रह, और शूद्रों में आठ पीढ़ियों में गुरु भेद होता है। ब्राह्मणों में गुरु भेद होने पर भी शाखा और गोत्र भेद नहीं होसकते, मारण क्षत्रियों में सात पीढ़ी तक सपिंड, चौदह पीढ़ी तक समानोदक, इकीस पीढ़ी तक स गोत्र, और इसके उपरान्त गोत्रज कहाते हैं ॥ १३६–१४१ ॥

यत्रग्रामे यत्रदेशे जातयायाः कथंचन । तेषांनामानि सर्वाणि न कश्चिद्वेदितुं क्षमः ॥ १४२ ॥ वेत्तुं शक्त्यास्तथाताभि र्व्यवहार्य क्रमादिति । सर्वजातिविवेकोयं यथावन्मेनिरूपितः ॥ १४३ ॥ सुबीजंचैव सुक्षेत्रं जातं संपद्यतेयथा । तथार्याज्जात आर्यायांसर्व संस्कारमर्हति ॥ १४४ ॥ इति श्री ब्रा० मीनपुराणे द्वितीय स्कन्धे द्वाविंशो ध्यायः ॥ २२ ॥

भा० टी०—जिस ग्राम या देश में जो कुछ जातियें रहती हैं, उन सब के नाम जान्ने को कोई भी समर्थ नहीं है। वह २ सब उनके व्यवहार से जानी जाती है, इस प्रकार से यह मैंने यथा योग्य सर्व जातियों का विवेक निरूपण किया। जैसे उत्तम क्षेत्र में अच्छे बीज बोने से उत्तम ही धान्य उपजता है, वैसे ही द्विजाति द्वारा अनुक्रम से द्विजकी कन्या में उत्पन्न हुआ पुत्र उपनयन आदि संस्कारों के योग्य होता ॥ १४२–१४४ ॥

इति श्री मद्भागवत्मीनपुराणे द्वितीय स्कन्धे द्वाविंशतितमो अध्यायः समाप्तः ॥ २२ ॥

अथत्रयोविंशोऽध्यायः । मारण वंशीयनृपाणांगोत्राणि ॥ भृगुरुवाच ॥ क्षत्रियाणां बीजरूपो नाम्नास्वायंभुवोमनुः । यास्त्री साशतरूपाच रूपाढ्या कमलाकला ॥ १ ॥ एषां

वंशेसमुत्पन्नाः सुविशुद्धानृपोत्तमाः । पृथक्तेषान्तु गोत्राणिप्रवक्ष्यामि समासतः ॥ २ ॥
यावन्ति मनुर्नामानि तानिगोत्राणिसर्वशः । बृहदस्तु बड़गोत्री प्राचीनो ब्रह्मणावतः ॥ ३ ॥
नृपेषुमारणः श्रेष्ठो मारणेष्वग्निसंभवः । चातुर्मानोग्निवंशेषु गोष्ठिपालस्ततोपिच ॥ ४ ॥
मीनमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् । इन्द्रमेकेपरे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम् ॥ ५ ॥
आकाशेतारका संख्यारेणु संख्यामहीतले । सागरेबिन्दु संख्याच मीनसंख्यानविद्यते ॥ ६ ॥

भा० टी०—अब तेईशवाँ अध्याय प्रारंभ होता है, इसमें मीन वंशीय क्षत्रियों के गोत्रों का संक्षिप्त नामोल्लेख है। भृगुजी बोले क्षत्रियों में बीज रूप (आदिपुरुष) स्वायं भूव मनुजी हुए। उनकी स्त्री लक्ष्मी का अवतार और अत्यन्त रूपवती शतरूपाथीं। उन्हीं स्वायं भूव मनुजी के वंश में उत्पन्न हुए सुविशुद्ध मारण राजाओं के अलग २ गोत्रों को थौड़े में कहता हूँ सुनिये। जितने मनु भगवान के १००८ नाम हैं उन्हीं एकै क नाम पर, मीनों में एकै क गौत्र स्थापित हुआ है। उन्हों में जो जन संख्या में सब से आगे बढ़ा, वह आज बड़ गौत्र नाम से प्रसिद्ध है। जो दादे के नाम से प्रसिद्ध हुआ वह सब से प्राचीन ब्रह्मणावत (बहमणावत) नाम से विख्यात हैं। समस्त क्षत्रियों में मारण जाति के क्षत्रिय श्रेष्ठ (सर्वोत्तम) होते हैं, मारणों में भी अग्नि वशी श्रेष्ठ हैं, अग्नि वंशियों में भी चातुर्मान (चाहुमान) कुली श्रेष्ठ है, चाहु वानों में भी गोष्ठिपाल (गोठिवाल) गोत्री श्रेष्ठ माने जाते हैं। भगवान् स्वायं भुव मनुजी को कोई लोग तो मीन कहते हैं, कोई अग्नि कहते हैं, कोई मनु कहते हैं, कोई प्रजापति, तथा इन्द्र, एवं प्राण और कोई २ शाश्वत ब्रह्म कहते हैं। आकाश में तारों की संख्या हो सकती है, पृथ्वी के रजकणों की संख्या हो सकती है। सब समुद्रों के जल बिन्दुओं की संख्या (गिनती) हो सकती है। परंतु मीन क्षत्रियों में गोत्रों की संख्या कोई मनुष्य नहीं कर सकता ॥ १–६ ॥

शिवगणश्चन्द्रादित्यः सोमोद्विवडवालकः कश्यपश्चभरद्वाजः शांडिल्य सांकृतस्तथा
॥ ७ ॥ कात्यायनोपमन्युश्च मार्गवोगौतमस्तथा । मर्मटः शैखरश्चापि वत्सपाराशरस्तथा
॥ ८ ॥ वागड़ी नोहडालंघा श्चूडाकाष्टी पहेडवाः । चापोत्कटाश्चमाहोत्थाः गौडशैंगर
वाहडाः ॥ ९ ॥ मांडव्याहारीतादींदाः वारि वालमही भुजाः । प्राग्वाटास्युरभिख्याता आमद
वालांढीलणः ॥ १० ॥ पांचालश्चौभ्रवाश्राद्धा मौरी वाल कुली जटीः । गरातु औच्छ लाधीलाः
गैली लच टकौपिच ॥ ११ ॥ चावरः कावर स्त्राजीः व्याघ्रोजैफ डण्डावसीः । पंगुश्च
साजण श्चैवदाडवालतथैवच ॥ १२ ॥ वांकावतोवसुख्यातीः मुंजीसाकं भरस्तथा । घांघसाः
टांटियाः वोयाः छावलोखुमडस्तथा ॥ १३ ॥ लौहराः लोगुरास्तैलीः कुंडवालतलावड्याः ।
आमुटाः रापुताः राल्याः कौलशींगड गाजनाः ॥ १४ ॥ खोहडाः सेवना खोदाः भारी-

वाल मेरालकः । गुगली शहरानालाः भोडकलौदी भैसुराः ॥ १५ ॥

भा० टी०—शिव गण (सौगुण-सौगुण) चन्द्र, (चांदा) आदित्य, सोम, दीवडवाल, (दीवडा-देवडा) कश्यप, (काशव-कुशावह) भारद्वाज, (भारद्विज) शांडिल्य (सांड) सांकृत, । कात्यायन, उपमन्यु (उपमीन) भार्गव, गौतम, मरमट, शेखर, (शेख, शेखावत) वच्छ (वाच्छिक-वाछी) पाराशर (परासुर) वाराही, नोहड, (नौगड-नौघड) लंधा, लैघा, चूडा, चूरा, चौडा, काष्ठिया, काट्ठी, पहडवा, चापोत्कट, चावडा, छावडा, माहोत्थ, मोत्था, महता, गौड, गौर, घौर, मांडवी, मांड्या, मांढ, हारीत, हारियाणा, दोदा, दोधींग, वारिवाल बारवाल, द्वारपाल, मही, भोज, महीभुज, प्राग्वाट, पूर्ववाल, पौरवाड, स्याता, आमद्वाल, ढीलण, पांचाल, पांचोली, पंचौली, चौधवा, चौदवाँ, चौधरी, श्राद्ध, साध, मौरीवाल मौरला, मौरेला, मौरी, कुली, कौली, जटी, जाट, रारा, ओच्छला, धौला, रौली, रौल, लचटकी, बाघर, कावरा, ताजी, व्याघ्र, बघेरिया, बघेरवाल, जैफ, डंडवासी, पंगु, साजण, सोजणा, डाडरवाल, । बांका, बांकावत, वसु, ख्याती, खातीमीना, मौंजी, मुजी, साकंभर, सांभरिया, घांघस, टांटिया, बोया, छबल्या, खुमड्या, । लौघर लोहागर, लौगर, लोहकार, लुहार मीना, तिल्लीवाल, तैली मीना, कंडु वाल, कुण्डवाल, तलावड्या, तलवाड्या, । आमुट, आमड, आमट, ओमट, आमेटिया, आमेरिया, रावपूत, रापुत, राउत, रोल्या, रोहिला, कौल, कौली मीना, शींगड्या, सींहड, सींधड, गाजना, गजनी, खौडा, खोहडा, खोखड, सेवन, सोवन, खौदा, खुदा, झारीवाल, झाडीवाल, झारवाल, मैराला, मीराला, मीराणा, गूगली, गोगुली, गूगलिया, शहर, नाला, नाली, नालछा, नालाणी, भड, भड़गौती, भडक, भडक्या, भटक्या, भीडक, भट्ट, लोदी, लौदीवाल, लौदवाल, लौधा, लौढा, भूसुर, भैंसुर, भैंस, भैसुरा, भयशूर, ॥ ७-१५ ॥

पुष्कराः ठाकुराः ढुंढाः झम्बालाः झाक गुर्जराः । आसुराः मेहराः कालाः मिहीर टाट्र शिहीराः ॥ १६ ॥ हैहयाक्षत्रपाभूजाः सैनः प्रमार वाडवाः । कौशिः वशिष्ठोनाटाणीः ढैंत्र वालस्तथैवच ॥ १७ ॥ घुणावताश्च भूखंडाः कविगार्ग्य धनंजयाः । असिताः देवलाः मिश्राः बल्लभागस्त शौनकाः ॥ १८ ॥ धूणावताश्च कांकेशाः डौभवालः सुसावताः । श्वेतात्रिमानसावल्लाः वैद वालः धुनावताः ॥ १९ ॥ औंरडाश्चौरडाः हाडाः कांकरवाल-स्ताम्बडीः । अम्बरा शाकुवालाश्च डागी धान्य धणावताः ॥ २० ॥ सैन्धवाः सैंपटाः पाडा श्चिरावन्डसदा वडाः । अश्वपालाः महीपालाश्चत्ताहूणस्सुराणकाः ॥ २१ ॥ नाहराः नहलाः मौडाः गुणत्रामैर गोहिलाः । पौरचाः वैशपुण्डीराः कुर्म कामध्वजस्तथा ॥ २२ ॥

भा० टी०—पुरकर, पोखरिया, ठाकुर, ठाकर, ठक्कुर, तुरण्डा, ढड्ढा, ढांढा, दुम्बाला, डूम्बाला, झाक, झाग, जागा, गुर्जरा, गूज़रा, गौजरा, गौचरा, असुरा, आसुरा, मेहर, मैरा, महर, काला, कालोत्त, कालावत, मीहिर, त्रातु, टाट्ट, शिहीरा, शिखरा, शिखरी, हैहय, क्षत्रप, छत्रप, छत्रपति, भुजा, भूंजा, भोजा, सैन, सौन, परमार, प्रमार, पवाँर, पमार, वाडव, कौशिक, किंशुक, वशिष्ट, नटाणी, नाटाणी, डैंचरवाल, घुणावत, घुम्णावत, भूखंड, भयखंड, भखंड, कवि, गर्ग, गार्ग्य, धनंजय, धनुर्जय, असित, असिया, आसिया, देवला, देवडा, मिश्र, मीसर, मेशर, महेश्वर, वल्लभ, वल्लभकुली, अगस्त, शौनक, शुनक, भ्रुणावत, धुणावत, घेणावत, धणोत, काकेश, काकश, कांगस, कांकश, दोभवाल, डोभवाल, सुसावत, सुसामंत, सूरसांवंत, श्वेत, अत्री, अतरिया, आंतरिया, मानस, माणस, वल्ल, वैढवाल, वैंडवाल, वेअढवाल, धुनावत, धनावत, धेनोत्त, । औरड, उरड, ओराडा, चौरडिया, चौरलिया, आडा, हाडा, कांकरवला, कांकडवाल, कांकडीवाल, ताम्बडी, तुम्बडी, तोमरी, अम्बरीश, आमेरी, कुंवाल, कुंवाड़, कुंवार, डावी, दावी, धान्य, धान्यपाल, धणावत, सैन्धवा, सैंधिया, सूंधा, सीन्धा, सैंपड, सैपट, पहाडा, पाडा, चिरावडा, चामुडा, चिरोंवडिया, सद्दा, सादा, सुधा, बडा, बोडा, अश्वपाल, औसपाल, ओसिवाल, महीपाल, मैयंचा, चित्ता, चेता, हूणा, हुल, होण, सुराणक, सुराणा, सौराणा, नाहर, नाहल, नौहल, नड्डल, नाडला, नाडोला, मौह, मौर, मौल, गुणध्र, गणधर, गुणधर, मेर, मैर, मैल, मैणा, गोहिल, गोभिल, पौरचा, पौचा, वैश, वैश्य, वेश, पुण्डीर, पंढूर, कुर्म, कुर्मी कुलमी, कमधज, कमध्वज, ॥ १६-२२ ॥

कौशिकाः गालवः कण्डुः कपोलाद्भूतकुण्डलाः । पारखाः गोरखाः मालूः । कृष्णा कौशल कौलवाः ॥ २३ ॥ औ वेन्दु जैमिनीश्चौ लरछन्दोलंगूर लौंकडाः । लौढाः नारायणाः मुण्डाः कोटवाड चन्दावडाः ॥ २४ ॥ दत्तावैद्यदीर्घाङ्गीः पौंषलाः वटपालकाः । छान्दडाः वांगडानैगीः पारी कुन्मी कलावताः ॥ २५ ॥ कान्हडाः गूगलाहुल्लः कुशारिः कणकेशरीः । कुलस्थि कौंकणा कन्वीः कासलवाल गोहली ॥ २६ ॥ केरलाकेवडाश्च्योना आकाशी करहाटकाः नरनाटा वर्बराश्चैव मौञ्जी मुख्य कुमारियाः ॥ २७ ॥ डूंगराद्दंडानन्दी गाङ्गी कुन्द सियारिकाः । डूंगर जाला इक्ष्वाकुः धुम्मडा घंटरैकड्डः ॥ २८ ॥ कांची विहल लोणेढा जोलंदा पचवारियाः । प्रातिहारा भागढौला मैडोला चन्दणावताः ॥ २९ ॥

भा० टी०—कौशिक, कुशिश्व, गालव, गालोत, गैलोत, कुण्डवाल, कंडु, कुण्ड, पारख, गौरख, गौरक्षक, गोरला, मालू, कृष्ण, कौशल, कुसल, कौलव, कैलव, । औवे, आवे, आखी, अरवी, इन्दू, हिन्दू, जैमिनी, चौल, चौर, चौड, छंद, छंदवाल, छांदवाल, लंगूर, लागल, लौंगर, लंगर, लौंकड,

लूंकड, लकड, लौढा, लौडा, नारायणा, नरायणा, नराणा, नौराणां, नुहराणा, मुण्डा, कोटवाल, कोठीवाल, कोटपाल, कोट वाड्या, चन्द वाड्या, चन्दावड, चाँदोडी, दच्च, दीक्षित, वैद्य, वैद, ढीधा, ढीघा, अंगी, अंगीरा, घौंषल, घोषा, घोषलवाल, घोषी, बटवाड, बटपाल, बटवाल, छांदड, छांदवा,. वांगड, वांगडी, वागडी, नैगी, पारी, पुरी कुल्मी, कलावत, कालावत, कालोत्त, कालाणी, केलण, कान्हड, कानोडिया, केन्हाडा गूगलिया, गौगलिया, गौगली, हूल, हीला, होला हुलण, कुशारी, कुशाली, कणगोता, कणवी, कर्ण, केशरी किशोर, केशोरा, कलत्थ, कौकण, कुकण, कन्वी, कुन्वी, कासलवाल, कसलीवाल, काशीवाल, काच्छीवाल, कच्छवाल, गोहिली, गौली, गौभिल, केरला, केरडा केलण, करेलडा, करहेडा, केवडा, कावडा, च्यवन, चमन, आकाशी, एकाशी, ओकाशी, करहाटक, करहाड, किरहाड, किराड, करनाटक, कराटिया, करण वत, बरबर, बावर, मोजी, मुंजी, मुखी, कुमारोत, कुंभरावत, कुंभाणी, डूंगरगोता, डूंगरपुरिया, डूंगाणी, दूंदडा, दूंदाडा, ढुंढाडा, नंदीगोती, नंदशंशी, नांदी, नादिया, नादलोषा, नाढिया, गांगी, गागलिया, गंगापुरिया, कुन्द, कुन्दी, कुन्दीगर, कुन्दनपुरिया, सिया, सियार, सियाल, सिरियाला, डूंगरजात्त, डूंगरवाल, डूंगरिवाल, इखवाकु, इखाग, धुम्मड, धामड, धामण, धौमणोद, घंट, वांट, घाटिया, घाटम वशी, रैंकडु, रैंखडा, रैंखला, रायक, कांची, काजी, कांचलिया, कांचीपुरिया, काजलिया, काजलोत, बिहल, विहिल, बील, भील, लोणेढा, लुणेढा, लुणिया, लुणावत, जोलंदा, जालंदा, जालंधा, जालंदर, जालंधर, जलंधर, पचवारिया, पचावारा, पचेवरा, पाँचवरा, पांचवड़ा, पांचभटा, प्रतिहार, पडिहार, भागडौल, भगडोल, बगडौ, बगडैल, बगडीवाल, बागडीवाल, भैडौल, भयडौल, भगडोल, भगोल, चन्दणावत, चन्द्रावत, चांदावत, चन्दनावत, ॥ २३-२६ ॥

राठोरोदेवडोटांकस्तुरंगोत्रगढावतः । सौराष्ट्रः खामरी भल्लः पोतकवीरोहींगडः ॥ ३० ॥ उज्जराः धौलमालाणीः राह्मपूत चम्मोवलाः । थंदवालाश्चनि कुम्पा आशुकौडप खौखडाः ॥ ३१ ॥ चंदेलाः दाहिमाः डांगीः कार्टपाल अखावताः । जाठरा माडरा मांडी औहिलजेता रोडकाः ॥ ३२ ॥ संभलीभूंवालश्च परालाश्च चूडासमाः वाघेलाजेठवाचावा-लूंडरा जेपचावडाः ॥ ३३ ॥ मैडलादामडी भाटी अहम्मद्राला मुर्धराः । मैयालावाउला नूधाः लादवालः सदावराः ॥ ३४ ॥ जाडिचारावलाखांटाः वन्दवाल विभीषणाः । सैवलाः कावुरामांची मत्स्य मौठी शतंगणाः ॥ ३५ ॥

भा० टी०—राठोर, राठौड, रायठौर, देवडा, देवरा, देववरा, टांक, टौंक, तरंग, तुरग, तुरक, तिरक, तिलक, बगडावत, बागडावत, बाघरावत, बाघडावत, बगरावत, बघेरावत, सौराठी, सौरठिया, सुराठया, सुरतिया, खामरी, खांवरी, खांगरी, भल्ल, भिल्ल, मुल्ल, भुलण, पौतक, पंथक, वीर, बीरावत, बीरोत्त, बीरम, हींगड, हुंगड, हौंगड, हंगड, हैंगड, उज्जरा, उज्जला, उज्जडा, उज्जधौल, धौल, धौलीया,

धौरी, मालाणी, मालपाणी. मौलाणी. मुल्लाणी, राहापूत, रायपूत राजपूत, राऊत, चम्मावला, चामलिया, चामड्या चाँवडिया, थंदवाल थांदवाल, निकुम्प; निकुम्भ; निकम्मा. आशु; आशुया; आशोया; कौडप; कौलप; कुडप; कोडल; खोंखड; खोखर: कुकुर; कुकड; चंदेला; चांदेला; चंदिला, दाहिमा. दाहेमा; डांगी; डूंगी; डोंगी; डौंगी; कारटपाल; कारटवाल; कोरटयाल; कोटवाल; अखावत; आखावत; जाठरा; जैठरा; माडर; मॉडल; म्याँदल; मादल; मैदल; मांडी; मांडिया; मौडिया; औहिल; औखिल; जैता; जेत; जेठ; जैत; जैट; अरोड; अरोट; आरौड; औरड; औराडा; संभली; संभरी; साँभरी; सामरी; भूंकवाल; भुकलवाल; भूकवाल; पराल; पराग; चूडा; चौडा; समा; सामा; सौमा; सौवाँ; सावाँ; वाघेला; वाघेडा; बघरा; बघेरवाल; जैठवा; ढाबा; चीबा; चौबा; चौव्या; लूढरा; लुणरा; लौणेरा; लौणेढा; जेपा; जैपा; जैपाला; जैपुरा; चावडा; छावडा; । मैडला; मैडता; मैडतिया; मैढा; मैढिवाल; मैडियाल; दामडी; दामणी; डामडी; डागडी; भाटी; भाटिया; भट्टी; अहम्मदवाल; अमदवाल; आमौदवाल; मुर्धरा; मुधरा; महीधरा; मरुधरा; मारवाडी; मैंयाला; म्याल; मियाल; मैवाल; बाउल; बावलिया; बावेल; वायेल; अनूप; आनोप; लोदवाल; लौदवाल; लोधवाल; सदावर; सुदावर; सोदावर; । जाडिजा; जाडिचा; जाडेजा; झारेजा; झाडेजा; रायल; रायल; रायक; रायकवाल; रैकवाल; खांटा; ख्यांट; खुंटा; खोटा; बन्दवाल; बांदवाल; बाँदलवाल; बन्दीवाल; बन्धवाल; दिक्षीपण; विभूषण; सेदला; सैवडा; सैवाला; शिववाल; काबुरा; काभेरा; काबर; काबडिया; काबडा; मौंची; मौंचीवाल; मौची; मांचेडिया; मांचेरी; मत्स्य; मच्छिया; मोठी; मौठीश; शतगण, सुगण; सौगण. ॥ ३०–३५ ॥

मकवानास्तु कायस्था वीरगुर्जरा आहिराः । तौमराः जोहियाः हुल्लाः गहर्वाल शिलावराः ॥ ३६ ॥ वहेनाडा गोमलाडूः महेशानि वच्छावताः । काकुस्थाः कच्छपाराटाः कुम्भगाववत मोहिलाः ॥ ३७ ॥ चन्दूका चाहिलामौरी खेडी बाहुफलावता लीच्छवी शिशुनागाश्च काकतीवाण पल्लवाः ॥ ३८ ॥ नैणवाः सौगुरासोनीः राईकवालगुजेटियाः, । गुट्कणा नौभुजा मौनाः नारसिंह सिया लियाः ॥ ३९ ॥ आमेटी मावरादीहा नारे वाश्रमुण्डामली । गोकुली गौंहली हेडाः मूंडगढ़ाः मंडावरी ॥ ४० ॥ शीखोलावंकला गुप्ताः शीखरवाला भींडलाः । लालाणी भोबराव्याडी, बेगाणी कूरखारलाः ॥ ४१ ॥

भा० टी०—मकवाना; कायस्थ; कायठिया; वीरगुर्जर; बडगूजर; आहिर; अहीर; आभीर; तौमर; तौंवर; तुवार; तोवर; तौवर; तुंवड; जोहिया; जोधिया; जौधा; हुल्ला; हेला; गहरवाल; गहरवाड; गौहरवाल; गुहरवाड; गोहडवाल; गाहडवाल; गौरवाड; गौडवाल; गौडवाडिया; शिलावर; शीलावर; शिलावट; शीलवर; । वहेनाडा; वनहेडा; बहनाडा; बनेडा; बानेडा; बोनेडा; बौनेरा; बनेरा; बैन्दाडा; गौमलाडू; गुमलाडू; महेशानी; महेश्वरी; महासैनी, मशानी; बच्छावत; बादशाहवत; बाच्छावत; काकुस्थ; काउत्थ;

कच्छप; कच्छावा; काच्छवा; राटा; राडा; राठा; राठी; राठ; कुम्भावत; कुम्भराजीया; कुम्भाणी; खुमाणी; कुम्भरावत, मोहिल, । चन्दुका, चाहिल, मौर्य, मौरी, मौली, मौडी, मौरडिया, खेडी, खौडी, खैडीवाल, खौडा, खैडावाल, बाहु, फलावत, बहुफलावत, बहफलाबत, लीच्छवी, लच्छी, शिशु, नाम, शिसुनाग, काकती, कागती, काग, काग्या, बाण, बैण, पल्लव, पल्लवी, पल्लीपति, पालवंशी नैणवा, नैणावत, सोगर, सौगुर, सौनी, सैनी, सैनवंशी, सैनानी, रायक्वाल, गुजेटिया, गुट्‌कण, गटकण, नौभुजा, मौना, मौनी, मुन्ना, मैना, मीना, नारगोता, नाहर, सिंहगोता, नारसिंहा, नरसिंहोत, नरसिंघा, नरसिंघपुरिया, सियाल, सुवाल, सुहाल, सिवाल, आमेटी, आमेरी, मावर, मोहर, मोगर, दीहा, डीहा, डीघा, नारेवा, नारवा, नारंडा, मुण्डासली, गोकुली गुंहली, गोहली, हेडा, हेडिया, हाडिया, आहाडिया हांडिया, आंडिया, मुंडगडा, मंडावरी, शीणोल्या, वंकला वांकलिया, वांकावत, वांकांत, वांकत, गुप्तवंशी, सीकरवाल, शीखरवाल, भींडल, भेडल, भोडल, मुंडल, लालाणी, लोलाणी, भोवरा, भुवरा, भांवरा, भूआरावत, व्याडी, भाडी, वेगाणी, बेगारी, वांगाणी, वेंगाणी, कूप, खारल, खारेला, खारड, खारेड, खारोल, खारवाल, खारीवाल, ॥ ३६-४१ ॥

कोइलास्तोसलीसुंगाः मीमरोटशीशोदियाः । अमीराकोटिया खींचीः नाणावालनी मावताः ॥ ४२ ॥ मांगला धौरणी गोधाः मौरजाल सोवालकाः । चींचडा बोहराडीढ्ढ बुजेटी भट लौटणाः ॥ ४३ ॥ खेचड़ा सुगडा शाक्यः आशापाल भटेवराः । रांघडा गोठणा पाहुरामदेवहुड्ढंदियाः ॥ ४४ ॥ घुवडा खांखरा छाजी जुनीवाल जीरावताः । मुहाली मूशली जोगः जूंडवाल मीरावताः ॥ ४५ ॥

भा० टी०—कोहल, कौल, कौलवाल तोसली, सुंगा, सुंघा, सोहा, सोभा, मीमरोट, शीशोदिया, शशाद, शुशाद, अमीरा, उमीरा, अमीरावत, अमरोत, अमृत: कोटिया, कोटडिया, कोठीवाल, खींची, नाणवाल, नाणावत, नीमावत, नीमोदिया, नीमवाल, मामलिया, धोरणी, धरणी, धारण, गोधा, गोहा, गुहा, मौरजाल, मौरावाल, मौरपाल, सुवालख, सुवाल, सौबालक, सौपालक, चींचड, बोहरा, बौथरा, बौरिया, बहरिया, डीढू, डीढूवासी, डंडवासी, बूजेटी, बोजेटी, भट, भट्ट, भाटी, लौटण, लौटिया, लौठ, लाठी, खैचड़ा, खैजड़ा, खाजडा, सूगडा, सौगडा, सुगणा, सूगला, शाक्य, शाक, शकवंसी, सागवंसी, आशापाला, आशपाला, असवाला, ओसीवाल, आसाणी, भटेवरा, भटेवडा, रांगड़ा, रांघडा, रंघड, गोठण, गौठी, गोठीवाल, गोठवाल, गोटावाल, गौठांवाल, पाहु, पाभु, रामगोता, रामदेवा, रामसेन्या, हुडुंदिया, हडुंदिया, हडुंडिया, हाटोदिया, धुवडा, धोवडा, धौवडा, खांखरा, खाखरा, कांकरा; कांकरिया; छाजी; छाजवाल; छाजेड; छाजावाल; जुनीवाल; जुनवाल; जोनीवाल; जीरावत; जीराते; जोरवाल, जुरवाल; मुहाल; मुहीवाल, मुहुवाल; मुशल; मूसली; मुसलवाल, मुसलमान; मुसलवाँन; जोरा;

जौरावर; जु`डवाल; जुएडीवाल; मीरावत; मीणावत; मैणावत; मुणावत; मुणोत; मुहणोता; मीनोत्त; ॥ ४२-४५ ॥

लूणढाः बाणढाः सेणाः ढांकरी मयपावताः। उमटा कुमटा बोरी झांटलवाला झाकुलः ॥ ४६ ॥ निर्वाणामालनी स्रराः भूरेचा भद लावताः। नागरी खाटरी लौधाः गोशींगाहडचूरियाः ॥ ४७ ॥ राण का भामडी धींगा राजुल वाला भामराः। जांगडा गोखरु डीघाः झुन्डीवाल हीरावताः ॥ ४८ ॥ धावणी छावडा भारु देश नाम युतास्तथा। सर्वेतेक्षत्रियामीनाः शुद्धाचार परायणाः ॥ ४९ ॥ यानिसुवस्तु नामानि नदी ग्रामनुखानिच। तानिसर्वाणि गौत्राणि मारणा नाम शेषतः ॥ ५० ॥ उत्पत्ति रेवमीनस्य मूर्त्तिर्धर्मस्य शाश्वती। सहिधर्मार्थ मुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५१ ॥ मारणोजायमानोहि पृथिव्यामधिजायते। ईश्वरः सर्व भूतानां धर्म कोशस्यगुप्तये ॥ ५२ ॥ बह्वीस्तु संसरन्योनी र्जायमाने पुनः पुनः। पर्यायितातकस्मि श्चिन्मारणो नाम जायते ॥ ५३ ॥

भा० टी०—लूणढा, लूलेढा, लौणेढा, बाण, बाणवंशी, बारणोत, बारणावत, सैणा, सद्देणा; सैना; सौना; ढांकरिया; ढांकणिया; डाकलिया; ढैंकलिया; मयपावत; उमट; कुमट; बोरी; बोरिया; झांटलवाल; झाकल; पाकल; निर्वाण; मालाणी; मालनी; म्यारण; सूरवंशी; सूर्यवंशी; भूरेचा; भदलावत; नागरी; नागर, खाटरी, लौधा, लौढा, गौशीगा, हडचूर, हडजूर, राणकीया, राणकपुरिया, राणावत, राणोत, भामडिया, धींगा, राजुलवाल, राजलवाल, भामरा, भाँवरा, भाँवरिया, जाँगडा, गोखरु, डीघा, जुन्डीवाल, झून्डीवाल, हीरावत, धावणी, धावणिया, धामणिया, चाह्वडा, छावडा, भारू, और भी देशों २ के नाम पर अनेक गौत्र हैं; यह सभी मीन जाति के शुद्ध क्षत्रिय हैं। और शुद्ध आचार को पालने वाले हैं। अच्छी २ वस्तुओं के जितने भी नाम होते हैं, और नदी तथा ग्राम पर्वत आदि के जितने भी नाम होते हैं उतने ही मारण क्षत्रियों के गौत्र होते हैं। मीन भगवान और उनके वंशधरों की उत्पत्ति, धर्म का अविनाशी शरीर है; क्योंकि ये सनातन धर्म की रक्षा के अर्थ ही उत्पन्न होते हैं, और फिर प्रलय में ब्रह्म के साथ ही मिलते हैं। मारणजन्म पृथ्वी में सबसे उत्कृष्ट है, इसीसे यह प्राणियों के समूह और धर्म की रक्षा के लिये समर्थ हैं। यह आत्मा अनेक योनियों में उत्पन्न होने पर बड़ी कठिनता से किसी समय मारण के यहाँ जन्म लेता है ॥ ४६-५३ ॥

विशिष्टं कुत्रचिद्वीजंस्त्री योनिस्त्वेव कुत्रचित्। उभयंतुसमंयत्र साप्रसूति प्रशस्यते ॥ ५४ ॥ बीजस्यचैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्ट मुच्यते। सर्व भूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षण लक्षिता ॥ ५५ ॥ यादृशंतूप्यते बीजंक्षेत्रे कालोपपादिते। तादृग्रोहतितत्तस्मिन्बीजंस्वैर्व्य-

-ज्ञितंगुणैः ॥ ५६ ॥ इयंभूमिर्हिभूतानां शाश्वती योनिरुच्यते । नचयोनि गुणान्कांश्चिद्वी जंपुष्यति पुष्टिषु ॥ ५७ ॥ भूमावप्येक केदारे कालेबप्तानि कृषीवलैः । नानारूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः ॥ ५८ ॥ क्षेत्र भूता स्मृता नारी बीजभूत: स्मृतः पुमान् । क्षेत्र बीज-संयोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥ ५९ ॥ यस्माद्बीज प्रभावेणतिर्यग्जाऋषयो भवन् । पूजिता-श्चप्रशस्ताश्च तस्माद्बी जंप्रशस्यते ॥ ६० ॥ पृथोरपी मांपृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः । स्थाणुच्छेदस्य केदार माहुः शल्यवतोमृगम् ॥ ६१ ॥ ननिष्क्रय विसर्गाभ्यांभर्त्तु भार्या विमुच्यते । एवं धर्म विजानीमः प्राक्प्रजापति निर्मितम् ॥ ६२ ॥

मारण क्षत्रियों में कहीं बीज श्रेष्ठ माना है और कहीं क्षेत्र (स्त्री) परन्तु इनमें दोनों समान हों वही सन्तान सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। बीज और क्षेत्र (योनी) में बीज का पक्ष उत्तम गिना जाता है क्योंकि सर्व प्राणियों की उत्पत्ति में उनके बीज के रूप रङ्ग गुण आदि देखने में आते हैं। समय पर ठीक किये क्षेत्र में जैसा बीज बोया जाता है, तैसे ही गुण बीज से उत्पन्न होने वाले में आते हैं। यह भूमि प्राणियों का नित्य क्षेत्र कहाता है परन्तु बीज अपने अंकुरादि में क्षेत्र के गुणों को धारण नहीं करता। किसान भूमि की एक ही क्यारी में भिन्न २ बीज बोते हैं, वह अपने स्वभाव से नाना प्रकार के उगते हैं, (एक भूमि होने पर भी एकसे नहीं होते) जैसे धान्य, सांठी, मूंग, तिल, उड़द, जौ लहसुन, और ईख बोने पर अपने बीज के अनुसार ही उगते हैं। स्त्री क्षेत्र रूप कही गई है और पुरुष बीज रूप कहा है, इस क्षेत्र और बीर्य के संयोग से ही सर्व प्राणियों की उत्पत्ति होती है। बीज के ही प्रभाव से तिर्यञ्च भी सर्वमान्य और पूजित ऋषि माने गये हैं, अतएव बीज की ही प्रधानता होती है, स्त्री की नहीं। पृथ्वी पर अनेक राजा लोग हो गये, लेकिन पुरातन इतिहासवेत्ता आज भी इसको पृथु की ही स्त्री कहते हैं। जो वृक्ष आदि काट कर जमीन को साफ करता है उसीका यह खेत कहाती है, उसको जबरन दूसरा कोई छीन नहीं सकता, एवं जिसने मारा उसीकी वह शिकार है। बेच डालने से एवं छोड़ देने से भी भार्या अपने पति से नहीं छूटती, ऐसे पहिले (स्वायं भुव) प्रजापति के धर्म को हम जानते हैं ॥ ५५-६२ ॥

क्षत्रादुत्पन्नः शूद्रायां चात्र मेवन संशयः । भर्त्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुति द्वैधंतु भर्तरि । आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणंविदुः ॥ ६३ ॥ ओघवाताहृतं बीजंयस्यक्षेत्रे प्ररोहति । क्षेत्रिक स्यैवतद्बीजं नवप्तालभते फलम् ॥ ६४ ॥ एषधर्मो गवाश्वस्यदास्युष्ट्राजादि कस्यच । मारणानां विशेषेण विज्ञेयः प्रसवंप्रति ॥ ६५ ॥ एतद्वः सार फल्गुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्त्तितम् । अतः परंप्रवक्ष्यामि मीनदेशं समासतः ॥ ६६ ॥ येनलिंगेनयोदेशोयुक्तः

समुपलक्ष्यते । तेनैवनाम्नातंदेशं वाच्यमाहुर्मनीषिणः ॥ ६७ ॥ मत्स्यामालुमरुमेदाः सौर काठिस्तु चौलुकाः । वागुरा जांगुला लाटाः कुरु मूल सुवीरकाः ॥ ६८ ॥ यस्मिन्देशेस्थितामीनाः स्वायंभुवकुलोद्भवाः मीनदेशंतमाख्यातं धर्म कामार्थ मोक्षदम् ॥ ६९ ॥ अर्बुदाद्रिसमारभ्य कालिंदी कुलदक्षिणम् । मीनदेशः समाख्यातः पुरातत्त्व विशारदैः ॥ ७० ॥

भा० टी०— क्षत्रिय के वीर्य से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न हुआ पुत्र भी निस्सन्देह क्षत्रिय ही होता है। मुनिजन उत्पन्न हुये पुत्र को भर्ता (बाप) का ही मानते हैं, परन्तु भर्ता के विषय में दो प्रकार की श्रुति हैं, एक कहती है कि पुत्र जिसके वीर्य से हुआ हो उसका गिना जाता है, दूसरी श्रुति कहती है कि पुत्र जिसकी स्त्री में जन्मा हो उसका होता है। जल के प्रवाह वा पवन से खिच कर बीज दूसरे जिस किसी के खेत में जा जमें तो वह बीज उसी खेत वाले का ही होता है, प्रथम बोने वाला मनुष्य फल नहीं पाता। गौ, घोड़ी, दासी, ऊंटनी, बकरी, भेड और भैंस आदि पशुओं की तथा पक्षियों की संतान के लिये भी यही धर्म है, अर्थात् गौ आदि का स्वामी ही उनकी सन्तान का स्वामी माना जाता है। बीज का तथा योनी का प्रधानपना और गौणपना तुमको हमने कह सुनाया, अब आगे मीन देश (जहां मारण जाती सदा से रहती आई है) का स्वरूप व महात्म्य संक्षेप में कहता हूँ, सुनिये—जिस जाति के चिह्न (निवास स्थान से) युक्त जो देश पहिचाना जाता है, विद्वान लोग उसी जाति के ही नाम से उस देश को पुकारते हैं। जैसे मत्स्य (मीन) जाति का आबाद किया हुआ देश, मत्स्य देश कहाता है, एवं मालु जाति का निवासस्थान मालव, मरु जाति का मारवार, मेद जाति का मैदपाट (मेवाड़) सुरजाति का सौराष्ट्र, काठि जाति का काठियावाड़, चलुका जातिका चौलुकदेश, वागुर जाति का वागड़, जंगली जाति का जांगुल, लेट जाति का लाट, कुरु जाति का कुरुक्षेत्र, मूल जाति का मूलस्थान (मुलतान) सुवीर जाति का सौवीर देश कहाता है। भगवान स्वायंभुव मनुजी के कुल में उत्पन्न हुये मीन जाति के क्षत्रिय लोग सुरू से ही जिस देश में स्थित हैं उसी धर्म अर्थ, काम और मोक्ष के देने वाले देश का नाम मीन (मत्स्य) देश है। अर्बुदाचल (आबू) से लेकर (पूर्वोत्तर) यमुनाजी के दक्षिण तट तक को विद्वान लोग मीन देश कहते हैं ॥ ६३–७० ॥

द्वात्रिंशच्चसहस्राणां देशानां किलभारते । मौली स्थानंगतोमीन देशोयं मुनिशत्तम
॥ ७१ ॥ यथासर्वसमुद्रेषु स्वयंभूरमणो महान् । तथा सर्वेषु देशेषु मत्स्यदेशो विशेष्यते
॥ ७२ ॥ देशोयंमीनभूपाना गुणैस्सर्वैरलं कृतः । सर्वतीर्थानि पुण्यानि पुण्यान्यायतनानिच
॥ ७३ ॥ नक्षत्रांयथासोमः सरसांसागरःयथा । वसूनांपावकोयद्वद्रु द्राणांशंकरोंयथा ॥ ७४ ॥
वर्णानांब्राह्मणो यद्वद्वै नतेयश्चपक्षिणाम् । सेनानीनांयथास्कन्दः सिद्धानांकपिलोयथा ॥७५॥

ऐरावतो गजेन्द्राणां महर्षिणां भृगुर्यथा । मेरुः शिखरिणां यद्वन्नगानांच हिमालयः ॥७६॥ उच्चैःश्रवा यथाश्वानां कवीनामुशना यथा । मुनीनां च यथा व्यासः कुवेरो यक्ष राक्ष-साम् ॥ ७७ ॥ इन्द्रियाणां मनोयद्वद्भूतानामवनी यथा । अश्वस्थः सर्ववृक्षाणां पवनः पवतां यथा ॥ ७८ ॥ अरुन्धती यथास्त्रीणां शस्त्राणां कुलिशं यथा । अकारः सर्ववर्णानां गायत्री छन्दसामपि ॥ ७९ ॥ सर्वाङ्गेषु यथा मूर्धा क्षत्राणां मारणो यथा । केवलं सर्व ज्ञानानां व्रतानां ब्रह्मधारणम् ॥ ८० ॥ मनुष्याणां यथा राजा धेनुनां कामधुग्यथा । सुवर्णं सर्वधातूनां सर्पाणां वासुकिर्यथा ॥ ८१ ॥ प्रन्हादो मीनदैत्यानां रामः शस्त्रभृतां यथा । झषाणांमकरोयद्वन्मृगाणां मृगराड्यथा ॥ ८२ ॥ वरुणोयादसां बद्धयमः संयमी-नां यथा । क्षीरोदः सागराणा च देवर्षिणां च नारदः ॥ ८३ ॥ पुरोधसां यथा जीवः कालकलयतां यथा । ग्रहाणां भास्करोयद्वन्मंत्राणां प्रणवो यथा ॥ ८४ ॥ देवतानां यथा मीनः कृत्यानां धर्मधारणम् । तथा समस्तदेशानां वरिष्ठं देशमीनकम् ॥ ८५ ॥

इति श्रीमद्भाग० मीनपुराणे द्वितीयस्कन्धे त्रयोविंशोध्यायः ॥ २३ ॥

भा० टी०— हे मुनिसत्तम भारतवर्षीय बत्तीस हजार देशों में यह मीनदेश सर्वोपरि मौलि (मुकुट) के स्थान को प्राप्त हुआ है। जैसे सबही समुद्रों में स्वयम्भूरमण (क्षीरसागर) विशाल मुख्य एवं प्रधान है, वैसे ही सर्वदेशों में मीनदेश मुख्य एवं प्रधान (श्रेष्ठ) है। मीनभूपालों (राजाओं) का यह मीनदेश सबही गुणों से सुशोभित है, इस देश में ही सब तीर्थ हैं, इसीमें पुण्यात्माओं का निवासस्थान है, इसीमें सर्व प्रकार के दान, पुण्य होते हैं। इसीमें अच्छे २ धर्मस्थान बने हुये हैं। सर्व नक्षत्रों में जैसे चन्द्रमा मुख्य और प्रधान है, जलाशयों में जैसे सागर (समुद्र) मुख्य और विशाल है, आठ वसुओं में जैसे पावक मुख्य है, रुद्रगणों में जैसे शंकरजी मुख्य और प्रधान हैं वैसे ही सर्व देशों में मीनदेश मुख्य और प्रधान है। वर्णों में जैसे ब्राह्मण, पक्षियों में जैसे गरुड़, सेना-पतियों में जैसे महादेवजी का बड़ा पुत्र (स्वामी कार्तिक), सिद्ध पुरुषों में जैसे कपिल मुनिजी, हाथियों में ऐरावत हाथी, महर्षियों में भृगुजी, ऊंचे पर्वतों में सुमेरु, लम्बे पर्वतों में हिमालय, मुख्य और प्रधान हैं, उसी प्रकार सर्व देशों में मीन देश मुख्य। घोड़ों में इन्द्र का उच्चैश्रवा अश्व, कवियों में उशना (भृगु का बेटा शुक्राचार्य), मुनियों में वेदव्यासजी, यक्ष राक्षसों में कुबेरजी मुख्य और प्रधान हैं, देशों में मीन देश मुख्य और सर्वश्रेष्ठ है। इन्द्रियों में मन, भूतों में पृथिवी, वृक्षों में पीपल, शोधन (सफाई) करने वालों में पवन, (वायु), सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही सर्व देशों में मीन देश सर्वोत्तम है। स्त्रियों में अरुन्धती (वसिष्ठजी की स्त्री) शस्त्रों में इन्द्र का वज्र, सर्व अक्षरों में अवर्ण, छन्दों में गायत्री,

सर्व अङ्गों में मस्तक, क्षत्रियों में मारण क्षत्रिय, सर्वज्ञानों में ब्रह्मज्ञान और व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत उत्तम और प्रधान है, वैसे ही सर्वदेशों में मीन देश मुख्य और प्रधान है। मनुष्यों में जैसे राजा, सर्वगौओं में कामधेनु, सर्वधातुओं में सुवर्ण (सोना), सर्पों में वासुकि सर्व प्रधान है, देशों में मीन देश सर्व प्रधान है। दैत्य जाति के मीन क्षत्रियों में प्रह्लादजी, शस्त्रधारियों में श्रीरामचन्द्रजी, जलजन्तुओं में मकर, पशुओं में सिंह, प्रधान है वैसे ही सर्व देशों में मीन देश प्रधान है। जल के अधिष्ठाताओं में वरुणजी, शासकों में यमराज, समुद्रों में क्षीर सागर, देवर्षियों में नारदजी. अप्रतिहतगति वालों में काल, शरीरों में जीव, ग्रहों में सूर्य. मन्त्रों में ओंकार, देवसमूह में भगवान मीन, करने योग्य कार्यों में जैसे धर्म नियमों का धारण करना मुख्य और प्रधान है, वैसे ही समस्त देशों में मीन देश वरिष्ठ है ॥ ७१-७४ ॥

इति श्रीमद्भागवन्मीनपुराणे द्वितियस्कन्धे त्रयोविंशतितमोऽध्याय समाप्तः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः प्रारभ्यते। भारतभूमि व०। मुनय ऊचुः ॥

पृथिव्यामुत्तमांभूमिं धर्मकामार्थमोक्षदाम्। तीर्थानामुत्तमंतीर्थं ब्रूहिनो वदतां-वर ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ इमं प्रश्नं ममगुरुं पप्रच्छुर्मुनयः पुराः। तमहं संप्रवक्ष्यामि यत्पृच्छध्वंद्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ स्वाश्रमेषुमहापुण्ये नानापुष्पोपशोभिते। नानाद्रुमलताकीर्णे नानामृगगणैर्युते ॥ ३ ॥ पुन्नागैः कर्णिकारैश्च सरलैदेवदारुभिः। शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैर्धवखादिरैः ॥ ४ ॥ पाटलाशोकवकुलैः करवीरैः सचम्पकैः। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षै नानापुष्पोपशोभितैः ॥ ५ ॥ कुरुक्षेत्रेसमासीनं व्यासं मतिमतांवरम्। महाभारतकर्तारं सर्व शास्त्रविशारदम् ॥ ६ ॥ आध्यात्मनिष्ठं सर्वज्ञं सर्वभूतहितेरतम्। मीनपुराणवक्तारं वेद-वेदाङ्गपारगम् ॥ ७ ॥ पाराशरसुतंशान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम्। प्रष्टुमभ्याययुः प्रीत्या मुनयः शंसितव्रताः ॥ ८ ॥

भा० टी०—अब चौबीसवां अध्याय शुरू होता है। इसमें मीनभूपालों से अधिष्ठित भारत भूमि का संक्षिप्त महात्म्य वर्णन अधिकार है। मुनिजनों ने पूछा कि—हे कहनेवालों में श्रेष्ठ सूतजी तीर्थों में उत्तम तीर्थ और धर्म, काम, अर्थ एवं मोक्ष को देने वाली इस पृथ्वी पर कौनसी भूमि सर्वोत्तम है, सो हमसे कहिये। सूतजी बोले, हे मुनिसत्तमो! जो तुमने मुझसे पूछा, यही प्रश्न पहिले मेरे गुरुदेव व्यासजी से मुनियों ने पूछा था सोही मैं कहता हूं। सुनिये, जब मेरे गुरुजी अपने आश्रम जो

कि महापुण्यस्वरूप नाना भांति के पुष्पों से सुशोभित, नाना प्रकार के उत्तम वृक्षों से आकीर्ण, मृग आदि नाना जाति के पशुओं से युक्त, पुन्नाग (जायफल) कर्णिकार (कनेर) सरल, देवदारू, शाल, ताल, तमाल, पनस, धव, खदिर, पाटल, अशोक, वकुल, करवीर, चंपक आदि और भी विविध जाति के वृक्ष तथा भांति २ के पुष्पों से उपशोभित कुरुक्षेत्र में व्यास गद्दी पर बैठे हुये, बुद्धिमानों में प्रधान, महाभारत के कर्ता, सर्वशास्त्र विशारद, अध्यात्मनिष्ठ, सर्वज्ञ, सर्वजीवों के हित में लगे हुये, मीनपुराण को कहने वाले, वेद और वेदाङ्ग के पारगामी, पाराशरजी के पुत्र, शान्तमुद्रा वाले, कमल की पंखुरी के समान लम्बे २ नेत्र वाले, वेदव्यासजी को भारत का महात्म्य पूछने के लिये निश्चित व्रत वाले मुनिजन आते हुये ॥ १—८ ॥

कश्यपो जमदग्निश्च भरद्वाजोथगौतमः । वसिष्ठोजैमिनिर्धौम्यः मार्कण्डेयश्च वाल्मिकिः ॥ ९ ॥ विश्वामित्रः शतानन्दो वात्स्योगर्गोथआसुरिः । सुमन्तुर्भार्गवोमीनः कण्वो मेधातिथिर्गुरुः ॥ १० ॥ माण्डव्यश्च्यवनो धूम्रो ह्यसितोदेवलस्तथा । मौद्गल्यस्तृणबाहुश्च पिप्पलादोकृतव्रणः ॥ ११ ॥ संवर्त्तः कौशिकोरैभ्यो मैत्रेयो हारितस्तथा । शाण्डिल्यश्च तथागस्त्यो दुर्वासालोमसस्तथा ॥ १२ ॥ नारदः पर्वतश्चैव वैशंपायन गालवौ । भास्करिः पूरणिः सूतः पुलस्त्यः कपिलस्तथा ॥ १३ ॥ ऊलूकः पुलहोवायु दैवस्थानश्चतुम्बुरुः । सनत्कुमारः पैलश्च कृष्णः कृष्णानुभौतिकः ॥ १४ ॥ एतै मुनिवरैश्चान्यैर्वृतः सत्यवती सुतः । रराज स मुनिर्धीमान्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥ १५ ॥

भा० टी०—जो २ ऋषि व्यासजी के पास भारत भूमि का महात्म्य पूछने के लिये आये उन्हों के नाम ये हैं, कश्यपजी, जमदग्निजी, भरद्वाजजी, गौतमजी, वसिष्ठजी, जैमिनी, धौम्य, मार्कण्ड, वाल्मिकी, विश्वामित्र, शतानन्द, वात्स्य, गर्ग, आसुरी, सुमन्त, भार्गव, मीनऋषी, कण्व, मेधातिथि, माडव्य, च्यवन, धुम्र, असित, देवल, मौद्गल, तृणबाहु, पिप्पलाद, कृत, व्रण, संवर्त्त, कौशिक, रैभ्य, मैत्रेय, हारित, शांडिल्य, अगस्त्य, दुर्वासा, लोमस, नारद, पर्वत, वैशम्पायन, गालव, भास्करी, पूरणी, सूतजी, पुलस्त्य, कपिल, उलूक, पुलह, वायु, देव, स्थान, तुम्बरु, सनत्कुमार, पैल, कृष्ण, कृष्णानु, भौतिक इत्यादिक इन मुनिवरों से परिवृत्त सत्यवतीजी के सुपुत्र बुद्धिमान वेदव्यासजी नक्षत्रों में चन्द्रमा के समान सुशोभित होते भये ॥९-१५ ॥

तानागतान्मुनीन्सर्वान्पूजयामास वेदवित् । तेपि तं प्रतिपूज्यैव कथां चक्रुः परस्परम् ॥ १६ ॥ कथान्ते ते मुनिश्रेष्ठाः कृष्णं सत्यवती सुतम् । पप्रच्छुः संशयं सर्वे तपोवन

निवासिनः ॥ १७ ॥ (मुनय ऊचुः) मुनेवेदांश्च शास्त्राणि पुराणागम भारतम् । भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं जानासि वाङ्मयम् ॥ १८ ॥ कष्टेस्मिन्दुःखबहुले निःसारे भव-सागरे । रागग्रहाकुले रौद्रे विषयोदक संप्लवे ॥ १९ ॥ इन्द्रियावर्तकलिले दृष्टोर्मिशतसंकुले । मोहपंकाविले दुर्गे लोभगंभीरदुस्तरे ॥ २० ॥ निमज्जज्जगदालोक्य निरालम्बमचेतनम् । पृच्छामस्त्वां महाभागं ब्रूहिनो मुनिसत्तम ॥ २१ ॥ श्रेयः किमत्रसंसारे भैरवे लोमहर्षणे । उपदेशप्रदानेन, लोकानुद्धर्तुमर्हसि ॥ २२ ॥ दुर्लभं परमं क्षेत्रं, वक्तुमर्हसि मोक्षदम् । पृथिव्यां कर्मभूमिं च, श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ २३ ॥ कृत्वाकिलनरः सम्यक्कर्मभूमौ यथो-दितम् । प्राप्नोति परमं सिद्धिं, नरः कं च विकर्मतः ॥ २४ ॥ मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं, प्राप्नोति परमं सुधीः । तस्माद्ब्रूहि महाप्राज्ञ, यत्पृष्टोसिद्विजोत्तमैः ॥ २५ ॥

भा० टी०—वेद के जानने वाले वेदव्याजी ने आये हुये उन सभी महर्षियों का बड़ा सत्कार किया, एवं उन महात्माओं ने भी व्यासजी का प्रतिपूजन किया, और वे परस्पर मीनपुराण की कथा करते हुये। सूतजी कहते हैं कि हे मुनियो ! कथा के अन्त में सत्यवती के पुत्र वेदव्यासजी से वे सब तपोवनवासी मुनिजन अपने २ संशयों को पूछते भये। मुनि बोले कि हे व्यासजी आप चारों वेद, आगम, शास्त्र, पुराण, भारत आदि सभी वांगमय (शास्त्रों) को तथा त्रिकालवर्ती सभी पदार्थों को भली भांति जानते हो। महाकष्टदायी, दुखरूप, अथाह जल से भरे हुये, इस निस्सार भवसागर में, जो कि रागद्वेष रूपी ग्रहा (मकर) आदि जल-जन्तुओं से भरा हुआ, विषयरूपी जल-तरङ्गों से उछलता हुआ, इन्द्रियरूपी आवर्त (घुंवरों) से गहन, भयरूपी सैंकड़ों उर्मियों से संकुल, मोहरूपी कीचड़ से व्याप्त, दुर्गम लोभ (तृष्णा) रूप ऊंडी खाड वाला अपार, समुद्र में डूबते हुये आधार रहित अज्ञानी लोगों को देख कर हे महाभाग ! हम आप से इसके निस्तारस्थान को पूछते हैं सो कहिये। इस भयङ्कर रोमाञ्च-कारी संसार-समुद्र में कल्याणकारी एवं मोक्षदायक कौनसा स्थान है। क्योंकि इस संसार में उपदेश देकर एक आप ही लोगों का उद्धार करने को समर्थ हैं। पृथ्वी पर परम दुर्लभ क्षेत्र व मोक्ष देने वाली कर्मभूमि का वर्णन हम आपके श्रीमुख से सुनना चाहते हैं। कौनसी कर्मभूमि में मनुष्य सुविहित कर्मों के करने से और निन्दित कर्मों के नहीं करने से परम सिद्धि को प्राप्त होता है। क्योंकि मोक्ष क्षेत्र में ही शुभकर्मों के द्वारा बुद्धिमान मनुष्य मोक्ष पा सकता है, अतएव हे महाप्राज्ञ ! द्विजोत्तमों ने जो २ प्रश्न किये सोही आप हम से कहिये ॥ १६–२५ ॥

श्रुत्वातु वचनं तेषां, मुनिनां भावितात्मनाम् । व्यासः प्रोवाच मतिमान्भूतभव्य-भविष्यवित् ॥ २६ ॥ शृणुध्वं मुनयः सर्वे, वक्ष्यामि यदि पृच्छथ । यः संवादोभवत्पूर्वमृ-

षिणां ब्रह्मणासह ॥ २७ ॥ मेरुपृष्टेतुविस्तीर्णे, नानारत्नविभूषिते । नानाद्रुमलताकीर्णे, नानापुष्पोपशोभिते ॥ २८ ॥ नानापक्षिरुतेरम्ये, नानाप्रसवसंकुले । नानासत्वसमाकीर्णे, नानाश्चर्यसमन्विते ॥ २९ ॥ नानावर्णशिलाकीर्णे, नानाधातुविभूषिते । नानामुनीजनाकीर्णे, नानाश्रमसमन्विते ॥ ३० ॥ तत्रासीनं जगन्नाथं, जगद्योनिंचतुर्मुखम् । जगत्पतिं जगद्वन्द्यं जगदाधारमीश्वरम् ॥ ३१ ॥ देवदानवगन्धर्वैर्यक्षविद्याधरोरगैः । मुनिसिद्धाप्सरोभिश्च, वृत्तमन्यैर्दिवालयैः ॥ ३२ ॥ केचित्स्तुवन्ति तं देवं, केचिद्ध्यायन्ति चाग्रतः । केचिद्वाद्यानि वाद्यन्ते, केचिन्नृत्यन्तिचापरे ॥ ३३ ॥ एवं प्रमुदिते काले, सर्वभूतसमागमे । ननाकुसुम गन्धाढ्ये, दक्षिणानिलसेविते ॥ ३४ ॥ भृग्वाद्यामुनयोदेवं, प्रणिप्रत्यपितामहम् । इममर्थमृषिवराः, पप्रच्छु पितरं द्विजाः ॥ ३५ ॥ भगवच्छ्रोतुमिच्छामः, कर्मभूमिं महीतले । वक्तुमर्हसि देवेश, मोक्षक्षेत्रश्चदुर्लभम् ॥ ३६ ॥ व्यास उवाच ॥ तेषां वचनमाकर्ण्य, प्राहब्रह्मा सुरेश्वरः । श्रृणुध्वं मुनयः सर्वे, यद्वोवक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ३७ ॥

भा० टी०—भावितात्मा वाले उन मुनियों के वचनों को सुनकर तीनकाल के जानने वाले मतिमान व्यासजी यों बोले । हे मुनियो ! मैं कहता हूँ सुनो ! जो तुमने पूछा यही संवाद पहले ऋषियों का ब्रह्माजी के साथ में भी हुआ था । एकदा ब्रह्मपुरी में जो कि सुमेरु के विस्तीर्ण पीठ पर सुशोभित है । और वह पीठ नाना प्रकार के रत्नों करके विभूषित है, नाना प्रकार के वृक्ष और लताओं से परिपूर्ण है, नाना भांति के पुष्पों से उपशोभित है नाना प्रकार के पक्षियों की बोली से रमणीक है । नाना भांति के फलों से भरा हुआ है, नाना प्रकार के प्राणियों से परिपूर्ण, नाना प्रकार के आश्चर्यों से संयुक्त, नाना वर्ण की शिलाओं से आकीर्ण, नाना प्रकार के धातुओं से विभूषित, नाना जाति के मुनिजनों से आकीर्ण, नाना प्रकार के आश्रमों सहित और सुशोभित है । उस सुमेरु पीठ पर स्थित ब्रह्मपुरी में जगत के नाथ, जगत योनि, चतुर्मुख, जगत्पति, जगत बन्द्य, जगत के आधार, और ईश्वर ब्रह्माजी, देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, नाग, मुनि, सिद्ध, अप्सरा गण आदि और भी देवलोक निवासी सुरगणों से परिवृत्त ब्रह्मासन पर सुशोभित होते भये । कितनेक ही देवगण तो, ब्रह्मा जी की स्तुति कर रहे हैं, कितनेक ही मुनिजन सन्मुख स्थित हो कर ध्यान कर रहे हैं । कितनेक ही देवगण बाजे बजाते हैं, और कितनेक ही नृत्य कर रहे हैं । इस प्रकार प्रमुदित उस काल में सभी प्राणियों का ब्रह्मसभा में समागम हुआ । उस समय नाना प्रकार के फूलों की सुगन्धी सहित दक्षिण (दाहिनी) तरफ की सुगन्धित हवा चल रही थी । उस समय भृगुजी आदि मुनिवर जगत के पितामह ब्रह्माजी को प्रणाम करके यों पूछने लगे, हे भगवन् ! इस पृथ्वी पर जो कर्म भूमि है उसका स्वरूप

हम आपके श्रीमुख से सुनना चाहते हैं, एवं जो परम दुर्लभ मोक्ष क्षेत्र है, हे देवेश ! उसका स्वरूप भी आप हम से कहिये । व्यासजी बोले उन मुनियों के विनम्र वचन सुन कर सुरेश्वर, जगत्पूज्य ब्रह्माजी बोले कि अब मोक्ष क्षेत्र कर्मभूमि का वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥ २६-३७ ॥

(ब्रह्मोवाच) पृथिव्यां भारतं वर्षं, कर्मभूमिरुदाहृतम् । कर्मणः फलभूमिश्च, स्वर्गं च नरकं तथा ॥ ३८ ॥ तस्मिन्वर्षे नरः पापं, कृत्वा धर्मं च भोद्विजाः । अवश्यं फलमाप्नोति, अशुभस्यशुभस्य च ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणाद्याः स्वकं कर्म, कृत्वा सम्यक्सुसंयताः । प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं, तस्मिन्वर्षे न संशयः ॥ ४० ॥ धर्मं चार्थश्च कामश्च, मोक्षंच द्विजसत्तमाः । प्राप्नोति पुरुषः सर्वं, तस्मिन्वर्षेतु संयतः ॥ ४१ ॥ इन्द्राद्याश्च सुराः सर्वे, तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमाः । कृत्वा सुशोभनं कर्म, देवत्वं प्रतिपेदिरे ॥ ४२ ॥ अन्येपि लेभिरे मोक्षं, मारणाः संयतेन्द्रियाः । तस्मिन्वर्षे बुधाः शान्ता, वीतरागाविमत्सराः ॥ ४३ ॥ ये चापि स्वर्गे तिष्ठन्ति, विमानेन गतज्वराः । तेपि कृत्वा शुभं कर्म, तस्मिन्वर्षे दिवंगताः ॥ ४४ ॥ निवासं भारते वर्षे, आकांक्षन्ति सदा सुराः । स्वर्गापवर्गफलदेतत्, पश्यामः कदावयम् ॥ ४५ ॥

भा० टी०—ब्रह्माजी बोले, सम्पूर्ण पृथ्वी पर यह भारत वर्ष ही कर्मभूमि कहाता है, प्राणियों को स्वर्ग तथा नरक आदि कर्मों का फल भुगताने वाली जो भूमि, वह कर्मभूमि कहाती है । हे ब्राह्मणो ! इस भारतवर्ष में मनुष्य पाप या धर्म रूप कर्म करके उनका अशुभ या शुभ फल अवश्य ही पाता है । ब्राह्मण आदि चारों ही वर्ण सुसंयतेन्द्रिय होकर इस भारत भूमि में अपने २ कर्म करके परम सिद्धि को अवश्य ही पाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं । संयत मनुष्य इस भारत वर्ष में शुभ कर्म करके हे द्विजोत्तमो ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी फल को अवश्य ही पाते हैं, अतएव इसको कर्म करने की भूमि कहते हैं । हे द्विजोत्तमो ! इस भारत वर्ष में ही सुशोभन कर्म करके, इन्द्रादि सब देवता, देवपन को प्राप्त हुये हैं । और भी अनेक सहस्र मारण क्षत्रिय विमत्सर (वैर व कृपणता रहित) होकर तथा राग द्वेष रहित, एवं शान्त और जितेन्द्रिय होकर मुक्ति पाये हैं । जो भी लोग आज विमानों के द्वारा स्वर्गलोक में पहुँचते हैं, वे भी इसी भारत वर्ष में ही शुभ कर्म करके जाते हैं । स्वर्गनिवासी देवतालोग भी सदा इसी भारत वर्ष में ही निवास चाहते हैं और हमेशा यही भावना रखते हैं कि हम स्वर्ग और मोक्ष रूप फल देने वाले भारत वर्ष को कभी देखेंगे ॥ ३८-४५ ॥

मुनय ऊचुः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं, कर्मनान्यत्र पुण्यदम् । पापाय वा सुरश्रेष्ठ वर्ज-

यित्वा च भारतम् ॥ ४६ ॥ तत स्वर्गश्च मोक्षश्च, मध्यमं तच्च गम्यते। नवान्यत्रं च मर्त्यानां, भूमौ कर्म विधीयते ॥ ४७ ॥ तस्माद्विस्तरतोब्रह्मन्नस्माकं भारतं वद । भूभृता यत्र वर्षन्ति, दानधर्मैश्च मारणाः ॥ ४८ ॥ तस्माद्वर्षमिदं नाथ, ये चास्मिन्वर्षे पर्वताः । भेदाश्च तस्य वर्षस्य, ब्रूहि सर्वानशेषतः ॥ ४९ ॥

भा० टी०—मुनिजन बोले, हे सुरश्रेष्ठ प्रभो ! आपने पहिले कहा था कि भारत को छोड कर अन्यत्र पुण्य-पाप के फल को देने वाला दूसरा कर्म-क्षेत्र कहीं नहीं है, इसीमें कर्म करने से स्वर्ग, मोक्ष और मध्यम फल मिलते हैं। इसके सिवाय मनुष्यों को शुभाशुभ कर्म करने के लिये दूसरी कर्म-भूमि कहीं नहीं है। अतएव हे ब्रह्मन् भारत का वर्णन आप हम से विस्तार पूर्वक कहें, जहां मारण जाति के राजालोग दानरूप धारा से सदाही बरसते रहते हैं। मारण क्षत्रिय भूभृतों ही के कारण यह भारत 'वर्ष' कहा जाता है। अथवा हे नाथ इसमें जितने भी वर्ष, पर्वत और देश भेद हैं वह भी सब हमसे कहिये ॥ ४६–४९ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ श्रृणुध्वं भारतं वर्षं, नव भेदेन भोद्विजाः । समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते समाश्च परस्परम् ॥ ५० ॥ इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च, ताम्रवर्णोगभस्तिमान्नागद्वीपस्तथा सौम्यो, गान्धर्वो वारुणस्तथा ॥ ५१ ॥ अयं तु नवमस्तेषां, द्वीपः सागर संवृतः । योजनानां साहस्रं द्वीपोयं दक्षिणोत्तरः ॥ ५२ ॥ पूर्वे किराता यस्या, सन्पश्चिमे यवनस्तथा । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चात्रस्थिता द्विजाः ॥ ५३ ॥ इज्यायुद्धवाणिज्याद्यैः कर्मभिः कृतपावनाः । तेषां सद्व्यवहारश्च, मीनशास्त्रानुसारतः ॥ ५४ ॥ स्वर्गापवर्ग हेतुश्च, पुण्यपापं चवैतथा । मीनादिरवताराणां, स्थानं तीर्थं च भारतम् ॥ ५५ ॥

भा० टी०—ब्रह्माजी बोले, हे मुनिजनो ! भारतवर्ष का वर्णन सुनो ! बीच मे समुद्र के पड़ जाने के कारण, भारतवर्ष के नव भेद होते हैं और वे सब प्रमाण में एक दूसरे के समान हैं। इन्द्रद्वीप, कशेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व, वारुण तथा भारत। यह भारतवर्ष उनमें नवयाँ है और यह द्वीप पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम में सागर (समुद्र) से आवृत है और दक्षिण से उत्तर हिमालय तक नव हजार योजन का विस्तीर्ण है। इस भारतवर्ष में पूर्व के किनारे पर किरात लोग बसते हैं, एवं पश्चिम के तट पर यवन लोग रहते हैं, और इसके बीच में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये चार वर्ण के लोग रहते हैं। और वे यज्ञ, युद्ध तथा वाणिज्य कर्म करके सदा पावन (पवित्र) हैं। उनका सद्व्यवहार मीनपुराण के अनुसार होता है। हे द्विजो ! यह भारतवर्ष सबसे बड़ा

तीर्थ और स्वर्ग, मोक्ष का हेतु तथा पुण्य, पाप और भगवान विष्णु के मीन आदि अवतारों का पवित्र स्थान है ॥ ५०–५५ ॥

महेन्द्रोमलयः सह्यः, शुक्तिमानृक्षपर्वतः । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च, सप्तैवात्रकुलाचलाः ॥ ५६ ॥ तेषां सहस्रशश्चान्ये, भूधरा ये समीपगाः । विस्तारोच्छ्रयिणोरम्या, विपुलाश्चित्रसानवः ॥ ५७ ॥ कोलाहलः सवैभ्राजो, मन्दरो दर्दराचलः । वाताध्वगो दैवतश्च, मैनाकः सुरसस्तथा ॥ ५८ ॥ तुङ्गप्रस्थो नागगिरिर्गोर्धनः पांडुराचलः । पुष्पगिरिर्वैजयन्तो, रैवतोर्बुदएवच ॥ ५९ ॥ ऋष्यमूकस्तु गोमन्थः, कृतः शैलसिद्धाचलः । श्रीपर्वतश्चकोरश्च, सम्मेतः शिखरस्तथा ॥ ६० ॥ तारतोष्टापदः स्वर्णश्चित्रकूटस्त्रिकूटकः । वैभारो विपुलोगल्तः शतशोन्यश्च पर्वताः ॥ ६१ ॥ तैर्विमिश्राजानपदामीनाद्याश्चैव भागशः । चक्रेशिवगणास्तत्र राज्यमादि निवासिनः ॥६२ ॥

भा० टी०—महेन्द्राचल, मलयाचल, सह्याचल, शुक्तिमान, ऋक्षपर्वत, विन्ध्याचल, पारियात्र ये सात इस भारतवर्ष में कुलाचल पर्वत कहलाते हैं । विस्तार वाले बड़े ऊंचे और रमणीक विचित्र प्रकार की चोटियों वाले इन्हों के पास और भी विभिन्न नामों वाले हजारों पर्वत हैं । उन्हों में से कितने ही के नाम निम्न लिखित हैं । कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर (मन्दार), दर्दराचल, वाताध्वग, दैवत, मैनाक, सुरस, तुङ्ग (मांगीतुगी), प्रस्थ, नागगिरि, गोवर्द्धन, पांडुराचल, पुष्पगिरि, वैजयन्त, रैवत, (गिरिनार) अर्बुदाचल, ऋष्यमूक, गोमन्थ कृतशैल, सिद्धाचल (शत्रुञ्जय), श्रीपर्वत, चकोर, सम्मेतशिखर, तारक, अष्टापद (कैलाश), स्वर्णगिरि, चित्रकूट, त्रिकूट, वैभारगिरि, विपुलाचल, गल्ता आदि और सैकड़ों पर्वत हैं । उन्हीं पर्वतों करके संयुक्त देश मीन आदि नामों से विभाजित हुये हैं और उन सभी देशों में मारण जाति के शिवगण आदि, आदिम निवासी राजा लोग सदा से राज्य करते आये हैं ॥ ५६–६२ ॥

तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठास्ताबुध्यध्वं द्विजोत्तमाः । गङ्गासरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा ॥ ६३ ॥ यमुनाशतद्रुर्विपाशा, वितस्तैरावती कुहूः । गोमती धूतपापाच, बाहुदाच दृशद्वती ॥ ६४ ॥ मैनिका देविका चक्षुर्निष्ठीवागण्डकी तथा । कौशिकी चापगाचैव, हिमवत्पाद निःसृताः ॥ ६५ ॥

भा० टी०—मारण जाति के आदिम निवासी क्षत्रिय लोग जिन नदियों के जल पीते हैं उन्हों के नाम सुनो ! गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, यमुना, शतद्रु, विपाशा, वितस्ता, ऐरावती,

कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, मैनिका, देविका, चक्षु, निष्ठीवा, गण्डकी, कौशिकी, चापगा आदि ये सब नदियें हिमालय पर्वत से निकलती हैं ॥ ६३–६५ ॥

देवस्मृतिर्देववती, वातघ्नी सिंधुरेव च । वेण्यातु चंदनाचैव, सदानीरा मही तथा ॥ ६६ ॥ चर्मण्वती वृषाचैव, विदिशा वेत्रवत्यपि । तथाशिप्रा द्रवंती च, पारियात्रानुगा स्मृताः ॥ ६७ ॥

भा० टी०—देवस्मृति, देववती, वातघ्नी, कालिसिन्ध, वेणा, चन्दना, सदानीरा, मही, चर्मण्वती (चम्मल), वृषि, विदिशा, वेत्रवती, शिप्रा और द्रवन्ति ये सब नदियें पारियात्र पर्वत से निकलती है ॥ ६६–६७ ॥

शोणामहानदीचैव, नर्मदासुरथा क्रिया । मंदाकिनी दशार्णा च, चित्रकूटा तथापरा ॥ ६८ ॥ चित्रोत्पला वेत्रवती, करमोदा पिशाचिका । तथान्यातिलघुश्रोणी, विपाशा शैवला नदी ॥ ६९ ॥ समेरुजा शुक्तिमती, शकुनी त्रिदिवाक्रमुः । ऋक्षपाद प्रसूतास्तै तथान्या वेगवाहिनी ॥ ७० ॥

भा० टी०—शोणा, नर्मदा, सुरथा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, चित्रोत्पला, वेत्रवती, करमोदा, पिशाचिका, श्रोणी, विशापा, शैवला, सुमेरुजा, शुक्तिमती, शकुनी, त्रिदिवा, क्रमु, और भी अनेक छोटी बड़ी नदियां ऋक्षपाद पर्वत से निकलती हैं ॥ ६८–७० ॥

शिप्रापयोष्णी निर्विंध्या, तापीचैव सरिद्वरा । वेणावैतरणी चैव सीनिवाली कुमुद्वती ॥ ७१ ॥ तोयाचैव महागौरी, दुर्गाचां : शिला तथा । विंध्यपाद प्रसूतास्ता, नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥ ७२ ॥ गोदवरी भीमरथी, कृष्णा वेणातथापगा । तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा, तथान्या पापनाशिनी ॥ ७३ ॥ सह्यपाद विनिष्क्रान्ता, इत्येताः सरितां वराः । कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पवत्यु पलावती ॥ ७४ ॥

भा० टी० – शिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, वेणा, वैतरणी, सीनिवाली, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तशिला ये सब शुभ और पवित्र जलवाली नदियां विन्ध्याचल पर्वत से निकलती हैं । गौदवरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा और भी बहुतसी पापों को नष्ट करने वाली प्रधान २ नदियां सह्याद्री पर्वत से निकलती हैं । कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पवती, उपलावती ॥ ७१–७४ ॥

मलयाद्रि समुद्भूताः, पुण्याः शीतजलास्त्विमाः । पितृसोमर्षि कुल्या च, वंजुला
त्रिदिवा च या ॥ ७५ ॥ लांगलिनी वंशकरा, महेन्द्र प्रभवा' स्मृताः । सुविकाला कुमारी
च, मनुगा मन्दगामिनी ॥ ७६ ॥ चया पलांशिनी चैव, शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः । सर्वा
पुण्याः सरस्वत्यः, सर्वा गङ्गाः समुद्रगाः । विश्वस्य मातरः सर्वाः, सर्वाः पापहराः स्मृताः
॥ ७७ ॥ मौरेला वर्णनाशाच, वाणगङ्गाच चारिका । अन्या सहस्रश सन्ति, क्षुद्रनद्यो द्विजो-
त्तमाः । प्रावृट्कालेवहाः सन्ति, सदाकालवहाश्च या ॥ ७८ ॥

भा० टी०—मलयाद्रि पर्वत से उत्पन्न होने वाली, एवं पुण्य स्वरूप शीतल जल वाली निम्न लिखित नदियां हैं। पितृसोमा, ऋषिकुल्या, वंजुला और त्रिदिवा। लांगली वंशकरा आदि नदियां महेन्द्राचल पर्वत से निकलती हैं। सुविकाला, कुमारी, मनुगा, मंदगामिनी, चया, पलाशिनी आदि नदियां शुक्तिमत् पर्वत से निकलती हैं। सामान्यतया सभी नदियें पुण्यस्वरूप हैं। सभी सरस्वती हैं। सभी गङ्गा हैं, सभी समुद्र में पहुंचती हैं, सभी विश्वजननी हैं, और सभी पापों को हरण करने वाली हैं। इन्हीं के अतिरिक्त मौरल, वनाश, वाणगङ्गा और चारी आदि और भी छोटी २ हजारों नदियें हैं जिन्हों में कितनीक तो फक्त वर्षाकाल में ही बहती हैं और कितनीक सदाकाल ही बहती रहती हैं ॥ ७५-७८ ॥

मत्स्याः कुमुदमाल्याश्च, क्रतुलाः काशिकौशलाः । मीना शौरीमुद्गलाश्च, मेवाश्च
कुरुजांगलाः ॥ ७९ ॥ आन्ध्रकाश्च कलिंगाश्च, मशकाश्च वृकैः सह । मध्यदेशा जनपदाः,
प्रायशोमी प्रकीर्तिताः ॥ ८० ॥ सह्यस्य चोत्तरेयस्तु, यत्र गोदावरी नदी । पृथिव्यमपिकृ-
त्स्नायां, सप्रदेशो मनोरमः ॥ ८१ ॥ गोवर्धनपुरं रम्यं, भार्गवस्य महात्मनः । मीनदेशे
समाख्यातं, धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥ ८२ ॥

भा० टी०—मत्स्यदेश, कुमुददेश, माल्यदेश, क्रतुलदेश, काशीदेश, कौशलदेश, मीनदेश, एवं शौरी मुद्गल, मेव, कुरु, जांगल, आन्ध्र, कलिंग, मशक, वृक आदि इस भारतभूमि में मध्यदेश कहाते हैं। सह्याद्रि पर्वत से उत्तर जहां गोदावरी नदी है वहीं से प्रारम्भ करके यह देश सम्पूर्ण प्रथ्वी पर मनोरम है। भृगुजी की सन्तान महात्मा धन्वी मारण क्षत्रियों का रमणीय एवं धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष को देने वाला गोवर्धन पुर मीनदेश में कहा गया है ॥ ७९-८२ ॥

किंकरा मीनभूपस्य, सर्वेजानपदास्त्वमी । वाहीकाराट धानाश्च, सुतीराकालतोयदाः
॥ ८३ ॥ अपरान्ताश्च शूद्राश्च' वाह्लिकाश्च सकेरलाः । गान्धारा यवनाश्चैव, सिंधुसौवीर

मद्रकाः ॥ ८४ ॥ शतद्रुहाः कलिंगश्च, पारदाहारि भूपिकाः । मराठाश्चैव कनकाः, कैकेया दम्भमालिकाः ॥ ८५ ॥ चत्रियोपम देशाश्च, वैश्यशूद्रकुलानि च । कम्बोजाश्चैव विप्रेन्द्रा, बर्बराश्च सलौकिकाः ॥ ८६ ॥ वीराश्चैव तुषाराश्च, पह्नवा धायता नराः । आत्रेयाश्च भरद्वाजाः, पुष्कलाश्च दशेरकाः ॥ ८७ ॥ लम्पका शुनशोकाश्च, कुलिका जांगलैः सह । औषध्यश्चलचन्द्राश्च, किरातानाश्च जातयः ॥ ८८ ॥ तामरा हंसमार्गाश्च, काश्मीराः करुणास्तथा । शूलिकाः कुहकाश्चैव, मगधा नैपालास्तथा ॥ ८९ ॥ एते देशा उदीच्यास्तु, प्राच्यान्देशान्निबोधत । अन्धावामंकुराश्च, वहलकाश्च मखान्तकाः ॥ ९० ॥ तथापरेंगा वंगाश्च, मलदा मालवर्त्तिका । भद्रतुङ्गा प्रतिजया, भार्यांगाश्चापमर्दका ॥ ९१ ॥ प्राग्ज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः । मल्लामगधकानंदाः प्राच्या जन पदास्तथा ॥ ९२ ॥ अथापरेजन पदा दक्षिणपथवासिनः । पूर्णाश्च के वलाश्चैव गोलांगूलास्तथैवच ॥ ९३ ॥ ऋषि का मुषिकाश्चैव कुमारारामठाः शकाः । महाराष्ट्रा माहिषकाः कलिंगाश्चैव सर्वशः ॥ ९४ ॥ आभीराः सहवैशिक्या अटव्याः सरवाश्चये । पुलिंदाश्चैव मौलेयावैदर्भा दंडकैः सह ॥ ९५ ॥ पौलिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोज वर्धनाः । कौलिकाः कुन्तलाश्चैव दंभकानील कालकाः ॥ ९६ ॥ दाक्षिणात्यास्त्वमो देशा ह्यपरान्तान्नि बोधत । शूर्पारिकाः कालिधना लालास्ताल कटैः सह ॥ ९७ ॥ इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणुध्वंविन्ध्यवासिनः । मलजाः कर्कशाश्चैव मेलकाश्चोलकैः सह ॥ ९८ ॥ उत्तमार्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह । तोषलाः काशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ॥ ९९ ॥ तुम्बुरास्तुचराश्चैव यवनाः पवनैः सह । अभयारुंडिकेणश्च चर्चराहोत्र धर्तयः ॥ १०० ॥ एतेजनपदाः सर्वे तत्र विन्ध्यनिवासिनः । अतोदेशान्प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्चये ॥ १०१ ॥ निहारास्तुप मार्गाश्च कुरवस्तुंगणाः खसाः । कर्ण प्रावरणाश्चैव ऊर्णा दीर्घाः सकुंचकाः ॥ १०२ ॥ चित्रमार्गा मालवाश्च किरातास्तोमरैः सह । कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युग कृतोविधिः ॥ १०३ ॥ एवंतुभारतंवर्षंनव संस्थान संस्थितम् । दक्षिणेपरतोयस्य पूर्वे चैव महोदधिः ॥ १०४ ॥ हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथा गुणः । तदेतद्भारतं वर्षं सर्व बीजं द्विजोत्तमाः ॥ १०५ ॥ ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वंमरुतां तथा । मृग यक्षाप्सरोयोनिं तद्वत्सर्प सरीसृपाः ॥ १०६ ॥

स्थावराणांच सर्वेषामितोविप्राः शुभा शुभैः । प्रायान्ति कर्म भूर्विप्रानान्यालोकेषु विद्यते ॥ १०७ ॥

भा० टी०—पहिले कहे हुए तथा निम्न लिखित सभी देश मीन देश रूपी भूपाल के किंकर (दास) रूप माने जाते हैं यथा वाह्निक देश, राट देश, धान देश एवं सुतीर, काल तोयद, अपरान्त, शूद्र, वाल्हिक, केरल, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शतद्रु, कलिंग, पारद, हरि भूषिक, माठर, कनक, कै केय, दंभ, मालिक, और चत्रियों के समान देश, वैश्य और शूद्रों के कुल जिन देशों में रहते हैं वे सब मीन देश की ही आशा करते हैं। तथा काम्बोज देश, निवासी बर्बर, लोकिक, धीर, तुषार, पल्हव, धायत, आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, दशेरक, लंपक, शुनक, शोक, कुलिक, जांगल, औषध, चल, चन्द्र, और किरात जाति के लोक जिन २ देशों में रहते हैं वे सब मीन देश से ही पलते हैं। तथा तोमर देश, हंस, मार्ग, काश्मीर, करुण, शूलिक, कुहक, मगध, नैपाल, आदि ये सब मीन देश से उत्तर की तरफ के देश हैं। अब मीन देश से पूर्व की ओर के देशों को कहते हैं। अन्ध, वांम, कुर, वल्लक, मख अन्तक, अंग, बंग, मलद, माल, वत्तिक, भद्र, तुंग, प्रतिजय, भार्यांग, चाप, मर्दक प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्त, मल्ल, मगध, नंद, इत्यादि। अब दक्षिण दिशी के देशों को कहते हैं पूर्ण. केवल, गोवा, लांगुल, ऋषिक मुषिक, कुमार, रामठ, शक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग, आभीर, वैशिक अटव्य, सरव, पुलिंद, मौलेय, वैदर्भ, दंड कपौलिक, मौलिक, अश्मक, भोज वर्द्धन, कौलिक, कुन्तल, दंभक, नील, काल, इत्यादि। अब पश्चिम दिशी के देशों को कहते हैं। शुपारक, कालिधन, लोल, ताल, कट, इत्यादि अब विन्ध्याचल के उपर के देशों को कहते हैं मलज, कर्कश, मैलक, चौलक, उत्तमार्ण, दशार्ण, भोज, किष्कन्ध, तोषल, कौशल, त्रैपुर, वैदिश, तुम्बुर, तुचर, यवन, पवन, अभय, रुंढि, केर, चर्चर, होत्र, धर्त्तत्री, इत्यादि, अब पार्वतीय देशों को कहते हैं निहार, तुष, मार्ग, कुरु तुंगण, खस, कर्ण-प्रावर्ण, ऊर्ण, दीर्घ, कुंचक, चित्र मार्ग मालव किरात, तौमर, आदि इन सभी देशों में कृतत्रेता आदि चारों युगों की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार सारा भारतवर्ष नव भागों में विभाजित हैं। दक्षिण, पश्चिम और पूर्व में इसके बड़ा लवण समुद्र रहा हुआ है। और हिमवान पर्वत इसके उत्तर प्रदेश में स्थित है। चढ़ाये हुए धनुष्य का जो आकार होता है वही संस्थान भारतवर्ष का है। हे द्विजों! यह भारत वर्ष ही सर्व सृष्टि और मनुष्य जातिमात्र का बीज (मूल स्थान) है। तथा ब्रह्मत्व अमरेशत्व और देवत्व आदि का मूल कारण भी यह भारत वर्ष ही है। वायु देवता, मृग, यक्ष, अप्सरा आदिकों की शुभ योनी का प्रधान कारण भी भारत वर्ष ही है। वैसे ही सर्प और टेढ़ा चलने वाले बिच्छु आदि तथा सर्व स्थावर प्राणियों के भी शुभाशुभ कर्म उपार्जन इसी भारत भूमि में होते हैं। कर्मों के उपार्जन करणे का दूसरे किसी लोक में साधन नहीं है ॥ ८३-१०७ ॥

देवा नामपिभोविप्राः सदैवैष मनोरथः । भारतभवमाप्स्यामो देवत्वात्प्रच्युताः

क्षितौ ॥ १०८ ॥ मानुष्यं कुरुतेयत्तु तन्नशक्यंसुरासुरैः । तत्कर्म निरतैस्तैस्तु तत्कर्म क्षपणो-
न्मुखैः ॥ १०९ ॥ न भारतसमंवर्षं पृथिव्यामस्ति भोद्विजाः । यत्रविप्रादयोवर्णाः प्राप्नु-
वन्त्यभिवांछितम् ॥ ११० ॥ धन्यास्ते भारतेवर्षे जायन्ते मारणोत्तमाः । धर्मार्थ काम
मोक्षाणां प्रान्पुवन्ति महाफलम् ॥ १११ ॥ प्राप्यतेयत्रतपसः फलंपरमदुर्लभम् । सर्व दान
फलंचैव सर्वयज्ञफलं तथा ॥ ११२ ॥ तीर्थ यात्रा फलं सम्यग्गुरु सेवा फलं तथा । देवता
राधानंमी नगार्हं स्थ्येचैवयत्फलम् ॥ ११३ ॥

भा० टी०—अये ब्राह्मणों ! स्वर्ग निवासी देवताओं का भी सदैव यही मनोरथ रहता है कि कब हम यहां सेच्युत होकर भारत भूमि में मनुष्य भव प्राप्त करें। मनुष्यों के द्वारा जो २ कर्म किये और खपाये जाते हैं वे २ कर्म उन्हीं २ कर्मों में निरत और क्षपणोन्मुख सुरा सुरों से भी नहीं किये जा सकते। हे द्विजो ! भारतवर्ष के समान दूसरा वर्ष पृथवी पर कहीं नहीं है। क्योंकि ब्राह्मणादि वर्ण इसी भारत भूमि में अभीष्ट फल पाते हैं। सर्वोत्तम मारण जाति के अन्दर इस भारत वर्ष में जन्म पाते हैं वे धन्य हैं, क्योंकि धर्म अर्थ काम और मोक्ष के महान्फल को वही पाते हैं। इस भारतवर्ष में ही परम दुर्लभ तप, सर्व दान, सर्व यज्ञ, सर्व तीर्थ यात्रा, और सम्यक् गुरु सेवा, तथा भगवान मीन आदि देवताओं की आराधानाओं का पूर्ण फल गृहस्थाश्रम में ही मिल जाते हैं ॥ १०८–१३ ॥

यत्रदेवा सदाहृष्टा जन्म वांच्छंति मारणम् । नाना व्रतफलंचैव नाना शास्त्रफलं
तथा ॥ ११४ ॥ अहिंसादिफलं सम्यक् फलं सर्वाभि वांच्छितम् । ब्रह्मचर्य फलंचैव स्वाध्या-
येनचयत्फलम् ॥ ११५ ॥ यत्फलं वनवासे न संन्यासेनच यत्फलम् । इष्टापूर्तफलंचैव तथा
न्यच्छुभ कर्मणाम् ॥ ११६ ॥ प्राप्यते भारतेवर्षे न चान्यत्रद्विजोत्तमाः । कः शक्नोति
गुणान्वक्तुं भारतस्या खिलान्द्विजाः ॥ ११७ ॥

भा० टी०—सभी देव प्रसन्न होकर जहां मारण जाति में सदैव जन्म लेना चाहते हैं और नाना प्रकार के व्रतों के करण से जो फल होता है एवं नाना प्रकार के शास्त्र सुनने से, तथा अहिंसादि सम्यक् यम नियमों के सेवन करने से, ब्रह्मचर्य के पालने से, स्वाध्याय के करने से जो मनो वांच्छित फल मिलते हैं वे सब भारत वर्ष की ही कृपा का फल है। जो फल वन बास के सेवन करने पर मिलता है, और जो फल संन्यास ग्रहण करने पर मिलता है एवं इष्टापूर्त से जो फल होता है तथा और शुभ कर्मों के करने से जो २ फल मिलते हैं वे सब भारतवर्ष में ही प्राप्त होते हैं। हे द्विजोत्तमो ! भारतवर्ष से अन्यत्र कर्मोपार्जन करने के लिये दूसरी भूमि कहीं नहीं है। भारतवर्ष के अखिल गुणों का वर्णन कौन कर सकता है ॥ ११४–१७ ॥

वर्षेषुभारतं श्रेष्ठं देशेषुमीन संज्ञकम् । मारणं सर्वज्ञातिषु प्रवदन्ति विचक्षणाः ॥ ११८ ॥ विष्णोर्मीना व तारस्य वंशजामीन क्षत्रियाः । वसन्ति भारतेयत्रतमाहुर्देश मीनकम् ॥ ११९ ॥ द्वात्रिंशत् सहस्राणि मारणानामशेषतः । गोत्राणि भारतेविप्राः पृथग्देशविधानतः ॥ १२० ॥ एवं सम्यग्मया प्रोक्तं वर्षभारत मुत्तमम् । सर्व पापहरं पुण्यंधन्यं बुद्धिविवर्द्धनम् ॥ १२१ ॥ यइदंश्रृणुया न्नित्यं जपे द्वानियते न्द्रियः । सर्व पापैर्विनिर्मुक्तो विष्णु लोकंसगच्छति ॥ १२२ ॥ इति श्रीमीनपुराणे द्वि० स्कं० चतुर्विंशो अध्यायः ॥२४॥

भा० टी०—सर्व वर्षों में भारतवर्ष श्रेष्ठ है एवं सब देशों में मीन (मत्स्य) देश और पंडित लोग सब जातियों में मारण जाति को उत्तम कहते हैं। भारतवर्ष के बीच में जहां विष्णु के अवतार भगवान्मीन के वंश जमीन क्षत्रिय लोग रहते हैं पूर्वाचार्य उसी देश को मीन देश कहते हैं। हे विप्रो ! भारत में अलग २ देशों को निर्माण करने के कारण समस्त मारण क्षत्रियों के बतीस हजार गौत्र (एकैक जाति समुह) होते हैं। इस प्रकार सर्व पापों को हरने वाला और उत्तम पुण्य धन्य एवं बुद्धि को बढ़ाने वाला यह भारत वर्ष का सम्यक् माहात्म्य मैंने तुम लोगों से कह दिया। जो कोई मनुष्य प्रमाद रहित होकर नित्य इस अध्याय को पढ़ता है, सुनता है, और जाप करता है वह सर्व पापों से मुक्त होकर अवश्य ही विष्णु लोक को पाता है ॥ ११८-२ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवन्मीनपुराणे द्वितीय स्कंधे चतुर्विंशतितमो अध्याय समाप्तः ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशो ऽध्याय प्रा० युगपरावर्णन । (सूत उवाच:) भरणात्प्रजनाच्चैव मनुर्भरत उच्यते। निरुक्त वचनाच्चैव। वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ॥ १ ॥ उत्तरंयत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। वर्षं तद्भारतं नाम भारतीयत्र सन्ततिः ॥ २ ॥ नवयोजन साहस्रो विस्तारोस्य महामुने । स्थानोयं मीन ज्ञाती नामादौध्रव निवासी नोम् ॥ ३ ॥ युगाख्या या समुद्दिष्टा प्रागे स्मिन्मयानघाः। कृतत्रेतादिसंयुक्तं चतुर्युगमिति स्मृतम् ॥ ४ ॥ तच्चैक सप्ततिगुणं परिवृत्तंतुसाधिकम्। मनोरेकमधीकारं प्रोवाच भगवान्मनुः ॥ ५ ॥ एवं मन्वन्तराणांच सर्वेषामेवलक्षणम्। अतीतानागतानांवै भारतेपरिकीर्तितम् ॥ ६ ॥ इत्येष कीर्त्तितः सर्गो मनोः स्वायं भुवस्यते। तत्र त्रेतायुगेक्षणे द्वापरं प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥ द्वापरादौ प्रजानांतुसिद्धिस्त्रेतायुगेतु या। परिवृत्तेयुगेतस्मिंस्ततः सावै प्रणस्यति ॥ ८ ॥ लोभोधृतिर्वणिग्युद्धं-

तत्त्वा नाम विनिश्चयः । प्रध्वंसश्चैवर्णानां कर्म्भणांतु विपर्ययः ॥ ९ ॥ यात्रावधः परो-
दण्डो मानोदर्योंक्षमा बलम् । तथा रजस्तमा भूयः प्रवृत्ते द्वापरे पुनः ॥ १० ॥ आद्ये कृते-
नाधर्मोंस्नि सत्रेतायां प्रवर्तितः । द्वापरेव्याकुलो धर्मः प्रणस्यति कलौपुनः ॥ ११ ॥ इन्द्रा-
दयस्तु ये देवाः ध्रुवेमारण ज्ञातयः । सर्वे यज्ञः पराजाताः क्षत्रियाकाल दोषतः ॥ १२ ॥

भा० टी०—अब पच्चीश वाँ अध्याय सुरु होता है, इसमें युग परावर्त्तन अधिकार है। सूतजी बोले प्रजा की उत्पत्ती और उसका पालन पौषण करणे के कारण भगवान्स्वायं भूवमनुजी को भरत भी कहते हैं, इस निरुक्ति वचन से यह खंड भारतवर्ष कहाता है। अर्थात् समुद्र से उत्तर और हिमाद्रि से दक्षिण इस वर्ष को भारत नाम से पुकारा जाता है क्योंकि यहाँ के आदि-मनिवासि लोक भरत (मनु) की संतान हैं। हे महामुने नव हजार योजन में विस्तार वाला यह भारतवर्ष ही प्रथम 'ध्रुव लोक' निवासी मीनज्ञाति के लोगों का आदि स्थान है अर्थात् सबसे पहिले मीना लोग ही यहां आकर बसे। युगों की व्याख्या पहिले मैंने इसी पुराण में की है, कृतत्रेतादि चारों युगों का संयुक्त एक नाम चतुर्युगी कहाता है। ऐसो कुछ अधिक एक सित्तर चतुर्युगी का एक मन्वन्तर काल कहा जाता है। भारतवर्ष में अतीत अनागत सभी मन्वन्तरों का यही लक्षण है। यह मैंने स्वायं भुव भगवान्मनु का सर्ग वर्णन किया। इसमें कृतयुग के बाद त्रेता और त्रेतायुग के क्षीण होने पर द्वापर युग सुरु होता है। द्वापर के आदि में प्रजाओं के सब सिद्धियां त्रेतायुग के ही समान होती हैं जैसे २ द्वापर युग कुछ २ अधिक जाने लगता है त्यों २ सर्व सिद्धियां नष्ट होती ही जाती है। लोभ, अधृति, वणिक् कौम, युद्ध, सत्य एवं सार बातों का अनिश्चय, वर्ण व्यवस्था का ध्वंस, आदि बढ़ते ही जाते हैं। तथा तीर्थों की यात्रा, यज्ञादि में पशुओं का वध, अधिक दंड, मान, दर्प (अहंकार) अक्षमा, कमजोरी, रजोगुण, तमोगुण आदि प्रति दिन बढ़ने लगते हैं। आदि कृतयुग में जो अधर्म माना जाता था वही त्रेतायुग में धर्म के नाम से प्रवृत्त होता है। द्वापयुग में धर्म व्याकुल होकर कलियुग में नष्ट होजाता है। ध्रुव लोक में रहने वाले इन्द्रादि मारण ज्ञाति के देव और क्षत्रियगण काल दोष से अश्वमेध यज्ञ के नाम पर पशु हत्यादि घोर अकृत्य करने लग जाते हैं ॥ १-१२ ॥

स्वायंभवान्तरे पूर्वमिन्द्रोविश्वांजदाह्वयः । आररम्भे महायज्ञमश्वमेधाभिधं मुने
॥ १३ ॥ निवद्धाः पशुवोजाद्याः, क्रोशन्तस्तत्रभूरिशः । सर्वे देवगणाश्चापि, रसलुब्धास्तदा-
सत ॥ १४ ॥ क्षेमायसर्वलोकानां, विचरन्तो यदृच्छया । महर्षय उपाजग्मुस्तत्र भास्करव-
र्चसः ॥ १५ ॥ सम्मानिता सुरगणैः, पाद्याद्यस्वागतादिभः । ते बृहन्मुनयोपश्यन्मेध्यां-
स्तान्क्रोशतः शशून् ॥ १६ ॥ सात्विकानग्मांश्चतं, देवानां यज्ञविस्तरम् । हिंसामयं समा-
लोक्य, तेत्याश्चर्यंहि लेभिरे ॥ १७ ॥ धमव्यतिक्रमं दृष्ट्वा, कृपया ते द्विजोत्तमाः । महेन्द्रप्रमु

ग्वानूचुर्देवान्धर्मधियस्ततः ॥ १८ ॥ (महर्षय ऊचुः) देवैश्च ऋषिभिः साकं, महेन्द्रास्मद्वचः शृणु । यथास्थितं धर्मतत्वं, वदामोहि सनातनम् ॥ १९ ॥ यूयं जगत्सर्वकाले, ब्रह्मणापरमेष्ठिना । सत्त्वेन निर्मिताःस्थावै, चतुश्पाद्धर्म धारकाः ॥ २० ॥ रजसातमसाचासौ, मनूंश्चैव नराधिपान् । असुराणांचाधिपतीन् , सृजद्धर्मधारणाः ॥ २१ ॥ सर्वेषामथयुष्माकं, यज्ञादिविधि बोधकम् । ससर्जश्रेय संवेदं सर्वाभिष्टफलप्रदम् ॥ २२ ॥ अहिंसैव पराधर्मस्तत्रवेदेस्ति कीर्तितः । साक्षात्पशूवधोयज्ञे नहिवेदस्य संमतः ॥ २३ ॥ चतुष्पादस्य धर्मस्य, स्थापनेह्येव सर्वथा । तात्पर्यमस्तिवेदस्य, नतु नाशेस्यहिंसया ॥ २४ ॥ रजस्तमोदोषवशात्तथाप्यसुरया नृपाः । मेध्येनाजेन यष्टव्य, मित्यादौ मतिजाड्यतः । छागादिमर्थंबुबुधु, र्व्रीह्यादिंतु नतेविदुः ॥ २५ ॥ सात्त्विकानांतु युष्माकं, वेदस्यार्थो यथास्थितः । प्राहितव्योन्यथानैव, तादृशी च क्रियाचिता ॥ २६ ॥ यदृशोहि गुणोयस्य, स्वभावस्तस्य तादृशः । स्व स्वभावानुसारेण, प्रवृत्तिः स्याच्चकर्मणि ॥ २७ ॥ सात्त्विकानां हि वो देवः, साक्षाद्विष्णुरमापतिः । अहिंस्रयज्ञेस्तितताधिकारस्तस्य तुष्टये ॥ २८ ॥ प्रत्यक्षपशुमालभ्य, यज्ञस्याचरणंतु यत् । धर्मः सविपरीतावै, युष्माकं मारणात्म (?)कः ॥ २९ ॥ रजस्तमगुणवशादासुरीं सम्पदं श्रिताः । युष्माकं याजकाह्यते, सन्त्यवेदविदोयथा ॥ ३० ॥ तत्संगादेव युष्माकं, साम्प्रतं व्यत्ययो मतेः । जातस्तेनेदृशं कर्म, प्रारब्धमिति निश्चितम् ॥ ३१ ॥ राजसानां तामसानामासुराणां तथा नृणां । यथागुणं भैरवाद्या, उपास्याः सन्ति देवताः ॥ ३२ ॥ स्वगुणानुगुणात्मीय, देवता तुष्टये भुवि । हिंस्रयज्ञविधानं यत्तेषामेवोचितं हि तत् ॥ ३३ ॥ तत्रापि मांसभक्ता ये, दैत्यरक्षो नरादयः । तेषामप्युचितो नास्ति, हिंस्रयज्ञः कुतस्तुवः ॥ ३४ ॥ यज्ञशेषोहि सर्वेषां, यज्ञकर्मानुतिष्ठताम् । अनुज्ञातो भक्षणार्थं, निगमेनैव वर्तते ॥ ३५ ॥ सात्त्विकानां देवानां, सुरामांसाशनं क्वचित् । अस्माभिस्तत्रोचितं नैव, न श्रुतं च सतां मुखात् ॥ ३६ ॥ तस्माद् व्रीहिभिरेवासौ, यज्ञः क्षीरेणसर्पिषा । मेध्यैरन्नरसैश्चान्यैः, कार्यो न पशु हिंसया ॥ ३७ ॥

भा० टी०—हे मुने पूर्व स्वायं भुवमन्वन्तर में विश्वजित् नामक इन्द्र (राजा) होता भया, जिसने द्वापर युग के बीच अश्वमेध नामक महायज्ञ प्रारंभ किया था । उस इन्द्र ने उस यज्ञ में रोते हुए बकरे आदि बहुत से पशु बान्ध रक्खे थे, और रस लुब्ध सबही देवगण उस यज्ञ में भाग लेने के लिये आये हुये थे । उस समय सर्व लोगों के कल्याणार्थ सूर्य के समान तेजस्वी बहुत से महर्षि लोक में

विचरते हुए उसी यज्ञस्थल पर आगये। अर्घ्यपाद, और स्वागतादि के द्वारा सुरगणोंने उन मुनीश्वरों का बड़ा सन्मान किया, उस समय वे बड़े २ मुनिलोग, रोते और पुकारते हुए उन पशुओं को देखते हुए। और सात्विक होने पर भी उन देवों का हिंसामयी यज्ञ देख कर वे ऋषिलोक अतिशय खेद और आश्चर्य पाते हुए। धर्म को अधर्म मे परिणित देख कर दयालु वे ब्राह्मण लोग धर्म की वृद्धि से महेन्द्र प्रमुख देवों से यों बोले। ऋषियों ने कहा कि देव और ऋषियों के सहित हे महेन्द्र! तुम हमारे वचन सुनो! हम यथास्थित सनातन धर्म का सार (स्वरूप) कहते हैं। जगत्के उत्पत्ति काल में परमेष्ठी ब्रह्मा ने तुम लोगों को सतोगुणी परमाणुओं से उत्पन्न किया था, अतएव तुम लोग ही चार प्रकार के धर्म को धारण कर सकते हो। तथा रजोगुणी और तमोगुणी पदार्थों से ब्रमा ने धर्म के धारण करने वाले मनु राजाओं और असुरों के अधिपतियों को उत्पन्न किया था। और तुम लोगों को मुक्ति एवं कल्याण के निमित्त ही यज्ञादि की सम्यग्विधि को बताने वाले, अभीष्ट फलदाई, चारों वेदों को ब्रह्माजी ने रचे थे। अहिंसा ही परम धर्म है, इसीही का वेदों में कीर्तन किया गया है, इसके विपरीत तुम्हारे यज्ञ में साक्षात् पशुओं का वध होता है, जो कि वेदों के असंमत है। सर्वथा वेदों का तात्पर्य, चतुष्पाद धर्म का स्थापन करना ही है, किन्तु हिंसा के द्वारा धर्म का नाश करने का नहीं है। आसुरी संपत् का धारण करने वाले कितनेक ही राजा लोक, रजोगुण और तमोगुण के आधीन होकर कहते हैं कि यज्ञ के लिये उपकारी छाग-कावच करके होंम करना चाहिये, इत्यादि यह उन्हों की अज्ञानता है। क्योंकि वे लोक अज शब्द का छाग अर्थ तो करते हैं किन्तु ब्रीहि आदि असली अर्थों को नहीं जानते। आप सात्विक लोग हैं अतएव वेद का तथास्थित न जायते इति अज, अर्थ ही ग्रहण करना चाहिये, किन्तु बकरादि रूढि अर्थ नहीं। क्योंकि समान शब्द देख कर यज्ञ में अज शब्द से पशुओं के होम करने की क्रिया अनुचित है। जैसा जिसका उपादान गुण हों, स्वभाव भी उसका उसीके अनुसार होना चाहिये। क्योंकि अपने स्वभावानुसार ही कर्मों में प्रवृत्ति होती है। आप सात्विक लोगों का देव भी साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु (मीन) ही है, अतएव उनकी संतुष्टि के लिये अहिंसक यज्ञों में ही आप लोगों का अधिकार है। हे सारगोत्तमो! पशुओं का वध करके आप लोगों का यह जो यज्ञाचरण है, सो धर्म से प्रत्यक्ष विपरीत है। और जो रजो तथा तमोगुण के वसवर्त्ति एवं आसुरी संपद् को प्राप्त हुए आपके ये याजक (ब्राह्मण) लोग है सो नितान्त वेद के अज्ञाता है। निश्चय होता है कि इन्हीं लोगों के संग दोष से इस समय तुम लोग मतिभ्रम होकर ऐसे २ कर्म कर रहे हो। परन्तु कुछ विचार तो करो कि रजोगुणी, तमोगुणी, एव आसुरी संपत् वाले मनुष्यों के तो उपास्य देवता वैसे ही भैरव आदि होते हैं, अतएव उन्हीं का यह कर्म है, सतोगुणीयों का नहीं। क्यों कि मनुष्य अपने ही गुणानुसार गुणों को धारण करने वाले देवांको ही पसन्द करता है और उन्हीं की तुष्टी के लिये पृथ्वी पर हिंसामयी यज्ञ करता है। रजोगुण और तमोगुण को धारण करने वालों में भी जो दैत्य, राक्षस, और मनुष्यादि भगवान्मीन (विष्णु) के भक्त हैं, उन्हों को भी हिंसामयि यज्ञ उचित नहीं हैं। तो फिर सतोगुणी आप देवों को, कैसे हो सकता है। फिर कितनेक ही लोग कहा करते हैं कि यज्ञ में शेष बचे हुए मांस आदि पदार्थों

को ब्राह्मण आदि यज्ञ कर्मानुष्ठान करने वाले सभी लोग खा सकते हैं । यह कथन भी उन लोगों का असत्य है। क्योंकि मांस भक्षण करने की आज्ञा वेद की शाखाओं में कहीं नहीं है। सात्विक देवों के लिये शराब का पीना और मांस का खाना शास्त्र में न तो हमने कहीं देखा और न किसी सज्जन के मुख से सुना है। अतएव नहीं उगने वाले (पुराणे) व्रीहि (चाँवल) जौ, तिल, दुग्ध, घृत, आदि और भी भक्ष्यएवं शुद्ध अन्न आदि से यज्ञ करना चाहिये किन्तु पशुओं की हिंसा करके यज्ञ करना उचित नहीं है ॥ १३-३७ ॥

तत्रापि बीजैर्यष्टव्य, मजसंज्ञामुपागतैः। त्रिवर्षकालमुषितैर्न्नयेषां पुनरुद्गमः ॥ ३८ ॥ अद्रोहश्चाप्यलोभश्च, दमोभूतदयातपः। ब्रह्मचर्यं तथासत्यमदम्भश्च क्षमाधृतिः ॥ ३९ ॥ सनातनस्य धर्मस्य, रूपमेतदुदीरितम्। तदतिक्रम्य यो वर्तेद्धर्मध्नः सपतत्यधः ॥ ४० ॥ (व्यास उवाच) इत्थं वेदरहस्यज्ञैर्महामुनिभिरादरात्। बोधितापि सन्नोत्या, स्व प्रतीज्ञाविघा-ततः। तद्वाक्यं जगृहुर्नैव, तत्प्रामाण्यविदोपिते ॥ ४१ ॥ महद्व्यतिक्रमाचर्हि, मानक्रोध-मदादयः। विविशुस्तेस्वधर्मस्य, वंश्याश्छिद्र गवेषिणः ॥ ४२ ॥ अजश्छागो न बीजानी-त्यादिवादिषु तेष्वथ। विमनस्स्वृषिवर्येषु, पुनस्तान्बोधयत्सुच ॥ ४३ ॥ राजोपरिचरः श्रीमां स्तत्रैवागाद्यदृच्छया। तेजसा द्योतयन्नाशा, इन्द्रस्य परमः सखा ॥ ४४ ॥ तं दृष्ट्वा सहसा-यान्तं, वसुन्तेत्वन्तरिक्षगम्। ऊचुर्द्विजातयोदेवानेऽच्छेत्स्यति संशयम् ॥ ४५ ॥ एषभूमि-पतिः पूर्वं, महायज्ञान्सहस्रशः। चक्रेसात्वत तन्त्रोक्तविधिनारण्यकेनच ॥ ४६ ॥ येषुसाक्षा-त्पशुवधः, कस्मिंश्चिदपि नाभवत्। न दक्षिणानुकल्पश्च, न प्रत्यक्षसुरार्चनम् ॥ ४७ ॥ अहिं-साधर्मरक्षाभ्यां, ख्यातोसौ सर्वतो नृपः। अग्रणीर्विष्णुभक्तानामेकपत्नी महाव्रतः ॥ ४८ ॥ ईदृशोधार्मिकवरः, सत्यसन्धश्च वेदवित्। कथञ्चिन्नान्यथाब्रूयाद्वाक्यमेषमहान्वसुः ॥ ४९ ॥ एवं ते संविदं कृत्वा, विबुधा ऋषयस्तथा। अपृच्छन्सहसाभ्यत्य, वसुं राजानमुत्सुकाः ॥ ५० ॥ (देवमहर्षय ऊचुः) भोराजन्केन यष्टव्यं, पशुनाहोस्विदौषधैः। एतं नः संशयं छिन्धि प्रमाणं नो भवान्मतः ॥ ५१ ॥ सतान्कृताञ्जलिर्भूत्वा, परिपप्रच्छनैवसुः। कस्य वः कोमतः पक्षो ब्रूतसत्य समाहिताः ॥ ५२ ॥ (महर्षयऊचुः) धान्यै यष्टव्यमित्येव, पक्षोस्मा-कं नराधिप। देवानां तु पशुः पक्षो, मतं राजन्वदात्मनः ॥ ५३ ॥ (व्यासउवाच) देवानां तु मतं ज्ञात्वा, वसुस्तत्पक्ष संश्रयात्। छागादि पशुनैवेज्यमित्युवाच वचस्तदा ॥ ५४ ॥

एवं हि मानिनां पक्षमसन्तं स उपाश्रितः। धर्मज्ञोप्यवदन्मिथ्या वेदंहिंसा परं नृपः ॥ ५५ ॥
तस्मिन्नेवक्षणेराजा, वाग्दोषादन्तरिक्षतः। अधःपपात सहसा, भूमिं च प्रविवेशसः ॥ ५६ ॥
महतीं विपदं प्रापः, भूमिं मध्यगतो नृपः। स्मृतिरवैनं न प्रजहौ, तदानारायणाश्रयात्
॥ ५७ ॥ मोचयित्वा पशून्सर्वांस्ततस्तेत्रिदिवौकसः। हिसाभीता दिवं जग्मुः, स्वाश्रमांश्च
महर्षयः ॥ ५८ ॥

भा० टी०—उनों में भी तीन वर्ष के पुराणें उन बीजों का होम करना चाहिये जो कि नहीं उगने के कारण पूर्ण अजसंज्ञा को प्राप्त हो चुके हों। अद्रोह, अलोभ, दम, जीवदया, तप, ब्रह्मचर्य, तथा सत्य, अदंभ, क्षमा, और धृति ये दश सनातन धर्म के रूप (तत्त्व-स्वरूप) हैं इन्हों का अतिक्रम (उलंघन) करके जो हिंसादि कर्मों में वर्त्तता है, वह धर्म घातक नीचे गिरता है। व्यासजी कहते हैं कि इस प्रकार धर्म व वेदों के रहस्य को जान्ने वाले महामुनियों के सन्नी तिसे बड़े आदर के साथ समझाने पर भी वे लोग न समझे, और अपने पक्ष की पुष्टी में किसी भी शास्त्र के प्रमाण को नहीं जान्ने वाले वे लोक. अपनी प्रतिज्ञा का विघात होगा, इसी ही कारण मुनियों के वचनों को ग्रहण नहीं करते हुए। महर्षियों के वचन एवं धर्म के व्यति क्रम होने पर उन लोगों के हृदय में छिद्रगवेषि एवं अधर्म के वंशज, मान, क्रोध, मद आदि शत्रु प्रवेश करते हुए। और वे लोग बोले कि अजशब्द का अर्थ बकरा ही होता है, बीज नहीं, इत्यादि उन लोगों की बातें सुनकर उदासी न हुए मुनिजन फिर भी उन्हों को प्रति बोध देने लगे कि इतनेही में इन्द्र का परम मित्र, सत्यवादी श्रीमान् उपरिचर वसु, अपने तेज से सर्व दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ एवं वायुयान के द्वारा यदृच्छया गमन करता हुआ वहीं आगया। अकस्मात् राजा वसु को आकाश मार्ग से आते हुए देख कर ऋषि लोग प्रसन्न हुए और देवों से बोले कि यह धर्मात्मा राजा वसु तुम लोगों के संशय को अवश्य ही छेदन कर देंगे। क्योंकि विष्णु भक्त भूमिपति इस राजा वसु ने वेद और शास्त्रोक्त विधि से पहिले अनेक सहस्र सतोगुणी यज्ञ किये हैं, जिन्हों में से एक भी यज्ञ में साक्षात् पशुओं का वध नहीं हुआ था। तथा न कभी ब्राह्मणों को धन दिया गया, और न कभी मुख्य एक वस्तु के स्थान में दूसरी वस्तु की कल्पना हुई है, एवं न कभी भगवन् विष्णु को छोड़ कर दूसरे किन्हीं प्रत्यक्ष देवताओं का पूजन हुआ है। विष्णु भगवान् के भक्तों में मुख्य, एवं एक पत्नी महाव्रत को पालने वाला, यह वसु राजा, अहिंसा और धर्म रक्षा आदि गुणों के द्वारा सर्व तो विख्यात है। ऐसा धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, और सच्चा मेल करने हारा, एवं वेद का ज्ञाता यह महाराजा वसु कभी अन्यथा वाक्य नहीं कहेगा। ऐसा अंगीकार करके वे, देव, तथा ऋषि लोक, एक दम जोस में आकर बड़ी उत्सुकता से वसुराजा के पास आकर पूछते हुए। देव और महर्षि लोक बोले कि हे राजन किस वस्तु से होम करना चाहिये, पशु से या औषधि (अन्न) से, यह हम लोगों का संशय शीघ्र छेदन करो। आपका मन्तव्य हम दोनों को ही मन्जूर करना होगा। यह सुन राजा वसु ने

हाथ जोड़ कर उन लोगों से पूछा, कि आप दोनों समाजों में किसका क्या मत व पक्ष है आप स्वस्त होकर स्थिर चित से सत्य २ कहो, मैं अभी निर्णय कर दूंगा। यह सुन महर्षि लोक बोले। यज्ञ में धान्य से होम करना चाहिये हे राजन यह तो हमारा ब्राह्मणों का पक्ष है और देवों का पशु होम का पक्ष है, अब इसमें आपका क्या मत है सो कहिये। व्यासजी बोले देवों का मत जान कर इन्द्र की मित्रता के नाते राजा वसु ने उस समय देवों का पक्ष लिया और बोले कि बकरे आदि पशुओं का वध करके ही यज्ञ होम करना चाहिये किन्तु ब्रीहि आदि के बीजों से नहीं। इस प्रकार हिंसा और धर्म का स्वरूप जानते हुए भी अभिमानी राजा वसु ने अधर्म पक्ष का आश्रय लेकर मिथ्या भाषण किया। तब उसी क्षण राजा वसु अपने ही वचन दोष के कारण आकाश से अचानक नीचे गिर पडे और वह भूमि में प्रवेश कर गये। भूमि के बीच प्राप्त होने पर राजा को बड़ी तकलीफ हुई। परन्तु नारायण के चरणों का आश्रय लेने के कारण उसको पूर्व ज्ञान की स्मृति नहीं छूटी, यह देख हिंसा से डरते हुए सभी देव गण, उन सर्व छागादि पशुओं को छोड़ कर अपने २ स्थानों पर जाते हुए और महर्षि लोग भी अपने २ आश्रमों को चले गये॥ ३७-५८॥

असत्यवचनाद्विप्राः, वसुर्विख्यातमारणः। पतितोमीनधर्माद्धि, ततोऽसत्यं परित्यजेत्॥ ५९॥ मीनधर्मात्परो धर्मो, न भूतो न भविष्यति। पालयन्ति नराधन्याः, क्लीवा पाखण्डमाश्रिताः॥ ६०॥ मारणानां सूत्रपातः, पतनस्य वसोर्द्विजाः। नारायणः करिष्यति उत्थानं मीनविग्रहः॥ ६१॥

इति श्री मीनपुराणे द्वितीय स्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः समाप्तः।

→ भा० टी०—हे विप्रो। शास्त्र विरुद्ध असत्य कथन करने ही के कारण, मारण कुल विख्यात राजा उपरिचर वसु, मीन (सनातन) धर्म से भी पतित होगया, अतएव असत्य वचन सर्वथा छोड़ देना चाहिये। अहिंसात्मक मीन धर्म के समान दूसरा धर्म न तो कभी कहीं हुआ और न कभी भविष्य में होगा। इस शाश्वत धर्म को जो मनुष्य पालते हैं वे धन्यवाद के पात्र हैं और जो इस धर्म को छोड़ कर पाषंड का आश्रय लेते हैं वे क्लीव (विक्रमहीन) हैं। हे द्विजो इस प्राचीन मारण क्षत्रिय जाति के पतन का प्रथम सूत्रपात, राजा वसु से हुआ। और इसका अन्तिम उत्थान तो मीन भगवान के अंशावतार नारायण (डगनिवासी) ही करेंगे॥ ५९-६१॥

इति श्री मद्भागवन्मीनपुराणे द्वितीय स्कन्धे पञ्चविंशो अध्यायः समाप्तः॥ २५॥

अथ षड्विंशोऽध्याय प्रारम्भः। स्वायंभुव मन्वन्तरे कलियुग सन्ध्यांशेपि मीनावतारः।

सूत उवाच। तस्मान्नहिंसायज्ञश्च, प्रशंसन्ति महर्षयः। उंछोमूलं फलं शाकमुदपात्र तु तपोधनाः। दानं दत्वा विभवतः, स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः॥ १ ॥ अद्रोहश्चाप्यलोभश्च, दमो भूतदयाशमः। ब्रह्मचर्यं तपः शौचमनुक्रोशं क्षमाधृतिः। मारणानां तु धर्मस्य, मूलमेवदुरासदम्॥ २ ॥

भा० टी०—अब २६ वाँ अध्याय सुरु होता है। स्वायं भुवमन्वन्तर में कलियुग के अन्त में भी भगवान् विष्णु का मीनावतार हुआ है। यही इसमें मुख्य अधिकार है। सूतजी बोले कि असत्य का पक्षपात करने से ही मनुष्य का अधः पतन होता है। इसी कारण से महर्षि लोक हिंसा यज्ञ की प्रशंसा नहीं करते, वे लोग तो फक्त शिलोंछ, मूल, फूल, शाक, उदक, और पात्र आदि द्रव्यों के दान की ही प्रशंसा करते हैं। यज्ञ में इन शुभ द्रव्यों का यथा विभ व दान करने से ही मनुष्य स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है। दान, अद्रोह, अलोभ, दम, जीव दया, शम, ब्रह्मचर्य, तप, शौच, करुणा, क्षमा, और धृतिये बारह बातें दुर्धर्ष मारण धर्म की जड़ रूप है॥ १-२॥

द्रव्यमंत्रात्मकोयज्ञस्तपश्च समतात्मकम्। यज्ञैश्च देवानाप्नोति, वैराज्यं तपसापुनः॥ ३ ॥ ब्रह्मणः कर्म सन्यासाद्, वैराग्यात्प्रकृतेर्लयम्। ज्ञानात्प्राप्नोति कैवल्यं, पंचैता गतयः स्मृताः॥ ४ ॥

भा० टी० - द्रव्यात्मक और मन्त्रात्मक भेद से दो प्रकार के यज्ञ होते हैं, तप समतात्मक होता है। दोनों ही प्रकार के यज्ञों से मनुष्य देवपद को प्राप्त करता है और तप से साम्राज्य मिलता है। सन्यास और कर्म से मनुष्य ब्रह्मपद पाता है। वैराग्य के सेवन करने पर मनुष्य प्रकृति में लय होता है। और ज्ञान के सेवन करने से मुक्ति को पाता है, इस प्रकार मारण (सनातन) धर्म को आराधन करने वालों की पांच गति जानना चाहिये॥ ३-४॥

श्रूयन्तेहितपः सिद्धा, ब्रह्मक्षत्रादयोनृपाः। प्रियव्रतोत्तानपादौ, ध्रुवोमेधातिथिर्वसु॥ ५ ॥ सुधामाविरजाश्चैव, शंखपाद्राजसस्तथा। प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्धानादयो द्विजाः॥ ६ ॥

भा० टी०—हे द्विजो! प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव, मेधा तिथि, वसु, सुधामा, विरजा, शंखपाद, राजस, प्राचीन बर्हि, पर्जन्य, हविर्धान, आदि तथा ब्रह्मक्षत्र आदि राजा लोग तप करके ही सिद्ध हुए ऐसाहमने सुना है॥ ५-६॥

गतेषु ऋषिसंघेषु, देवायज्ञमवाप्नुयुः। यज्ञ प्रवर्त्तनं ह्येवमासीत्स्वायंभुवेन्तरे ॥ ७ ॥ सधर्माः सव्रताः सांगा, यथा धर्मं युगे युगे। विक्रियन्ते समानार्था, वेदवादा यथायुगम् ॥ ८ ॥ आरम्भयज्ञाः क्षत्राश्च, हविर्यज्ञाविशस्तथा। परिचर्यायज्ञाश्शूद्राः, जपःयज्ञा द्विजोत्तमा ॥ ९ ॥

भा० टी०—ऋषि लोगों के स्वाश्रमों में चले जाने पर, देवों ने, नवीन रीति से पशुओं का वध करके उस यज्ञ को समाप्त किया। इस प्रकार स्वायं भुवमन्वन्तर में मारण क्षत्रियों के द्वारा पशु वध यज्ञ प्रचलित हुआ, और इसी को लोगोंने धर्म का प्रधान अंग माना। युग युग में क्षत्रिय लोग धर्म को जिस २ राह लेजाते हैं वादानुवाद होकर सधर्म सव्रत और सांगोपांग वेदों का अर्थ भी युगानुसार ही किया जाता है अर्थात् धर्म, व्रत नियम, और शास्त्रों की व्याख्याएं भी दूसरे ही समान अर्थों में परिणित हो जाती है। उसी समय से क्षत्रियों का तो यज्ञ में पशु मारणे का, वैश्यों का घृत आदि से होम करने का, शूद्रों का सभी की सेवा करने का, और ब्राह्मणों का जप करने का अधिकार माना गया है ॥ ७-९ ॥

ब्राह्मणाननु वर्तन्ते, क्षत्रियाः क्षत्रियान्विशः। वैश्यानुवर्त्तिनः शूद्राः, परस्परमनुव्रताः ॥ १० ॥ इज्यादानं तपः सत्यं, त्रेतायां धर्म उच्यते। मर्यादास्थापनार्थं च, दण्डनीति प्रवर्तते ॥ ११ ॥ व्याकुलो द्वापरेष्वर्थः, क्रियते भिन्नदर्शनैः। द्वापरेसन्निवृत्ते ते, वेदा नश्यंति वैकलौ ॥ १२ ॥

भा० टी०—क्षत्रिय लोग प्रत्येक बातमें ब्राह्मणों को आगे करके वर्तते हैं। वैश्य लोग क्षत्रियों का अनुकरण करते हैं, और शूद्र लोग वैश्यों के पीछे २ चलते हैं, इस प्रकार इन्हों में परस्पर अनुवरती होती हैं। त्रेतायुग में यज्ञ, दान, तप और सत्य इन चारों को धर्म माना है और वर्णों की मर्यादा स्थापन करने के लिये दंड नीति चलाई गई है। द्वापर युग में धर्म व्याकुल (अनिश्चित) होजाता है, क्योंकि अलग २ दर्शन (मत) वाले लोग वेदों का भिन्न २ अर्थ करने लगजाते हैं। द्वापर युग का अन्त होने पर तो कलियुग में चारों वेद ही नष्ट होजाते हैं ॥ १०-१२ ॥

वाङ्मनः कर्मभिर्दुःखैं, निर्वेदोजायते ततः। निर्वेदाज्जायते तेषां, दुःखमोक्ष विचारणा ॥ १३ ॥ विचारणायां वैराग्यं, वैराग्याद्दोषदर्शनम्। दोषाणां दर्शनाच्चैव, ज्ञानोत्पत्तिस्तुजायते ॥ १४ ॥

भा० टी०—मन वाणी और शरीर के दुःखों से पीड़ित होने पर मनुष्य को पछतावा होता है, उस निर्वेद (अनुताप) होने पर दुखों से छूटने का विचार होता है, उस विचारणा से वैराग्य होता है. वैराग्य से अपने ही दोष दीखने लगते हैं और दोषों के देखने से ही मनुष्य को ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ १३-१४ ॥

हिंसासूयानृतं माया, वधश्चैव तपस्विनाम् । कलौ प्रमारकोरोगः, सततं क्षुद्भयानि च ॥ १५ ॥ नाधीयते तदावेदान्नयजंते द्विजातयः । उत्सीदन्ति नरा मीन, क्षत्रियाश्चविशः क्रमात् १६ ॥ शूद्राणामन्त्रयोनेस्तु, संबंधा ब्राह्मणैः सह । भवंतिह कलौ तस्मिन् छयनाशन-भोजनैः ॥ १७ ॥ राजानः शूद्रभूयिष्ठाः, पाखण्डानां प्रवर्त्तकाः । गुणहीनाः प्रजाश्चैव तदा वैसंप्रवर्तते ॥ १८ ॥ आयुर्मेधावलं रूपं, कुलं चैव प्रणश्यति । शूद्राश्चब्राह्मणाचाराः, शूद्राचाराश्चब्राह्मणाः ॥ १९ ॥ भूत्वा न भवंतीह, वेदाः कलियुगेखिलाः । उत्सीदन्ते हयग्रीवाः भिधेनकालिना तदा ॥ २० ॥ अजोपिसन्नव्ययात्मा, भूतानीश्वरोपि सन् । प्रकृति स्वामधिष्ठाय, सम्भवंत्यात्म मायया ॥ २१ ॥ परित्राणाय साधूनां, विनाशायच दुष्कृताम् । धर्म संस्थापनार्थाय, सम्भवंति युगे युगे ॥ २२ ॥

भा० टी०—कलियुग में तपस्वियों के भी हिंसा, असुया (द्वेष) झूट, माया, वध, रोग, भूख, और भय आदि धर्म को नष्ट करने वाले शत्रु निरन्तर बढ़ने लगे । वेदों को कोई भी नहीं पढ़ता, द्विजातियों ने यज्ञ करना भी छोड़ दिया, साधारण मनुष्य, मीन क्षत्रिय और वैश्य लोग क्रमे २ जड़मूल से उखड़ने लगें । शूद्रों का ब्राह्मणों के साथ शयन, आसन, भोजन, गायत्री, और वैवाहिक संबन्ध होने लग गये । उस कलियुग में बहुत से मारण क्षत्रिय राजा लोक शूद्र होकर मद्यमांस का आचरण करते हुए पाखंड धर्म में प्रवृत्त होगये और उस समय गुणहीन सारी प्रजा भी वैसी ही होगई । आयु, बुद्धि, बल, रूप, कुल की मर्यादा आदि सब नष्ट होगये, शूद्र-ब्राह्मणों के और ब्राह्मण शूद्रों के आचार वाले होगये । प्रथम मीनावतार के समय में होकर अब वे सबही वेद इस कलियुग में नहीं होंगे । क्यों कि कलिरूपहयग्री ने सबको नष्ट कर दिया । तब अजन्मा, अव्यय, और सर्व प्राणियों का स्वामी होने पर भी अपनी प्रकृति के आधीन होकर, आत्म माया से भगवान मीन, क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होते हैं । प्रकृति का ऐसानियम है कि अच्छे मनुष्यों का रक्षण, कुकर्मियों का विनाश, और नष्ट हुए अच्छे धर्म को फिर स्थापन करने के लिये ईश्वर के अनेक अवतार प्रत्येक युग में हो ही जाते हैं ॥ १५-२२ ॥

मारणानां यदा विप्राः, हानिर्धर्मस्य सम्भवेत् । तदा तस्मिनकुलेमीन, नाम्नैवावतरन्त्यसौ ॥ २३ ॥ एवं संध्यांशके काले, सम्प्राप्तेतु युगांतिके । तेषामधर्मिणां शास्ता,

मारणानां कुले स्थितः ॥ २४ ॥ गोत्रेण वै चंद्रमसो, नाम्नाप्रमारणेति च । नृपः संध्यांश भागेषु, मनोस्वायंभुवेम्तरे ॥ २५ ॥ समास्त्रिंशत्तु सम्पूर्णा, पर्यटनवै वसुंधराम् । अस्त्रकर्मा-सवैसेनां, हस्त्यश्वरथसंकुलाम् ॥ २६ ॥ प्रगृहीतायुधैर्मीनैः, शतशोथसहस्रशः । मारणैः सपरिवृत्तो, म्लेच्छान्सर्वान्विजघ्निवान् ॥ २७ ॥ सहत्वासर्वशश्चैव, राजानः शूद्रयोनयः । पाखण्डान्स तदासर्वान्, निःशेषान करोत्प्रभुः ॥ २८ ॥ लालने ताडने मातुर्नाकारुण्य, यथार्भके । तद्वदेवहि मीनस्य, नियंतुर्गुणदोषयोः ॥ २९ ॥ आततायिनमायांतं, हन्यादेवा-विचारयन् । नाततायिवधे दोषो, हंतुर्भवति कश्चन ॥ ३० ॥ अग्निदोगरदश्चैव, धर्मघाति-र्धनापहः । क्षेत्रदारापहर्ता च, षडेते आततायिनः ॥ ३१ ॥

भा० टी०—हे विप्रो ! मारण क्षत्रियों के धर्म की जब सर्वथा हानी होजाती है, तब उसी मारण कुल में वही पवित्रात्मा, मीन नाम से अवतार लेकर उस हानि को मिटा देते हैं । इसी नियम से कलियुग के अन्त में संध्याशकाल प्राप्त होने पर उन अधर्मियों को शिक्षा देने वाला ईश्वर मारणकुल में आ उपस्थित हुआ । गोत्र से चन्द्रमस, एवं नाम से प्रमारण, वह राजा स्वायंभुव मनु के अन्तर संध्यांश भाग में राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुआ । हाथी, घोड़े और रथों से संकुल, शस्त्रास्त्रविद्या में निपुण अनेक शतशहस्त्र आयुधधारी मीनवंशीय मारणक्षत्रियों की सेनाओं से परिवृत्त, उस मीन भगवान ने तीस वर्षों तक सम्पूर्ण भूगोल पर पर्यटन करके समस्त म्लेच्छों को मार कर नष्ट कर दिया । शूद्रयोनी सब राजाओं को मार देने के पश्चात् धर्ममूर्ति प्रभु उस राजाने मिथ्या धर्म का प्रचार करने वाले समस्त पाखण्डियों को भी मिटियामेट ही कर दिया । अपने पुत्र का लालन पालन करने वाली माता, अपराध करने पर जब पुत्र को ताड़न करती है तो उसमें वह निर्दयी नहीं कहाती, बस यह ही न्याय गुण दोष के विषय में ईश्वर पर है । ईश्वर ही कहता है कि मारने के लिये शस्त्र लेकर आते हुये आततायी को जहां देखो वहीं मारदो, आततायी को मारने में कोई दोष नहीं है । आग लगाने वाला, जहर देने वाला, सत्यधर्म को नष्ट करने वाला, धन लूटने वाला, क्षेत्र तथा स्त्री को हरण करने वाला ये छः भी आततायी कहाते हैं ॥ २३-३१ ॥

म्लेच्छानां मारणान्मीनो, मारणेत्यभिधीयते । तस्य वंशधरामीना, मारणाश्च प्रकीर्तिताः ॥ ३२ ॥ अधार्मिकाश्च ये केचित्तान् सर्वान् हंति सर्वशः । औदीच्यान्मध्यदेशांश्च पार्वतीयांस्तथैव च ॥ ३३ ॥ प्राच्यांश्चैव प्रतिच्यांश्च, विंध्यपृष्टापरांतिकान् । तथैव दक्षिणात्यांश्च, द्रविड़ान्सिंहलैस्सह ॥ ३४ ॥ गंधारान्पारदांश्चैव, पह्लवान्यवनान्शकान् । तुषारान्बर्बशान् श्वेतान्पुलिन्दान्बर्बरान्खशान् ॥ ३५ ॥ लम्पकान्नान्ध्रकांश्चापि, चौरजातिंस्त-

थैव च । सुसाधयित्वाद्विषलान्, प्रायशस्तान धार्मिकान् । गङ्गायमुनयोर्मध्ये, निष्ठां प्राप्तसहा-नुगः ॥ ३६ ॥

भा० टी०—वेद विध्वंसक म्लेच्छों को मारने ही के कारण, भगवान् मीन मारण कहाते हैं, एवं उन्हीं के वंशधर क्षत्रियगण मीना व मारण नाम से प्रख्यात हुए। उत्तर के मध्यदेशीय, पर्वत निवासी द्रविड, सिंहल, गन्धार, पारद, पह्लव, यवन, शक, तुषार, बर्बश, श्वेत पुलिंद, बर्बर,खश आदि देश निवासी, अधर्मियों का मारण भगवान् ने सर्व संहार कर दिया। एवं लंपक, आंध्रक तथा नाना देश निवासी चौर जातियों को, प्राय: सभी अधर्मियों को, धर्म घातकों को, अच्छी तरह शिक्षा देकर मीन भगवान् ने गंगा यमुना के मध्य प्रदेश में अपने अनुयायियों के सहित रहना निश्चय किया और वहीं पर शरीर छोड़ा ॥ ३२—३६ ॥

वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः संकरंघोरमास्थिताः। सरितः सागरानूपान्सेवन्तेपर्वतांस्तथा ॥ ३७ ॥ मांसैर्मूलफलैश्चैव वर्तन्तः सुदुःखिताः। एतां काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषाः प्रजा-स्ततः ॥ ३८ ॥ यथा कृतयुगेपूर्वमेकवर्णमभूत्किल तथा कलियुगस्यान्ते शूद्रीभूताप्रजा-स्तथा ॥ ३९ ॥ उत्पन्नाः कलिशिष्टासु प्रजाःकार्तयुगास्तदा। तिष्ठन्तिचेहयेसिद्धा अदृष्टा-विचरन्ति च ॥ ४० ॥ कलिशिष्टेषु तेष्वेवं जायन्तेपूर्वंत्प्रजाः। एते युगस्वभावास्युः मयोक्तावैसमासतः ॥ ४१ ॥ इतिश्रीमीनपुराणे द्वितीयस्कन्धेषड्विंशोध्यायः ॥ २६ ॥

भा० टी०—उस समय प्रजा भी अल्प शेष ही रह गई थी, उनकी यह दशा थी कि वर्णाश्रम परिभ्रष्ट, घोर वर्णस करता में प्राप्त, नदी, पर्वत, सागर, और जलप्राय देश का आश्रय लेकर मांस, मूल और फलों को खाकर परम दुःखों में दिन काटती थी। जैसे कृतयुग के पूर्व में एक ही वर्ण था, वैसे कलियुग के अन्त में भी सभी लोग शूद्र हो गये थे। कलियुग के अन्त में दुष्टों को क्षय करके मीन भगवान् ने जब कुछ शान्ति स्थापित की, तब कृत युग की प्रजा उत्पन्न होने लगी और एक स्थान पर स्थित हुए सिद्ध पुरुष भी अदृष्ट रह कर विचरने लगे। इस प्रकार कलि के शेष में कृत, त्रेता, द्वापर आदि पूर्ववत् प्रजा उत्पन्न होती रही है। यह युगों का स्वभाव मैंने संक्षेप में कहा है ॥ ३९-४१ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवन्मीनपुराणे द्वितीय स्कंधे षड्विंशोध्याय समाप्तः ॥ २६ ॥

अथ २७वाँ अध्याय प्रा० सूत उवाच—मीनापुत्रोमहाभागः स्वायम्भुवोनराधिपः। तस्यवंशधरासर्वेमीन नामेनविश्रुताः ॥ १ ॥ स्वायम्भुवेनमनुनापूजितितोमीनविग्रहः।

तस्मात्तस्यान्वयामीनाः प्रख्याताजगतीतले ॥ २ ॥ मीनरूपंसमास्थायविष्णुना प्रभविष्णुना। स प्रजा च ऋषिर्वेदाः रक्षिताजलसंप्लवे ॥ ३ ॥ आकालिकोयंप्रलयो यतो भगवताकृतः। तच्छृण्वन्तु महाभागाधाराहं लोकसंक्षयम् ॥ ४ ॥ यथावामत्स्यरूपेण वेदास्त्रातारच-शार्ङ्गिणा। तदहंसंप्रवक्ष्यामि सर्व्वपापप्रणाशनम् ॥ ५ ॥

भा० टी०—अब २७ वाँ अध्याय शुरू होता है, सूत जी बोले– ब्रह्मा जी की मीना देवी के पुत्र महा भाग स्वायम्भुव मनु जी इस मीना जाति में आदि नराधिप हुए। अत एव उनके वंशधर सभी क्षत्रिय लोग मीना नाम से ही विख्यात हुए। अथवा स्वायंभुव मनु जी मीन रूपधारी विष्णु भगवान् की पूजा किया करते थे, अतएव उनके वंशज क्षत्रिय गण इस पृथ्वी पर मीन क्षत्रिय नाम से प्रख्यात हुए। क्योंकि उस समय प्रति युग में उत्पन्न होने वाले विष्णु भगवान् ने ही मीन रूप धारण करके जल-प्रलय में समस्त मीन-प्रजा, सप्तर्षि और चारों वेदों कीरक्षा की थी। हे महा भागे ! लोकों को क्षयकारी यह आकालिक प्रयल वाराह कल्प में भगवान् के प्रकोप से ही हुआ था। सो ही मैं कहता हूँ सुनिये ! उस समय अनन्त मत्स्य का रूप धारण करके शारंग पाणि मीन भगवान् ने वेदों और संपूर्ण जनता की रक्षा की, सर्व पापों को नाश करने वाला वही अधिकार मैं तुमको कहता हूँ सुनिये ॥ ५ ॥

श्री कपिलउवाचः—स्वायंभुवमनुश्रेष्ठ मीनरूपमहामते। ममैकमीप्सितार्थंत्वं देहि-प्रार्थयतोऽधुना ॥ ६ ॥ जगत्सर्वं तवैवेदं त्वयाचपरिपालितम्। त्वयासर्व्वंजगत्सृष्टं त्वमेव-जगतांपतिः ॥ ७ ॥ तन्मेदेहिरहः स्थानंत्रिपुलोकेषु दुर्लभम्। पुण्यमापहरं रम्यंज्ञानप्रभ-वमुत्तमम् ॥ ८ ॥ अज्ञानसागरे मग्नमधुनासकलंजगत्। उद्धरिष्ये जगज्जातान् निर्माय ज्ञानदीपिकाम्। अहं सर्व्वभूतानां भूत्वाप्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ ९ ॥ श्रीमनुरुवाच–यदित्वया-खिलजगद्धितार्थं ज्ञानेदीपिकाम्। चिकीर्षुणातपः कार्यं किंस्थानार्थनयातव ॥ १० ॥ देवागारगणितीर्थानि क्षेत्राणिसरितस्तथा। बहूनिपुण्यभाञ्ज्यत्रतिष्ठन्ति कपिल ! क्षितौ ॥ ११ ॥ तेषामेकतमं त्वंचेदासाद्य कुरुषेतपः। स्थानं ब्रह्मन्तपः सिद्धौनभविष्यति तत्रकिम् ॥ १२ ॥ कपिलउवाच—त्वयिविश्रंममाधायतपसः सिद्धयेऽचिरात्। स्थानं मयाप्रार्थितं-तेत्वंमांक्षिपसिहेतुभिः ॥ १३ ॥ अक्षाम्यन्तेवचोमेऽद्यप्रार्थनायां विकत्थनम्। यस्त्वंवद-सितस्मात्त्वं फलमेतद् वाप्नुहि ॥ १४ ॥ इदं त्रिभुवनंसर्व्वं सदेवासुरमानुषम्। हतप्रहतं-विध्वस्तमचिरेण भविष्यति ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वामुनीन्द्रोसौकपिलस्तपसानिधिः। अन्तर्दधे-जगामा.पतदाब्रह्म सदोमुनिः ॥ १६ ॥

भा० टी०—एक समय स्वायंभुव मनु जी के पास आकर कपिल मुनि जी बोले कि—हे मीन भगवान् के अवतार स्वरूप महामते स्वायंभुव मनुजी ! आप मीना जाति के सर्व श्रेष्ठ और सर्व प्रथम मनु (सार्व भौम) राजा हैं। अतएव अब में आप से यह प्रार्थना करता हूँ कि मेरे मन चाही एक वस्तु आप मुझको अवश्य दें। क्यों कि यह सारा जगत् आप ही का है, आप ही ने सब को पाला है, सर्व जगत् को आप ही ने उत्पन्न किया है, और आप ही सर्व जगत् के पति हैं। इसीलिए मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूं कि तीनों लोकों में दुर्लभ कोई आप मुझको ऐसा एकान्त शान्ति का स्थान प्रदान करें कि जो पुण्य पाप को हरण करने वाला हो, अति रमणीय हो, और ज्ञान की उत्पत्ति कराने में उत्तम साधन हो। क्यों कि इस समय सारा ही जगत् घोर अज्ञान रूप सागर में डूबा हुआ है। जीवों के प्रत्यक्ष दर्शि होकर वेदों का पुनर्निर्माण करके मैं संसार निवासी प्राणियों का उद्धार करना चाहता हूं। श्री मनुजी बोले हे कपिल ! यदि आपके संपूर्ण प्राणियों के हितार्थ वेद दीपक का प्रकाश करने की इच्छा से तप करना हो तो स्थान के लिये मुझ से प्रार्थना करने की आपको क्या आवश्यकता है ? देव मन्दिर, धर्म, तीर्थ क्षेत्र, पवित्र नदी तट आदि इस पृथ्वी पर बहुत से पुण्य स्थान है, इनमें का एक भी स्थान को लेकर जहां भी आपकी तबियत चाहे तप कर सकते हो। ऐसा कौनसा स्थान है जहां पर योगी राजों को तप की सिद्धि नहीं होती हो। कपिल जी बोले ! तुम्हारे उपर विश्वास करके एवं तुम्हारे आश्रय से हमको शीघ्र ही तपकी सिद्धि हो जायेगी ऐसा समझ कर मैंने तुपसे एकान्त एवं शुद्ध स्थान की प्रार्थना की थी, परन्तु तुम तो हेतुओं के द्वारा मेरे ऊपर ही आक्षेप करते हो ! आज की मेरी इस प्रार्थना में तुम जो अभिमान के वचन कहते हो ! तुम्हारे ये वचन मेरे क्षमा कर देने के योग्य नहीं है। अतएव इस अभिमान का फल तुमको शीघ्र ही अवश्य मिलेगा। यानी थोड़े ही काल में तुम्हारा यह देव असुर और मनुष्यों वाला सर्व ही त्रिभुवन, हत प्रहत और विध्वस्त हो जायगा। ऐसा कह कर वह तपोनिधि कपिलमुनि राजा स्वायभुव मुनिजी के सामने ही अदृश्य हो गये और ब्रह्मा जी की सभा में पहुँच गये ॥ ६ १६ ॥

कपिलस्य वचः श्रुत्वा, विषण्णवदनो मनुः। भावीति प्रतिपद्याशु, मनुर्नोवाच किंचन ॥ १७ ॥ विशालां बदरीं यातो, गङ्गाद्वारान्तिकं मनुः। प्रविश्य तपसे यत्नमकरोल्लोकभावनः ॥ १८ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, शुद्धज्ञानस्वभाविने। इति जप्यं प्रजपतो मनोः स्वायम्भुवस्य तु ॥ १९ ॥ आससादतदाक्षुद्रमत्स्यरूपीजनार्दनः। उवाच च महात्मानं, मनुं स्वायंभुवं तदा ॥ २० ॥ तपोनिधे महाभग, भीतं मां त्रातुमर्हसि। नित्यं युद्धे जितं मत्स्यैर्विशालैर्भक्षितुं प्रति ॥ २१ ॥ प्राणाकांक्षी महात्मानं, भवन्तं शरणं मुनिम्। प्राप्तोहं यद्यनुक्रोशो, मयि मां परिपालय ॥ २२ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा, मनुः स्वायम्भुवस्ततः।

अलिञ्जरेतोयपूर्णे न्यधाद्विपुलभोगिनि ॥ २३ ॥ सतस्मिन्मलिके मत्स्यो, वर्द्धमानः क्षणे क्षणे सामान्य रोहितप्रायो, देहोभून्नचिरादथ ॥ २४ ॥

भा० टी०—कपिल मुनि के उक्त वचनों को सुनकर मनुजी खिन्न वदन होगये और ऐसा ही होनहार समझ कर कुछ भी नही बोले। इसके पश्चात् गङ्गा द्वार के निकट विशाल बदरी वन में जाकर अपनी सृष्टि की शुभ कामना से।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय शुद्ध ज्ञान स्वभाविने' इस मन्त्र का जप करते हुए तप करने लगे। उस समय छोटे से मत्स्य के रुप में आकर मीन भगवान् महात्मा स्वायंभुव मनुजी से यों बोले—हे तपो निधे! हे महाभागा! सदा युद्ध में जीतने वाले विशाल काय महा मत्स्य मुझको भक्षण करते हैं उन्हीं से भयभ्रान्त होकर प्राणों की आकांक्षा करने वाला मैं, आप भयों से रक्षण करने वाले क्षत्रिय मुनि महात्मा के शरण में प्राप्त हुआ हूँ, यदि मेरे उपर आपकी दया है तो मेरी रक्षा कीजिए। इस प्रकार उसके वचनों को सुनकर दयालु मनुजी ने उठ कर उसको एक जलपूर्ण मटके (बोगी) में स्थापन कर दिया। अब उस बड़े भारी मटके में प्राप्त होकर क्षण क्षण में बढ़ता हुआ वह छोटा सा मत्स्य थोड़े ही काल में एक सामान्य रोहित मत्स्य के समान बड़ा हो गया॥ १७ २४ ॥

ततस्तथा पीनतनु दृष्ट्वा, मत्स्यं मनुः स्वयम्। गृहीत्वा पाणिनाफुल्लनलिनीं सरसीं ययौ ॥ २५ ॥ तत्सरस्तत्र विपुलं, पुण्ये नारायणाश्रमे। एकयोजनविस्तीर्णं, सार्द्धयोजनमायतम् ॥ २६ ॥ नानामीनगणोपेतं, शीतामलजलोत्करम्। तदासाद्यसरोमत्स्यं विनिधायमनुस्तदा ॥ २७ ॥ पालयामासुसुतवत्कृपया परयायुतः। सोऽचिरेणैव कालेन, पीनो वैसारिणोऽभवत् ॥ २८ ॥ नसमस्तत्र सरसि, बृहत्कायोद्विजोत्तमाः। शिरः पुच्छे निधायाशु, तुङ्गदेहः समुच्छ्रितः ॥ २९ ॥ स्वायम्भुवं महात्मानं, चुक्रोश त्राहिमामिति। तं तथा स मनुर्ज्ञात्वा, क्रोशन्तं मीनपुङ्गवम् ॥ ३० ॥ न शक्नोम्यहमुद्धर्तुम्, पृथुरोमाणमद्भुतम्। इतिसञ्चिन्तयन्नेवं, प्रोद्धारकरेण तम् ॥ ३१ ॥ भगवानपि विश्वात्मा, मत्स्यरूपीजनार्दनः। स्वायम्भुवकरं प्राप्य, लघिमानमुपाश्रयत् ॥ ३२ ॥

भा० टी०—तदनन्तर मनु ने देखा कि क्षण भर में वह मत्स्य मोटा हो गया और मिट्टी के वर्तन में माता नहीं है, उसको स्वयं उठा कर वह एक खिले हुए कमल सम्पन्न सरोवर में ले गये। जो पुण्यस्वरूप बद्रीनारायण आश्रम के निकट, एक योजन चौड़ा और डेढ़ योजन लम्बा था। जिसमें नाना प्रकार के और भी मीन गण निवास करते थे। तथा वह शीतल एवं निर्मल जल से परि पूर्ण भरा हुआ था। मनु ने उस मत्स्य को उस जलाशय में छोड़ दिया। और दयालु राजा उसको अपने पुत्र के समान

समझ कर पालन पोषण करने लगे। वहां भी तत्काल ही मत्स्य महा विशाल काय हो गया और उसमें भी वह नहीं समाता हुआ अपनी ही पूंछ में अपना शिर देकर पर्वत के समान ऊंचा उठता हुआ और महात्मा स्वायंभुव मनुजी से पुकार कर बोला कि मेरा रक्षण करो २। इस प्रकार उसको पुकारते हुए जान कर मनुजी विचार करने लगे कि अब तो इसको मैं उठा नहीं सकता। ऐसा चिन्तवन करते हुए मनुजी ने उस मत्स्य को अपने हाथों में उठाना चाहा। इतने ही में विश्वात्मा मीन स्वायंभुव मनुजी का हाथ छूते ही हलके फूल और छोटे होगये ॥ २८–३२ ॥

ततः कराभ्यामुद्धृत्य, स्कन्धे धृत्वाण्डजं मनुः। निनाय सागरं तत्र, तोये च निदधेततः ॥ ३३ ॥ यथेच्छमत्र वर्धस्व, न कोपि त्वां हनिष्यति। अचिरेणैव सम्पूर्णं, देहत्वं समवाप्नु हि ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वा स महाभागः, सर्वप्राणभृतां वरः। लघुत्वं चिन्तयं तस्य, विस्मयं परमं गतः ॥ ३५ ॥ मत्स्योपि न चिरादेव, पूर्णकायस्तदा महान्। सर्वतः पूरयामास, देहभोगेन सागरम् ॥ ३६ ॥ तं पूर्णकायमालोक्य, व्यतात्याम्भः समुच्छ्रितम्। शल्कैशिराभोरचितं, मानसाचलसन्निभम् ॥ ३७ ॥ रुन्धन्तं सागरं सर्व्वं, देहभोगाचली कृतम्। स्वायम्भुवो मनुर्धीमान्, मेने मत्स्यनतं तदा ॥ ३८ ॥ ततः पप्रच्छतं साम्ना, मत्स्यं स्वायम्भुवा मनुः। न त्वां मत्स्यमहं मन्ये, कस्त्वं मे वदसत्तम ॥ ३९ ॥ त्वं ब्रह्माह्यथवाविष्णुः, शम्भुर्व्वा मीनरूपधृक्। न चेद्गुह्यं महाभाग, तन्मेवदमहामते ॥ ४० ॥

भा० टी०—इसके पश्चात् दोनों हाथों से उठा कर मनुजी ने उस मत्स्य को अपने कन्धे पर रख लिया और उसको लेजा कर समुद्र में छोड़ दिया और बोले कि अब तू यहां जितनी तेरी इच्छा होसुख से बढ़! तुमको अब यहां कोई नहीं मार सकेगा। इतना कह कर सर्व देहधारियों में श्रेष्ठ महाभाग मनुजी उसकी छोटी बड़ी उस अद्भुत काया पर विचार करते हुए आश्चर्य पाने लगे। इतने ही में तत्काल उस मत्स्य ने महान्काय होकर अपने देह से सारे ही समुद्र को पूर्ण भर दिया और फिर मानुषोत्तर पर्वत के समान आकार में ऊंचा बढ़ता ही जाता है। सम्पूर्ण समुद्र को अपनी देह से रुन्ध कर अचल भाव से रहे हुए उस अनन्त महा मीन को बुद्धिमान मनु जी ने जब देखा तब उनको यह निश्चय हो गया कि यह साधारण मत्स्य तो नहीं है। नमस्कार करके विनम्र भाव से मनुजी बोले कि–हे सत्तम! कहिये आप कौन हैं? मत्स्य तो मैं आपको नहीं मान सकता। हे महामते हे! महाभाग! आपका यह स्वरूप यदि गोपनीय न हो तो मुझ से अवश्य कहिए? मीन के रूप में आप क्या ब्रह्मा हैं या विष्णु हैं अथवा शंभु हैं? ॥ ३३–४० ॥

मत्स्य उवाच-आराध्योऽहं त्वया नित्यं, यो हरिः ससनातनः। तवेष्टकामसिद्ध्यर्थं, प्रादुर्भूतः समाहितः ॥ ४१ ॥ यत्त्वमिच्छसि मीनेशमत्तः शान्तेन मूर्तिना। तत्करिष्येऽद्यतां मूर्तिमिमां विद्धिमनोमम ॥ ४२ ॥ इति तस्यवचः श्रुत्वा, विष्णोरमित तेजसः। ज्ञात्वा प्रत्यक्षतो विष्णुं मनुस्तुष्टावमारणम् ॥ ४३ ॥ नमस्तेजगदव्यक्त, परावरपते हरे। पावकादित्य शीतांशु, नेत्रत्रयधराव्यय ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानउवाच-तुष्टोस्मितपसातेद्य, भक्त्याचापिस्तुतो मुहुः। सपर्य्ययातथानेन, वरंवरयसुव्रतः। इष्टार्थंसंप्रदास्यामि, तुभ्यंनात्रविचारणा ॥ ४५ ॥ मनुरुवाच-यदिदेयोवरंमेऽद्य, लोकानां यो हितोभवेत्। तन्मे देहि वरं विष्णो, तं वच्यामि शृणुष्व मे ॥ ४६ ॥ शशापकपिलः पूर्वं, मदर्थेभुवनत्रयम्। हतप्रहतविध्वस्तं, सकलं तेभविष्यति ॥ ४७ ॥ येनेयमुद्धृतापृथ्वी, येनेयं परिपालिता। संहरिष्यति यस्त्वेनां, तेऽधुनाप्लावयन्त्विमाम् ॥ ४८ ॥ ततोऽहं दीनहृदय स्त्वामेव शरणं गतः। नयथेदं त्रिभुवनं, जलप्लुतं भविष्यति। हतप्रहतविध्वस्तं, तथात्वं देहि मे वरम् ॥ ४६ ॥

भा० टी०—श्री मत्स्य भगवान् बोले हे राजन्! जो तुम्हारे सदा आराध्य सनातन हरि मीन भगवान हैं, वही तुम्हारे अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिये मैं तुम्हारे सामने मत्स्य के रूप में प्रगट हुआ हूं। हे मीनेश! जिस शान्त मूर्ति मेरे द्वारा तुम अपना इष्ट कार्य चाहते हो वही यह मेरी शान्त मूर्ति है इसी रूप में आकर आपत्ति काल में, मैं तुम्हारा रक्षण करूंगा। अमिततेज वाले भगवान् श्री मीन देव के यह वचन सुन कर मनुजी प्रसन्न हुए और उनको प्रत्यक्ष विष्णु जान कर मनुजी भगवान् मारण देव की स्तुति करने लगे कि जगत् के अगोचर, क्षीर समुद्र के या संपूर्ण संसार के पति, अग्नि, सूर्य और चन्द्र रूप तीन नेत्रों को धारण करने वाले, अव्यय भगवान् हरि को मेरा नमस्कार हो। श्री भगवान् बोले-हे सु व्रत! तुम्हारी इस स्तुति, भक्ति, तपस्या और सेवा से मैं बारंबार प्रसन्न हुआ हूं। अब तुम मुझ से वर मांगो और तुम यह निश्चय जानो कि-तुम जो चाहोगे वही इष्टार्थ तुम को मैं अवश्य ही दूंगा। यह सुनकर मनुजी बोले-हे विष्णो! यदि आप मुझ को वर ही देना चाहते हो और वह आपका वर सब ही प्राणियों का हित कारक है तो यही मैं चाहता हूं आप वर दीजिए। मैं क्या चाहता हूं, सुनिये! मेरे ही कारण से पहिले कपिल मुनि ने शाप दिया था कि त्रिभुवनवर्ती तुम्हारी सकल ही सृष्टि हत, प्रहत और विध्वस्त हो जायेगी। जिस ईश्वर ने इस संपूर्ण पृथ्वी का उद्धार किया, जिसने पालन किया, वही अब इसका संहार करेंगे। यानी अब यह सारी ही पृथ्वी थोड़े ही काल में जलमग्न हो जायेगी। इसीलिये मैं दीन हृदय तुम्हारे शरण आया हुआ हूं। अब आप मुझ को यह ही बरदान दीजिये कियह सकल त्रिभुवन हत, प्रहत और विध्वस्त न हो तथा जल प्लावित न हों ॥४१-४६॥

श्रीभगवान उवाच—न मत्तः कपिलो भिन्न, स्तथा न कपिलादहम् । यदुक्तं मुनिना तेन, मयोक्तं विहितं मनो ॥ ५० ॥ तस्माद्यदुदितं तेन, तत्सत्यं नान्यथा भवेत् । करिष्ये तत्र साहाय्यं, स्वायम्भुवनिबोधतत् ॥ ५१ ॥ हतप्रहतविध्वस्ते, तोयमग्ने जगत्त्रये । नचिरा-देवतत्तोयं, शोषयिष्यामि वैमनो ॥ ५२ ॥ शोषितेवैमयातोये, वासनीया त्वयाप्रजा । सदेशो ममनाम्नैव, सुप्रसिद्धं भविष्यति ॥ ५३ ॥ तस्मिन्देशेत्वनन्तावै, सन्ततिस्ते भविष्यति । भाद्रसिते चतुर्दश्यां व्रतं कार्य्यमनन्तकम् ॥ ५४ ॥ यावज्जलप्लवस्तावद्वययथाकार्यं त्वयामनो सर्वयज्ञीयकाष्ठोघै रेकानौका विधीयताम् ॥ ५५ ॥ तामहं द्रढयिष्यामि, यथा नो भिद्यते जलैः । धारिर्णी सर्व बीजानां, भुवनत्रय वर्द्धिनीं ॥ ५६ ॥ सर्वाणि बीजान्यादाय, सवेदान् सप्तवैऋषीन् । तस्यां नाविनिसन्नस्त्वं वर्तमाने जलप्लवे ॥ ५७ ॥ दक्षेणसह संगम्य, स्मरिष्यसि मनो मम । स्मृतोहं तूर्णमायास्ये, भवतो निकटं प्रति ॥ ५८ ॥ श्यामलेनाथ श्रृङ्गेण, त्वं मां ज्ञास्यसि वैतदा । यावत्प्रहतविध्वस्तं, हतं स्याद्भुवनत्रयम् । तावत्पृष्ठेन तां नावम्, वोढाहं नात्रसंशयः ॥ ५९ ॥ बद्धायां नाविमे श्रृङ्गे, दैवमानेन वत्सरान् । सहस्रं प्रेरयिष्यामि, तां नावं शोषयन् जलम् ॥ ६० ॥ ततः शुष्केषु तोयेषु, प्रोन्मग्ने शिखरे गिरेः । हिमाचलस्य बद्ध्वा तां, तस्मिन्नावमहं मनो ॥ ६१ ॥ त्वां वैगोपयिता नित्यं, तावत्तु शो-षयेजलं । चिन्तितोहं त्वया यास्ये, यदाहं निकटं तव ॥ ६२ ॥ पुनः सृष्टिं ततः कृत्वा, मत् प्रसादान्महामते । त्रैलोक्यदुर्लभामृद्धिम, वाप्स्यसि सनातनीम् । अहमाराधितोयेन, जप्येन भवता मनो ॥ ६३ ॥

भा० टी०—श्री भगवान् बोले-हे मनो ! कपिल मुझ से भिन्न नहीं है और मैं भी कपिल से भिन्न नहीं हूं । उस मुनि ने जो कुछ कहा वह सब मेरे मुख से कहा समझो । अतएव उक्त मुनि ने जो कुछ कहा वह सब सत्य ही है अन्यथा नहीं । परन्तु, इस मौके पर मैं तुम्हारी अवश्य ही सहायता करूंगा सुनिये ! मुनि के शाप से यह तुम्हारी सृष्टि हत-प्रहत और जल मग्न जब हो जावेगी तब उसके पश्चात् थोड़े ही काल में उस जल को मैं शुका दूंगा । मेरे द्वारा पृथ्वी पर से जल के शुकाये जाने पर उसी भू भाग में जाकर तुम अपनी प्रजा को बसा देना । तुम्हारा आबाद किया हुआ वह देश मेरे ही (मीन देश या मत्स्य देश) नाम से सुप्रसिद्ध होगा । उस मीन देश में रहने वाली तुम्हारी सन्तति का फिर कभी अन्त नहीं होगा । परन्तु, भादवा सुदि १४ के दिन तुम्हारे वंशधरों को मेरे नाम से अनन्त व्रत अवश्य ही करना होगा । हे मनो ! जब तक जलप्रलय दूर है तब तक तुम एक काम करो । संसार में

जितने भी ऊँचे मजबूत हलके यज्ञीय काष्ठ समूह हैं उन सब को मंगवा कर एक बड़ी लम्बी चौड़ी जाहज बनवालो। उसको मैं इतनी मजबूत कर दूंगा कि वह पानी में भी न गल सकेगी और तुम तुम्हारी सृष्टि के सभी जीवों के बीज मात्रों को धारण करती हुई तीन भुवन की वृद्धि में सहायता करनेवाली होगी। जब तुमको जल-प्रलय के आसार दीखने लगे, तब चार वेद, सात ऋषि और सर्व प्राणियों को लेकर दक्ष प्रजापति के साथ उस जहाज में बैठ जाना। हे मनो! उस समय जब तुम मेरा स्मरण करोगे तब याद करने मात्र से मैं शीघ्र ही तुम्हारे निकट आपहुँचूंगा। मेरे शिर पर एक श्यामल शींग को देख कर उस समय तू मुझको पहिचान लेना कि यह मैं ही हूं। जब तक जल तोफान रहेगा तब तक मैं तुम्हारी नाव को अपनी पीठ पर धारण करके वहन करता रहूँगा। मेरे उस एक शींग के साथ तुम अपनी नाव को मजबूत रस्सी के द्वारा जकड़ कर बांध देना। जल को सुकाता हुआ देवों के एक सहस्र वर्षों तक मैं तुम्हारी नाव को इधर उधर प्रेरित करता रहूँगा। जल के कुछ सूख जाने पर पर्वतों के शिखर तुमको दीखने लगेगें, तब हिमालय पर्वत के एक शिखर पर तुम्हारी नाव को बांध कर वहीं मैं तुम्हारा भी गुप्त रीति से रक्षण करता हुआ पृथ्वीके जल को सदा शुष्क करता हुआ एवं समुद्र को आगे हटाता हुआ रहूंगा। समुद्र के दूर हट जाने के बाद, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, इस मन्त्र के जप के द्वारा जब पुनः मेरी आराधना करोगे तब तुम्हारे चिन्तनमात्र से ही मैं तुम्हारे निकट पहुँचूंगा और हे महामते मनुजी! मेरी कृपा से तुम पुनः मानवी सृष्टि की रचना करके तीन लोक में दुर्लभ, अविनाशी, समृद्धि को पावोगे ॥ ५०--६३ ॥

सूत उवाच–इति दत्वा वरं तस्मै, मत्स्यरतेन नमस्कृतः। अन्तर्दधे जगन्नाथो, लोकानुग्रहकारकः ॥ ६४ ॥ स्वाम्भुवोपिभगवानन्तर्द्धानगते हरौ। यथोक्तं हरिणा पूर्वं, नावं रज्जुं तथाकरोत् ॥ ६५ ॥ ततः कालेन महता, वृत्तं युद्धं महाद्भुतम्। विष्णोर्यज्ञ वराहस्य, सरभस्य हरस्य च ॥ ६६ ॥ ततो जलप्लवे भूते, विध्वस्ते भुवनत्रये। मीन क्षत्रिय भूपालान्बीजान्यादाय सर्वशः ॥ ६७ ॥ वेदानृषीन्तथा सप्त, दक्षं चादायवै मनुः। तस्यां नावि समाधाय, तोयमग्ने चराचरे। स्वाम्भुवस्तदा मत्स्यं, हरिं सस्मारवैततः ॥६८॥ उद्दीप्तश्चैक श्रृङ्गेण, विष्णुर्मीनस्वरूपधृक्। आगतस्तत्र नचिराद्यत्रस्ति समनुर्हरिः ॥ ६९ ॥ तरिमारुह्य विपुले, तोयराशौ भयङ्करे। यावज्जलाचलं तोयं, तावत्पृष्ठे तरिंन्यधात् ॥ ७० ॥ जले प्रकृतिमापन्ने, श्रृङ्ग बद्ध्वा तरिं तदा। तां नावं चोदयामास, सहस्रं देववत्सरान् ॥ ७१ ॥ ततः शनैः शनैस्तोये, शोषं गच्छति वैचिरात्। पश्चिमं हिमवत्श्रृङ्गमुन्मग्नं तोय मध्यतः ॥ ७२ ॥ तस्मिन्श्रृङ्गे ततो नावं बध्नामत्स्यात्म धृक् हरिः। जगाम शोषणायाशु,

जलानां जगतां पतिः ॥ ७३ ॥ एवं हि मत्स्यरूपेण, वेदास्त्राताश्चशार्ङ्गिणा । इति वः कथितं सर्वं, यथावत्द्विजसत्तमाः ॥ ७४ ॥

भा० टी०—सूतजी बोले-मनुजी को इस प्रकार वरदान देकर लोकों पर अनुग्रह करने वाले भगवान् श्री मीन देव, मनुजी के द्वारा नमस्कृत होकर अन्तर्धान होगये। अदृश्य होकर भगवान् के चले जाने पर श्री स्वायंभुव मनुजी ने भी भगवान् के कथनानुसार ही नाव तथा रस्सी बनवाली। इसके पश्चात् बहुत काल जाने पर आदि दैत्य तथा भगवान् विष्णु के यज्ञ वराह अवतार के आपस में बड़ा ही घोर युद्ध हुआ। उस भयंकर एवं अद्भुत युद्ध में सारी ही पृथ्वी जल मग्न हो गई और दुष्ट दैत्यों ने वेदों को भी नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। उस जल प्रलय में तीन भुवन के विध्वस्त होने पर, मनुजी ने कतिपय मीन क्षत्रियों को, एवं बीज मात्र सर्व प्राणियों को, वेदों को, सप्त ऋषियों को, और दक्ष जी को लाकर अपनी उस नाव में बिठला दिया। और बाकी सब चराचर के जल मग्न हो जाने पर वह वहाँ से चल दिये। नाव में बैठ कर चलते समय मनुजी ने मीन भगवान् का स्मरण किया। उसी समय तत्काल उद्दीप्त एक शींग वाले मीन रूप धारी विष्णु भगवान् मनु के पास आपहुँचे जहाँ कि वह नाव में बैठे हुए विपुल एवं भयंकर तोय राशि में फंसे हुए थे। जब तक समुद्र में तूफान रहा तब तक मीन भगवान् एक रूप से मनुजी की नाव को अपनी पीठ पर धारण किये रहे और दूसरे रूपसे जब तक देवों के एक हजार वर्षों तक यह जल विकृति को प्राप्त होता रहा अपने शींग में बांधे हुए उस नाव को इधर उधर घुमाते ही रहे। बहुत ही काल के पश्चात् जब वह पानी सहज २ सूकता गया तब हिमालय पर्वत का पश्चिम शृङ्ग जल से बाहर निकला तब वह मत्स्य रूप धारी हरि भगवान् उस पर्वत की सबसे बड़ी चौटी के साथ उस नाव को बांध कर हिमालय के उत्तर पर्वतीय प्रदेशों के जल को शीघ्र ही सुका देने के लिए चले गये। जब त्रिविष्टप (तिब्बत) प्रदेश से जल हट गया तब वहां मीन भगवान् की सहायता से मनुजी ने पुन मानवी सृष्टि की रचना की और ऋषियों ने वेदों का प्रचार किया। सूतजी कहते हैं कि हे द्विजसत्तमो! मीन रूप धारण करके जिस प्रकार भगवान् विष्णु ने विद्वानों और वेदों की रक्षा की थी उसका सर्व सत्य २ स्वरूप मैंने यह तुम से संक्षेप से कह दिया ॥ ६४-७४ ॥

त्रिविष्टपान्मनोः पुत्राः, संयाता सुविविस्तरम् । अनन्तव्रतमास्थाय, पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ ७५ ॥ तैरावासितयद्देशं, मात्स्यमाहु मनीषिणः । मीनस्योपासका सर्वे, मैन नामेन विश्रुताः ॥ ७६ ॥ कुलं तु मीन विख्यातं, धर्मवैदिकवैतथा । ब्रह्मक्षत्राश्चवर्णेन, सुविशुद्धा नृपोत्तमाः ॥ ७७ ॥

इति श्री मीनपुराणे द्वितीयस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः २७ ।

भा० टी०—अनन्त वासुदेव के व्रत की आराधना करने से स्वायंभुव मनुजी के वंश धरों की पुत्र पोत्र आदि अनन्त वंश परम्परा बढ़ी और ज्यों २ जल हटता गया त्यों २ त्रिविष्टप–प्रदेश से निकल कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर विस्तीर्ण हो गये। उन लोगों के द्वारा आबाद किये गये जो २ देश थे वे सभी मीन या मत्स्य देश नाम से प्रसिद्ध हुए। मनुजी के वंशधर सभी क्षत्रियगण मीन भगवान के उपासक होने से मैना वा मीना नाम से प्रसिद्ध हुए। कुल सब का एक ही मीन कुल है। धर्म सबका एक ही वैदिक धर्म है। ब्रह्मा के वंश में उत्पन्न होकर, वेद, धर्म, और ब्रह्म समाज की रक्षा करने के कारण इन सभी राजपूतों का एक ही ब्रह्म क्षत्रवर्ण कहलाया। वर्तमान सृष्टि के प्रारम्भकाल में ये मीना राजपूत ही सुविशुद्ध नृपोत्तम कहलाते थे।

इति श्रीमद्भागवन्मीनपुराणे द्वितियस्कन्धे सप्तविंशतितमोऽध्याय समाप्तः ॥ २७ ॥

अथअष्टत्रिंशोध्यायप्रारम्भः ॥ सूतउवाच—अनन्तनामदेवस्य भाद्रशुक्लचतुर्दश्याम् । अनन्तव्रतमेतांद्ध सर्वपापहरंशुभम् ॥ १ ॥ सर्वकामप्रदंनॄणां स्त्रीणां चैवद्विजोत्तमाः । तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्वपापंप्रणश्यति ॥ २ ॥ कृत्वादर्भमयानन्तं वारिधान्यां निवेश्य च । पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यै र्नैवेद्यै र्विविधैरपि ॥ ३ ॥ दिव्यसिंहासनासीनं देवेशंगरुडध्वजं । शुक्लवर्णं चतुर्बाहुं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ ४ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरंविभुम् । श्रियावाण्या च संश्लिष्टं किरीटादिसमुज्ज्वलम् ॥ ५ ॥ फणशतसमायुक्तं जगन्नाथं जगद्गुरुम् । अनन्तंपूज्येन्मीनं नारादाद्यैरुपस्तुतम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—सूतजी बोले भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी के दिन अनन्त नामक देव के नाम से अत्यन्त शुभ और समस्त पापों को नष्ट करनेवाला अनन्त व्रत करना चाहिए। हे द्विजो! यह अनन्त व्रत सर्व स्त्री पुरूषों की मनोकामनाओं को पूर्ण करता है। क्यों कि चौदह वर्ष तक इस व्रत का सेवन करने से मनुष्यों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। डाभ का शेषनाग पानी के पनहड़े में स्थापन कर धूप पुष्पादि से प्रति दिन पूजना चाहिए। और जिस दिन से यह व्रत शुरू किया जाय उसी दिन से गुरू की बताई हुई विधि के अनुसार अपने हाथ में अनन्त बांधना चाहिए। बारह महिनों में एक बार भादवा शुक्ल १४ के व्रत के उस दिन मीन भगवान की उस मूर्ति को सिंहासन के उपर विराजमान करें. वह मूर्ति कैसी होनी चाहिए? शुक्ल वर्ण, चतुर्बाहु, नाग यज्ञोपवीत सहित, चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए हुए, पीताम्बर पहने हुए, लक्ष्मी एवं सरस्वती सहित, मुकुटादि अलंकारों के सहित सौ फणों के शेषनाग की शय्या पर विराजमान, नारद आदि ऋषिगण जिनकी

स्तुति कर रहे हैं, ऐसे जगत् के नाथ जगत् गुरू अनन्तदेव श्री मीन भगवान् की षोडसोपचार से पूजा करे ॥ १-६ ॥

हृदिस्थं सर्वदेवानां इन्द्रियाणांगुणातिगम् । सर्वपापहंमीनं प्रणमामि जनार्दनम् ॥ ७ ॥ अनन्तरुपेणबिभर्षिपृथ्वीं अनन्तलक्ष्मीं विदधासितुष्टः । अनन्तभोगान्प्रददासितुष्टः अनन्तमोक्षं पुरुषेप्रहृष्टः ॥ ८ ॥ अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान्समुद्धर वासुदेव । अनन्तरुपिन्विनियोजयस्व अनन्तरूपाय नमोनमस्ते ॥ ९ ॥ प्रणमामिहृषीकेशं मीनदेवंजगद्गुरुं । सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्तारंवेदरक्षकम् ॥ १० ॥ राक्षसानामरिं नौमि नौमि दैत्यविमर्दकम् । जगताहितकर्तारं नौमिपंकेरुहेक्षणम् ॥ ११ ॥ जन्मजन्म कृतं यच्च बाल्यं यौवन वार्द्धके । वृद्धिमाप्नोतु तत्पुण्यं पापंहरहलायुध ॥ १२ ॥ भक्तिहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं यदर्चितम् । यथोद्दिष्टामिमां पूजां परिपूर्णां कुरुष्वमे ॥ १३ ॥ पापोहंपापकर्म्माहं पापात्मा पापसम्भवः । त्राहिमांपुण्डरीकाक्ष हरेसंसारसागरात् ॥ १४ ॥ इदंडोरमनन्ताख्यं चतुर्दश गुणात्मकम् । सर्व्वदेवमयंविष्णो स्वकरेधारयाम्यहम् ॥ १५ ॥ चतुर्दशग्रन्थियुक्तं कुंकुमेनविलेपितम् । ततावैडोरकंबद्ध्वा श्रोतव्यं च कथानकम् ॥ १६ ॥

भा० टी०—जो इन्द्रियों के गुणों से अतीत है, और सभी देवों के हृदय में स्थित हैं, उन्हीं सर्व पापों को हरण करने वाले जनार्दन श्री मीन देव को मैं प्रणाम करता हूँ। जो अनन्त (शेषनाग) रूप से संपूर्ण पृथ्वी को धारण करता है। और जो अपने भक्तों को प्रसन्न हो कर अनन्त लक्ष्मी भोग एवं मोक्ष को देता है वही अनन्त रूप भगवान् वासुदेव संसार समुद्र में डूबे हुए हम लोगों का उद्धार करे। हे अनन्तरूपी मीन प्रभो ! आप हमको अच्छे मार्ग में लगावें। आपको हमारा प्रणाम हो। जगत् की सृष्टि स्थिति और प्रलय को करने वाले, एवं वेदो की रक्षा करनेवाले, जगत् गुरु हृषि केश श्री मीन देव को मेरा प्रणाम हो ! राक्षसों को मारने वाले, दैत्य मर्दक, कमल लोचन, सर्व लोगों के हित करता उस मीन भगवान् को मेरा नमस्कार हो ! हे हलायुध ! आप मेरे बाल्य यौवन और वृद्धावस्था में किए हुए जन्म जन्मान्तर के सभी पापों को क्षय करके पुण्य की वृद्धि करिये। यह जो आपकी पूजा मैंने भक्ति हीन, क्रियाहीन और मन्त्र हीन की हो उसको आप यथार्थ एवं परिपूर्ण करें। मैं बड़ा पापी, पाप कर्मा, पापात्माऔर पाप में ही उत्पन्न हुआ हूं। हे पुण्डरीकाक्ष ! हे हरे ! तुंही दया करके मुझे संसार सागर से पार उतार। हे विष्णो ! सर्व देव मयी यह चतुर्दश ग्रन्थियों वाला अनन्त नामक डोरा अपने हाथों में बांधता हूं। ऐसा कह कर १४ गाँठों वाला कुंकुम में रंगा हुआ सूत का डोरा गुरु से अपने हाथों में बंधवावें और प्रसाद लेकर कथा सुने ॥ ७-१६ ॥

अरण्यवासमुषितो युधिष्ठिरनृपोवशी । प्राप्तस्त्रैलोक्यनाथेन कृष्णेन परमात्मना
॥ १७ ॥ कथोपकथनं जातंतयोस्तत्र परस्परम् । विशेषेण च गोविन्दंपप्रच्छ च युधिष्ठिरः
॥ १८ ॥ युधिष्ठिरउवाच—केनव्रतेनदेवेश वाञ्छितं प्राप्यतेफलम् । निष्पापाः सकलालोकाः
भवन्ति जन्मनिजन्मनि ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णउवाच—अस्तिव्रतमनन्ताख्यं यत्कृतं सुरसद्मनि ।
इन्द्राद्यैर्लोक पालैश्च तन्मेकथयतःश्रृणुः ॥ २० ॥ शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासिभाद्रपदेनृप ।
तस्यानुष्ठान मात्रेण सर्वपापं प्रणश्यति ॥ २१ ॥ युधिष्ठरउवाच—कृष्णकोयं त्वयाख्यातो-
ऽनन्त इतिसंज्ञितः । कोयंशेषश्चनागश्च अनन्तस्तकचकः स्मृतः ॥ २२ ॥ आदिमीनोत्तमं
वापि उताहो ब्रह्म उच्यते । कएषोऽनन्त संज्ञोवैतन्मेब्रूहि जनार्दन ॥ २३ ॥ श्रीकृष्ण-
उवाच–अनन्तइत्यहं पार्थ ममरूपंनिबोधतत् । आदित्यगतिरूपेण यः कालउपपद्यते ॥२४॥
कलाकाष्ठा मुहूर्त्तादि दिनरात्रि व्यवस्थया । पक्षोमास ऋतुवर्षं युगकल्पव्यवस्थया ॥ २५ ॥
सोहं कालोवतीर्णोस्मि भुवोभारावतारणात् । दानवानां विनाशाय वसुदेवतनूद्भम् ॥ २६ ॥
अनन्तंविद्धिमां पार्थं मीनं विष्णुं हरिं शिवम् । ब्रह्माणं भास्करं शेषं सर्व्वं व्यापिनमीश्व-
रम् ॥ २७ ॥ युधिष्ठिरउवाच–अनन्तव्रतमहात्म्यं विधिंविधिविदांवर । किंपुण्यं किंफलं तस्य
अनुष्ठानं च तस्यकिम् ॥ २८ ॥ केनवातत्कृतंपूर्व्वं लोकेकेन प्रकाशितम् । तत्सर्व्वं बहु-
विस्तार्य्यब्रूहि नारायणप्रभो ॥ २९ ॥

भा० टी०—यह कथा इस प्रकार है–बनवास में रहे हुए राजा युधिष्ठिर को हेरते हुए परमात्मा कृष्णचन्द्र मत्स्यया मीन देश में आए और बैराठ प्रान्त में त्रैलोक्यनाथ को युधिष्ठिर मिले वहां एकान्त में उन्हों के बहुत दिनों तक आपस में धार्मिक कथोपकथन चलता रहा। उस समय राजा युधिष्ठिर ने विशेष करके व्रतों के विषय में पूछा। युधिष्ठिर बोले–हे देवेश! मनुष्यों को किन २ व्रतों के द्वारा मन वांच्छित फल मिलता है और किस व्रत के करने से सभी लोक जन्म जन्मान्तर में भी निष्पाप हो जाते हैं। श्री कृष्ण बोले सर्व व्रतों में अनन्त नामक एक ही ऐसा व्रत है कि जिसका स्वर्ग निवासी इन्द्रादिक लोक पालों ने भी सेवन किया है उसका विधान कहता हूँ सुनो! हे राजा! भाद्रपद सुदि १४ को इस व्रत के अनुष्ठान मात्र से ही प्राणियों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। श्री युधिष्ठिर जी बोले–हे कृष्ण आपने जिस अनन्त नामक व्रत की महिमा वर्णन की, मैं पूछता हूँ कि यह अनन्त कौन है? क्या शेषनाग है? क्या तक्षक है? वा सर्व अवतारों में आदि अवतार भगवान् मीनोत्तम हैं? अथवा ब्रह्म हैं? हे जनार्दन आप मुझ से यह कहिए कि यह अनन्त संज्ञक देव कौन हैं? श्री कृष्ण बोले हे पार्थ।

मैं स्वयं ही अनन्त हूं ! यह अनन्त मेरा ही रूप तुम जानों। सूर्य की गति रूप से जो काल प्राप्त होता है वह कला, काष्ठा, मुहूर्त दिन रात्रि आदि तथा पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष, युग, कल्प आदि अनेक व्यवस्थाओं के द्वारा उपलब्ध होता है। वही काल मैं दानवों का विनाश करने के लिये और पृथ्वी का भार उतारने के कारण स्वरूप से वसुदेव के पुत्र रूप में अवतीर्ण हुआ हूँ। हे पार्थ ! मुझको ही तू अनन्त, मीन, विष्णु, हरि, शिव ब्रह्मा, भास्कर शेष, और सर्वव्यापी ईश्वर समझ। युधिष्ठिर बोले—हे व्रतों की विधि जानने वालों में श्रेष्ठ प्रभो ! अब आप हमसे अनन्त व्रत का महात्म्य कहिए-इस व्रत के करने वालों को क्या पुण्य होता है, क्या फल मिलता है। इस व्रत का अनुष्ठान (सेवनविधि) क्या है। पुरा काल में किस भाग्य शाली ने इस व्रत का सेवन किया। लोक में किसने इस व्रत को प्रकाशित किया। यह सर्व बातें मैं आपके मुख से सुनना चाहता हूं ॥ १७-२९ ॥

श्रीकृष्णउवाच—आसीत्पुरा कृतयुगे सुमन्तुर्नामवैद्विजः। वशिष्ठगोत्र जोविद्वान् शीलवान्विजितेन्द्रियः ॥ ३० ॥ पत्नीतस्याभवद्दीक्षा सतीसत्यव्रतेस्थिता । चारित्रशील सम्पन्ना सुरुपा भृगुवंशजा ॥ ३१ ॥ तस्याः कालेनसंजाता दुहितासर्वलक्षणा । शीलानामना सुशीला सा वर्द्धतेपितृवेश्मनि ॥ ३२ ॥ मातातस्यास्तुकालेन ज्वरदाह प्रपीडिता । समागत्यनदीतीरेमृता स्वर्गपुरं ययौ ॥ ३३ ॥ कृतंसुमन्तुनातस्याः कर्मयत्पारलौकिकम् । ततः सुमन्तुः संत्यज्यदुःखंशोक क्रमात्ऽनः ॥ ३४ ॥ नापत्नीको गृहीधर्म्मं कर्तुमर्हतिवैक्वचित् इति संचिन्त्यमनसा विवाहोत्सुकमानसः ॥ ३५ ॥ देवलस्यमुनेः कन्यां कर्कशां परिणीतवान् सा । कर्कशाति दुःशीला सदानिष्ठुर भाषिणी ॥ ३६ ॥ कोपना प्रतिकूला च निर्ल्लज्जाकलहप्रिया । अदक्षागृहकृत्येषु दक्षा भोजनकर्मणि ॥ ३७ ॥ सातुशीला पितुर्गेहे वर्द्धिता च दिनेदिने । करोतिसखिभिः सार्द्धं शिशुक्रीडामनुत्तमाम् ॥ ३८ ॥ स्वस्तिकंपद्मशंखौ च मण्डयान्ती पुनः पुनः । कुर्वन्ती प्रत्यहंबाला देवतार्तिथिपूजनम् ॥ ३९ ॥

भा० टी०—श्री कृष्ण बोले—पहिले कृतयुग में शीलवान्, जितेन्द्रिय, वशिष्ठ गोत्रीय समन्तु नामक एक विद्वान् ब्राह्मण था। उसके भृगुवंशोत्पन्न, सुरूपा, सुचरित्र एवं शील सम्पन्न, सत्य व्रत में स्थित दीक्षा नाम की सती धर्मपत्नी थी। उसकी कुक्षि में बहुत वर्षों के बाद सर्व लक्षण सम्पन्न, शीला नाम की एक सुशीला पुत्री उत्पन्न हुई। वह लड़की अपने पिता के घर में बढ़ रही थी कि इतने ही में दाह-ज्वर से पीड़ित होकर नदी के तीर पर उसकी माता का स्वर्गवास होगया। समन्तु ने उसके पारलौकिक कर्म किये। क्रमसे कालान्तर में सुमन्तु ने उसका शोक और दुःख छोड़ दिया। और वह विचार करने लगा कि-पत्नी के बिना गृहस्थ कहीं धर्म कर्म नहीं कर सकता। इस प्रकार चिंतन करके उसने अपने

मनमें दूसरी बार विवाह करने का निश्चय किया और देवल ऋषि की कर्कशा नाम की कन्या को उसने परिणली। दुर्भाग्य से वह कर्कशा वास्तव में कर्कशा ही थी। दुःशीला, सदा निष्ठुर (कठोर) भाषण करने वाली, क्रोधिनी पति के प्रतिकूल आचरण करने वाली, निर्लज्जा, कलह करनेवाली, घरके सभी कामों में अयोग्य, और अच्छे २ भोजन खाने पीने में बड़ी प्रवीण थी। अब यह शीला नाम की लड़की अपने पिता के घर में दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। अपनी सखियों के साथ बाल क्रीड़ा भी उसकी बड़ी ही उत्तम थी। धूल में स्वस्तिक, पद्म कमल, और शंख आदि मांडती है, एवं कुछ बड़ी होने पर वस्त्रों पर भी उन्ही का कसीदा निकालती है। फिर कुछ सियानी होने पर वह प्रति दिन देवता और अतिथियों का पूजन करने लगी ॥ ३०-३९ ॥

गृहेकृत्ये सदादक्षा पितुरत्यन्त वल्लभा। कालेनकियताविप्रस्तां दृष्ट्वा यौवनोद्गताम् ॥ ४० ॥ कस्मैदेया मयाकन्या इतिचिन्तान्वितोऽभवत्। ततो दैववशात्तत्र कौडिन्यः समुपागत ॥ ४१ ॥ मुनिश्रेष्ठो महाभागः कुलीनो धर्मतत्परः। मनसा चिन्तयामास सुमन्तुः सुतयाः सुधी ॥ ४२ ॥ अस्मैभाग्यवशाच्छीला प्रतिपाद्या प्रेयत्नतः। इति कृत्वा मतिं विप्रो ददौ कन्यां शुभे दिने ॥ ४३ ॥ कन्यामलंकृतां साध्वीं शीलां चन्द्रनिभाननाम्। गृह्योक्त वेद विधिना विवाहमकरोन्तदा ॥ ४४ ॥ ततो होमादिकं कर्म्म समाप्यसमयेमुनिः। सुमन्तुः कर्कशां प्राहजामात्रेदेहि दक्षिणाम् ॥ ४५ ॥ सफलंकुरु मेदानं प्रिये मुनिकुलोद्भवे। दक्षिणा रहितं कर्म्म निष्फलं जायतेयतः ॥ ४६ ॥ सातु तद्वचनं श्रुत्वा कर्कशा कुपिता भवत्। सुमन्तुभर्त्सयामास कर्कशैः वचनैःपतिम् ॥ ४७ ॥ अलंकारं समानीय स्वकीयं चापि बन्धनम्। निक्षिप्य निभृते स्थाने कर्कशान्यगृहंययौ ॥ ४८ ॥

भा० टी०—घर के काम में सदा दक्ष, अपने पिता को अत्यन्त वल्लभ, उस कन्या को कितने कहीं वर्षों के बाद उसके बाप ने यौवन अवस्थागत देखी। देख कर वह ब्राह्मण विचार करता हुआ कि अब यह कन्या किसको दी जावे। इतने ही में वहां दैव वशात् एक श्रेष्ठज्ञानी, महा भाग्यवान, कुलीन, धर्म नियम में तत्पर, कौडिन्य नामक ब्राह्मण आगया। उसको सुयोग्य देख कर विद्वान् तपस्वी सुमन्तु अपने मनमे विचार करने लगा कि–भाग्यवश से आए हुए इसी मुनि को शीला दे देनी चाहिए। ऐसा मनमे निश्चय करके सुदिन आने पर सुमन्तु ने उसी ब्राह्मण को वह कन्या देदी। उसी समय वस्त्राभरणों से अलंकृत चन्द्रमुखी, सतीसाध्वी, शीला का विवाह वेदोक्त विधि से कौडिन्य के साथ करादिया गया। फेरों के बाद यज्ञ होमादि कर्मों की समाप्ती के समय सुमन्तु ने कर्कशा से कि कहा प्यारी! मीन भगवान् की कृपा से हमारे घरमें सब कुछ आनन्द है, अपने जामात को दक्षिणा देकर तुम मेरी लक्ष्मी को

सफल करो ! क्योंकि दक्षिणा वर्जित वैवाहिक कर्म निष्फल होता है। अपने पति के उक्त वचनों को सुनकर वह बड़ी कुपित हुई और कठोर वचनों में अपने पति को फटकारती हुई, समस्त जेवरों को अपनी गांठ में बांध कर एकान्त स्थान में रख गई और स्वयं किसी के घरमें जाकर छुप गई ॥४०-४८॥

सुमन्तुश्चाति दीनात्मा लज्जितश्चा भवत्तदा। यत्किंचदर्थं योग्यंच द्रव्यमानीय- यौतुकम् ॥ ४६ ॥ जामात्रेप्रददौविप्रः परिचर्या पुनः पुनः। ततो विवाहं निर्वर्त्य कौडिन्यो- पिनिजाश्रमम् ॥ ५० ॥ गोयानेतांसमारोप्य शीलामादायवैययौ। ततः सा पथि गच्छन्ती शीलाचन्द्रनिभानना ॥ ५१ ॥ मध्याह्न भाज्य वेलायां सम्रुत्तीर्यसरित्तटे। ददर्श शीला नारीणां समूहं व्रतचारिणाम् ॥ ५२ ॥ पुंसांवृन्दचतत्रैव रक्तपीताम्बरासनम्। चतुर्दश्यामचर्यन्तं भक्त्यानन्तं पृथक् पृथक् ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वा समूह नारीणां सतांपप्रच्छसादरम्। विनया वनतासाध्वी प्रणिपत्यसुरेश्वरम्। किमिदं क्रियते कार्यं भवतीभिस्तदुच्यताम् ॥ ५४ ॥ स्त्रिय ऊचुः—भाद्रेमासेसितेपक्षे उत्थिते वासवध्वजे। आरोधिते महेन्द्रे च ध्वजाकारासु यष्टिषु ॥ ५५ नत्वासरसियः स्नत्वा अनन्तार्चनमारभेत्। कृत्वादर्भमयं देवं वारिवाज- समन्वितम् ॥ ५६ ॥ अनन्तं देवदेवेशः चतुर्बाहुंकिरीटिनम्। अतसीपुष्पसंकाशं कांचनां- गद भूषणम् ॥ ५७ ॥ शंखचक्रगदाशाङ्ग विविधायुधधारिणम्। एद्यहिभगवन्मीनतवयज्ञः प्रवर्तते ॥ ५८ ॥ वारिधान्यांतथानन्तं भगवन्तं नियोजयेत्। मण्डले पुष्पनैवेद्य धूपवस्त्रा- नुलेपनम् ॥ ५९ ॥ दत्वा च पूजयद्भक्त्या अनन्त विश्वरूपिणम्। पिष्टकार्थं व्रीहिचूर्णं यवगाधूमयोश्चवा ॥ ६० ॥ एतेषांप्राप्यतेयत्तु तद्ग्राह्यं प्रस्थसज्ञितम्। अर्द्धं विप्राय दातव्यमर्द्धमात्म नियोजयेत् ॥ ६१ ॥

भा० टी०—उस समय वह सुमन्तु नॉमक ब्राह्मण बड़ा दीन एवं लज्जित हुआ और बाजार से मौल लेकर जवांई को दहेज में देने योग्य कुछ वस्त्राभूषण देकर हाथ जोड़ विदा कर दिया। इसकेबाद विवाह से निवृत्त होकर कौडिन्य भी शीला को बैल गाड़ी में बिठाकर अपने घर को रवाना हुआ। रस्ते चलती हुई चन्द्रमुखी शीला मध्याह्न के समय भोजन के वक्त एक नदी के तट पर उतरी। वहां उसने अनन्त व्रत करने वाली स्त्रियों के समूह को देखा। एवं अलग अलग पूजन करते हुए रक्त पीताम्बरधारी अनेक पुरूषों के वृन्द को भी चतुर्दशी के दिन उसने वहीं देखा। अनन्त भगवान् की मूर्ति को प्रणाम कर उसने बड़ी नम्रता के साथ स्त्रियों के वृन्द को पूछा कहिए यह आप क्या कर रही हो। स्त्रियों ने कहा—हम अनन्त व्रत करके भगवान का पूजन कर रही हैं। उसकी विधि यह है कि इन्द्र ध्वज के

खड़े होने के पश्चात् भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी को जलाशय में स्नान करके अनन्त भगवान का पूजन शुरू करे। जल भरे हुए घट में डाभमयी शेषनाग को स्थापन करके तथा सिंहासन के ऊपर मीन भगवान की मूर्ति विराजमान करके इस मुजिब आह्वान करके कि—अनन्त देव देवेश, चतुर्बाहु, मुकुट-कुण्डलधारी अलसी के फूल के समान वर्ण वाले, कंचन के भूषणों के धारण करने वाले, शंख चक्र, गदा, धनुष आदि आयुधों को धारण करने वाले, हे भगवन् मीन देव आप आइये, यहां आप ही के नाम से यज्ञ हो रहा है। इत्यादि आह्वान करके मण्डल में पुष्प, नैवेद्य, धूप वस्त्र, अनुलेपन आदि देकर विश्व रूप अनन्त भगवान् का भक्ति के साथ पूजन करे। इसके पश्चात् गेहूँ, जो, और चाँवल आदि शुभ धान्य का आटा कम से कम सवासेर लेकर आधा तो ब्राह्मण को दे दे और आधा अपने वास्ते रक्खे जिसके पूवे बनवावे ॥ ४६-६१ ॥

पूजयित्वा तथा देवं गन्धपुष्पैर्यथाक्रमम्। श्रुत्वाकथांततस्य कुंकुंमाक्तं सुडोरकम् ॥ ६२ ॥ चतुर्दशग्रन्थियुक्तं नारीवामकरेन्यसेत्। पुमांस्तुदक्षिणेबाहौ तदानन्तं प्रपूजयेत् ॥ ६३ ॥ निर्वर्त्य पूजां मीनस्य पूपंभुक्त्वा यथासुखम्। विसृज्य दक्षिणांदत्वा प्रणम्य च वशेत्सुखम् ॥ ६४ ॥ शीला श्रुत्वा वचस्तासां यथा ताभि रुदाहृतम्। व्रतंचकारसाबाहौ बद्ध्वाडोरकमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ पूपप्रस्थंचसाकृत्वा भुक्त्वाचैवतथैवच। पुनर्जगामतेनैव गोरथेन समन्विता ॥ ६६ ॥ तेनानन्तप्रसादेन गृहंगोधनसंकुम्। तदाश्रमंश्रियायुक्तं धनधान्यसमन्वितम् ॥ ६७ ॥ विविधातिथिसम्पूर्णं नानारत्नैर्विभूषितम्। वराश्वमत्तमातंग-महिषैर्गोधनान्वितम् ॥ ६८ ॥ शीला च मणिकांचिभिर्मुक्ताभरणभूषिता। दिव्यांगी शील सम्पन्ना सावित्री प्रतिमायथा ॥ ६६ ॥

भा० टी०—सुगन्ध पुष्पादि से भगवान् का पूजन करके फिर कथा सुनना चाहिए। कथा के अन्त में कुंकुम से रंगा हुआ चौदह गांठ का डोरा नारी बांये हाथ में बांधे, नर दाहिने हाथ में बांधे फिर मीन भगवान् का विसर्जन करके गुरु को दक्षिणा देकर प्रणाम करे और प्रसादी का पूआ खाकर अपने घर में सुख से रहे। उन स्त्रियों से इस प्रकार कही हुई विधि को सुनकर शीला ने अनन्त व्रत सहर्ष स्वीकार किया। प्रतिज्ञा पूर्वक उसने उत्तम डोरा अपनी भुजा में बांध लिया। आधा प्रस्थ आटा गुरु को देकर आधे के पूवे बनवाय खाकर वैसे ही वह रथ में बैठकर रवाना हुई और अपने घर पहुँची। अनन्त व्रत के प्रसाद से उसके घर में पशु आदि धन बहुत ही बढ़ गया। धन धान्य आदि नाना प्रकार की लक्ष्मी से उसका घर भर गया बहुत से अतिथि लोग उसके घर आने लगे। नाना प्रकार के रत्न जटित आभूषण, प्रधान २ हाथी, घोड़े, गायें, भैंसें आदि धन उसके घर में माते

नहीं हैं। नाना प्रकार के मणि रत्न जड़े हुए सोने के जेवरों से विभूषित होकर दिव्याङ्गी, शील सम्पन्न, शीला सावित्री के समान सुख से रहती है ॥ ६२–६६ ॥

कदाचिदुपविष्टासा वह्निकुण्डं समागता। कोडिन्योपि विशेत्‍रोषात् दृष्ट्वा डोर मनन्तकम् ॥ ७० ॥ शीलायाः करमूले च बद्धमेवप्रयत्नतः। पप्रच्छ क्रोधवचसा भृकुटी कुटिलं मुखम् ॥ ७१ ॥ किमिदंडोरकं हस्ते बध्वा भार्येऽत्रतिष्ठसि। प्रमेयः कस्य देवस्य दुर्बुद्धे ब्रूहि सत्वरम् ॥ ७२ ॥ शीलोवाच—अनन्तमीन देवस्य प्रमेयं डोरकं शुभम्। करेबद्धं विधानेन शृणु मे वचनं प्रभो ॥ ७३ ॥ प्रसादान्मीनदेवस्य भुंक्तेसु विपुलं धनम्। न जानासि कथंनाथ तदेवंजगदीश्वरम् ॥ ७४ ॥ शीलावाक्यंततःश्रुत्वा कौडिन्यः कुपितो भवत्। कोसावनन्तमीनोवै न श्रुतोऽपिवराननेे ॥ ७५ ॥ इत्युक्त्वाकृष्यकुपितो भुजा-ड्डोरमनन्तकम्। चिप्तं ज्वालाकुलेवह्नौनिर्भत्स्य बहुधाप्रियाम् ॥ ७६ ॥ ततः सा संक्रमा-च्छीलाहाहाकृत्वा प्रधाविता। वन्हेः सूत्रं समादाय चीरमध्येततोचिपत् ॥ ७७ ॥

भा० टी०—एक दिन होमाग्नि कुण्ड के पास आकर शीला बैठी। कौडिन्य भी वहीं बेठा हुआ था। दुर्भाग्यवश अनन्त व्रत का डौरा शीला के हाथ में बंधा हुआ देखकर उसको बड़ा क्रोध हुआ और भृकुटि चढाकर कुटिल मुख से क्रोध वचनों में यों पूछता हुआ यह कौन सा डौरा बांध कर तुम यहाँ उपस्थित हुई हो? हे दुर्बुद्धे स्त्री! तुम जल्दी कहो कि ये १४ गांठे तुमने किस देवता के नाम की लगा रक्खी हैं। शीला बोली–चतुर्दश भुवनों के स्वामी अनन्त नामक जो मीन देव हैं उन्हीं के नाम का यह शुभ डौरा है, इसी को मैंने वेदोक्त विधि विधान के साथ अपने बांये हाथ में बांधा है। अब मैं इसका फल कहती हूँ, हे प्रभो आप मेरे वचन ध्यान से सुने! इन्हीं मीन परमात्मा की कृपा से हम विपुल धन का उपभोग कर रहे हैं। हे नाथ! आप कैसे नहीं जानते वे मीन प्रभु सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर हैं। शीला के यह वचन सुनकर कौडिन्य बड़ा कुपित हुआ और बोला कि यह अनन्त नामक मीन देव कौन हैं? हमने तो आज दिन तक कभी सुना भी नहीं था। ऐसा कह कर उसने क्रोध में ही शीला के हाथ से अनन्त नामक डौरा खोल लिया और स्त्री को अण्ड बण्ड बोलता हुआ उसने वह डौरा जलते हुए अग्नि कुण्ड में डाल दिया यह देख वह शीला संभ्रम सहित हाहाकार करती हुई दौडी और प्रज्वलित अग्नि में से उसने एक दम डौरे को निकाल कर दूध के पात्र में डाल दिया ॥ ७०–७७ ॥

ततस्तया करेवामे पुनर्बद्धं सुडोरकम्। अनन्ताक्षेप दोषेण दारिद्र्यं पतितोगृहे ॥ ७८ ॥ नकैश्चित वणर्तेलाकैः सोपिविप्रो युधिष्ठिर। गात्रे मलिनता प्राप्ता चक्षुनिद्रां

तथैव च ॥ ७९ ॥ शून्यानि गृहरूपाणि दग्धानि वन्हिना क्वचित् । निरीक्ष्य स्वपुरं विप्रश्चिन्तयामास चेतसा ॥ ८० ॥ अथ शीलाविवर्णा सा दुःखिता पतिदोषतः । विचचार पुरीं सर्व्वां शून्यागारसन्विताम् ॥ ८१ ॥ अथ कौडिन्यविप्रस्य संजाता बुद्धिरुत्तमा । ममापि दुष्कृतं कर्म्म कृतं वामे विगर्हितम् ॥ ८२ ॥ अनन्ताक्षेपदोषेण ममापिगतिरीदृशी । अनन्तं यत्र पश्यामि तत्र यास्यामि दुर्म्मतिः ॥ ८३ ॥ ततो जगाम कौडिन्यो वनं व्याघ्रादिसंकुलम् । व्रतस्यान्वेषणंकर्त्तुं पादौ द्रष्टुं तथाहरेः ॥ ८४ ॥ विह्वलः स ययौ मार्गे जन जन्तुविवर्जिते । तत्रापश्यच्च तं वृक्षं फलपुष्पसन्वितम् ॥ ८५ ॥ वर्ज्जितं पक्षिसंघातैः कीटैश्चैव विशेषतः । तमपृच्छत्त्वयानन्तः क्वचिद् दृष्टोमहाद्रुम ॥ ८६ ॥ सचोवाच महावृक्षो-नानन्तंवेद्मि हेद्विज । ततोगच्छन्ददर्शाग्रे तृणमध्येसवत्सिकाम् ॥ ८७ ॥ तृणमध्येप्रधावन्ती न खादति न जिघ्रति । हे महाधेनुके ब्रूहिकिमनन्तस्त्वयेक्षितः ॥ ८८॥ सवत्सा तमुवाचाथ नानन्तं वेद्मि हेद्विज । ततोगच्छन्ददर्शाग्रे वृषश्रेष्ठं वनेस्थितम् ॥ ८९ ॥

भा० टी०—इसके बाद उसने वह डौरा अपने बांये हाथ में पीछा बांध लिया । अब भगवान् अनन्त देव के आक्षेप करने के ही दोष से उस ब्राह्मण के घर में दारिद्र आपड़ा । हे युधिष्ठिर ! अब लोकों में उस ब्राह्मण की कोई तारीफ नहीं करता, उस ब्राह्मण का मुंह आदि सारा ही शरीर मलिन हो गया आलस्य के मारे आँखों से नींद ही नहीं आती । उसका घर लक्ष्मी शून्य हो गया । उसके कई मकान आग से बल गये । सभी लोग अनादर करने लग गए । अपने नगर की यह दशा देखकर वह ब्राह्मण बड़ा ही चिन्तातुर हुआ । पति के दोष से सती शीला भी विवर्ण एवं दुःखित हो गई और गृह शून्य होकर सारे नगर में इधर उधर भटकती फिरने लगी । अब कितने ही काल के बाद कौडिन्य ब्राह्मण की मति सुधरी । स्वनिन्दा करता हुआ वह बोला कि हाय मैंने बड़ा पाप कर्म किया । अनन्त भगवान् पर मिथ्या आक्षेप करने ही के कारण मेरी यह दुर्दशा हुई । अब मैं दुर्मति वहीं जाऊं जहां अनन्त भगवान् हों । ऐसा विचार कर वह ब्राह्मण व्याघ्रादि भयंकर जन्तुओं से भरे हुए एक वन में निकल गया । और पागल के समान होकर अनन्तव्रत को ढूंढ़ता हुआ वृक्ष एवं पशु आदि को पूछता है, तथा वन में हरि के चरण चिह्नों को देखता है । जन शून्य उस वन में उसने एक फल फूल सहित वृक्ष को देखा जिसके ऊपर पक्षिगण और कीटें पतंग भी नहीं आते हैं । उस ब्राह्मण ने उस पेड से पूछा कि हे महाद्रुम ! तुमने कहीं अनन्त भगवान् को भी देखा है ? इतने ही में उस वृक्ष से अवाज आई कि हे द्विज ! मैं नहीं जानता कि अनन्त भगवान् कौन हैं । खैर वह ब्राह्मण वहां से फिर आगे चला, उसने आगे जाकर क्या देखा कि—बछडे सहित एक गाय घास में खड़ी है और

सूंघती है। उसने उससे पूछा–हे गो माता! तुमने कहीं अनन्त भगवान् को देखा है? यह सुनकर उसने जवाब दिया कि हे द्विज! मैं अनन्त भगवान् को नहीं जानती। वहां से फिर वह ब्राह्मण आगे चला और उसने देखाकि आगे एक श्रेष्ठ बैल खड़ा है॥ ७८-८९॥

तमपृच्छदयंविप्रः अनन्तोवीक्षितस्त्वया। वृषभस्तमुवाचेदं विषण्णं ब्राह्मणंप्रति ॥ ९०॥ यद्यनन्तमहंजाने तदा मे गतिरीदृशी। ततोव्रजन्ददर्शाग्रे गर्दभं कुंजरं तथा ॥ ९१॥ नानामायाप्रचरंतं मदगर्जनदर्पितम्। सतंदृष्ट्वाद्विजोऽपृच्छदनन्तंदृष्टवान्किमु ॥ ९२॥ प्रत्युत्तरमुवाचेदं नानन्तंवेद्मि हे द्विज। ततोव्रजन्ददर्शाग्रे रम्यंपुष्करिणी द्वयम् ॥ ९३॥ अन्योऽन्यजलसंघातैर्वीचिभिरुपशोभितम्। शुभैः कुमुदकह्लारैः कमलोत्पलशोभितम् ॥ ९४॥ भ्रमरैश्चक्रवाकैश्च हंसकारण्डवैर्युतम्। तमपृच्छद् द्विजोऽनन्ता भवतीभ्यां च लक्षितः॥ पुष्करिण्यावूचतुस्तंनाजानीवोहरिंक्वचित्। निपपात ततोविप्रा हाहा-कृत्वा रुदन्भुवि॥ ९६॥ किंकरोमि क्वगच्छामि कथं पश्यामि तं विभुम्। ततः कृपालुहृदयो मीनेशोदेवपूजितः ॥ ९७॥ तत्क्षणाद्भगवान्विष्णुर्द्विजप्रत्यक्षमागतः। वृद्धब्राह्मणरूपेण प्रोवाच वचनं द्विजम् ॥९८॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ विप्रेन्द्र त्यजदुःखंसुखीभव। अनन्तंदर्शयिष्यामि मीनं विष्णुं हरिं शिवम् ॥ ९९॥

भा० टी० –वह ब्राह्मण उस बैल से पूछता हुआ कि– तुमने क्या कहीं अनन्त भगवान् को देखा है? यह सुनकर उस खिन्न हुए ब्राह्मण को यह वृषभ बोला कि हे विप्र! यदि मैं अनन्त भगवान को जानता तो फिर क्या मेरी ऐसी दुर्दशा हो सकती थी। इसकेबाद वह ब्राह्मण आगे जाकर एक गधे को और एक हाथी को देखता हुआ जो कि नाना प्रकार की माया प्रपंच करते हुए मदगर्जित और दर्पित होकर इधर उधर घूमते फिरते थे। ब्राह्मण ने उन्हीं से भी पूछा कि क्या आप लोगों ने कहीं अनन्त भगवान् को देखा है? प्रत्युत्तर में उन्होंने भी यही कहा कि हम अनन्त भगवान् को नहीं जानते। इसके पश्चात् वह आगे जाकर रमणीय दो पुष्करिणी (बावड़ि) यों को देखता हुआ जो कि जल से भरी हुई और ननाप्रकार की तरंग, शुभ कमल, भ्रमरगण और पक्षिगणों से सुशोभित थी। ब्राह्मण ने उन्हीं से भी पूछा कि क्या आपने कहीं अनन्त भगवान् को देखा है। पुष्करिणियों ने भी यही जवाब दिया कि हम हरिको कहीं भी नहीं जानती हैं। यह सुनकर वह ब्राह्मण हा हा करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा और रोने लगा और कहने लगा कि अब मैं क्या करूं कहां जाऊं और उस विभु को कैसे देखूं। इतने में तो उसी क्षण वह कृपालु हृदय वाले, देव पूजित मीन भगवान्, वृद्ध ब्राह्मण के रूप से उसी ब्राह्मण के प्रत्यक्ष हुए। और उस ब्राह्मण से वह विष्णु भगवान यों बोले कि–हे विप्रेन्द्र

उठो चलो मैं तुमको मीन, विष्णु, हरि एवं शिव स्वरूप अनन्त भगवान का दर्शन कराऊं। अब तुम सर्व दुःखों को छोड़कर सुखी हो ॥ ९९ ॥

ब्राह्मणं तं समादाय पातालवर्त्मनापुरीम्। मीनस्य दर्शयामास ततश्चान्तर्द धे द्विजः ॥ १०० ॥ स तां ददर्श कौडिन्यः पुरीं त्रैलोक्यदुर्लभाम्। दिव्यनारीनरैर्यु क्तां मणिरत्नविभूषिताम् ॥ १०१ ॥ सुवर्णरचितांसर्वां वेष्टितांतक्षकादिभिः। तत्रापश्यत्स कौडिन्यो मीनदेवमनन्तकम् ॥ १०२ ॥ विश्वरूपंजगन्नाथं चतुर्बाहु किरीटिनम्। शंखचक्र-गदापद्मधारिणं गरुडध्वजम् ॥ १०३ ॥ दक्षिणेविलसल्लक्ष्मीं वामेक्रीडत्सरस्वतीम्। सप्तफणासमायुक्तं दिव्यसिंहासनेस्थितम् १०४ ॥ एवंरूपंजगन्नाथं दृष्ट्वाभक्त्यास्तुतिः कृता। जगामभूमौशिरसा अनन्तस्यसमीपतः ॥ १०५ ॥ नमोस्त्वनन्तायसहस्रमूर्त ये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे। सहस्रनाम्ने पुरुषायशाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणेनमः ॥ १०६ ॥ अज्ञाननमया देव यत्कृतंपापकर्म्मणा तत्सर्वंकृपयाशसक्षमस्व मधुसूदन ॥ १०७ ॥

भा० टी०--वह वृद्ध ब्राह्मण उस कौडिन्य ब्राह्मण को पाताल के मार्ग से ले जाकर मीन भगवान की दिव्य नगरी का दर्शन कराता हुआ और उसी क्षण अन्तर्धान होगया। कौडिन्य उस त्रैलोक्य दुर्लभ नगरी को देख कर आश्चर्य चकित होगया जो दिव्य नगरी युक्त, मणि रत्न विभूषित सुवर्ण मणिमय सर्वधर, सर्व ओर से सुवर्णमय कोट से वेष्टित और तक्षक आदि नगरों के द्वारा सुरक्षित थी। उस नगरी के बीच राज्य सभा में कौडिन्य ब्राह्मण अनन्त नामक मीन भगवान् को देखता हुआ। कैसे हैं वे मीन भगवान--विश्वरूप, जगन्नाथ, शिरपरमुकुटयुक्त, शंखचक्रगदा और पद्म को धारण करने वाले। गरुडवाहन, दाहिनी तरफ लक्ष्मीजी और बांई बाजू सरस्वतीजी कर सुशोभित, सप्त फण संयुक्त, दिव्य सिंहासन पर विराजित, इस प्रकार जगन्नाथ मीन भगवान् को देख कर कौडिन्य को अपार आनन्द हुआ और उनके समीप जाकर जमीन पर शिर टेक कर भक्ति के साथ इस प्रकार से स्तुति करता हुआ। सहस्रों मूर्तिवाले अनन्त भगवान को मेरा नमस्कार हो। सहस्रों पाद (पैर) वाले सहस्रों शिर, जांघे एवं सहस्रों नामों वाले, सहस्रों कोटि युगों को धारण करने वाले, शाश्वत पुरुषों को मेरा नमस्कार हो। हे देव अज्ञानपन से मुझ पाप कर्मी ने आपके जितने भी अपराध किये हैं वे सब हे मधुसूदन कृपाकरके क्षमा करिये ! ॥ १००--१०७॥

अथ कौडिन्यविप्रस्य स्तुतिश्रुत्वा जनार्दनः। प्रसन्नोभगवान्देवश्चानन्तोऽनन्तरूप-धृक ॥ १० ॥ तुष्टोहं ब्राह्मणश्रे ष्ठ भक्त्यातवविशेषतः। वरंगृहाणविप्रेन्द्र क्षमाभि त्यज विस्मयम् ॥ १०९ ॥ कौडिन्य उवाच--स्वकर्मफलभोगेन यां यां योनिंव्रजाम्यहम्।

तस्यां तस्यां हृषीकेश हरिभक्तिदृढास्तु मे ॥ ११० ॥ अतिप्रमादान्मोहाद्वा यन्मयादुष्कृतं कृतम् । तदागः चम्यतांच प्रणमामि पुनः पुनः ॥ १११ ॥ श्रुत्वानन्तस्तुतद्वाक्यं ददौतस्मै वरंत्रयम् । दरिद्रनाशनंधर्मं विष्णुलोकं तथात्तयम् ॥ ११२ ॥ कौडिन्य उवाच—पूर्णोमनोरथोदेवैं ममचाद्यविशेषतः । किंचित्पृच्छामिमीनेश तन्मेब्रू हिजगत्पते ॥ ११३ ॥ कश्चूतः कोवृषः कागौ किंतत्पुष्करिणीद्वयम् । कः खरः कुंजरः को वा कोवा वृद्धद्विजोत्तमः ॥ ११४ ॥ कृपयाकथयस्वाद्य पथिदृष्टोमयाविभो । श्री अनन्त उवाच—यश्चाम्रवृक्षोदृष्टोहि विप्रोविद्यासुगर्वितः ॥ ११५ ॥ उपस्थिताय शिष्याय विद्यांयस्मान्न दत्तवान् । तेन कर्म्म विपाकेन वृत्तत्वंप्राप्यतिष्ठति ॥ ११६ ॥

भा० टी०—कौडिन्य विप्र की स्तुति सुनकर अनन्त रूप धारण करने वाले जनार्दन अनन्त भगवान् मीन देव प्रसन्न हुए और बोले कि हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तुम्हारे द्वारा भक्ति के साथ की गई स्तुति को सुनकर मैं अति प्रसन्न हुआ । मैंने तुम्हारा सभी अपराध माफ किया । अब तुम खेद और विस्मय को छोड़ कर वरदान मांगो क्या चाहते हो ? कौडिन्य बोला हे नाथ ! अपने कर्मों के अनुसार मैं जहां २ जिसर योनि में जाऊं वहां २ आपके चरणों की दृढ़ भक्ति मेरे हृदय में सदा बनी रहे बस मैं यही चाहता हूँ और अति प्रमाद एवं मोह के वश में आकर मैंने आपकी अवज्ञा की जो २ पाप कर्म किये उन्हीं को मैं आपसे बारम्बार क्षमा याचना चाहता हूं । इत्यादि उस ब्राह्मण की प्रार्थना को सुनकर श्री मीन भगवान् ने उसको तीन वरदान दिए । १—दारिद्रनाश २—निर्विघ्न सनातन धर्म और अक्षय विष्णु लोक । यह सुनकर कौडिन्य ब्राह्मण अति प्रसन्न हुआ और बोला कि हे मीनेश ! हे जगत्पते मैं आपसे कुछ पूछता हूँ कि मार्ग में मुझको जो आमका वृक्ष मिला वह कौन था ? कृपा करके मुझको आप बताइये । श्री अनन्त भगवान बोले कि हे ब्राह्मण तुमने जो आम का वृक्ष देखा वह तो विद्या का अति अभिमानी एक ब्राह्मण था । जिसने अपने शिष्यों को उनकी अच्छी योग्यता के होने पर भी विद्या नहीं पढ़ाई थी । उसी कर्म विपाक के वश मृत्यु को प्राप्त होकर वह आम के पेड़ पने में आकर उत्पन्न हुआ जंगल में रहता है ॥ १०८-११६ ॥

वृषभोयस्त्वयादृष्टो लोभकर्म कृतः पुरा । दर्पयुक्तिं द्रव्यं स्वादुभुक्तं स्वयंयतः ॥ ११७॥ वृषभत्वंसमासाद्य तनस्तिष्ठति निर्जने । त्यक्त्वामार्गेसुमीनानां निर्मलं देव दुर्लभम् ॥ ११८ ॥ विप्राय वसुधांदत्वा निष्फलांशस्यवर्जिताम् । तेनासौगोत्वमासाद्य तृणमध्ये प्रधावति ॥ ११९ ॥ धर्माधर्मौविजानीयाद्यत्तत्पुष्करिणीद्वयम् । गर्दभोऽज्ञानसम्पन्नः कुंजरो मदगर्वितः ॥ १२० ॥ ब्राह्मणःसावनन्तोऽहं यस्त्वयादर्शितामुने । एतत्तेकथितंसर्वं गच्छ

विप्र निजाश्रमम् ॥ १२१ ॥ पुनः समृद्धिस्तेविप्र भविष्यतिनसंशयः । भुक्त्वाभोगांश्चविपुला-न्संप्राप्स्यसिमहत्पदम् ॥ १२२ ॥ इतिदत्वावरं तस्मै तत्रैवान्तरधीयत । कौडिन्योपि गृहं गत्वा करोति व्रतमुत्तमम् ॥ १२३ ॥ अनन्ताख्यंमहापुण्यं वर्षाणाश्चतुर्दशम् । शीलयासह धर्मात्मा सुखंभुक्त्वा मनोरथान् ॥ १२४ ॥ विष्णुलोकंसमासाद्य रराज शीलयासह । अनन्ता-ख्यव्रतेनेह समाप्तेनैवपार्थिव ॥ १२५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता यास्यन्तिपरमांगतिम् । एव-मेवं हि नियमात्स्त्रियोनन्तव्रतान्नृप ॥ १२६ ॥ पुत्रपौत्रधनैर्युक्तौ भुक्त्वाभोगान्मनोरथान् । मीनलोकमवाप्नोति यावचन्द्रदिवाकरौ ॥ १२७ ॥ शीलादेविस्तुविप्राणामाराध्या कुलदे-वता । मीनदेशांऽग्रपुरेऽद्यापि पूज्यतेमीनकच्छपैः ॥ १२८ ॥ उपासकानांकार्य्यार्थं कीर्तिता पञ्चदेवताः । शक्तिः शिवस्तथासूर्यो गणेशोविष्णुरेव च ॥ १२९ ॥ अशेषविघ्ननाशाय भक्तिश्रद्धासमन्वितः । नित्यंशुद्धद्रव्येणैव पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥ १३० ॥ नकर्तव्यो स्वयं हिंसा प्रवृत्तां च निवारयेत् । जीवितंबलमारोग्यं शश्वद्वांञ्छन्महीपतिः ॥ १३१ ॥ या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेणसंस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥ १३२ ॥ इति श्री मीनपुराणे द्वितीयस्कन्धेऽष्टविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

भा० टी०—बैल तुमने जो देखा पूर्वभव में उसने लोभ में आकर स्वादिष्ट भोजन तो स्वयं खालिया और बासी भोजन साधु को दे दिया था। इसी कारण से मीन भगवान् के उपासकों का देव दुर्लभ निर्मल सुमार्ग को छोड़कर बैल की पर्याय को प्राप्त होकर वन में रहता है। और तुमने गाय को देखी उसने पहिली के भव में गुणी ब्राह्मणों को धान्य की उत्पत्ति के अयोग्य निष्फल ऊषर भूमि का दान किया था अत एव अब वह गोत्व को प्राप्त होकर जंगल में इधर उधर घूमती है उसको पेट भर घांस भी नहीं मिलता। आगे शुभाशुभ जल से भरी हुई तुमने जो २ बावड़ियें देखी वे धर्म और अधर्म हैं। गर्दभ जो देखा वह अज्ञान है। हाथी जो देखा वह अभिमान का फल है। इनके बाद बूढ़ा ब्राह्मण तुमने जो देखा वह तुमको मार्ग बताने वाला एवं मेरे पास लाने वाला स्वयं मैं अनन्त ही हूं। यह सर्व भेद मैंने तुमसे कह दिया अब तुम अपने आश्रम को जाओ और सुख से रहो। मेरी कृपा से फिर भी तुम्हारे सभी प्रकार की समृद्धियां होंगी और विपुल भोगों को भोग कर मेरे ही महान्पद को पाओगे इसमें कोई संशय नहीं है। इस प्रकार वरदान देकर श्री मीन भगवान वहीं अन्तर्धान हो गये। कौडिन्य ब्राह्मण भी वहां से अपने घर जाकर उत्तम अनन्त व्रत की आराधना करता हुआ। श्री भगवान् कहते हैं कि हे पार्थिव! शीला सहित उस धर्मात्मा कौडिन्य ब्राह्मण ने १४ वर्षों तक महापुण्य स्वरूप अनन्त व्रत की आराधना की जिससे वे दोनों मनमाने सुखों को भोग कर अन्तमें विष्णुलोक को प्राप्त

हुए। इसी प्रकार जो कोई स्त्री अनन्त नामक व्रत को करती है—वह सर्व पापों से रहित होकर मुक्ति को पाती है। शीला के ही समान जो कोई मनुष्य सविधि अनन्त व्रत की आराधना करे वह भी धन धान्य पुत्र, पौत्रादि सहित मन वांछित भोगों को भोगकर सदा के लिए मीन (विष्णु) लोक में निवास करता है। अनन्तव्रत की आराधना करने के ही कारण सती शीला देवी ब्राह्मण जाति मात्र की परम आराध्या कुल देवी मानी गई जो आज भी मीन देशान्तर्गत 'आमेर' नामक नगर में मीना राजपूत और कच्छवाह राजपूतों के द्वारा पूजी जाती है। क्योंकि उपासकों की इष्टसिद्धि के लिए शक्ति, शिव, सूर्य, गणेश और विष्णु ये पांच देव माने जाते हैं। श्री भगवान् कृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे युधिष्ठिर ! समस्त विघ्नों को नष्ट करने के लिए भक्ति और श्रद्धा के साथ सदा पुष्प, धूप, दीप नैवेद्य आदि शुद्ध (पवित्र) द्रव्यों से ही शक्तिरूपा परमेश्वरी शीला देवी का पूजन करना चाहिए, किन्तु मद्यमांसादि अशुचि पदार्थों से कभी नहीं। जीवितव्य, बल एवं आरोग्य आदि सुखों को चाहने वाले राजे महाराजों को भी चाहिए कि देवी देवताओं के नाम पर स्वयं किसी भैंसे बकरे आदि प्राणियों की हिंसा न करें और यदि पहले के लोगों की अज्ञानता के कारण किसी देवी देव के स्थान पर पशुओं के बलिदान के नाम से जो हिंसा होती हो हुक्म देकर उसको सदा के लिए बन्द करावें। क्योंकि जगदम्बा भगवती तो सर्व प्राणीमात्र के अन्दर दया रूप से सदा निवास करती हैं उसको निरपराधी अपने पुत्रों की हिंसा पसन्द नहीं है। उस देवी को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं ॥ ११७-१३२ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवन्मीनपुराणे द्वितीयस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ २८

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायप्रारम्भः ॥ मुनय ऊचुः—मीनवंशीयभूपानां गोत्रर्षि प्रवराणि च। श्रोतुमिच्छामहेसूत शाखाभेदसुविस्तरम् ॥ १ ॥ सूत उवाच–मीनस्योपासकाः मैनाः मीनोदेवमहेश्वरः। विष्णुर्ब्रह्मासर्वभूतात्मा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ २ ॥

भा० टी०—अब २९ वाँ अध्याय शुरू होता है। इसमें मीन क्षत्रियों के गोत्र प्रवर आदि का वर्णन है। मुनि जन बोले–हे सूतजी अब मीन भगवान् के वंश में उत्पन्न हुए सभी मीन क्षत्रियों के गोत्र (प्रसिद्ध पुरुष के नाम से पड़ा हुआ सारे कुल का नाम) ऋषि (करने योग्य कर्मकाण्ड को जताने वाले सूत्रों का कर्त्ता आचार्य) प्रवर (सन्तान एवं गोत्रों के चलाने वाले पुरुषों का समूह) शाखा (वेद विभाग और वेद विस्तार) भेद (एक का दूसरे में न होना) हम सुनना चाहते हैं ये सब आप विस्तार से कहिए। सूतजी बोले–हे मुनि जनो ! मीन भगवान के उपासक (सेवक) क्षत्रियगण मैना वा मीना कहलाते हैं। महादेव, विष्णु और ब्रह्मा इन तीनों ही देवों को मीन शब्द में लिया जाता है ॥ १–२ ॥

जलेस्थितोमहाविष्णुर्मीनः प्रोक्तोमनीषिभिः। सएवासीनिदं विश्वं कल्पान्तेऽन्यंचकिञ्चन ॥ ३ ॥ तस्य नाभेः समभवत्पद्मकोशोहिरण्मयः। तस्मिञ्जज्ञेमहामीनः स्वयंभूश्चतुराननः ॥ ४ ॥ ब्रह्मणोमानसाः पुत्राविदितापण्महर्षयः। मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ ५ ॥ दक्षस्त्वजायताङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्भगवान्नृपः। ब्रह्मणः पृथिवीपालो मीनदेवो महातपाः ॥ ६ ॥ वामादजायताङ्गुष्ठाद्भार्या तस्यैमहात्मनः। तस्यांपञ्चशतंकन्याः सएवाजनयन्नृपः ॥ ७ ॥ ताः सर्वास्त्वनवद्याङ्गः कन्याः कमललोचनाः। पुत्रिकास्थापयामास नष्टपुत्रप्रजापतिः ॥ ८ ॥

भा० टी०—परन्तु यहां पर सृष्टी के बीज रूप जलशायी विष्णु भगवान को ही पण्डितों ने मीन कहा है। क्यों कि मनुष्य सृष्टि के पूर्व काल में यह सम्पूर्ण जगत तद्रूप याने मीन स्वरूप ही था। अन्य कुछ नहीं था। उस समय बीज रूप से जलान्तर्गत विष्णु भगवान की नाभी से एक सुवर्णमय कमल कोश प्रगट हुआ उस कमल में से वही महा मीन भगवान चतुर्मुख ब्रह्मा के रूप में उत्पन्न हुए। उस ब्रह्मा के अंग से मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य पुलह और क्रतु ये छः मानस (मनुष्य) पुत्र उत्पन्न हुए। इन्हीं में ब्रह्मा के दांयें अंगूठे से महातपस्वी भगवान मीनदेव के अंशावतार, पृथ्वीपाल प्रजापति दक्षजी उत्पन्न हुए। एवं उन्हीं ब्रह्मा के बांये अंगूठे से दक्ष की भार्या पांचजनी उत्पन्न हुई उसमें प्रजापति दक्ष ने पांच सौ कन्याएं उत्पन्न की। कमल के तुल्य नेत्रवाली वे सभी कन्याएं बड़ी सुन्दरी थीं। पुत्र के अभाव के कारण प्रजापति दक्ष ने उन सभी कन्याओं को पुत्रि का धर्म याने प्रथम पुत्र को स्वयं ले लेने की प्रतिज्ञा से विभिन्न प्रजापतियों को दान दी थी ॥ ३-८ ॥

मीना मेना तथा वृत्ता अनुवृत्ता तथैव च। परिवृत्ता च विज्ञेया तासांनामान्यनेकशः ॥ ९ ॥ अदितिश्चदितिर्दनुः कालादनायुसिंहिकाखशा। क्रोधाचाग्नि च विश्वा च वीनता कपिलामुनिः ॥ १० ॥ कद्रुश्चविधिनादत्ता कश्यपाय अनेकशः। मरीचेः कश्यपपुत्रः कश्यपस्य सुरासुराः ॥ ११ ॥ जज्ञिरे मुनिशार्दूल मीनानांप्रभवस्तुसः। तस्माद्धै मीनभूपाला कश्यपाः परिकीर्त्तिताः ॥ १२ ॥ पुत्रशतं तु मीनायां कश्यपस्यमहात्मनः। तेषांपुत्रसहस्राणि अभूवन्नु वि विस्तरः ॥ १३ ॥

भा० टी०—दक्षजी ने कश्यजी को ज्यों ज्यों कन्याएं दी, उन्हों में मुख्य २ के नाम ये हैं। मीना, मेना, वृत्ता, अनुवृत्ता, परिवृत्ता, अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु सिंहिका, खशा, क्रोधा, अग्नि, विश्वा, विनता, कपिला, मुनि, कद्रु आदि अनेक कन्याएं व्याह की विधि पूर्वक कश्यपजी को दी गई

थी। मरीचि के पुत्र कश्यपजी हुए और कश्यपजी के उक्त रानियों से सुर, असुर मनुष्य आदि सहस्रों पुत्र उत्पन्न हुए। हे मुनि शार्दूलो! मीन क्षत्रियों के आदि उत्पादक भी तुम उन्ही कश्यप जी को जानो। महात्मा कश्यपजी के मीना नामक स्त्री में एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए, फिर उन्हों के सहस्रों पुत्र पौत्र आदि हुए जिन्हों का सम्पूर्ण भूमि पर वंश विस्तार हुआ। वे सभी मीन भूपाल गण कश्यप गोत्रीय नाम से प्रसिद्ध हुए॥ ९-१३॥

सहस्रे तु गतेवर्षे ये जातामीन भूभृताः। तेषां नामेन गोत्राणि संक्षेपात्कथयामि
ते॥ १४॥ ज्येष्ठस्य जेठवाज्ञेयाः कलस्यतु कलावताः। मुण्डस्य मुण्डियामीनाः सलस्य
तु सलावताः॥ १५॥ राजराजस्य राजोराः व्रजस्य व्रजडावताः। चण्डदेवस्य चण्डेला
बूजस्य तु बूजेटियाः॥ १६॥ चयराजस्यचैराडाः पुष्करापुष्करश्य च। वाणदेवस्यवाणोता
बोयाद्बोयनराधिपाः॥ ११७॥ महाराजस्य माहोत्था भल्लोताभल्लकस्यवै। भूडकाः भूडदे-
वस्य कुम्भस्य तु कुम्भावताः॥ १८॥ हटचूराः हटचूरस्य मौडजामौडकस्यवै। सिद्धमा
सिद्धराजस्य जाटलाः जटलस्य च॥ १९॥ उषाराजस्य ऊषाराः कूकडाः कुर्कटस्यवै।
मयराजस्य मायालाः कीकटा कीकटस्यवै॥ २०॥

भा० टी०—ज्येष्ठ राज के वंशज जेठवा राजपूत कहलाए जो पड़िहारों की एक शाखा है। कालराज के वंशधर कालवा, कालोत्त, कलावत, कालावत कहलाए। मण्डराज के वंशधर मंड, मण्डोत मण्डावत, माण्डावत, मुण्डिया, माण्डया कहलाए जिन्होंने मण्डोर नगर बसाया था। सलराज के वंसधर सालोत्त, सलावत, सालावत कहलाए। राजदेव के वंशधर राजोरा, राजावत, राजोत, राजपत कहलाए। व्रजजरा वंशधर व्रजवंशी, व्रजरावत, बजड़ावत कहलाए। चण्डदेव के वंशधर चण्डेल, चन्देल चण्डावत कहलाए। बूजराज के वंशज बूजेटिया बूजराजोत कहलाए। चयराज के वंशधर खयराड़ा, खराड, चयराजोत, चयखा, चारेड कहलाए। पुष्कराज के वंशधर पुष्करिया, पोहकरिया, पुष्करण कहलाए। वाणदेव के वंशधर वाणेत, वाणावत, वाणराजोत, कहलाए। बोयराज के वंशधर बोया, बोयरा बोरिया, बोहरा कहलाए। महाराज के वंशधर, माहोत्थ महाराजोत, महरा, महरात, महाराव कहलाए। भल्लराज के वंशधर भल्लोत, भल्लावत, भालोत, भल्ल कहलाए। भूडराज के वशधर भूडका, भूडा, भूडावत भूडोन, भूरा कहलाए। कुम्भराज के वंशधर कुम्भावत, कुम्भाणी, कुम्भराजोत, कुम्भराजिया, कुम्भरावत कुम्भारिया कहलाए। हटचूर देव के वंशधर हटचूर हडचूर, हाडा, हाडाणी, हाडवत कहलाए। मौड़कराज वंशधर मौडजा, मौड मौडजवाल, मौडजाल कहलाए। सिद्धराज के वंशधर सिद्धमा, सिद्धा सिद्धाणी सिद्धराजोत कहलाए। जटलदेव के वंशधर जाटल, जाटोत, जाट, जाटवा, जाटव, जटरावत, जाटिल, झांटिल, झांटिवाल कहलाये। ऊषाराज के वंशधर ऊषारा, ओपारा, ऊषावत, ऊषाणी, ऊषवाल, ऊषरा,

कहलाए। कुर्कटराज के वंशधर कूकडा, कूकडोत, कोकाणी कहलाये। मयराज के वंशधर मयाल, म्याल मायाल कहलाये। कीकटराज के वंशधर कीकटा, केकट, केकाणी कहलाये॥ १४–२०॥

मृगालाः मृगराजस्य मण्डराजस्य माण्डलाः। ऊष्ट्राचोष्ट्रपालस्य वायुवेगात्तु वावलाः ॥ २१ ॥ खाद्यराजस्यखादेलाः प्रबलाः प्रबलस्य च। भालूराजस्यभालोत्ताः गर्जणाः गर्जणस्यवै ॥ २२ ॥ मीनराजस्यमीनोत्ताः कच्छपा कश्यपस्यवैः। गुहलोटस्य गैलोत्ताः दण्डाचादण्डकस्यवै ॥ २३ ॥ मोटेशस्यायाथ मौटीशाः बालोता बालकस्यवें। बडाः वैवृद्धराजस्य छुल्लकाः चुल्लकस्य च ॥ २४ ॥ दर्भस्यवंशजा डाभीः सूर्या सूर्यस्य वंशजा सोमवंशोद्भवामीनाः सामावैपरिकीर्तिताः ॥ २५ ॥ चापदेवस्य चात्रोड़ाः विरुद्धा डिरुद्धावताः। मैनालाः मैनराजस्य नानूदेवस्यनानणाः ॥ २६ ॥

भा० टी० —मृगराज के वंशधर -मृगाला, मृंगाली, मींगाली, मयंगला, और मंगोतक० मण्डराज के वंशधर–मण्डला, माण्डल, माण्डलिया, मण्डलीक, मण्डलावतक। उष्ट्रपाल के वंशज–उष्ट्रा, ऊंटडिया, ऊंटपालोत कहलाए। वायुवेगसे वावल, बावेल, वायला, बावला, बाऊल कहलाए। खाद्यराज के वंशधर खार्द्याला, खादिया, खाजेला, खाजला, खाजाणी, खाजोत, खजलाणी कहलाए। प्रवलराज के वंशधर—प्रवल, प्रवली प्रवड़ी कहलाये। भालूराज के वशधर भालोत, भल्लोत, भालाणी, भल्ल, वल्ल कहलाए। गर्जणदेव के वंशज गर्जणा गाजण, गाजिया, गाजाणी, गाजी कहलाये। मीनराज के वंशधर मीनोत्त मीनाणी, मीना, मीणा कहलाये। कश्यपजी के वंशधर कश्यपा, काश्यपा, काशवा, कासवा, कच्छपा कच्छावा कहलाए। गूहलोटजी के वंशधर गुहलोट, गूहलोट, गहलोत गैलोत कहलाए। दण्डकराज के वंशधर दण्डाचा, दडाचा, दण्डी, दण्डावत कहलाए। मोटेश के वंशधर मोटीश, मोठीश, मोटा मोटाणी कहलाए। बालकराज के वशधर बालोत, बालावत, बालाणी, बाली कहलाये। वृद्धराज के वंशज वृद्धावत, वृद्धा, वड़ा, वड़रे वड़ेरवाल कहलाए। चुल्लराज के वंशज छुल्लक, छोलक, खुलक, खालक कहलाए। दर्भराज के वंशज डाभी, डाबी कहलाये। सूर्यदेव के वंशज सूर्यवंशी सौरी, सूर्या कहलाये। सोमदेव के वंशज सोमा, सोमवंशी कहलाये। चापदेव के वंशज चावड़ा, चापोत्कट, चापड़ा, चापावत छावड़ा, विरुदराज के वशज-- विरुदावत, विडुदावत, विड़दावत, कहलाये। मैनराज के वशज मैनाला, मीनाला, मैनावत, मीनोत कहलाये। नानदेव के वंशज--नानण, नानणिया, नानणोत कहलाये॥ २६॥

राष्ट्र राजस्य राठौराः धनपालाद्धनपालकाः। सिन्दावैसिन्द राजस्य मिहरस्य तु मेहराः ॥ २७ ॥ शैलराजस्य शैलाराः शूलाला शूलकस्य वै। देवला देवराजस्य मटस्य माटभूभुजाः ॥ २८ ॥कृपालस्य तु कृपालाः चन्दना चन्दनस्यवै। मात्स्येयाः मत्स्यराजस्य

धूमराजस्य धौमरा ॥ २८ ॥ जम्बूराजस्य जाम्बूराः कुम्भस्य च कुम्भावताः । वृन्दराजस्य वृन्दाडाः जैफाज्जैफनराधिपाः ॥ २९ ॥ शैवरा शिवराजस्य व्याघ्रदेवस्य बाघलाः । सोढा वै साढ देवस्यं मेघराजस्य मेहराः ॥ ३० ॥ अंशुमाले रंशुज्ञेया दुर्गपालस्य दुग्गडाः । इत्येव मादयो भूपाः सर्वे आदि निवासिनः ॥ ३१ ॥

भा० टी०- राष्ट्रराज के वंसज-राठोर, रायठोर, राष्ट्र, रट्टपाल, राष्ट्रकुट, रट्टउड, राठी क० । धनपाल के वंशज धनपाला, धनपालोत, धान्यपाल, धान्यपालक क० । सिन्धराज के वंशज सिन्दा, सिन्द्रिया, सैन्धा, सिन्दु, हिन्दू क०। मिहिर देव के वंशज मेहर, मेर, महीहर, मिहर, मैहर, महर, मिहिर क०। शैलराज के वंशधर—शैलरा, शिलारा, शैलावत, शौलोत-क०। शूलराज के वंशज—शूलाला, सूलावत, सुलावत, सूलाणिया क०। देवराज के वंशधर—देवला, देवड़ा, देवराजोत, देवाणिया, देवांदा क०। मटराज के वंशधर— माट, माटोत, माटावत क०। कृपालजी के वंश वाले— कृपाला कृपलाणी, कृपालोत, कृपालिया क०। चन्दन राज के वंश धर—चन्दना, चन्दनावत, जन्दाणी, चन्दा क ०। मत्स्यदेव के वंशधर—मत्स्यं या, मत्स्यदेवा, मत्स्यराजोत, मत्सीया, मच्छिया, माच्छी क ० धूमराज के वंशज –धौमरा, धुमाणिया, धूवांणिया, धूमोणिया, धामोणिया, धावणिया क ०। जम्बूराज के वंशज—जाम्बूरा, जम्बूरा, जाम्बूणिया क ०। कुम्भराज के वंशज—कुम्भावत, कुम्भराजिया, कुम्भाणिया क ० वृन्दराज केवंशज—वृन्दाड़ा, वृन्दावत, वृन्दाणी, वैन्दाड़ा, वैन्नाड़ा क ०। जयफराज के वंशज –जैफ, जेफ, जफावत क ०। शिवराज के वंशधर—शैवरा, शैवराजोत, शिवराजोत, शिवराणा, शिवाणी क ०। व्याघ्रदेवजी के वंशधर—वाघला, बाघला, वाघोला, वाघोड़ा, वाघाणी, क ०। सौठदेव के वंशज –सौढ़ा, सौढाणी, सौढी, सौरी, सौडी क ० मेघराज के वंशज—मेघा, मेहर क ० अंशुमाली के वंशधर—अंशु, अंशूमालाणी, अंशुमाली क ०। दुर्गपालजी के वंश वाले—दुर्गपालोत, दुर्गावत, दुर्गाणी, दुग्गड़ क ०इत्यादि ये सभी भूपालगण भारत के आदिमनिवासी एवं मीन भगवान्के उपासक मैना वामीना नाम से प्रसिद्ध है।।२६-३१।।

शाखामैनीसमाख्याता सर्वे ते ब्रह्म क्षत्रियाः । गोत्रं तु कश्यपं तेषां कुलं मीन मुदाहृतम् ॥ ३२ ॥ मरीचिः कश्यपो दक्षः सर्वेषांप्रवरास्त्रयः । स्थापयन्ति च गोत्राणि येषां विप्राश्च याजकाः ॥ ३३ ॥ काश्यपश्चैव शाण्डिल्यः वात्स्यः सावर्णकस्तथा । भरद्वाजोगौतमश्च वासुकी दक्षरोहितः ॥ ३४ ॥ गौकालीनोथ मारीचःकृष्णात्रेय वशिष्ठकौ । कल्किस्तथाग्निवेश्यश्य कोडिन्यो गर्ग हारितः ॥ ३५ ॥ विश्वामित्रः कुशिकश्च काणवायणो पराशरः । काञ्चनाविष्णुमीनश्च आलम्यानो बृहस्पति ॥ ३६ ॥ सौपायनस्य मौद्गल्यः

उपदिश्य शिवज्ञानं सायुज्यंचददात्यपि । सुरापाना युतं चापि स्वर्णस्तेयायुतंतथा ॥ ५५ ॥ नश्यंति तत्त्वणादेव चतुर्दश्यांमहालयात् । चंडालवृषली स्त्रीणां संगदोषोपि नश्यति ॥५६॥ अश्वमेध सहस्रस्य पौंडरीकायुतस्यच । पुष्कलाफल सिद्धिः स्याच्चतुर्दश्यांमहालयात् ॥५७॥ लक्षकोटि सहस्राणि लक्षकोटि शतानिच । कल्पानि पितरस्तस्य तृप्यंत्येवन संशयः ॥५८॥ नरकस्थाश्च पितरः स्वर्गंयांति प्रहर्षिताः । संततिंचाप्यविच्छिन्नादद्युः पितृगणास्तदा ॥५९॥ अमायांतुनरोभक्त्या श्राद्धं कुर्यान्महालयम् । पितृणांतस्य तृप्तिः स्यादनन्ता नात्रसंशयः ॥ ६० ॥ सुधामास्वादया तृप्तिर्देवानां दिविवैभवेत् । अनंतातादृशी तृप्तिरमावास्यांमहालयात् ॥ ६१ ॥ शांता ह्येषातुपरमा शिवस्यच महाप्रिया । अमावास्या महापुण्या पितृदेव नमस्कृता ॥ ६२ ॥ तस्यांमहालये श्राद्धे भोजयेद्द्विवित्तमान् । तेनतृप्तिः पितृणांस्या दनंतातुष्यते शिवः ॥ ६३ ॥ ब्रह्महत्यादयः पंच पातकानाशमाप्नुयुः । कृताश्च स्युर्विधानेन सर्वेयज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ६४ ॥ अनुष्ठिताः स्युर्विधिवत्सर्वेधर्माः सनातनाः । अमावास्या- दिनेयेन कृतंश्राद्धं महालयम् ॥ ६५ ॥ वासश्च स्वर्गलोकेस्याद्यावदा चन्द्र तारकम् । प्रत्यग ब्रह्मैकतांज्ञात्वासायुज्यं यात्यसंशयम् ॥ ६६ ॥ भोजयेद्द्विन्मुख्यांस्तृप्तिस्तेषां यथाभवेत् । तेन ब्रह्माहरिः शंभुस्तृप्ताः स्युर्नात्रसंशयः ॥ ६७ ॥ अग्निष्वात्तादिपितर स्तथैवेन्द्रादिदेवताः । बहुनात्रकिमुक्तेनतुष्टंतेन जगत्त्रयम् ॥ ६८ ॥ महालयंप्रकुर्वंति श्रद्धावन्तः पितृन्प्रति । नतेषांसंततिच्छेदो भवेत्संपदभंगुरा ॥ ६९ ॥ आलयंह्यास्पदं प्रोक्तं महः कल्याणमुच्यते । कल्याणा नामास्पदत्वान्महालय मुदीर्यते ॥ ७० ॥ पुरादशरथोराजा वसिष्ठस्योपदेशतः । मासिभाद्रपदे प्राप्ते कृत्वा श्राद्धं महालयम् ॥ ७१ ॥ रामादींश्चतुरः पुत्रान्प्राप्तवांल्लो- कसंमतान् । विश्वातिशायिनीं लक्ष्मीं प्रपेदेकीर्तिमुत्तमाम् ॥ ७२ ॥ महालयस्य करणाद्ययाती- राजसत्तमः । यदुमुख्यान्महापुत्रान्प्रपेदेवंशवर्द्धनान् ॥ ७३ ॥

भा० टी०—अर्थ इन्हों का सुगम ही है महान्कल्याणों के प्राप्ति स्थान को महालय श्राद्ध कहते हैं। भाद्रपद से यह सुरु होकर वृश्चिक राशी के प्रारंभ तक रहता है ॥ १६–७३ ॥

येन येन तुवर्णेनयाकन्यापरिणीयते । तत्समंसूतकयातितथापिंडोदकेपिच ॥ ७४ ॥ अनूढानपृथकन्या पिंडेगोत्रेचसूतके । पाणिग्रहणमन्त्राभ्यां स्वगोत्राद्भ्रश्यतेततः ॥ ७५ ॥

विवाहेचैवसंवृत्ते चतुर्थेहनिरात्रिषु । एकत्वंसाव्रजेद्भर्तुः पिंडेगोत्रेचसूतके ॥ ७६ ॥ अनिष्ट्वा-तुपितृञ्श्राद्धे नकुर्यात्कर्म वैदिकम् । तत्रापिमातरः पूर्वंपूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ ७७ ॥ गौरी-पद्माशची मेधासावित्री विजयाजया । मीनादेवी स्वधास्वाहामातरो लोकमातरः ॥ ७८ ॥ धृतिः पुष्टिस्तथातुष्टिरात्म देवतयासह । गणेशेनाधिकाह्येता वृद्धौपूज्याश्चषोडश ॥ ७९ ॥

भा० टी०—जिस २ वर्ण वाले के साथ जिस २ कन्या का व्याह होता है तो उस कन्या का भी सुतक तथा पिंड एवं उदक दान अपने पति के वर्णानुसार होने चाहिये । व्याह नहीं । की गई कन्या के गोत्र, सूतक, और पिंडोदक उनके पिता के गोत्र से अलग नहीं है । क्योंकि पाणि ग्रहण और मन्त्रों के द्वारा ही वह अपने पिता के गोत्र से पृथकी जाती है । वैवाहिक क्रियाओं के निवृत्त होने पर चौथे दिन की रात में अपने पति के वर्ण, पिंड, गौत्र, और सूतक में एक भाव को प्राप्त हो जाती है । श्राद्ध में अपने पित्रों का पूजन विना किये कोई भी वैदिक कर्म नहीं करना चाहिये । उन्हीं में भी सबसे पहिले अपने पूर्वजों की कुल देवियों का पूजन करना चाहिये । उन्हों के ये नाम है गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, मीना देवी, स्वधा, स्वाहा, धृति, पुष्टि, तुष्टि, और अपनी २ वर्तमान नाम वाली कुल देवता के साथ सब तथा गणेशजी एवं षोडश कुल देवताओं का वृद्धि श्राद्ध में प्रथम पूजन करना चाहिये ॥ ७४–७६ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् । होमोदेवोबलि र्भौतोनृयज्ञोतिथिपूजनम् ॥ ८० ॥ श्राद्धंवापितृयज्ञःस्यात्पित्र्योबलिरथापिवा । यश्चश्रुति जपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञः सचोच्यते ॥ ८१ ॥ यदाचतुर्दशीयामं तुरीयमनु पूरयेत् । अमावास्याक्षीयमाणात दैव श्राद्ध-मिष्यते ॥ ८२ ॥ पितामहः पितुः पश्चात् पश्चत्वंयदिगच्छति । पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं-श्राद्धषोडशम् ॥ ८३ ॥ द्वादशप्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिकेतथा । सपिंडी करणं चैवएतद्वै श्राद्धषोडशम् ॥ ८४ ॥

भा० टी०—ब्रह्मचारियों को वेद पढ़ाना ब्रह्म यज्ञ कहाता है । पितरों को तर्पण करना पितृ यज्ञ कहाता है, होम को देव यज्ञ कहते हैं । बलि (प्रसादी) का देना भूत यज्ञ कहाता है । अतिथि का पूजन करना नृयज्ञ कहलाता है । अथवा श्राद्ध करने को पितृ यज्ञ कहते हैं, पित्रों को बलिदेने का भी यही अर्थ है, श्रुति (वेदों के मंत्रों) का जप करना भी ब्रह्म यज्ञ ही कहाता है । चतुर्दशी का चौथा पहर में क्षीण अमावस्या की घड़ियां आ जाय तो उस वक्त हर किसी महीने में श्राद्ध हो सकता है । दादे के बैठे हुए ही यदि गुजर गया हो तो उसका श्राद्ध गुजरने वाले का बेटा कर सकता है अपने बेटे

का श्राद्ध बाप नहीं कर सकता। एवं जीवते हुए बाबे का श्राद्ध भी पोता नहीं कर सकता। दादे की मोजुदगी में पोता ही एकादशाह आदि शोलह श्राद्धों का अधिकारी है। बारह महीनों के १२ श्राद्ध १३ वाँ प्रथम एकादशाह श्राद्ध, दो छः मासी और सपिंडी करण एवं १६ प्रकार के श्राद्ध होते हैं। ॥ ८०-८४ ॥

मातुः श्राद्धंतुपूर्वंस्यात्पितॄणांतदनन्तरम् । ततोमातामहानांच वृद्धौ श्राद्धत्रयंस्मृतम् ॥ ८५ ॥ क्रतुर्दक्षोवसुः सत्यः काल कामौधूरिलोचनौ । पुरुरवा आर्द्रवाश्च विश्वदेवाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ८६ ॥ इष्टिश्राद्धे क्रतुर्दक्षोवसुसत्यश्चदैविके । कालः कामोग्नि कार्येषु अधरे- धूरिलोचनौ। पुरुरवा आर्द्रवाश्चपार्वणेषुनियोजयत् ॥ ८७ ॥ त्रीणिश्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतुपस्तिलाः । त्रीणि चान्नं प्रशंसंति शौचमक्रोधमत्वरम् ॥ ८८ ॥ दिवसस्याष्टमे भागेमंदी- भवति भास्करः । सकालः कुतुपोनाम पितॄणादत्तमक्षयम् ॥ ८९ ॥

भा० टी०—माता का श्राद्ध पहिले करै, फिर पिताओं के पक्ष वालों का, इसके बाद नानाओं का करै इस प्रकार वृद्धि श्राद्ध तीन प्रकार का है। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धूरि, लोचन, पुरुरवा, और आर्द्रवा ये १० श्राद्धों के विश्वदेव हैं। इष्टि श्राद्ध में क्रतु और दक्ष, दैविक श्राद्ध में वसु और सत्य, अग्नि कार्य में काल और काम, एवं अधर श्राद्ध में धूरि और लोचन तथा पार्वण श्राद्ध में पुरुरवा और आर्द्रवा विश्व देव का नियोग करना चाहिये। श्राद्धों में तीन वस्तुएँ पवित्र (लेन) है दोहिता, (बेटी का बेटा) कुतुपकाल और तिलों का होम दान, एवं तीन प्रकार के अन्न प्रशस्त है शुद्ध, अक्रोध और अशीघ्र, । दिवस के आठवें भाग में जब सूर्य की घाम मंदी हो जाती है उसी काल का नाम कुतुप है उस समय का श्राद्ध पित्रों को अक्षय तृप्ती देता है ॥ ८५-८९ ॥

श्राद्धं दत्वाचभुक्त्वाच मैथुनंयोधिगच्छति । भवन्ति पितरस्तस्यतन्मांसरेतसीभुजः ॥ ९० ॥ पिता पितामहश्चवै तथैवप्रपितामहः । उपासतेसुतंजातं शकुन्ताइवपिप्पलम् ॥९१॥ अधुनादास्यति श्राद्धं वर्षासुच मघासुच । संतानंवृद्धं नंपुत्रंतृप्यन्तं पितृकर्मणि ॥ ९२ ॥ मीनं ब्राह्मण संपन्नंमभिनन्दन्ति पूर्वजाः । नंदन्ति पितरस्तस्य सुवृष्टैरिवकर्षकाः ॥ ९३ ॥ जात मात्रेणपुत्रेण पितॄणामनृणी पिता । तदहूनि शुद्धिमाप्नोतिनरका त्त्रायतेहिसः ॥ ९४ ॥

भा० टी०—श्राद्ध देकर और श्राद्ध में भोजन करके, उसी दिन जो यजमान या ब्राह्मण मैथुन को प्राप्त होजायें तो, उन दोनों ही के पितर गण उन्हीं के मांस एवं वीर्य का भक्षण करते हैं। मीन क्षत्रिय के घर में उत्पन्न हुए बालक को उसके पिता, पितामह, और प्रपितामह आदि इस प्रकार सेवन करते हैं जैसे पक्षीगण पीपल के पेड़ को सेवन करते हैं। अब देगा श्राद्ध वर्षा ऋतु में, यामघा नक्षत्र

में ऐसा मानते हुए ब्राह्मण सहित धनाढ्य मीन क्षत्रिय को एवं पित्रों के तर्पण कर्म में तल्लीन, सन्तानों की वृद्धि करने वाले अपने वंशजों को देख कर उनके पूर्वज और पितृगण ऐसे खुस होते हैं जैसे खुर्ड में मेघ की घटा को देख कर कर्षक लोग खुस होते हैं। पुत्र के जन्मने पर पिता के उपर से अपने पितरों का ऋण उत्तर जाता है और उसी दिन वह शुद्ध होजाता है क्योंकि पुत्र शब्द का अर्थ ही यह होता है कि पितरों को नरक से तारै ॥ ६०-६४ ॥

महानदी मुपस्पृश्यतर्पयेत्पृतृदेवताः । अक्षयांल्लभतेलोकान्कुलंचैव समुद्धरेत् ॥ ६५ ॥ देवकार्याणिपूर्वान्हे मनुष्याणांतुमध्य में । पितृणामपरान्हेतु कार्याण्येतानियत्नतः ॥ ६६ ॥ पौर्वान्हि कंतुयत्कर्म यदि तत्सांयमाचरेत् । नतस्यफलमाप्नोति बन्ध्यास्त्री मैथुनंयथा ॥६७॥

भा० टी०—महा नदी (गङ्गायमुनादि) के तीर पर जाकर श्राद्ध करने से पितृगण परम तृप्त होते हैं और वह अक्षय लोकों को प्राप्त होकर अपने कुल का उद्धार कर देते हैं। देव कार्य (पूजादि) पूर्वान्ह में करने चाहिये, मनुष्यों के कार्य (भोजनादि) मध्यान्ह में होते हैं, और पितरों का श्राद्ध जल-तर्पणादि कार्य अपरान्ह (दिन का शेष भाग) में होते हैं। पूर्वान्ह के कार्यों को यदि सांयकाल में किये जावें तो बन्ध्यास्त्री के मैथुन के समान उन्हों का कुछ भी फल नहीं मिलता ॥ ६५-६७ ॥

आपोदेवगणाः प्रोक्ता आपः पितृगणास्तथा । तस्मादप्सुजलंदेयं पितृणांहितमिच्छता ॥ ६८ ॥ नाभिमात्रेजलेस्थित्वा हृदयेनानुचिंतयेत् । आगछन्तुमेपितरोगृण्हंत्वेतां-जलांजलिम् ॥ ६६ ॥ हस्तौकृत्वातुसंयुक्तौ पूरयित्वाजलेनच । गोश्रृंगमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये-जलंक्षिपेत् ॥ १०० ॥ आकाशेचक्षिपेद्वारि वारिस्थोदक्षिणामुखः । पितृणांस्थान माकाशं-दक्षिणादिक्तथैवच ॥ १०१ ॥ प्रजांपुष्टिं यशः स्वर्गमारोग्यंच धनंतथा । तृणांश्राद्धैः सदाप्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ १०२ ॥ एषश्राद्ध विधिः कृत्स्नउक्तः संक्षेपतोमया । येविन्दंतिनमुह्यन्ति श्राद्धकर्मसुतेक्वचित् ॥ १० ॥ इतिश्रीमीनपुराणे द्वितीयस्कन्धे सप्तदशो-ऽध्यायः ॥ १७ ॥

भा० टी०—जल के प्रत्येक परमाणु में देवगणों का निवास है एवं पितृगण भी जल स्वरूप है। अतएव पितरों का हित चाहने वाले लोग जल में ही जलांजली छोड़ते हैं। नाभि प्रमाण जल में स्थित होकर हृदय से पितरों का चिंतन करै और शुद्ध चित्त से आह्वान करै कि मेरे पितृगण आवें और मेरी दी हुई जलांजली को ग्रहण करें, ऐसा कह कर अपने दोनों हाथों को नावाकार जोड़ कर जल से पूर्ण करै, गाय के शींग प्रमाणे हाथों को उंचा उठा कर जलांजली को जल में छोड़ दे। आकाश की तर्फ जल

छोड़ै, एवं दक्षिण दिशा की ओर छोड़ै, क्योंकि पितरों का स्थान आकाश और दक्षिण दिशी है। मनुष्यों को श्राद्ध से सदा प्रसन्न होकर पितामह आदि पितृगण संतान, पुष्टि, यश, स्वर्ग, आरोग्य और धन देते हैं। यह संपूर्ण श्राद्धों की विधि मैंने संक्षेप से कही, इसको जो सम्यकतया जान लेता है वह श्राद्ध कर्म में कहीं मोहित नहीं होता।

॥ इतिश्रीमद्‌भागवत् मीनपुराणे द्वितीयस्कंध्ये सप्तदशमोऽध्याय: समाप्त ॥

अथाष्टादशोऽध्याय प्रा० । श्राद्धेमांस निषेधाधिकार ॥ (भृगुरुवाच) नाकृत्वा-प्राणिनांहिसां मांसमुत्पद्यतेक्वचित् । नचप्राणि वधस्वर्ग्यतस्मान्मांसंविवर्जयेत् ॥ १ ॥ समुत्प-त्तिंचमांसयवधबंधौचदेहिनाम् । प्रसमीक्ष्यनिवर्त्तेत श्राद्धेमांसस्यभक्षणात् ॥ २ ॥ देवानाम-ग्रतः कृत्वाघोरंप्राणिबधंनराः । येभक्षयतिमांसंच तेव्रजंत्यधमांगतिम् ॥ ३ ॥ अमेध्यत्वाद् भक्ष्यत्वान्मानुषैरपिवर्जितम् । दिव्यभोगान्भुंजन्तोमांसंदेवानभुञ्जते ॥ ४ ॥

भा० टी०—अब १८ वाँ अध्याय सुरु होता है। श्राद्धों में मांस निषेध यह इसमें अर्थाधिकार है। भृगुजी बोले, हे मुनिजनो ! प्राणियों की हिंसा के विना मांस की उत्पत्ती कहीं नहीं होसकती, और प्राणियों का वध स्वर्ग का कारण नहीं है। अतएव श्राद्धों में मांस भक्षण कभी नहीं करना चाहिये। मांस की उत्पत्ति (शुक्र शोणित मल मूत्र हत्या आदि) और भावी वधबन्धन आदि को अच्छी तराह से देखकर श्राद्धों में मांस भक्षण करने से सर्वथानि वृत्ति करना चाहिये। जो मनुष्य देवताओं के आगे घोर प्राणि वध करके मांस भक्षण करते हैं वह अवश्य ही अधम गति को पाते हैं। अपवित्र, एवं अभक्ष्य मानकर मनुष्य भी जब मांस भक्षण नहीं करते तो दिव्य पदार्थों का भोग करने वाले देवता लोग मांस क्यों खायेंगे ॥ १–४ ॥

जलाशयान्वाटिकांश्चविष्णूर्थमुपकल्पयेत् । सदन्नैः सुरसैः साधून् ब्राह्मणांश्चैवतर्पयेत् ॥ ५ ॥ अहिंसान्वैष्णवान्यज्ञान्कुर्याच्छ क्त्यायथाविधि । व्रत जन्मोत्सवान्विष्णोः संभारेणच-भूयसा ॥ ६ ॥ नश्राद्धेक्वापिमांसंतुदद्या आद्याद्यमार्गणः । मुन्यन्नैः क्षीरसर्पिर्भ्यांतृ प्यन्ति-पितरोभृशम् ॥ ७ ॥ अहिंसाप्राणिमात्रस्यमनोवाक्तनुभिस्तुया । तयैवपितरः सर्वेतृप्यन्त्यति दयालवः ॥ ८ ॥ तस्मात्कुसंगतः क्वापि शास्त्रहार्दमबुध्यच । श्राद्धेमांसं नैवदद्याद्वासुदेवपरः पुमान् ॥ ९ ॥ प्रमाणिकृतशास्त्राणि यैर्वधः क्रियतेऽधर्मः । सह्यतेपरलोकेतैः श्वभ्रे शूलाधि-

रोहणम् ॥ १० ॥ गन्धैश्चपत्रपुष्पैश्च धूपैर्दीपैश्चमारण । वासोभिभूषणैश्चैव यथा विभवमर्च-येत् ॥ ११ ॥

भा० टी०—भगवान् विष्णु के अर्थ जलाशय और वन वाटिकाओं का निर्माण करना चाहिये। एवं शुद्ध और निर्दोष अन्नपान से साधु और ब्राह्मणों का सत्कार करना चाहिये। विधि के साथ यथा शक्ति अहिंसक वैष्णव यज्ञों को करना चाहिये और विष्णु (मीन) भगवान्के जन्म आदि के व्रत और उत्सव, मीन जयंती बड़े विस्तार के साथ करने चाहिये । हेमारण क्षत्रियों ! श्राद्धों में न तो कभी कहीं मांस भक्षण करो और न किसी को दो, क्योंकि मुनियों के योग्य दुग्ध, घृत सहित शुद्ध अन्न से ही पितृ-गण अतिशय तृप्त होते हैं। पितर लोग बड़े दयालु होते हैं। वह मन वचन और काया से प्राणिमात्र की अहिंसा के द्वारा हि सर्व संतुष्ट रहते हैं। अतएव शास्त्र के रहस्य को जान कर वासुदेव भगवान्की भक्ति में परायण पुरुषों को चाहिये कि कुसंगत के दोष से श्राद्धों में कहीं भी मांस भक्षण न करै और न कीसि को मांस का दान दें। अनेक शास्त्रों के प्रमाण देकर जो अधम लोक देवताओं के नाम से एवं श्राद्धों में जीव वध करते हैं, वह परलोक में नरक के गड्ढे के भीतर, शूली पर चढ़ाये जाते हैं। अतएव ऐसा न कर हेमारणों ! देवताओं का पूजन सुगन्धित पत्र, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, वासक्षेप, अन्न, भूषण आदि से यथा विधि करना चाहिये ॥ ५-११ ॥

पितॄन्यर्जन्तियेश्राद्धे तैस्तुर्मीनः प्रपूजितः । तस्मिंस्तुष्टे जगन्नाथे सर्वास्तुष्यंतिदेवताः ॥ १२ ॥ पितरोदेवताश्चैवगन्धर्वाप्सरसस्तथा । यक्षाश्चसिद्धामनुजाहरिरेव सनातनः ॥१३॥

भा० टी०—जो श्राद्धों में पितरों का पूजन करते हैं वे स्वयं मीन भगवान को पूजते हैं, क्यों कि जगन्नाथ मीन भगवान के ही संतुष्ट होने पर सर्व ३३ कोटि देवतेलोक संतुष्ट होजाते हैं। पितर, देवता, गन्धर्व, अप्सरायें, यक्ष, सिद्ध, और मनुष्य ये सर्व सनातन मीन भगवान्की ही तो अंशकलायें हैं ॥ १२-१३ ॥

गृद्धिं विनाभक्षयतो नदोषोमांसंनरस्यान्नवदस्तदोषम् ॥ एवंवचः केचिदुदाहरन्ति युक्त्याविरुद्धं तदपीहलोके ॥ १४ ॥ आहार वर्गेसुलभेविचित्रेविमुक्तपापे सुविविद्यमाने । प्रारंभदुःखंविविधंप्रपोष्य चेर्दास्तिगृद्धि र्नकिमत्सिमांसम् ॥ १५ ॥ सर्वेषामेवमांसानां महान्दोष-स्तुभक्षणे । निवर्तनेमहत्पुण्यमितिप्राह प्रजापतिः ॥ १६ ॥ अनुमन्ताविशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी संस्कर्ताचोपहर्त्ताच खादकश्चेतिघातकाः ॥ १७ ॥

भा० टी०—कितने कही लोक कहते हैं कि अगृद्धी (लालचरहित) भावों से यदि श्राद्धों में मांस भक्षण किया जाय तो उसमें अन्न के समान कोई प्रकार का दोष नहीं होता, यह कहना भी उन्हों का

लोक विरुद्ध है। क्योंकि पृथ्वी पर आहरके योग्य पाप रहित अनेक शुभ वस्तुएं सुलभ विद्यमान है, उन्हीं को छोड़कर स्थूल जीवों के वध से निष्पन्न मांस को क्यों भक्षण करना चाहिये। क्योंकि प्रारंभ से ही विविध प्रकार के दुःखों को भुक्त कर प्राणी अपने शरीर का पालपोषण करते हैं उन्हीं को मृत्यु रूप महान्दुःख देकर अपने शरीर को पुष्ट करने के लिये यदि गृद्धि भाव नहीं तो मांस भक्षण किस वास्ते किया जाता है। श्राद्धों में सभी प्रकार के मांसों का भक्षण करना महान्दोष है और मांसों से सर्वथा निवृत्ति करना महान्पूण्य है ऐसाप्रजापति स्वायंभुवमनुजी का कथन है। आज्ञा देने वाला, शस्त्र देनेवाला, मारणे वाला, बेचने वाला, साफ करने वाला, रांधने वाला, परोसने वाला और खाने वाला ये सब घातक ही होते हैं॥ १४-१७॥

शुक्र शोणितसंभूतं विष्ठारसविवर्द्धितम्। लोहितंस्त्यानतामाप्तंकोश्नीयाद कृमिपलम् ॥ १८॥ शुक्र शोणितसंभूतं मांसंयोभक्षतेनरः। जलेनकुरुतेशौचं हसन्तेतत्रदेवताः ॥१९॥ यावन्तिपशुरोमाणि पशुगात्रेषुचानघः। तावद्वर्ष सहस्राणिपच्यन्तेनारकेजनाः ॥ २०॥ किं जापहोमनियमैस्तीर्थ स्नानैश्चमारण यदिखादतिमांसानि सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥ २१॥ किं लिंगवेषग्रहणैः किं शिरस्तुण्डमुण्डनैः यदि खा० ॥ २२॥ दीक्षितोब्राह्मणश्चैव यस्तु-मांसंप्रभक्षयेत्। व्यक्त सनरकेयातिह्यधर्मः पापप्रेरितः ॥ २३॥ हिंसाप्रवृद्ध कंमांसमधर्मस्य-विवृद्धनम्। दुःखस्योत्पादकंमांसं तस्मान्मांसंनभक्षयेत् ॥ २४॥

भा० टी०—शुक्र और रक्त से उत्पन्न हुआ, और विष्ठा के रस से वृद्धी को प्राप्त हुआ। खून और आलस्य को इकट्ठा करने वाले, मांस को कृमी (कीड़ों के) सिवाय दूसरा कौन खा सकता है। जो ब्राह्मण शुक्र शोणित निष्पन्न मांस को भक्षण करके जल से शौच करता है उसे देख देवता लोक भी हन्सते हैं कि यह कैसा मुर्ख है। यज्ञ में जो पशु मारा गया उसके शरीर पर जितने भी रोमकूपहो उतने ही हजार वर्षों तक पशु की हत्या करने वाले घोर नरक में पचते हैं। हेमारण! कोरे जाप होम, नियम, तीर्थ, स्नान व्रत आदि से क्या होता है? ब्राह्मण यदि मांस भक्षण करता है तो उक्त सब बातें व्यर्थ हैं। लिंग एवं वेष धारण करने से क्या होता है, और शिर मुंडाने व जटा रखाने से क्या होता है यदि मांस खाता है तो सब ही निरर्थक है। चाहे दीक्षित हो या ब्राह्मण हो यदि मांस भक्षण कर लिया तो अधर्म और पाप की प्रेरणा से वह साफ ही नरक में जाता है। क्योंकि मांस भक्षण हिंसावृद्धी और अधर्म की वृद्धी करता है। और अनेक दुःखों को उत्पन्न करता है अतएव श्राद्ध में कभी मांस भक्षण नहीं करना चाहिये॥ १८-२४॥

अल्पायुषोदरिद्रश्च परकर्मोपजीविनः। दुःकुलेषुप्रजायन्तेये नरामांसभक्षकाः ॥२५॥ एकतश्चतुरोवेदान्ब्रह्मचर्य्य मथैकतः। एकतसर्वपापानि मद्यमांसंतथैकतः ॥ २६॥ मांस-

भक्षयितामुत्रयस्य मांसमिहादम्यहम् । एतन्मांसस्यमासत्वं निरुक्तमनुरब्रवीत् ॥ २७ ॥ येभक्षन्तिपिशितं दिव्यभोज्येषु सत्स्वपि । सुधारसंपरित्यज्य भुञ्जन्तेतेहलाहलम् ॥ २८ ॥ स्वमांसंदुर्लभंलोके लक्षेणापिनलभ्यते । अल्पमूल्येनलभ्येत पलंपरशरीरजम् ॥ २९ ॥ स्वमांसं-परमांसेनयोवर्द्धयितु मिच्छति । उद्विग्नंलभतेवासं यत्रयत्रोपजायते ॥ ३० ॥

भा० टी०—जो मनुष्य मांस भक्षण करते हैं वह परलोक में नीच कुल में जन्म पाते हैं और अल्पायुष वाले, एवं दरिद्री रहते हैं तथा दूसरे लोगों की गुलामी करके ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। चारों वेदों के पुण्य फल को तराजु के एक पलड़े में रक्खो और ब्रह्मचर्य्य के पुण्य को एक पलड़े में रक्खो तो ब्रह्मचर्य का पुण्य फल विशेष उतरेगा। एक पलड़े में सर्व प्रकार के पापों को रक्खो और एक पलड़े में मद्य मांस के भक्षण करने का पाप को रक्खोतो मद्य मांस का पाप ज्यादा निकलेगा। जिसको मैं यहां खाता हूं वह मुझको परलोक में अवश्य ही खायेगा, मांस शब्द की मनुजी ने यही निरुक्ति की है। अनेक दिव्य २ भोजनों के होने पर भी जो मनुष्य मांस खाते हैं वह अमृत को छोड़ कर मानो हलाहल जहर को खाते हैं। अपना मांस दुर्लभ है लोक में एक लाख मोहरें देने पर भी कोई मनुष्य अपना मांस नहीं वेच सकता किंतु दूसरों का मांस थोड़े मूल्य में खरीदलेते हैं। दूसरे जीवों के मांस से जो मनुष्य अपना मांस बढ़ाना चाहता है वह परलोक में जहां २ भी जाता है वहां २ उद्वेग का स्थान पाता है॥ २५-३०॥

मांसंपुत्रोपमंकृत्वा सर्वमांसानिवर्जयेत् । दयादानविशुद्ध्यर्थं मारणैर्वर्जितंपुरा ॥ ३१ ॥ तिलसर्षपमात्रंतुयोमांसंभक्षयेन्नरः । सयातिनरकंघोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ३२ ॥ नगंगान चकेदारोनप्रयागोनपुष्करम् । नज्ञानं नचहोमश्चनतपो न जपः क्रिया ॥३३॥ नध्यानं नैवस्नानं दानं मौन व्रतानिच । सर्वेतेनिष्फलायान्ति यस्तुमांसंप्रयच्छति ॥ ३४ ॥

भा० टी०—अपने पुत्र के मांस के ही समान सर्व प्राणियों के मांसों को मान कर न खाना चाहिये। क्योंकि दया और दान की विशुद्धी के अर्थ पहिली के सभी मारण क्षत्रियों ने श्राद्धों में मांस भक्षण निषेध किया है। तिल और सरसों के दाने के बराबर भी यदि कोई श्राद्धों में मांस खा लेता है तो वह घोर नरक में गिरता है और वह आचन्द्रार्क नरक में ही रहेगा। श्राद्धों में मांस खाने वालों के और देने वालों के गंगा, केदार, प्रयाग, पुष्कर, आदि कोई भी तीर्थ नहीं होते अर्थात् सर्व निष्फल है; एवं ज्ञान, होम, तप, जप आदि क्रियाएं और ध्यान, स्नान, मौन, दान, और व्रतादि सर्व निष्फल हो जाते हैं॥ ३१-३४॥

अस्थ्नि वसतिरुद्रश्च मांसे वसतिकेशवः । शुक्रेवसति ब्रह्माचतस्मान्मांसंन भक्षयेत्

॥ ३५ ॥ तनूद्भवंमांसमदन्नमेध्यं कृम्यालयंसाधुजनैः प्रनिद्यम् । निस्त्रिंशचित्तोविनिकृष्ट-
गन्ध शुनीविशेषंलभतेकथंन ॥ ३६ ॥ विद्यादयासंयम सत्यशौचध्यानव्रत ज्ञानदमक्षमाद्याः ।
संसार निस्तारनिमित्तभूताः पलाशिनः सन्तिगुणानसर्वे ॥ ३७ ॥ वरं विषंभक्षितमुग्रदोषं-
यदेकवारं कुरुतेऽसुनाशम् । मांसंमहादुःखमनेक वारं ददातिजग्धं मनसापिपुंसाम् ॥ ३८ ॥
नभक्षयतियोमांसंदयांहित्वा पिशाचवत् । सलोकेप्रियतांयाति व्याधिभिश्चनपीड्यते ॥ ३९ ॥
इतिश्रीमद्भागवन्मीनपुराणे द्विती० स्कं० अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

भा० टी०—हड्डियों में शिवजी का वासा है, मांस में केशव (श्रीकृष्ण) का वासा है, और शुक्र में ब्रह्मा का निवास है। अतएव मांस भक्षण नहीं करना चाहिये। प्राणियों के शरीर से उत्पन्न हुआ अशुद्ध, कीड़ों का घर, दुर्गन्ध और साधुजनों के द्वारा निंदित मांस को खाता हुआ निर्दय प्राणी को कुत्ता क्यों न कहा जाये। मांसाहारी मनुष्य के हृदय में विद्या, दया, संयम, सत्य, शौच, ध्यान, व्रत, ज्ञान, दम, और क्षमा आदि असंख्यगुण जो संसार सागर से निस्तार के कारण रूप माने जाते हैं, एक भी नहीं रहते। अत्यन्त भयंकर विष को खा लेना तो अच्छा है क्योंकि वह एक ही बार मृत्यु को देता है किंतु महान् २ दुःखों को अनेक बार देने वाले मांस का मन करके भी भक्षण कभी नहीं करना चाहिये। दया को छोड़ कर पिशाच के समान जो मनुष्य मांस भक्षण नहीं करता वह सर्व प्राणी मात्र का संपूर्ण लोक में प्यारा होकर रहता है और आधि व्याधि बगेराह से कभी प्रीडित नहीं होता ॥ ३५–३९ ॥

इति श्रीमीनपुराणे द्वितीयस्कंधेत्र अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १८ ॥

अथएकोनविंशोंऽध्याय प्रा० साधारणोपदेशव० भृगुरु वाच। कः कालः कानि मित्राणिकोदेशः कोव्ययागमौ। कस्याहं काचमेशक्तिरिति चिंत्यंमुहुर्मुहुः ॥१॥ त्यजेद्धर्मंदया-हीनं विद्याहीनं गुरुंत्यजेत्। त्यजेक्रोधमुखीं भार्यां निस्नेहान्बाधवांस्त्यजेत् ॥ २ ॥ सत्येन-धार्यते पृथ्वी सत्येनतपतेरविः। सत्येनवातिवायुश्च सर्वं सत्येप्रतिष्ठितम् ॥ ३ ॥ चलालक्ष्मी-श्चलाप्राणाश्चलेजीवित मन्दीरे। चलाचलेचसंसारे धर्म एकोहिनिश्चलः ॥ ४ ॥ अहिंसा-सत्यमस्तेयंम् शौचमिन्द्रियनिग्रहः। एवंसामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ५ ॥ मांस भक्षैः सुरापानैर्मूर्खैश्चाक्षर वर्जितैः पशुभिः पुरुषाकारैर्भारा क्रान्तास्तिमैदिनी ॥ ६ ॥

भा० टी०—अब १९ वाँ अध्याय सुरु होता है। इस में चारों ही वर्णों को साधारण धर्म का

प्रतिपादन किया गया है। भृगुजी बोले हरएक मनुष्य को प्रति दिन सुते उठते ही बारंवार चिंतवन करना चाहिये कि यह कोनसा समय है, मेरे मित्र और द्वेषी कौन २ है। यह कौनसा देश है, मेरे खर्च और आमदनी क्या है, मैं किस का उपासक और अनुयायी हूं, और कार्य करणे में मेरीं क्या शक्ति है, ऐसा विचार कर सत्य को स्वीकार करें। दया हीन धर्म को, विद्याहीन गुरु को दुष्टास्त्री को, और स्नेह हीन बान्धवों को छोड़ देना चाहिये। सत्य (धर्म) के द्वारा पृथ्वी स्थित है, सत्य से ही रवितपता है, सत्य से ही वायु चलती है, आदि सभी को सत्य का आधार है। संसार में लक्ष्मी, प्राण, स्थान और जीवित आदि सभी एक धर्म के सिवाय चंचल है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, शौच, और इन्द्रिय निग्रह ये मनुजी ने संक्षेप से चारों ही वर्णों का धर्म कहा है। मांस भक्षण करने वाले, शराब पीने वाले, मूर्ख और अक्षर ज्ञान शुन्य पुरुष के आकार वाले पशुओं से भारा क्रान्त होकर पृथ्वी दुःख पाती है ॥ १-६ ॥

यस्यनास्तिस्वयं प्रज्ञा शास्त्रस्त स्यकरोतिकिम् । लोचनाभ्यांविहीनस्य दर्पणंकिं करिष्यति ॥ ७ ॥ अन्तः सारविहीना नामुपदेशोन जायते । मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्द-नायते ॥ ८ ॥ गृहासक्तस्यनविद्या नोदयामांसभोजिनः । द्रव्यलुब्धस्यनोसत्यंस्त्रैणस्यन-पवित्रता ॥ ६ ॥ क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलि क्रियाः । नक्षीयतेपात्रदान मभयंसर्वदेहि-नाम् ॥ १० ॥ नग्राह्यार्णिनदेयानिषड्वस्तुनिच मारणैः । अग्निर्मधुविषं शस्त्रंमद्य मांसं-तथैवच ॥ ११ ॥

भा० टी०—स्वयं जिस मनुष्य के बुद्धि नहीं उसका शास्त्र क्या कर सकता है अन्धे मनुष्य के लिये दर्पण क्या कर सकता है। भीतर सारशून्य मनुष्यों को उपदेश नहीं लगता, मलयाचल में पैदा होने वाला पोला बांश क्या कभी चंदन बन सकता है ? घर मे आसक्त मनुष्य के विद्या नहीं होती, मांस खाने वालों के दया नहीं होती, धन लुब्धों में सत्य नहीं होता, और जोस्त्री का गुलाम होता है उसमें पवित्रता नहीं होती। यज्ञ होम बलि क्रिया और सर्व दानों का फल कालान्तर में क्षय हो जाता है किन्तु सर्व प्राणियों को अभय दान और सुपात्र दान का फल कभी क्षय नहीं होता। मारण क्षत्रियों को चाहिये कि अग्नि, मधु, विष शस्त्र, मद्य और मांस ये छः वस्तुएं न किसी को दे और न किसी का लें ॥ ७-११ ॥

दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिवेज्जलम् । सत्यपुतांवदेद्वाचामनः पूतंसमाचरेत् ॥ १२ ॥ संवत्सरेणयत्पापं कुरुतेमत्स्यबन्धकः । एकाहेनतदाप्नोति अपूतजलसंग्रही ॥१३॥ यः कुर्यात्सर्व कर्माणि वस्त्र पूतेनवारिणा । समुनिः सयतिसाधुः सयोगी समहाव्रती ॥१४॥

जलेनवस्त्र पूतेनयः स्नापयति मारणम् । सर्वं पापविनिर्मुक्तो विष्णुनासहमोदते ॥ १५ ॥ षट्त्रिंशदंगुलंवस्त्रं चतुर्विंशति विस्तृतम् ॥ तद्वस्त्रंद्विगुणि कृत्यतोयंतेनचगालयेत् ॥ १६ ॥ तत्रस्थानेस्थिताञ्जीवान्स्थापयेज्जलमध्यतः । जीवरक्षणहेतुश्चइत्येवंमनुरब्रवीत् ॥ १७ ॥

भा० टी०—दृष्टि से पवित्र (देख) करके पैर आगे रखने चाहिये, वस्त्र से पवित्र (छान) कर के जल पीना चाहिये । सत्य से पवित्र (विचार) करके वचन निकालने चाहिये, मन से पवित्र (नतिजा सोच) कर के काम करना चाहिये । एक वर्ष भर में जो माच्छी पाप करता है वही पाप बिना छाना हुआ जल पीने वाला मनुष्य एक ही दिन में कर लेता है (क्योंकि इसी से आत्म विराधना तक हो जाती है) जो मनुष्य सभी काम वस्त्र से छाने हुए जल से करता है वही मुनी, यति, साधु, योगी, और महाव्रती है । जो मनुष्य मीन भगवान् की मूर्त्ति को वस्त्र के द्वारा छन्ने हुए जल से स्नान कराता है वह सर्व पापों से मुक्त होकर विष्णु भगवान् के साथ मौज में रहता है । छत्तीस अंगुल लम्बा और चौईश अंगुल चौड़ा वस्त्र के दोतय कर के जल को छान्ना चाहिये । उस जल में से निकले हुए जीवों को उनों की दया के वास्ते जलाशय में ही पहुचा देना चाहिये ऐसा मनुजी कहते हैं ॥ १२–१७ ॥

सूक्ष्माणि जंतूनिजलाश्रयाणि जलस्यवर्णा कृतिसंस्थितानि । तस्माज्जलंजीवदया-निमित्तंनिर्ग्रन्थमैनाः परिवर्जयन्ति ॥ १८ ॥ जलंगलन वस्त्रेणविवेकेनगुणव्रजः । सद्दानेन-गृहारंभो वचः सत्येनशुद्ध्यति ॥ १९ ॥ पृथिव्यांत्रीणिरत्नानिजल मन्नंसुभाषितम् । मूढैः पाषाणखंडेषुरत्नसंज्ञानिवेशिता ॥ २० ॥ नास्तिमेघसमंतोयं नास्तिचा त्मसमं बलम् । नास्तिचक्षुः समंतेजो नास्तिचान्नसमंप्रियम् ॥ २१ ॥

भा० टी०—जल के आश्रय में रहने वाले जल के जंतु बहुत ही सूक्ष्म होते हैं क्योंकि उन्हों का वर्ण आकृति संस्थान आदि सभी जलमयी होते हैं । अतएव मीन भगवान् के भक्त निर्ग्रन्थ (साधु) जन अगालित जल को वर्जित करते हैं । वस्त्र से जल, विवेक से गुण वृन्द, अच्छे दान से गृहस्थाश्रम, और सत्य से वचन की शुद्धि होती है । जल, अन्न, और सुभाषित, ये पृथ्वी पर तीन ही रत्न हैं । इनके सिवाय मूर्ख लोगों ने पाषाण के टुकड़ों में रत्न संज्ञा रख छोड़ी है । मेघ के समान शुद्ध जल नहीं, अपनी आत्मा के समान बल नहीं आंखों के समान तेज (प्रकाश) नहीं, . और अन्न के समान प्रिय (जीवनोप योगी) वस्तु नहीं ॥ १८–२१ ॥

स्वर्गस्थितानामिहजीवलोके चत्वारि चिन्हानि वसन्तिदेहे । दानप्र संगोमधुराचवाणी देवार्चनंब्राह्मण तर्पणंच ॥ २२ ॥ सानंदंसदनसुतास्तुसुधियः कांताप्रियालापिनी । इच्छापूर्त्ति

धनं स्वयोषितिरतिः स्वाज्ञापरा सेवकाः। आतिथ्यंशिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे, साधोः संगमुपासते च सततं, धन्योगृहस्थाश्रमः ॥२४॥ एतद्वोभिहितं सर्वं, निःश्रेयसकरं परम्। तस्माद् प्रच्युतो मीनः, प्राप्नोति परमां गतिम् ॥२५॥ इति श्री मद्भा० मी० पु० द्वि० एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

भा० टी० इस मनुष्यलोक में स्वर्गस्थित जीवों के चार लक्षण हैं। दान, वाणी की मधुरता, देवपूजा और ब्राह्मणों की सेवा। आनन्दपूर्वक रहने का स्थान, विद्वान पुत्र, प्रियभाषिनी स्त्री, यथेष्टधन, अपनी ही स्त्री में रति और आज्ञाकारी सेवकों का होना, अतिथि और शिव का पूजन, प्रतिदिन अपने घर में यथेष्ट मिष्टान्न पान का होना, साधु सन्तों की निरन्तर सेवा का संयोग आदि सभी शुभ २ बातें हो तो गृहस्थाश्रम भी धन्य है। भृगुजी कहते हैं कि हे शौनक! सर्व कल्यानों के करने वाले गृहस्थाश्रम के धर्मों का मैंने तुम लोगों के सामने संक्षेप से प्रतिपादन कर दिया। मीन क्षत्रिय जो इस धर्म से पतित नहीं होते वे अवश्य ही मुक्ति पाते हैं।

इति श्री मीनपुराणे द्वितीय स्कन्धे एकोनविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १६ ॥

अथ विंशोऽध्याय प्रा० । नीति शिक्षाव० । भृगुरुवाचः—

श्रुत्वा धर्मं विजानाति, श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्। श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति, श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ मानुष्यं विफलं वदन्ति हृदयं व्यर्थं वृथा श्रोत्रयोर्निर्माणं गुणदोषभेदकलनां तेषामसंभाविनीम्। दुर्वारं नरकान्ध कूपपतनं मुक्तिं बुधा दुर्लभां, सार्वज्ञ समयोदया रसमयो येषां न कर्णातिथिः ॥ २ ॥ मूर्खशिष्योपदेशेन, दुष्टास्त्री भरणेन च। दुःखितैः संप्रयोगेण, पण्डितोप्यवसीदती ॥ ३ ॥

भा० टी०— अब बीसवां अध्याय शुरू होता है। इसमें सर्व साधारण को संक्षिप्त नीति शिक्षा का वर्णन है। भृगुजी बोले, मीनपुराण के सुनने से ही मनुष्य धर्म के स्वरूप को जान सकता है, एवं मीनपुराण को सुन कर ही मनुष्य खराब बुद्धि को छोड़ देता है, इसके सुनने से ही ज्ञान प्राप्त होता है, और इस शास्त्र के सुनने से ही मुक्ति मिलती है। यह दया रस मयी सर्वज्ञ मीन भगवान का सिद्धान्त जिस मनुष्य के कर्णगोचर न हुआ उसका मनुष्य-जन्म, हृदय एवं कानों की रचना आदि व्यर्थ ही है, क्योंकि गुण और दोषों के भेदों की पहिचान वह नहीं कर सकता तथा नरकान्धकूप गिरना

उसका अनिवार्य होता है, और सदा के लिये विद्वान लोग उसको मुक्ति का मिलना दुर्लभ कहते हैं। मूर्ख शिष्यों को उपदेश, दुष्टा स्त्री का भरण-पोषण, और दुखियों के संग रहने पर पण्डित भी दुखी हो जाता है ॥१-३॥

यस्मिन्देशे न सम्मानो, न वृत्ति नच बान्धवाः। नच विद्यागमोप्यस्ति, मीनस्तत्र न संवसेत् ॥ ४ ॥ धनिकः श्रोत्रियो राजा, नदीवैद्यस्तुमारण। पंच यत्र न विद्यन्ते, न तत्र दिवसं वसेत् ॥ ५ ॥ लोकयात्रा भयं लज्जा, दाक्षिण्य त्यागशीलता। पंच यत्र न विद्यन्ते, न कुर्यात्तत्र संगतिम् ॥ ६ ॥ जानीयात्प्रेषणेभृत्यान्बान्धवान्व्यसनागमे। मित्रं चापत्तिकालेषु भार्यां च विभव क्षये ॥ ७ ॥ आतुरे व्यसने प्राप्ते, दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे। राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥ ८ ॥

भा० टी०— जिस देश में अपनी मीन जाति का सम्मान न हो, अपनी आजीविका पूर्ण न चलती हो, अपने जाति बान्धव रहते न हों और उत्तम विद्या की प्राप्ति भी नहीं हो तो उस देश में मारण क्षत्रिय को नहीं रहना चाहिये। पुनः जिस प्रान्त में नदी न हो, मारण जाति का धनाढ्य, वेदपाठी, राजा, वैद्य वगैरह कोई न हो तो वहां एक दिन भी नहीं रहना चाहिये। जिस मनुष्य में लोक यात्रा (लौकिक रीति रिवाज) न हो, ईश्वर का भय न हो, लोकापवाद की लज्जा न हो, अनुकूल आचरण कर दूसरे की इच्छा पूर्ण कर देने का लिहाजा न हो, दान देने का स्वभाव न हो तो ऐसे की संगत कभी नहीं करना चाहिये। मुश्किल काम सौंपने पर नौकर की परीक्षा होती है, भयङ्कर संकट के आने पर बान्धवों की पहिचान होती है, आपत्काल में मित्र की परीक्षा होती है, धन का क्षय होने पर धर्मपत्नी के प्रेम की परीक्षा होती है। रोग और कष्ट के प्राप्त होने पर दुर्भिक्ष और शत्रु का संकट आने पर, एवं राजदरबार में और मरने पर श्मशान भूमि तक जो साथ में रहता है वही भाई है ॥ ८ ॥

वरयेत्कुलजां मीनो विरूपामपि कन्यकाम्। रूपशीलांननीचस्य विवाहः सदृशेकुले ॥ ९ ॥ नखी नांचनदी नांच श्रृंगिणांशस्त्रपाणिनाम्। विश्वासोनैवकर्तव्यः स्त्रीषुराजकुलेषुच ॥ १० ॥ विषादप्यमृतंग्राह्यममेध्या दपिकांचनम्। नीचादप्युत्तमांविद्यांस्त्री रत्नदुष्कुलादपि ॥ ११ ॥ कस्यदोषः कुलेनास्ति व्याधिनाकेनपीडिताः। व्यसनंकेननप्राप्तंकस्यसौख्य निरन्तरम् ॥ १२ ॥ आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम्। संभ्रमस्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥ १३ ॥ सत्कुलेयोजयेत्कन्यांपुत्रंविद्यासुयोजयेत्। व्यसनेयोजयेच्छत्रुमिष्टं धर्मेणयोजयेत् ॥ १४ ॥ दुर्जनस्यचसर्पस्य वरंसर्पोनदुर्जनः। सर्पोदशतिकालेतु दुर्जनस्तुपदेपदे ॥ १५ ॥

भा० टी०—मीन क्षत्रिय को चाहिये कि सुकुलोत्पन्न अपनी जाती की विरूप कन्या को भी ग्रहण करलें, किन्तु विजाति की सुरूप कन्या को ग्रहण न करें, क्यों कि विवाह क्षत्रिय ज्ञाती में सदृश कुल की कन्या से ही होता है। नखों वाले शेर आदि जानवर, नदी, शींग वाले पशु, शस्त्र धारी मनुष्य, पर स्त्री और राजकुल का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। विष के भीतर से भी अमृत को ग्रहण कर लेना चाहिये, अपवित्र विष्ठा आदि में रहा हुआ भी कांचन लेने योग्य है। नीच जाति के मनुष्य से भी उत्तम विद्या शीख लेनी चाहिये, अपनी जाती का स्त्री रत्न यदि कलंकित (गरीब) कुल में हो तो भी ग्रहण करने के योग्य है। किस के कुल में दोष (कलंक) नहीं आता ! अर्थात् सभी के कुल में थोड़ा बहोत कलंक आही जाता है, व्याधि से कौन मनुष्य नहीं पीड़ा गया, थोड़ा बहुत कष्ट किस में नहीं आता ! निरन्तर सुख ही सुख में कौन रहता है। मनुष्य का आचार विचार ही उसके कुल को कह देता है, भाषा ही उसके देश को कह देती है, दिल का वेग ही स्नेह को कह देता है और मनुष्य का शरीर ही उसके भोजन का प्रमाण को बतादेता है। अपनी कन्या को अच्छे कुल में देना चाहिये। अपने पुत्रों को विद्या में जोड़े, शत्रु को संकट में फंसाता रहै, और अपने इष्ट मित्रों को धर्म में जोड़ना चाहिये। दुर्जन मनुष्य और काला साँप इन दोनों में से सर्प ही अच्छा है किन्तु दुर्जन अच्छा नहीं, क्यों कि सर्प तो काल की प्रेरणा होने पर ही काटता है और दुर्जन तो पद २ पर दुःख देता है ॥ ९-१५ ॥

एतदर्थं कुली नानां नृपाः कुर्वन्ति संग्रहम् । आदिमध्यावसानेषु नत्यजन्ति हिते नृपम् ॥ १६ ॥ रूप यौवनसंपन्ना विशालकुलसंभवाः । विद्याहीनानशोभन्ते निर्गन्धाइव किं शुकाः ॥ १७ ॥ कोकिलानांस्वरोरूपं स्त्रीणांरूपंपतिव्रतम् । विद्यारूपकुरूपाणां क्षमारूपंतपस्वीनाम् ॥ १८ ॥ उद्योगेनास्तिदारिद्र्यं जपतोनास्तिपातकम् । मौनेनचकलहोनास्ति नास्ति जागरितेभयम् ॥ १९ ॥ एकेनापिसुपुत्रेण विद्यायुक्तेनसाधुना आह्लादितंकुलं सर्वं यथा चन्द्रेणशर्वरी ॥ २० ॥ किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोक संतापकारकैः वरमेककुलालम्बी यत्र विश्राम्यतेकुलम् ॥ २१ ॥

भा० टी०—राजा लोक कुलीन मनुष्यों को अपने पास इस वास्ते रखते हैं कि वे हमेशा दुःख-सुख में उनको कभी नहीं छोड़ते। रूप योवन संपन्न और श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने पर भी विद्या के बिना शोभा नहीं होती, जैसे सुगन्ध रहित के शुले के फूल की शोभा नहीं होती है। कोयल का रूप उसकी आवाज है, स्त्रियों का रूप उनका पातिव्रत्य धर्म है, कुरूपे मनुष्य का भी रूप उसकी पढ़ी हुई विद्या है, और तपस्वी मुनियों का रूप क्षमा है। उद्योग करने से दारिद्र नष्ट हो जाता है, जाप करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, मौन पकड़ लेने पर लड़ाई बन्ध हो जाती है, और जागते हुए रहने से चौर आदि का भय नष्ट हो जाता है। जैसे चन्द्रमा से रात्री सुशोभित हो जाती है वैसे एक ही गुणवान् अच्छे पुत्र से संपूर्ण कुल आनन्दित हो जाता है। शोक संताप के करने, कराने वाले अनेक कुपुत्रों होने

से क्या गरज सरती है, जिसी से सारे कुल को विश्राम मिलता हो वह कुल का आधार स्वरूप एक ही पुत्र काफी है ॥ १६-२१ ॥

कुग्रामवासः कुलहीन सेवा कुभोजनं क्रोधमुखीचभार्या । पुत्रश्चमूर्खो विधवाच कन्या विनाग्निनाषट् प्रदहन्ति कायम् ॥ २२ ॥ अपुत्रस्य गृहंशून्यं दिशः शून्यास्त्वबान्धवाः । मूर्खस्यहृदयं शून्य सर्व शून्यादरिद्रता ॥ २३ ॥ अनभ्यासेविषंशास्त्रमजीर्णे भोजनंविषम् । निर्धनस्य विषंगोष्ठी वृद्धस्यतरुणी विषम् ॥ २४ ॥ तावद्भयेषुमेतव्यं यावद्भयमनागतम् । आगतंतुभयंदृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशंकया ॥ २५ ॥ आलस्योपहता विद्या परहस्तगतंधनम् । अल्प-बीजहतं क्षेत्रंहतंसैनमनायकम् ॥ २६ ॥

भा० टी०—खराब ग्राम कानिवास, नीच कुल के मनुष्यों की नौकरी, खराव अन्न पानी, क्रोध स्वभाव की स्त्री, बेपढ़ लड़का, विधवा पुत्री, ये छः मनुष्यों को विना आग के ही बालते रहते हैं। जिसके पुत्र नहीं उस गृहस्थ का घर शून्य है, जिसके भाई बान्धव नहीं उसकी सर्व दिशाएँ शून्य है, मूर्ख मनुष्य का हृदय मंदीर शून्य होता है, और जो मनुष्य धन हीन होता है उसके सब कुछ शून्य ही शून्य है। नहीं अभ्यास क्रिया हुआ शास्त्र पंडित के भी विष (अहित कर) है, अजीर्ण में भोजन जो किया जाता है वह विष (जहर) है, निर्धनावस्था में बाप का नुकता आदि कर लोगों को भोजन खिलाना विष है, एवं वृद्धावस्था में व्याह करना विष है। जब तक भय अपने सामने नहीं आता, तभी तक भय से भय खाना चाहिये और जब भय अपने सामने आगयातो फि निडर होकर शस्त्रों से लड़ना चाहिये। आलस विद्या को नष्ट कर देता है, दूसरे के हाथ में गया हुआ धन नष्ट हो जाता है, अल्प (खराब) बीज खेत को नष्ट कर देता है मालिक बिना की फोज शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ २२-२६ ॥

अभ्यासाद्धार्यते विद्या कुलंशीलेनधार्यते । गुणेनज्ञायतेत्वार्य्यः कोपोनेत्रेणगम्यते ॥ २७ ॥ वित्तेनरक्ष्यतेधर्मो विद्या योगेनरक्षयते । मृदुनारक्ष्यतेभूपः सत्स्त्रियारक्ष्यतेगृहम् ॥ २८ ॥ दारिद्र्यनाशनं दानं शीलंदुर्गतिनाशनम् । अज्ञाननाशिनी प्रज्ञाभावनाभयनाशिनी ॥ २९ ॥ यस्यार्थ स्तस्यमित्राणि यस्यार्थस्तस्य बान्धवाः । यस्यार्थोमारणोलोके यस्यार्थः सपंडितः ॥ ३० ॥ वरंवनेव्याघ्रगजेन्द्रसेविते द्रुमालये पत्रफलाम्बुसेवनम् । तृणेषुशय्या-शतजीर्ण वल्कलं नबन्धुमध्येधनहीन जीवनम् ॥ ३१ ॥

भा० टी०—अभ्यास करने वाला कोई भी मनुष्य विद्या को धारण कर सकता है। शील आचार से ही कुल की रक्षा हो सकती है, गुणों के देखने से ही आर्य जाति का ज्ञान होता है और नेत्रों को

देखने से ही क्रोध का पता लग जाता है। धन से धर्म की रक्षा होती है, योग से विद्या की रक्षा होती है, नम्रता एवं कोमलता के द्वारा राजा के कोप की रक्षा होती है, और अच्छी स्त्री से ही घर की रक्षा होती है। दान दारिद्रय को नष्ट कर देता है, शील (ब्रह्मचर्य) दुर्गति को नष्ट करता है, बुद्धि अज्ञानता को नष्ट करती है, और भावना भयया भय को नष्ट करती है। जिस के पास धन है संसार में उसी के लोग मित्र होते हैं। उसी के भाई हैं, वही मारण (बहादुर) और पंडित है। घने वृक्षों से व्याप्त, एवं व्याघ्र और गजेन्द्र सेवित, विकट वन में रहना श्रेष्ठ है, तथा घॉस फूस की शय्या और सैंकड़ों चींथड़े वाले वल्कल के वस्त्र पहिन कर वन के पत्र फल जल का सेवन करना अच्छा है, किन्तु धन हीन होकर अपने भाईयों में जीवन व्यतीत करना ठीक नहीं ॥ २७-३१ ॥

धर्मार्थ काम मोक्षाणांयस्यैकोपिनविद्यते । अजागलस्तनस्येवतस्यजन्म निरर्थकम् ॥ ३२ ॥ आदरंलभतेलोकोन कापि धनवर्जितः । कांतिहीनोयथाचन्द्रोवासरेनलभेत्प्रथाम् ॥ ३३ ॥ विद्यावृद्धास्तपोवृद्धायेच वृद्धाबहुश्रुताः । सर्वेतेधनवृद्धस्यद्वारि तिष्ठन्तिकिंकराः ॥ ३४ ॥ यस्यास्तिवित्तंसनरः कुलीनः सपंडितः सश्रुतवान्गुणज्ञः । सएववक्ता सचदर्शनीयः सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ॥ ३५ ॥ यथाविहंगास्तरु माश्रयन्ति नद्योयथा सागरमाश्रयन्ति । यथातरुण्यः पतिमाश्रयन्तिसर्वेगुणा काञ्चनमाश्रयंत ॥ ३६ ॥

भा० टी०—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों में से जो मनुष्य एक का भी सेवन नहीं करता, उसका जीवन बकरी के गले में दीखते हुए स्तनों के समान निरर्थक है। निर्धन मनुष्य कहीं आदर नहीं पाता, जैसे कान्ति (प्रकाश) हीन चन्द्रमा दिन में प्रसिद्धी नहीं पाता है। जो विद्या एवं तप में वृद्ध होते हैं और जो बहुश्रुत होते हैं वह भी सब धन वृद्ध (धनाढ्य) के द्वार पर किं करके समान घूमते फिरते हैं। जिस के पास धन है वही कुलीन, वही पंडित, श्रुतवान् (सर्व शास्त्र वेत्ता) गुणों का ज्ञाता, प्रसिद्ध वक्ता, और सभी के देखने योग्य है, क्यों कि संसार के सभ गुण कांचन में रहते हैं। जैसे सभी पक्षीगण आकर वृक्ष का आश्रय लेते हैं, सभी नदियां समुद्र का आश्रय लेती हैं, तरुण स्त्री अपने पति का आश्रय लेती है, वैसे ही सर्व ही गुण कंचन का आश्रय लेते हैं ॥ ३२-३६ ॥

वाणी दरिद्रस्यशुभाहितापि ह्यर्थेन शब्देनचसंप्रयुक्ता । न शोभतेवित्तवतः समीपे-भेरीनिनादोपहतेववीणा ॥ ३७ ॥ आलस्यंस्थिरतामुपैति भजते चापल्यमुद्योगिताम् कत्वमित-भाषितांवितनुतेमौढ्यंभवेदार्जवम् । पात्रापात्रविचाराणविरहितायच्छ त्युदारात्मतां मातर्लक्ष्मी तवप्रसादवशतोदोषा अमीस्युर्गुणाः ॥ ३८ ॥

भा० टी०—दरिद्र (धन रहित) मनुष्य की वाणी यदि शुभ, हितकारी, अर्थ से भरी हुई, और शब्दों से अलंकृत हों तो भी, धनाढ्य की बातों के पास शोभा नहीं देती, जैसे भेरी (ढोल) की आवाज में वीणा की आवाज काम नहीं देती है। मालदार आदमी अगर आलसु हों तो उस को दूसरे लोक स्थिरतावान् शंतोषी धार्धैर्यवान् कहने लगते हैं, चपल हो तो उद्योगी, मूक हो तो मित भाषी, मूढ़ हो तो भद्रक, पात्र अपात्र के विचार रहित हो तो उदार आत्मा वाला कहने लगते हैं, हे मात लक्ष्मी। तुम्हारी कृपा से दोष भी गुण हो जाते हैं ॥ ३७–३८।

यतन्तेरक्षितुंभार्यां भर्त्तारोदुर्बलाअपि। स्वांप्रसूतिंचरित्रंच कुलमात्मानमेवच। स्वंच-
धर्मंप्रयत्नेन जायांरक्षन्हिरक्षति ॥ ३९ ॥ पति भार्यांसंप्रविश्य गर्भोभूत्वेहजायते । जाया-
यास्तद्धि जायात्वंयदस्यांजायतेपुनः ॥ ४० ॥ यादृशंभजतेहिस्त्री सुतंसूतेतथाविधम्। तस्मा-
त्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियंरक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ४१ ॥ नकश्चिद्योषितः सक्तः प्रसह्यपरिरक्षितुम्।
एतैरुपाया योगैस्तुशक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥ ४२ ॥ अर्थस्यसंग्रहे चैनांव्ययेचैवनियोजयेत्।
शौचेधर्मेन्नपक्त्यांच पारिणाह्यस्यवेक्षणे ॥ ४३ ॥ अरक्षितागृहेरुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः।
आत्मानमात्मनायास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः ॥ ४४ ॥

भा० टी०—दुर्बल पति भी अपनी स्त्रियों की रक्षा करने का यत्न करते हैं; दुराचरणों से अपनी स्त्री की रक्षा करने वाला अपनी संतानों को वर्ण संकर होने से बचाता है, अपने चरित्र को निर्दोष रखता है। अपने कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाता है, तथा, अपनी एव अपने धर्म की भी रक्षा करता है। पति अपनी स्त्री में वीर्य रूप से प्रवेश होकर पुत्र रूप से इस जगत्में जन्म लेता है, क्योंकि अपनी स्त्री में फिर संतान रूप से जन्मता है इसी से स्त्री जाया कहलाती है। स्त्री जैसे २ पुरुष को सेवती है तैसी ही संतान उत्पन्न करती है, अतएव श्रेष्ठ संतान होने के लिये पुरुषों को प्रयत्न पूर्वक दुराचार से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये। कोई भी मनुष्य बलात्कार से स्त्रियों की रक्षा नहीं कर सकता, परन्तु इन नीचे के उपायों से उनकी रक्षा हो सकती है। धन को इकट्ठा करके अपने पास रखने से, उन्हीं के वास्ते खर्च करने से, हर बात की सफाई और शुद्धी रखने से, सुरु से ही पति सेवा की शिक्षा देने से, देवगुरु पूजनादि धार्मिक कार्यों में जोड़ देने से, रसोई आदि घर के कामों में जुड़ी रखने से, घर के सामान की सम्हाल में स्त्री को लगी रखने से, आज्ञाकारी विश्वास पात्र मनुष्यों के द्वारा स्त्रियों को घरों में रुकी रखने से स्त्रियों की रक्षा नहीं होती, परन्तु वह यदि चाहें तो अपने को आपही सुरक्षित रख सकती है ॥ ३९–४४ ॥

पानंदुर्जन संसर्गः पत्याचविरहोटनम् । स्वप्नोन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानिषट्

॥ ४५ ॥ शय्यासनमलंकारं कामंक्रोधमनार्जवम् । द्रोहभावं कुचर्यांचस्त्रीभ्योमनुरकल्पयत् ॥ ४६ ॥ अध्यग्न्यध्यावाहनिकंदत्तंच प्रीति कर्मणि । भ्रातृमातृपितृप्राप्तंषड्विधंस्त्रीधनंस्मृतम् ॥ ४७ ॥ अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञानित्यमितिस्थितिः । इतरेषांतुवर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥ ४८ ॥

भा० टी०—मद्यपान, दुर्जनों का संग, पति से अलग रहना, घूमती फिरना, चाहे जहां सोजाना, और पराय घर में रहना, ये स्त्रियों को बिगाड़ने वाले छः दोष हैं । पलंग पर सुती रहना, बातों में बैठी रहना, गहने पर प्रेम, काम, क्रोध, उत्तावलपन, दूसरों से द्रोह और दुराचार ये अवगुन स्त्रियों में स्वभाव से ही होते हैं, ऐसा मनुजी ने कहा है । विवाह काल में अग्नि के समीप पिता आदि का दिया हुआ धन, सुसरालियों ने सुसराल में बुलाते समय जो आभूषण आदि दिया हो वह धन, प्रीति के कारण पति का दिया हुआ धन, तथा भाई माता और पिता से पाया हुआ धन, यह छः प्रकार का स्त्री धन है । कोई लेने वाला हकदार न हो तो भी ब्राह्मण का धन राजा नहीं लेकर ब्रह्म भोज आदि धर्म कार्य में लगा दे, यह सदा की मर्यादा है, परन्तु अन्य वर्णों का धन यदि कोई हकदार न हो तो राजा उसको अपने खजाने में ले सकता है ॥ ४५-४८ ॥

दाक्षिण्यं स्वजनेदयापरजने शाठ्यंसदादुर्जने प्रीतिः साधुजने स्मयः खलजने विद्वज्जनेचार्जवम् । शौर्यं शत्रुजनेक्षमागुरुजने नारीजने धूर्तता इत्थंयेपुरुषाः कलासुकुशलास्तेष्वेवलोके स्थितिः ॥ ४९ ॥ गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुभृकर्षकान् । प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥ ५० ॥ श्रोत्रियं व्याधितार्तौच बाल वृद्धावकिंचनम् । मीनं कुलोनमार्यंचराजासंपूजयत्सदा ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भा० मीं० पु० द्वितीय स्कंधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

भा० टी०— स्वजनों पर अनुकूलता, दूसरे जनों पर दया, दुर्जनों से कपट का रखना, साधुजनों से प्रीति, नीच लोगों से अहंकार का रखना, विद्वानों में सरलता का रखना, शत्रुजनों पर शूरवीरता का रखना, गुरु (बड़े) जनों पर क्षमा करना, स्त्रीजनों में धूर्तता का रखना, इस प्रकार की कलाओं में जो पुरुष कुशल होते हैं उन्हीं की लोक में प्रतिष्ठा होती है । रुजगार के लिये पशुओं को पालने वाले, व्यापार करने वाले, कारीगरी करने वाले, नौकरी करने वाले, गायन करने वाले, और व्याज खोर ब्राह्मण को शूद्र के समान जान्ना चाहिये । वेदज्ञ, रोगी, दुःखी बालक, बुड्ढा, साधु वा निर्धन,

मीन भगवान् के अनुयायीयों को धर्मात्मा और किसानों को राजा सदा सन्मान की दृष्टि से देखैं ॥४६-५१॥

इति श्रीमद्भागवन्मीनपुराणे द्वितीय स्कन्धे विंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ॥ २० ॥

अथएक विंशोऽध्याय प्रा० । चातुर्वर्णोत्पत्ति व० (भरद्वाज उवाच) ब्राह्मणः केनभवतिचत्रियोवाद्विजोत्तमः । वैश्यशूद्रश्च विप्रर्षेतद्ब्रूहि वदतांवर ॥ १ ॥ (भृगुरुवाच) पारावारेषांभूताना मात्मायः पुरुषः परः । सएवासी दिदंविश्वंकल्पान्तेऽन्यंनकिंचन ॥ २ ॥ तस्यनाभेः समभवत्पद्मकोशोहिरण्यमयः । तस्मिञ्जज्ञेसमीनात्मा स्वयभूश्चतुराननः ॥ ३ ॥ ब्रह्मास्वयंभूर्भगवान्दृष्ट्वा सिद्धिन्तुकर्मजाम् । ततः प्रभृतिचौषध्यः कृष्टपच्यास्तुजज्ञिरे ॥ ४ ॥ संसिद्धायांतुवार्त्तायांततस्तासांस्वयंभुवः । मर्यादाः स्थापयामासयथारब्धाः परस्परम् ॥ ५ ॥

भा० टी०—अब २१ वाँ अध्याय शुरु होता है। इसमें चारों वर्णों की मूल उत्पत्ति का वर्णन है। भर द्वाज मुनि ने पूच्छा कि हे धर्म के स्वरूप को कथन करने वालों में श्रेष्ठ विप्रर्षे भृगुजी ! किस कर्म से मनुष्य ब्राह्मण कहलाता है, एवं हे द्विजोत्तम ! चत्रिय किसको कहते हैं, और वैश्य तथा शूद्र किस को कहते हैं। भृगुजी बोले—पूर्व कल्प के अन्त में यह संपूर्ण विश्व अन्तपार रहीत सर्व भूतों के आत्मा परम पुरुष स्वरूपथा, उस ईश्वर के सिवा और कोई भी वस्तु न थी। किरोड़ों वर्षों के बाद उस परम पुरुष की नाभी से हिरण्यमय एक पद्म कोश उत्पन्न हुआ, और उसी में वही मीनात्मा परम पुरुष स्वय चतुर्मुख ब्रह्मा के नाम से प्रगट हुए। ब्रह्मा स्वयंभू भगवान्ने कर्म से उत्पन्न होने वाली सिद्धि को देख कर उसी से फल मूल कृष्ट पच्य। रूप भेद से सृष्टी की। जब ओषधी एवं अन्न की सृष्टि कर चुके तब प्रजागण की वृत्ति का उपाय स्थिर होने पर स्वयंभू ने उनमें परस्पर मर्यादा स्थापन की ॥ ५ ॥

येवै परिगृहीतारस्ता सामासन्बलीयसः । इतरेषां कृतत्राणान्स्थापयामास चत्रियान् ॥ ६ ॥ उपतिष्ठन्ति येतान्वै यावन्तोनिर्भयास्तथा । सत्यंब्रह्म यथा भूतंब्रुवन्तो ब्राह्मणाश्चते ॥ ७ ॥ येचान्येबलास्तेषां वैश्यसंकर्म संस्थताः । की नाशा नाशयन्तिस्म पृथिव्यां प्रागतन्द्रिताः ॥ ८ ॥ वैश्यानेवतुतानाहुः कीनाशान्वृत्तिसाधकान् ॥ शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासुयेरता, निस्तेजसोल्पवीर्याश्च शूद्रास्तानब्रवीत्तुसः ॥ ६ ॥ तेषां कर्माणिधर्मांश्च ब्रह्मातुव्यधात्प्रभुः । असृजद्ब्राह्मणानेवंपूर्वं ब्रह्मप्रजापतीन् । आत्मतेजोभिनिर्वृत्तान्भास्कराग्निसम प्रभान् ॥ १० ॥

शंखउवाच—किमर्थंमूढतांप्राप्य, प्राणांस्त्यक्तुमिहागताः। कृत्वा बहुनिपापानि, हरिः शक्रपुरोगमाः ॥ ६३ ॥ पुरैताभ्यां कृतं कर्म, विरुद्धं वेदमार्गतः। तच्छृणुध्वंमहावीरा, वर्णयामिविशेषतः ॥ ६४ ॥ तत्र विष्णुश्छलीदोषी, ह्यविवेकी विशेषतः। बलिर्नेनपुराबद्ध, श्छलमाश्रित्यपापतः ॥ ६५ ॥ तेनैव यत्नतः पूर्वमसुरौमधुकैटभौ। शिरोहीनौ कृतौधौर्त्याद्वेद-मार्गोविवर्जितः ॥ ६६ ॥ मोहिनीरूपतोऽनेन, पंक्तिभेदः कृतोहिवै। देवासुरसुधापाने, वेद-मार्गोविगर्हितः ॥ ६७ ॥ रामोभूत्वाहतानारी, वालीविध्वंसितोहिसः। पुनश्चश्रवणोविप्रो, हतानीतिर्हताश्रुतेः ॥ ६८ ॥ पापंविनास्वकीयास्त्री, त्यक्तापापरतेनयत्। तत्रापि श्रुतिमार्गश्च, ध्वंसितः स्वार्थहेतवे ॥ ६९ ॥ स्वजनन्याःशिरःछिन्न, मवतारेरसाख्यके। सतोवृन्दाधर्मभ्रष्टा, कृतानेनदुरात्मना ॥ ७० ॥ कृष्णोभूत्वान्यनार्यश्च, दूषिताः कुलधर्मतः। श्रुतिमार्गंपरित्यज्य, स्वविवाहाः कृतास्तथा ॥ ७१ ॥ पुनश्चवेदमार्गो हि, निन्दितोनवमेभवे। स्थापितंनास्तिक-मतं, वेदमार्गविरोधकृत् ॥ ७२ ॥ एवं येनकृतंपापं, वेदमार्गंविसृज्य वै। सकथंविजयेद्युद्धे, भवेद्धर्मवतांवरः ॥ ७३ ॥

भा० टी०—शंखासुर बोला—मूढ़ता को प्राप्त होकर ये विष्णु और इन्द्र आदि सभी देव बारम्बार पापों को करने वाले यहाँ मरने के लिये क्यों आये हैं ? हे मेरे सूरवीर असुरो ! इन विष्णु और इन्द्र ने पहिले जो जो वेद विरुद्ध कर्म किये थे उन्हीं को मैं कहता हूँ। इन दोनों में से विष्णु विशेष छली, दोषी और अविवेकी है। क्यों कि अपने भक्त, दानी, राजा बलि में कोई पाप नहीं होने पर भी इसने छल से उसको पापी ठहरा कर मारा है। मिथ्या ही वेद विरोधी कह कर इसने मधुकैटभ का शिर काटा था। देव असुरों कों अमृत पान कराते समय इसने मोहनी का रूप धारण कर वेद मार्ग का उलङ्घन किया और सुरों को अमृत तथा असुरों को मद्य पान करा कर पंक्ति-भेद (दुभांत) किया है। राम होकर स्त्री-हत्या की, निरपराधी बाली और विराध को मारा, बेचारे श्रवण ब्राह्मण को मारा इत्यादि इन सभी कार्यों में इसने स्वार्थ के लिये वेद मार्ग का लोप किया है। परशुराम के भव में इसने अपनी ही माता का शिर काटा, निरपराधी सहस्रों क्षत्रियों का वध किया जिसमें क्या वेद-मार्ग ध्वंस नहीं हुआ, इसी दुरात्माने सती वृन्दा का सतीत्व धर्म नष्ट किया था। कृष्ण होकर इसने दूसरों की अनेक स्त्रियों का पातिव्रत्य-धर्म बिगाड़ा, कुल, धर्म और वेद की मर्यादा को तोड़ कर इसने अन्य जाति की अनेक स्त्रियों से अपने विवाह किये। फिर वेदमार्ग को समूल उन्मूलन कर के उसके स्थान में वेद-विरोधी नास्तक मत को नव मे भव में स्थापित किया और वेदों की निन्दा की इत्यादि जिसने वेद प्रतिपादित धर्म को छोड़ कर बड़े-बड़े पाप कर्म किये, वह धर्मात्माओं में प्रधान और युद्ध में विजेता कैसे होसकता है ॥ ६३-७३ ॥

श्रीभगवानुवाच—दानवाधर्मकामानां, नैषोऽवसरइत्यतः । शक्तोहन्तुंकिमात्मानं, जातिदोषाद्विवृंहसि ॥ ७४ ॥ यदितावन्मयापूर्वं, हतोसिपशुवद्यथा । इदानीं वा कथंनाम, न हिंस्येक्रतुदूषणम् ॥ ७५ ॥ सागरंतरतेदोर्भ्यां, पातयेद्योदिवाकरम् । सोपिमांशक्नुयान्नैव, चक्षुर्भ्यांसमवीक्षितुम् ॥ ७६ ॥

भा० टी०—भगवान् बोले-हे दानव ! यहाँ धर्म के कामों का अवसर नहीं है जो आत्मा के मारने में समर्थ ऐसा तू जाति के दोष से क्या बढ़ सकता है ? क्योंकि दूसरों के दोषों को न देख कर मनुष्य को अपना ही दोष देखना चाहिये । तू पशु के समान मुझ से ही हत हो सकता है दूसरे से नहीं तो क्या मैं यज्ञ में दोष (विघ्न) करने वाले तुम को नही मारूंगा ? अपितु अवश्य ही मारूंगा । जो समुद्र को चाहे हाथों से तिर जावें और सूर्य को चाहे नीचे गिरालें, पर वह भी मुझ को नेत्रों से देखने को समर्थ नहीं है ॥ ७४–७६ ॥

सूतउवाच—ततोबृहन्तिचापानि, भीमनादानिसर्वशः । निकृष्यजघ्नुरन्योन्य, मिषुभिः प्राणभोजनः ॥ ७७ ॥ वारिता दारितावाणैः, योधास्तस्मिंबलोभये । निःस्वनन्तोऽम्बुसमये, जलगर्भाइवाम्बुदाः ॥ ७८ ॥ करैश्छिन्नैःशिरोभिश्च, ध्वजैः छत्रैश्चपाण्डुरैः । युद्धभूमिर्भयवती, मांसश्रोणितपूरिता ॥ ७९ ॥ पट्टिशैः सूदिताः केचित्केचिच्छिन्नाः परस्वधैः । केचिन्मुद्गरचूर्णाश्च, केचिद्बाहुभिराहताः ॥ ८० ॥ खड्गापजिताकेचित्केचिच्छूलविदारिताः । दानवाः शरपुष्पाभाः सवनाइवपर्वताः ॥ ८१ ॥ निपतिन्त्यर्णवजले, भीमनक्रतिमिगले । व्यसुभिः सुनिवद्धांगैः पतमानैः सुरासुरै ॥ ८२ ॥

भा० टी०—इसके अनन्तर बहुत से धनुषधारी योधा गण भयङ्कर शब्द करते हुए प्राणों के नाश कारक बाणों को परस्पर में खींच कर मारते हुए । आत्मरक्षा करते हुए उन दोनों सेनाओं में बाणों से विदारित हुए योद्धा ऐसे स्वास लेते हुए जैसे कि जल भरे मेघ गूंजते हैं । कटे हुए हाथ, शिर, ध्वजा छत्रादिकों से और मांस रुधिर से भरी हुई वह रण-भूमि महाभयङ्कर हो गई । कोई खड्गों से, कोई फरसों से कटे हुए, कोई मूसलों से चूर्ण हुए कोई कटी बाहु वाले, कोई पट्टिश नामक शस्त्र से मरे हुए, कोई शूलों से मरे हुए भयङ्कर दानव लोग मगर मत्स्यों के समान और पर्वतों के समान समुद्र में गिरते थे ।

सम्बभूवार्णवेशब्दः सजलाम्बुदनिस्वनः । तेन शब्दे न मकरान, क्रान्तिमितिमिङ्गिलाः ॥ ८३ ॥ मत्तालोहितगन्धेन, क्षोभयन्तोमहार्णवम् । परस्परेणकलहं, कुर्वाणा-

भीममूर्तयः ॥ ८४ ॥ अभ्यन्तेभक्षयन्तश्च, दानवानांमांसशोणितम् । सरथान्सायुधान्साश्वान्सवस्त्राभरणावृतान् ॥ ८५ ॥

भा० टी०—मरे हुए दानव जब समुद्र में गिरते थे, उस समय ऐसा शब्द होता था जैसा कि जल वाला मेघ गर्जता हो। उस शब्द से और रुधिर की गन्ध से जल के बड़े-बड़े मकरादिक जीव मदोन्मत्त होकर समुद्र को क्षोभित करते थे। जल में भयङ्कर मूर्ति वाले मकरमत्स्यादि जल जन्तु परस्पर में कलह और भ्रमण करते थे और बड़े-बड़े मकरमत्स्यादिक अपने से छोटे-छोटे जीवों को भगाते हुए रथ, शस्त्र, अश्व और आभूषणों आदि समेत दानवों को निगल जाते थे ॥ ८३–८५ ॥

कलत्र पुत्रक्षयप्राणनाशे, तस्मिन्पुरे युद्धमतिप्रवृत्ते । महासुराः सागरतुल्यवेगाः मीनेशकोपेशलभीःप्रयाताः ॥ ८६ ॥ एवं कष्टमनुप्राप्ता, अल्पशेषाऽसुरास्ततः । हित्वादारांश्चपुत्रांश्च, आत्मत्राणकृतेनघ ॥ ८७ ॥ शंखाऽसुरंपुरस्कृत्य, विन्ध्यपर्वतमस्तके । शङ्खद्वीपंपरित्यज्य, भारते पुनरागताः ॥ ८८ ॥ ततः सुराणामसुरैरणःपरमदारुणः । त्रेतामुखेनर्मदायामभवत्प्रथमेयुगे ॥ ८९ ॥ पुलिन्दा नाहला निष्ठ्याः शबरा वरुटाभटाः । मालाभिल्लाः किराताश्च, सर्वेपि म्लेच्छजातयः ॥ ९० ॥ नैषां शस्त्रास्त्रवर्षौघा, आसेदुःसुरसैनिकान् । छिन्नामिद्धपथेदेवैर्लघुहस्तैःसहस्रधा ॥ ९१ ॥ अथक्षीणास्त्रशस्त्रौघा, गिरिश्रृङ्गद्रुमोपलैः । अभ्यवर्षन्सुरबलंचिच्छिदुस्तांश्चपूर्ववत् ॥ ९२ ॥

भा० टी०—दैत्यों के नाश होने पर नगर निवासी साधारण प्रजा के भी उस भयङ्कर युद्ध में प्राण नाश होगये। उस युद्ध में सागर के समान महा वेगशाली दैत्यगण अपने अपने स्त्री पुत्रादि परिवार सहित मीन भगवान के कोपरूप अग्नि में पतङ्ग के समान भस्म होगये। जो कुछ शेष बचे वे सभी दैत्यगण देवों के आक्रमण से अत्यन्त ही दुःखी होकर अपने स्त्री पुत्रादिकों को भी छोड़ कर भाग निकले और आत्मरक्षा के लिये शङ्खासुर के साथ ही शङ्खद्वीप को छोड़ कर फिर पीछे भारतवर्ष में ही विन्ध्याचल पर्वत के ऊपर आ बसे। वहाँ भी त्रेतायुग के आदि में श्री नर्मदाजी के तट पर बड़ा ही दारुण संग्राम हुआ। असुरों के दल में पुलिन्द, नाहल, निष्ठ, शबर, बरुट, भट, माल, भिल्ल, किरात और निषाद आदि म्लेच्छ जातियों के सभी लोग थे, जिन्होंने देवों पर शस्त्रास्त्रों की भयङ्कर वर्षा की, परन्तु युद्ध करने की सुशिक्षा पाये हुए देवों ने आकाश मार्ग में ही सहस्रों शस्त्रास्त्रो को नष्ट कर दिया। जब उन असुरों के सभी शस्त्रास्त्र टूट गये तब उन्होंने पर्वत के शिखरों से पत्थरों और लकड़ियों की वर्षा शुरू की। उनको भी देवों ने बीच में ही पूर्ववत् विफल कर दी ॥ ८६–९२ ॥

ततस्त्येकोदैत्यस्तदपियुयुधेशुष्करुधिर, स्तलाद्घातैर्घोरै रशनिसदृशैर्जानुचरणैः ।
नखैर्वज्राकारैमु खभुजशिरोभिश्चकठिनैः स्मरन्चात्रंधर्मंस्वकुर्लविहितंशास्वतमजम् ॥ ९३ ॥
युद्धक्षेत्रं परित्यज्य, स क्रोधोदानवेश्वरः । चरमण्वती नदीतीरे, ययौ नारायणान्तिकम् ॥९४॥
पंचतत्राभ्यवर्तन्त, विपरीतेन कर्मणा । वेदोधर्मः क्षमा सत्यं, श्रीश्च नारायणाश्रया ॥ ९५ ॥
ददर्श स हरिं तत्र, देवैः सर्वैरलंकृतम् । ब्राह्मणाद्यै स्तथावर्णै, राश्रमस्थैर्निषेवितम् ॥ ९६ ॥
दृष्ट्वादैत्यविनाशाय, रणेस्वस्थमवस्थितम् । दानवोविष्णुमक्षोभ्यं, बभाषेलुब्धमानसः ॥ ९७ ॥
अयंसरिपुरस्माकं, पूर्वेषां प्राणनाशनः । अर्णवावासिनश्चैव, मधोर्वै कैटभस्य च ॥ ९८ ॥
अयंसनिघृ णोलोके, स्त्रीबालनिर्पत्रपः । येन दानवनारीणां, सीमन्तोद्धरणंकृतम् ॥ ९९ ॥
अयं स निधने हेतुः सर्वेषाममरद्विषाम् । यस्यचक्रे प्रविष्टानि, कुलान्यस्माकमाहवे ॥१००॥
अयं सकिल युद्धे षु, सुरार्थेत्यक्तजीवितः । स वितुस्तेजसातुल्यं, चक्रंक्षिपतिशत्रुषु ॥१०१॥
मीनजातिं गतोह्यप, वाधते दानवान्मृधे । इमं नारायणं हत्वा, दानवानां भयावहम् । क्षिप्र-
मेवहनिष्यामि, रणेऽमरगण स्ततः ॥ १०२ ॥

भा० टी०—आयुधों के खूट जाने और नामी नामी दैत्यों के मारे जाने पर भी अपना सनातन अविनाशी क्षात्र-धर्म विचार कर अपने रुधिर सूके हुए हाथों से, पैरों से, घुटनों से, कठोर नखों से मुख (दांतों) से, भुजों से, शिर से, लातों से, घुस्सों से एवं मुक्कों से लड़ता रहा। इसके पश्चात् वह दानवेश्वर क्रोध सहित युद्ध-भूमि से निकल कर चम्बल नदी के तीर पर बिराजे हुए मीन भगवान के पास पहुंचा और उनमें रहने वाले पाँच गुणों को अपने में न देख कर विपरीत कर्मों के द्वारा उन गुणों की प्राप्ति के लिये वह श्री भगवान् पर, बड़ा क्रोधित हुआ। उन पाँचों गुणों के नाम ये हैं – वेद, धर्म, क्षमा, सत्य और लक्ष्मी। देव, ब्राह्मण, और आश्रम निवासी लोगों के द्वारा सेव्यमान, अक्षोभ्य, और दैत्यों को नष्ट करने वाले मीन भगवान को स्वस्थ खड़े देखकर वह लुब्ध-मन वाला क्रोधी दैत्य श्री भगवान को सुना-सुना कर यों बोला—यह ही समुद्र के बीच हमारे पूर्वज–मधुकैटभ आदिकों को मारने वाल हमारा पक्का शत्रु है। ये ही निर्दयी, निर्लज्ज, स्त्री-बालबच्चों की हत्या करने वाला और दानवों की विधवा स्त्रियों का सिर मुंडवाने वाला हमारा वैरी है। यही समस्त असुरों की मृत्यु का हेतु और इसी के सुदर्शन नामक चक्र में हमारे पूर्वजों के कुल-के-कुल प्रविष्ट हुए हैं। यही देवों के लिये भयङ्कर युद्ध में अपने प्राणों की आहुति देकर अपने भक्तों की रक्षा करता है। यही शत्रुओं के ऊपर सूर्य के तेज के तुल्य चक्र को फेंकता है। मीणा-जाति में उत्पन्न होकर यही

युद्ध में दानवों को मारता है। दानवों को भयङ्कर मृत्यु स्वरूप इस नारायण को ही प्रथम मार कर फिर शीघ्र ही समस्त देवों को नष्ट कर दूंगा ॥ ६३-१०२ ॥

एवं मुक्त्वा बहुविधं क्षिपन्नारायणंरणे। वाग्भिरप्रतिरूपाभियु द्धमेवाभ्यरोचयत् ॥ १०३ ॥ क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण, न चु कोपगदाधरः। क्षमाबलेन महता, सस्मितंचेदमब्रवीत ॥ १०४ ॥ श्री भगवानुवाच—अल्पदर्पबलंदैत्य, स्थिरसक्रोधजंबलम्। हतस्त्वं दर्पजैर्दोषै, हित्वायद्भाषसेक्षमम् ॥ १०५ ॥ अधीरस्त्वंममतो, धिगेतत्तववाग्बलम्। नयत्रपुरुषाः सन्ति, तत्र गर्जन्तियोषितः ॥ १०६ ॥ अहंत्वांदैत्यपश्यामि, पूर्वेषां मार्गगामिनम्। प्रजापतिकृतंसेतुं, भित्त्वाकः स्वतिमान्व्रजेत् ॥ १०७ ॥ अद्यत्वां नाशयिष्यामि, वेदधर्मविघातकम्। स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु, स्थापयिष्यामि देवतान् ॥ १०८ ॥

भा० टी०—ऐसे ऐसे बहुत से बचन कह कर उस दैत्य ने शीघ्र ही मीन भगवान् के सङ्ग युद्ध करने की प्रबल इच्छा प्रकट की। इसके क्रोध से तिरस्कृत किये हुए भी भगवान् विष्णु कुछ भी क्रोधित नहीं हुए, किन्तु क्षमा पूर्वक हंस कर बोले कि—हे दैत्य! तुझमें थोड़ा-सा अभिमान का बल है, क्योंकि तू क्षमा को त्याग कर बात करता है। परन्तु सुनो! अभिमान से हत हुआ तू मेरी बुद्धि से धैर्य वाला बुद्धिमान नहीं है। इस तेरी व्यर्थ गर्जना को धिक्कार है। सत्य है जहाँ पुरुष न हों वहाँ स्त्रियें ही गर्जती हैं। हे दैत्यराज! मैं तुझको भी पूर्व के ही दैत्यों की गती में पहुँचाऊंगा। क्योंकि विधाता के बताये हुए धर्म के पुल को तोड़ कर संसार में कौन सुखी रह सकता है। देवों की घात के विचराने वाले तुमको मैं आज अवश्य ही मारूंगा और धर्म-प्रिय देवों को अपने-अपने स्थान और पदों पर पहुंचाऊंगा ॥ १०३-१०८ ॥

एवं ब्रु वतिवाक्यं तु, मृधेश्रीवत्सधारिणि। जहास दानवक्रोधाद्धस्तांचक्रे सहायुधान् ॥ १०९ ॥ स बाहु शतमुद्यम्य, सर्वास्त्रग्रहणंरणे। क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो, मीनंवक्षस्यताड़यत् ॥ ११० ॥ दानवाश्चापिसमरे, हयग्रीवपुरोगमाः। उद्यतायुधनिस्त्रिंशा, मीनमभ्यद्रवन्रणे ॥ १११ ॥

भा० टी०—युद्ध के मौके पर भगवान के ऐसे वचनों को सुन कर क्रोध करता हुआ दैत्य हंसा और सैकड़ों भुजाओं में शस्त्रों को ग्रहण कर बड़े क्रोध पूर्वक मीन भगवान् की छाती में ताड़न करता हुआ। उस युद्ध में हयग्रीव आदि बड़े-बड़े दानव भी पैने पैने शस्त्रास्त्रों को उठा उठा कर मीन भकवान् के सन्मुख दौड़ते हुए ॥ १०६-१११ ॥

सताड्यमानोऽतिबलै, दैंत्यैः सर्वोद्यतायुधैः। न च चालततोयुद्धे, कम्पमान इवा-
चलः ॥ ११२ ॥ सर्व प्राणेनमहतीं, गदामुद्यम्य बाहुभिः। घौरां ज्वलन्तींमुमुचे, संरब्धो
गरुडोपरि ॥ ११३ ॥ कर्मणा तेन दैत्यस्य, विष्णुर्विस्मयमाविशत्। क्रोधसंरक्तनयनो,
वैकुण्ठश्चक्रमाददे ॥ ११४ ॥ स सूर्यकरतुल्याभं, शहस्रारमरिक्षयम्। दीप्ताग्निसदृशंघोरं,
दर्शनेन सुदर्शनम् ॥ ११५ ॥ स्वयं स्वयंभुवासृष्टं, भयदंसर्वविद्विषाम्। क्षेपणादस्य-
मुह्यन्ति, लोकाः स स्थाणुजङ्गमाः ॥ ११६ ॥ सुदर्शनास्त्रंभगवान्प्रायुक्तंदयितंत्रिपात्।
चिच्छेदबाहुंश्चक्रेण, श्रीधरोमारणेश्वरः ॥ ११७ ॥ निपपातदिवंत्यक्त्वा, क्षोभयन्धरणीतलं।
शिरश्चाप्यब्धिपुत्रस्य, हा हाकारोमहानभूत् ॥ ११८ ॥

भा० टी०—सभी दैत्यों ने मिल कर शस्त्रों से भगवान् को विताड़ित किया, परन्तु वायु के द्वारा सुमेरु के समान भगवान् विचलित नहीं हुए। उस समय शङ्खासुर बड़ी भारी गदा उठा कर बड़े भारी जोर से भगवान के वाहन गरुड़ के ऊपर मारी, उस दैत्य के इस कर्म से भगवान् आश्चर्य चकित हो गये। उस गदा के लगने से गरुड़ सहित भगवान् बड़े दुःखित हो गये, उस समय क्रोध के वश लाल नेत्र करके विष्णु भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र को उठाया, शत्रु को क्षय करने वाला वह चक्र सूर्य की किरणों के समान एक हजार अरों वाला एवं प्रज्वलित अग्नि के समान भयङ्कर था। शत्रुओं को महाभय देने वाले उस सुदर्शन चक्र को स्वयं ब्रह्माजी ने बनाया था जिसके फेंकने से स्थावर जंगम सभी प्रकार के जीव मोह को प्राप्त होते थे। सुदर्शन चक्र के प्रयोग से भगवान् विष्णु ने उस दुष्ट दैत्य की समस्त भुजायें तोड़ दीं। तब श्रीधर मारणेश्वर भगवान् की चोट खाकर वह दैत्य भयङ्कर नाद करता हुआ आकाश मार्ग से धरणी पर गिरा, शिर और भुजाओं के कट जाने पर जब वह दैत्य पृथ्वी पर धड़ाम से गिर पड़ा तो उस समय समस्त दैत्यों में बड़ा मिक्षोभ और हा हाकार मच गया। वह सब दैत्य रण-भूमि से प्राण लेकर भाग गये ॥ ११२–११८ ॥

शंखासुरहतंदृष्ट्वा, देव गन्धर्व पन्नगाः। अभवन्सुप्रसन्नाश्च, साधुदेवेति चा ब्रुवन्
॥ ११९ ॥ सर्वे प्रसन्नतांयातां, मीनासिद्ध मुनीश्वराः। पुष्पवृष्टिंचकुर्वाणास्तद्यशोजगुरुच्चकैः
॥ १२० ॥ देवाङ्गनामहामोदान्ननृतुः प्रेमविह्वलाः। कलस्वराः कलपदं, किन्नरैसहसं-
जगुः ॥ १२१ ॥ दिशः प्रसेदु सर्वाश्च, महादैत्यपतौहते। ववुः पुण्याः सुखस्पर्शा,
वायर्वास्त्रिविधा अपि ॥ १२२ ॥ चन्द्रमाशी-तांयातोरविस्तेपेसुतेजसा। अग्नयोजज्वलुःशान्ता
बभूवाविकृतं नभः ॥ १२३ ॥ एवं त्रैलोक्यमखिलं, स्वास्थ्यमापाधिकंमुने। हतेऽब्धितनये-
तस्मिनजितेन महात्मना ॥१२४॥ इति श्री मीनपुराणे द्वितियस्कन्धे एकत्रिंशोध्यायः॥३१॥

भा० टी०—शङ्खासुर को मरा हुआ देख कर देव, गन्धर्व, सर्प आदि सब प्रसन्न प्रसन्न हो गये और मीन भगवान् को साधुवाद देने लगे। मीन चरित्र, सिद्ध, मुनीश्वर आदि परम प्रसन्न हुए और पुष्प वृष्टि करके ऊंचे स्वर से भगवान् का यशोगान करने लगे। देवताओं की स्त्रियाँ महा मोद से प्रसन्न हो कर गन्धर्वों सहित गाने और नृत्य करने लगीं। दिशायें प्रसन्न हो गईं और शीतल, मन्द, सुगन्ध तीन प्रकाक की सुख स्पर्श वायु चलने लगी। चन्द्रमा प्रकृतिक शीतलता को प्राप्त हुआ। सूर्य अपने तेज से तपने लगा, शान्त हुई अग्नि पुनः प्रज्वलित हो उठीं, आकाश निर्मल हो गया। हे मुने! भगवान् अजित के द्वारा शङ्खासुर को मरा देखकर इस प्रकार जगत् स्वस्थ होगया ॥११६-१२४॥

इस प्रकार मीन पुराण के दूसरे स्कन्ध का यह ३१ वाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

अथ ३२ वाँअध्याय प्रारम्भः॥ सूतउवाच—विशीर्णास्तिग्माँशोस्तुहिन शकलाकार शकल, स्तथा भूतः प्राणां स्तदपिनजहौ दैत्यवृषभः। तदा तुष्टोमीनः परमकरुणावारिधि-रसौ, ददौ तस्मैप्रीत्या भुविपतिपदंतेनविनुतः ॥ १ ॥ शंखउवाच—अयं किमधुनालोके, शास्ताश्चक्रधरः प्रभुः। अस्मद्विधानां दुष्टानां, निर्लज्जानां च, शासकः ॥ २ ॥ अहो संसार चक्रेस्मिन्मयातुल्यो न पातकी। गुरुदेव द्विजद्रोही, वध्योहं तु मुनेरपि ॥ ३ ॥ असारापार संसार, सागरोत्तरणेतरिः। भवतोदर्शनंलब्धं, वैरव्याजेन दुष्करम् ॥ ४ ॥ देव देव जगन्नाथ, मीनविष्णु महाभुज। शङ्ख चक्र गदापाणे, क्षमस्वैतद्व्यतिक्रमम् ॥ ५ ॥ कृतामपि कृपाऽतीव, कृपासागरमारण। गर्वोपहारितसर्वः प्रसन्नेन ममप्रभो ॥ ६ ॥ देव देवमहामीन, शरणागतवत्सल। त्वां नमामिमहादेव, दीनबन्धो दयानिधे ॥ ७ ॥

भा० टी०—अब ३२ वाँ अध्याय शुरू होता है। सूतजी बोले—एक ओर तो सूर्य की तीव्र किरणें उस दैत्य को पीड़ित करती थीं और एक ओर हिम-खण्ड उसको विदीर्ण करते थे, तथापि उस दैत्य श्रेष्ठ के प्राण नहीं निकलते थे। उस समय उसकी चित्त वृत्ति सुधरी और वह मन ही मन पश्चाताप करने लगा। तब करुणा सागर परम दयालु श्री मीनदेव ने उसकी स्तुति से प्रसन्न होकर उसको सद्गति प्रदान की। शङ्खासुर बोला— अहो? हम जैसे दुष्ट और निर्लज्जों का शासन करके उद्धार करने वाला चक्रधर प्रभु क्या इस समय संसार में यही है। अहो इस संसार चक्र में मेरे समान पातकी, गुरु द्रोही, धर्म द्रोही, देव द्रोही, द्विज द्रोही और मुनियों के भी बध करने योग्य दूसरा कोई नहीं होगा। हे प्रभु! इस असार एवं अपार संसार सागर में नौका के समान आपका दर्शन आज मुझको इस बैर के ही कारण हुआ है। हे देवों के भी देव, जगन्नाथ, मीनदेव, विष्णो,

महाभुज, शङ्ख चक्र गदापाणिन मेरा यह धर्म व्यतिक्रमरूप दोष आप क्षमा करें। हे देवों के देव! महामीन, शरणागत वत्सल, महादेव, दीनबन्धो, दया के समुद्र! आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१-७॥

देवासुरमहायुद्धे, दैवसैन्यमहाभटाः। नसेहुर्ममतेजस्ते, त्वत्तेजो न सहाम्यहम् ॥
॥ ८ ॥ संसारपतितस्यैको, जन्तोस्त्वंशरणंपरम्। प्रसीदत्वंप्रपन्नार्ति, हरनाशयमेऽशुभम्
॥ ९ ॥ त्वत्तोऽमराः स पितरो, यक्ष गन्धर्व किन्नराः। सिद्धाश्चाप्सरसस्त्वत्तो, मनुष्यः
पशवःखगाः ॥ १० ॥ सरीसृपामृगास्सर्वे,त्वत्तस्सर्वे महीरुहाः। यच्चभूतंभविष्यं च किंचिदत्र-
चराचरम् ॥ ११ ॥ मूर्त्तामूर्त्त तथाचापि स्थूलं सूक्ष्मतरंतथा। तत्सर्वं त्वं जगत्कर्ता नास्ति
किञ्चत्त्वया विना ॥ १२ ॥

भा० टी०—देवासुर महासंग्राम में, देव-सेना के बड़े-बड़े योधागण मेरा तेज नहीं सह सकते थे। लेकिन मैं आपका तेज नहीं सहन कर सकता। संसार में पतित जीवों के एक मात्र आप ही परम आश्रय हैं। हे शरणागतों के दुःख दूर करने वाले, मीन प्रभो! आप प्रसन्न होइये और मेरे अमङ्गलों को नष्ट कीजिये। आप ही से देवता, पितृगण, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध और अप्सरागण उत्पन्न हुए हैं। आप ही से मनुष्य, पशु, पक्षी सरीसृप (सर्पादि) और मृगादि हुए हैं। तथा आप ही से सम्पूर्ण वृक्ष और जो कुछ भी भूत, भविष्य, चराचर जगत है वह सब हुआ है। हे प्रभो! मूर्त्त-अमूर्त्त, स्थूल, सूक्ष्म तथा और भी जो कुछ है वह सब आप ही जगत्कर्ता हैं, आपसे भिन्न और कुछ नहीं है ॥ ८-१२ ॥

मया संसार चक्रेऽस्मिन्भ्रमन्ते भगवान्सदा। तापत्रयाभिभूतेन, न प्राप्तानिर्वृत्तिः
क्वचित् ॥ १३ ॥ दुःखान्येवसुखानीति मृगतृष्णाजलाशया। मयानाथगृहीतानि, तानितापा-
यमेऽभवन् ॥ १४ ॥ राज्यमुर्वीबलंकोशो, मित्रपक्षस्तथात्मजाः। भार्या भृत्यजनो ये च,
शब्दाद्याविषयाः प्रभो ॥ १५ ॥ सुखबुद्ध्यामया सर्वं, गृहीतमिदमव्ययम्। परिणामेत-
देवेश, तापात्मकमभून्मम ॥ १६ ॥ देवलोकगतिंप्राप्तो, नाथदेवगणोऽपिहि। मत्तस्सहाय-
कामोऽभूच्छाश्वती कुत्रनिर्वृतिः ॥ १७ ॥ त्वामनाराध्यजगतां, सर्वेषां प्रभवास्पदम्। शाश्वती-
प्राप्यतेकेन, परमैश्वर्यनिर्वृतिः ॥ १८ ॥ त्वन्मायामूढमनसो, जन्ममृत्युजरादिकान्। अवाप्य-
तापान्पश्यन्ति, प्रेतराजमनन्तरम् ॥ १९ ॥ ततोनिजक्रियासृति, नरकेष्वतिदारुणम्। प्राप्नु-
वन्तिनरादुःखमस्वरूपविदस्त्वव ॥ २० ॥ अहमत्यन्तविषयी, मोहितस्तवमायया। ममत्व

गर्वगर्त्तान्त, भ्रमामिपरमेश्वर ॥ २१ ॥ सो हं त्वां शरणमपारमप्रमेयं, सम्प्राप्तः परमपदं-यतोनकिंचित् । ससारश्रमपरितापतप्तचेता, निर्वाणपरिणितधाम्निसाभिलाषः ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे भगवान् ! तापत्रय मे अभिभूत होकर सर्वदा इस संसार चक्र में भ्रमण करते हुए मुझे कभी शान्ति प्राप्त न हुई । हे नाथ जल की आशा से मृगतृष्णा के समान दुःखों को ही सुख समझ कर मैंने ग्रहण किया था, परन्तु वे मेरे सन्ताप के ही कारण हुए। हे प्रभो ! राज्य, पृथ्वी, सेना, कोश, मित्र पक्ष, पुत्र गण, स्त्री तथा सेवक आदि और शब्दादि विषय, इन सबको मैंने अविनाशी तथा सुख बुद्धि से ही अपनाया था, किन्तु हे ईश ! परिणाम में वे ही दुःख स्वरूप सिद्ध हुए। हे नाथ ! जब देव-लोक विजय कर के मैंने देवों को देखा तो उनको भी मेरी सहायता की इच्छा हुई तो उस स्वर्ग लोक में भी नित्य सान्ति कहाँ है। हे परमेश्वर ! सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति के आदि स्थान आपकी आराधना किये बिना कौन शाश्वत शान्ति प्राप्त कर सकता है ? हे प्रभो ! आपकी माय से मूढ़ हुए पुरुष जन्म, मृत्यु, जरा आदि सन्तापों को भोगते हुए अन्तमें यमराज का दर्शन करते हैं। आपके स्वरूप को न जानने वाले पुरुष नरक में पड़ कर अपने कर्मों के फल स्वरूप नाना प्रकार के दारुण क्लेशों को पाते हैं। हे परमेश्वर ! मैं अत्यन्त विषयी हूँ और आपकी माया से मोहित हो कर ममत्वाभिमान के गड्ढे में पड़ा भटक रहा हूँ। वही मैं आज अपार और अप्रमेय मरमपद स्वरूप, आप परमेश्वर की शरण में आया हुँ जिससे भिन्न दूसरा कुछ भी नहीं है। और संसार भ्रमण के खेद से खिन्न चित्त होकर मैं निरतिशय तेजोमय, निर्वाणस्वरूप आपका ही अभिलाषी हूँ ॥ १३–२२ ॥

मीन मीन जगन्नाथ, जाने त्वां पुरुषोत्तमम् । परमेशं परमात्मानमनादिनिधनं हरिम् ॥ २३ ॥ देवतिर्यं मनुष्ये षु, शरीर ग्रहणात्मिका । लीलेयं सर्व भूतस्य, तवचेष्टो-पलक्षणा ॥ २४ ॥ नमस्ते चक्रहस्ताय, शङ्ख हस्तायते नमः । गदाहस्तायतेविष्णो, शङ्ख हस्तायते नमः २५ ॥ एतत्परस्यामितेरूपं, स्थूलचिह्नोपलक्षितम् । न जानामिपरंयत्ते, प्रसीद-परमेश्वर ॥ २६ ॥ त्राहिमां दुःखितंमीन, मग्नं संसारसागरे । कृपां कुरु जगन्नाथ, भक्तं मां यदिमन्यते ॥ २७ ॥ प्रकृतिंचासुरींप्राप्य, ये त्वां निन्दन्तिमोहिताः । पतन्तिनरकेते तु, जायमानाः पुनः पुनः ॥ २८ ॥ न तेषां निष्कृतिस्तस्माद्विद्यते नरकार्णवात् । येषां न जायतेभक्ति, र्जगद्धातारिकेशवे ॥ २९ ॥ यद्यत्कृतं विमूढत्वात्कर्मलोकेषुगर्हितम् । अजानता त्वां तत्सर्वं, प्रभोमनसिमाकृथाः ॥ ३० ॥ दुःखितस्य दयाकार्या, कृपणस्य

विशेषतः । दीनस्यभक्ति युक्तस्य, भवतानित्यमेवहि ॥ ३१ ॥ सो हं दीनोभक्तियुक्त, आगतः शरणंतव । रक्षामयिभिधादव्या, रचितो यः मयाञ्जलिः ॥ ३२ ॥

भा० टी०—हे मीन प्रभो ! आज मैंने आप को जगन्नाथ, पुरुषोत्तम, परम ईश, परमात्मा और अनादि निधन हरि जाना है । देव, तिर्यंच और मनुष्यों में शरीर ग्रहणात्मक जो आपकी लीला है वह हमारे जैसे दुष्टों को दण्ड देने के लिये होती है । मुझको अपनी करणी का फल भुगा कर आपने यह बहुत ही अच्छा किया । चक्र, धनुष्य, गदा और शङ्ख आदि रूप आपके स्थूल चिह्नों को देख कर ही मैं आप को ईश्वर स्वीकार करता हूँ । हे परमेश्वर ! आपके अरूपी, विज्ञान घन, परमात्म स्वरूप को मैं नहीं जान सकता । हे मीन ! हे जगन्नाथ, मेरे ऊपर आप कृपा कीजिये और संसार सागर में डूबे हुए मुझ दुःखी का निस्तार कीजिये । मैं आप ही का अनन्य भक्त हूँ आप भी मुझ को वैसा ही जानते हैं तो मुझ पापी का उद्धार कीजिये । जो आसुरी प्रकृति के अधीन होकर आपकी निन्दा करते हैं वे बारम्बार घोर नर्क में गिरते हैं । क्योंकि तीनों लोकों को धारण करने वाले आप केशव भगवान् की भक्ति के विना नरकरूपी समुद्र से किसी का निस्तार नहीं हुआ और न तब तक होगा । मूढपने में मुझ अज्ञानी ने जो कुछ लोक निन्दनीय कार्य किये हैं उन सब ही को हे प्रभु ! आप अपने मन में नहीं लावें, क्योंकि मैंने जो जो कुछ किये वे अज्ञानता के ही वश किये हैं मैं कृपण और पुरा पुरा दुःखी हूँ, मुझ भक्तियुक्त दीन दुःखी और कृपण पर आपको विशेष दया करनी चाहिये । वही मैं आपका अनन्य भक्त आपके शरण में पड़ा हुआ। हाथ जोड़ कर बारम्बार प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरी अवश्य ही रक्षा करें ॥ २३-३२ ॥

भक्ति तस्यतुसञ्चिन्त्य, मीनदेवो जगद्गुरुः । आजगामासुरस्याग्रे, सर्वैं र्देवैर्वृतो-हरिः ॥ ३३ ॥ नीलजीमूत संकाशः पद्मपत्रायतेक्षणः । दधत्सुदर्शनं श्रीमान्कराग्रेदीप्त मण्डलम् ॥ ३४ ॥ क्षीरोद जजलसंकाशो, विमलश्चन्द्र सन्निभः । रराजवामहस्तेस्य, पाञ्चजन्यों महाद्युतिः ॥ ३५ ॥ पक्षिराजध्जोमीन, गदशार्ङ्गासिचक्रधिक् । उवाच साधु-भोदैत्य, ज्ञातातेमतिरुत्तमा ॥ ३६ ॥ इदानीं त्वं सुखीदैत्य, शुचेमच्छरणागतः । अतः प्रसन्नजातो हं, सर्वा दुःखं विनश्यति ॥ ३७ ॥ शंख श्रृहि परंकार्यं, यर्त्तेमनसिवर्त्तते । वरदोहमनुप्रप्तो, वरवरयदानव ॥ ३८ ॥ अहं विष्णुरहंब्रह्मा, शक्रोमीन सनातनः । अहं नै-श्रवणोराजा, यमः प्रताधिपस्तथा ॥ ३९ ॥ अहं शिवश्चसोमश्च, कश्यपश्चप्रजापतिः । अहं धाता विधाताच, यज्ञश्चाहंविधानकृत् ॥ ४० ॥ अग्निरास्यंक्षितिः पादौ, चन्द्रादित्यौ च लोचने । द्यौमूर्धाखंदिशः श्रोत्रे, तथापः स्वेदसम्भवाः ॥ ४१ ॥ सदिशं च नभःकायो,

वायुर्मनसिमेस्थितः । शेषोभूत्वाहमेको हि, धारयामिवसुन्धराम् ॥ ४२ ॥ भूथिव्यांक्षत्रियेन्द्राश्च, पार्थिवाःस्वर्गकांक्षिणः । यजन्ते मां तथावैश्या, बहुभिश्चाप्तदक्षिणैः ॥४३॥

भा० टी०—उस दैत्यराज की असाधारण भक्ति को देखकर जगद्गुरु भगवान मीन देव, सभी देवताओं के वृन्दों सहित उस असुर के पास पहुँचे। कैसे हैं वह श्री भगवान! नील मेघ के समान वर्ण वाले, कमल की पंखुरी के समान नेत्र वाले। सूर्य की प्रभा के समान दीप्त मण्डलाकार सुदर्शन चक्र हाथ में धारण किये हुए। क्षीर समुद्र के जल के समान, तथा निर्मल चन्द्रमा समान उज्वल पाञ्चजन्य शङ्ख जिन के वाएं हस्त में विराजमान है। गरुड़-ध्वजा से शोभायमान ऐसे गदा, धनुष्य, खड्ग, चक्र आदि से सुशोभित श्री मीन भगवान बोले, कि हे श्रेष्ठ दैत्यराज! तुम्हारे मन में जो भी कुछ कार्य हो सो ही कहो? हे दानव! तुमको वरदान देने के लिये ही मैं तुम्हारे पास उपस्थित हुआ हूँ, माँगो क्या चाहते हो? मुझको ही तुम विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, मीन, सनातन, वैश्रवण, राजा, यम तथा प्रेताधिपति जानो। मैं ही शिव, सोम, कश्यप, प्रजापति, धाता, विधाता, यज्ञ, यज्ञपति और यज्ञों का विधान (प्रतिपादन) करने वाला हूँ। अग्नि मेरा मुख है, पृथिवी मेरे चरण हैं, सूर्य और चन्द्र, मेरे लोचन (नेत्र) हैं, स्वर्ग मेरा मस्तक, आकश और दिशाएं मेरे कान हैं, पानी मेरा पसीना, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरी काया और वायु मेरा मन है। शेष होकर मैं इस सम्पूर्ण वसुन्धरा को धारण करता हूँ। इस पृथिवी पर स्वर्ग की कामना करने वाले क्षत्रिय लोग, नरेन्द्र और सामान्य राजा लोग तथा धनाढ्य, श्रद्धालु वैश्य लोग बहुत प्रकार के दान दक्षिणाओं के द्वारा मेरा ही यजन करते हैं ॥ ३३-४३ ॥

ऋग्वेदः सामवेदश्च, यजुर्वेदस्त्वथर्वणः । मत्तप्रादुर्भवन्त्येते, मामेव प्रविशन्ति च ॥ ४४ ॥ कामक्रोधद्वेष मुक्ता, निःसंगावीतकल्मषाः । सत्त्वस्थानिरहङ्कारा, नित्यमध्यात्मकोविदाः ॥ ४५ ॥ मामेव सततंशङ्ख, चिन्तयन्तउपासते । सम्यग्वेदमधीयाना, यजन्तो विविधैर्मखैः ॥ ४६ ॥ सत्यं दानं तपश्चोग्रमहिंसासर्वजन्तुषु । ममैवविद्धिरूपाणि, सर्वाण्येतानिसत्तम ॥ ४७ ॥ प्राप्तुं शक्योनचैवाहं, नरैर्दुष्कृतकर्मभिः । लोभाभिभूतैःकृपणै, रनार्यैरकृतात्मभिः ॥ ४८ ॥ दैत्यहिंसानुरक्तश्च, वेदधर्मविध्वंसकाः । राक्षसाश्चापिलोकेस्मिन्यदोत्पद्यन्तिदारुणाः ॥ ४९ ॥ तदाहं सम्प्रसूयामि, गृहेषु पुण्यकर्मणाम् । प्रविष्टोमानुषं देहं, सर्वं प्रशमयाम्यहम् ॥ ५० ॥ एवं प्रणिहितः सम्यग्ममात्मादैत्यसत्तम । सर्वाभूतेषु दैत्येन्द्र, न च मां वेत्ति कश्चन ॥ ५१ ॥

मावदार मायूलराम शीहीरा कोटपूतली	१)
केजुनराम शीहीरा कोटपूतली	१)
चन्दमराम बागड़ी टोडाका बास	॥)
अर्जुनरामजी बागड़ी पथीना	१)
बंसीलाल कुमरावत पचांवर्या	।)
बुधाजी चौधरी	।)
चिमनलाल	।)
नाथूजी चौधरी	।)
छल्लाराम बागड़ी भटिला	॥)
महलामजी बगवराया सिहरोड़	॥)
सुलतानरामजी ओरवाल निहूारा	॥)
मंगारामजी सेवरिया बड़नागर	॥)
बद्रीलालजी छापोला कोटपूतली	॥)
हीरासिंह शीहिरा कोटपूतली	॥)
छहारीराम बागड़ी भटिला	॥)
भुलाराम भरवाल सीरोही	॥)
चुन्नाराम भरवाल सिरोही	॥)
नाथूराम जेफ पुराणावास	॥)
बन्नाराम जेफ पुराणावास	॥)
मक्खनराम बागड़ी भटिला	॥)
रामजीत शीहिरा बसई	॥)
मक्खनराम जेफ नयावास	॥)
सीपाल जेफ नयावास	॥)
गिरधर शीहीरा कोटपूतली	॥)
प्यारेराम शीहिरा कोटपूतली	॥)
सुलतानराम भरवाल प्रमानपुरा	॥)
ज्योतराम शीहीरा कोटपूतली	॥)
सूराराम बागड़ी भटिला	॥)
मांगीराम जेफ नीमकाथाना	॥)
रामनाथ बागड़ी भटिला	॥)
कमलसिंह कामोठ मुन्डरा	॥)
महादेवा कामोठ शाहजहांपुर	॥)
भगवानजी बगरायया सिमरोड़	॥)
कन्हैयालाल जेफ मडेली	॥)
गोविन्दराम मोरिजवाल रामजीपुरा	॥)
मूरारामजी जेफ बठेरी	॥)
पांचुराम डोभवाल बाड़नागला	॥)

बालारामजी जेफ दीपास
हनुमान जेफ नयावास
गंगाधर पबड़ी कालू
रामनाथ छापोला माहापुरा
लाधूराम पोकरिया कामेत
हरदेव बगरायया घोडोवाल
रिच्छपाल शीहीरा कोटपूतली
हनुमान शीहिरा कोटपूतली
सुरजनराम जेफ पुराणावास
मंगलराम नाहला कुचेरा
प्रभातराम जेफ आंतेला
कालूरामजी शीहिरा चीपलाट
बड़ीसाजलक्ष्मी नारायणजी बयड़वाल समरा
घासीरामजी घावड़िया पांटी
गणेशरामजी बैनाड़ा
मोहनजी बैनाड़ा
मंगलरामजी मां
लक्ष्मीनारायण
कन्हैयालालजी
भैरूजी गोमलाड़ क
नाथूजी खोडादवाला
श्रीमान् घन्नारामजी शीहिरा टोडामाहा
कुंवर वृद्धिचन्द्रजी वर्मा शीहीरा
पांचुरामजी डोभवाल नागला
योगीराज कृष्णदासजी ध्यानी

दो सौ ग्राहक होने पर दूसरा स्कन्ध
छपना शुरू हो जायगा। अग्रिम ग्राहक
और छपने के बाद जो खरीदेंगे उन से १)
जायेगा। सर्व सज्जनों को सूचित किया जा
कि–लेखक के पास १) भेजकर वह अपना
अग्रिम ग्राहक श्रेणी में जल्दी रजिस्टर्ड कर
अग्रिम ग्राहक होकर मदद करने वाले मह
का शुभ नाम शास्त्र जी के टाइटिल पेज प
धन्यवाद पूर्वक लिखा जायेगा। जाति धर्म
देश सेवा और संसार में अपना अमर नाम
ने का यही सुअवसर है। श्रीरस्तु॥

मुनि महाराज को लिखी हुई, तथा हमारे यहां मिलने वाली सर्व पुस्तकों की कीमत घटा दी गई। सिद्धान्त मग्नसागर भाग १ (हम्मीर रासोसार)

प्राथमिक शिक्षा	।)
दूसरा भाग (जैन जाति निर्णय समीक्षा)	।)
तीसरा भाग जो अब छपने वाला है	।)
तेरह पंथियों के पूज्य कालूरामजी से प्रश्न	)
तेरह पंथी समाज से प्रश्न	)॥
दई दैवसिक प्रतिक्रमण	=)
पंच प्रतिक्रमण	१)
जैन पुराण भूमिका	।॥)
शब्द कोश प्रत्येक भाग	८)
...कोश प्रत्येक भाग	२०)
	५)
...टीका तथा	
	७०)
	१५)
	१०)
...का	८)
...शास्त्र भाषा टीका सहित	।=)
...संग्रह	॥)
...में पोल की लीला	॥)
...ह पंथी नाटक	१)
...कड़ा संग्रह प्रत्येक भाग	।)
...द्धान्त कौमुदी भाषा टीका सहित	१०)
...तीर्थावली नकशा सहित	।)
रत्नकरंड श्रावका चार बड़ा भा० टी०	३)
...स्तौम महानिधी कोश	५)
टाड राजस्थान हिन्दी भाग प्रथम	१०)
टाड राजस्थान हिन्दी भाग दूसरा	१०)
नीति संग्रह भाषा	।)

गृहस्थाश्रम शील सौभाग्य भूषण माला	३)
महादेव स्तोत्र	-)
अमृत सागर	२)
तत्त्व निर्णय प्रासाद	३)
कथा सरित्सागर भाषा	२)
कुरान सरीफ हिन्दी में	२)
चिकित्सा चन्द्रोदय भा० टी० भा० १	१।)
चिकित्सा चन्द्रोदय भाग दूसरा	२॥)
भाग ३—४—५ प्रत्येक	३॥)
स्वास्थ्य रक्षा	२)
आरोग्य प्रकाश	२)
अनमोल बूटी	१)
कोक शास्त्र	२)
हिन्दी भा० टी० जीव विचार	।)
कर्म ग्रन्थ हिन्दी भा टी० सहित प्रत्येक भाग	१)
उर्दू पहली किताब	=)
किताब २—३—४—५ प्रत्येक	।=)
अंग्रेजी शिक्षक हिन्दी सहित	१)
चौदह विद्या	१॥)
सिद्ध करामात	।॥)
गणित प्रकाश	।)
अद्भुत सृष्टि	।)
मनुस्मृति	२॥)
अष्टादश स्मृति संग्रह	३॥)
आनंद काव्य महोदधि भाग १ से ८ तक प्रत्येक भाग	१)
यजुर्वेद संहिता भाषा टीका सहित	८)

लिखो मैनेजर—मग्नसागर जैन पुस्तकालय मु० उखलाना पो० अलीगढ़ (टोंकराज)

* ओ३म् *

अखिल भारतवर्षीय मीणा क्षत्रिय मेम्बरान नियमावली

बारा मेवाशियों का संक्षिप्त नाम प्रकाशित इतिहास

संग्रहकर्ता -

श्री स्वामी भगवान अद्भुतानन्द गिरि महात्मा

उपदेशक तथा जाति का प्रेमी



दोहा—तरुवर सरवर सन्तजन और चौथा वरसे मेह।
परमारथ के कारणे चारों धारी देह॥
यह चारों परमार्थ के ही कारणे होते हैं।

संवत् १९९९ वि॰ सन् १९४२ ई॰

प्रकाशक—

सर्व मीणा क्षत्रिय महासभा देहली में प्रकाशित कराया।

जो सज्जन चिट्ठी पत्री किसी मेम्बर से करना चाहें तो मुख्य पता मीणा क्षत्रिय गोरधन मन्त्री भोलाराम खज़ानची जो चार नंबर बिजलीघर कुवाटर नं॰ ६४ नई देहली गोल डाकखाना। दूसरा पता पहाड़गंज प्यारेलाल बाम्बईसवाला लाला के चूनामन्डी खास मकान पर उपसभापति से मिले।

पं॰ अनन्तराम रविदत्त शर्म्मा के सद्धर्म प्रेस चरखेवालान दिल्ली में छपा।

॥ भूमिका ॥

अखिल भारतवर्षीय मीणा क्षत्रिय महा सभा सब जाति बन्धु सरदारों से बिनती वा प्रार्थना देहली महाभभा के मोनगण करते हैं कि देहली महासभा ता० १६-१७-१८ ने हिन्दू महासभा भवन में मार्च के महीना में धूम धाम से हुई उस में मोनगण दूर २ तक के आये जयपुर, अलवर, भरतपुर, करोली यू० पी० साजापुर पंजाब प्रान्त २ दूर दूर
र देहली महासभा कार्यकर्ता उन सब
को धन्यवाद देते हैं और सर्व
सम्मति से स्वामी भगवान
र ने अखिल भारतवर्षीय
श भारतवर्षीय सब की
गया है । और देहली में
द आरूढ आगे दरजे वार
१ रियासत चन्दा आदि सब
कुछ अर्थ मिलेगा और देहली महासभा की सब जगह हर जगह प्रार्थना की जाती है। कि जाति सुधारक के लिये हर जगह सभा कायम करा दी जावे इतनी सभा जरूरी होनी चाहियें हर सालाना होनी चाहियें जयपुर, अलवर, सांज्ञापुर, यू० पी० रामगढ़ जमवा इन स्थानों में तो हो गई और होती ही रहती है। परन्तु देहलो महासभा की ओर से सब जगह पर सूचना करती है कि कहीं भी सभा हो उसकी इत्तला देहली महासभा में पहले की जावे सभा से पहले सो सेवा में देहली से कोई न कोई सभा में आया करेंगे क्योंकि देहलो सभा अखिल-भारतवर्षीय मानी गई है। सभा इन इन स्थानों पर अवश्य होनी चाहिये जयपुर से बाम्होस १ पचवारारामगढ़ २ टोडाबिलोत ३ झहरवांसखां ४ मुण्डयासीदड़ा५नारायणपुरे६ लाहवापुरा७खोदासपुरा कोठान रामबासतोल-रवाड़ा८और अलवर सेनहड़ा में सूरतगढ़१० बसवे वापासमे ११ टेले तलाव १२ कोटे १३ बून्दी १४ इन्दोर १५ रतलाम १६ धोलपुर १७ गवालियर लशकर १८ इलाहाबाद १९ धनवानधोहलेडा २० झारेड़ा २१ उक्लदपुरा२२ नेवरखेड़ा २३ महवारामगढ़ २४ महदिपुरका बालाजी के २३ अजमेर २४ अहमदाबाद २५ उखलाने २६ भोंपाल २७ यू० पो० महरमती २८ पन्जाब लाहौर २९ अमृतसर ३० सहारनपुर ३१ प्रान्तीक कई जगह पर जाति की जो २ कुरीतियां हैं उनको उपदेशक समझावेंगे सो सब धार्मिक बातों को उपदेशक समझावेंगे और सब हो सरदार नम्रता भाव से सुने गे और सभा के समय पर आपसरी में काना फुस फुस वा कोई कठोर बात कोई भी न कह सकेगा और हमारी तो हाथ जोड़ कर यही प्रार्थना है कि हर जगह पर सभा का जलसा होता ही रहे और बड़े गांवों में दस २ पांच पांच कोस की गिरदवाई में हर जगह सभा होती रहे और छोटे २ गांवों में भी उपदेशक पहुंचे रहेंगे तब ही जाति का सुधार हो सकता है।

देहली में सब ही सरदार जाति सेवा के वास्ते तन मन धन से सदा सेवा में आरूढ हैं सब का नाम गांव गोत प्रकाशित आगे दरजे वार लिखा हुआ है और इस पुस्तक में मीणों की उत्पत्ति आदि सब का अर्थ बारामवासी मीणा के नेम आदि सब मिलेंगे और इस पुस्तक को पढ कर आगे आगे सूचना देते रहें और सभा कायम की जावें उस में मेम्बर आदि को आरूढ कर दिया जावें गांव २ भेजदी जावे यह पटेल पटवारी से प्रार्थना है कि कृपा कर के इस परिश्रम को उठावें । और पुस्तक सभा से मुफ्त मिलेगी परन्तु स्वा ी जी की भेंट एक आना हर पुस्तक पर देना होगा ।

नोट-इस पुस्तक को विद्वान से बचवाना और अर्थ को समझना ।

बारा मेवाशियों के नाम
(बारह)

मेवासी मीणा राजपूत महाराजाधिराज आलनसिंह चाँदा पहले राजधानी जिला खोह नागोरीयाकी । कुतलगढ़ आमेर में भी महाराजा आलणसिंह चाँदा मीणा राजपूत राज करता था बारा मेवासी ताजीमी सर्दार मीणा राजपूत थे हाल साल रियासत जयपुर में मौजूद हैं । पहले के समय महाराजा आलनसिंहजी का दिल्ली बादशाह से भी मुकाबला हो चुका है ॥१॥

मेवासी, पाम्रुंजी, बैंनाडा, दिल्ली के झगड़े में सरीख थे रावबीलोजी बैनाडो और उनका बेटा १४ चौदह झगड़े में गारत आया, झगड़ा में बहुत से मेवासी भी मारे गये थे बेंनाडा को तीन लाख की जागीर दिल्ली बादशाहत से मिली कुतलगढ़ की तरफ से आखिर फतेह कुतलगढ़ की हुई बैंनाड़ बावड़ी से बैनाडा कोनका से है वहां बनाडा मीना ने हुमायू बादशाह का से और जागीर पाई उसपर दिल्ली दरबार में बादशाह की तरफ से तामपत्र व कुरसी बखसीस हुई जो बैनाडा मेवाशीयो में सरीकत है ॥२॥

माचड़ी में राव बीलो जी खोड़ो सूरबीर था और मातहेत कुतलगढ़ का था वे भी मेवासीयों में था गांव चताणो में हदमल चितो मशहूर था वहां इनकी देवी चांवण्ड माता कहलाती है । पहाड़ के खोह में विराजमान है हिन्दुओं में शक्तिसान कहलाती है ॥३॥

मेवासी दल का बेटा २४ चौबीस थे जिन्हों ने गांव बागड़ बसाया वहां इन को ढुंडेश्वर महादेवजी मौजूद हैं उन गांवो में शङ्करजी प्रसिद्ध हैं वहां से लाया दुवा महादेवजी गांव टोडा में मौजूद है उसकी पूजा ढाडा बिलोत में मीना राजपूत पूजाते हैं अखंड जोत है ॥४॥

गांव बाड से ब्याडवाल मीना राजपूत हुआ स्वड माता की स्थापित की हाल सियात जिसकी पूजा का इन्तजाम खोड़ा गोत का मीणा राजपूत करते हैं नाम भेद से भी पूजी जाती है गाँव दताला में कसोरी विक्रमपुर में ॥५॥

गाँव माथा सूला में ब्याडवाल मीना राजपूत था इन्हों से बादशाहने डोला मांगा तब इन्हों ने नाहीं की छोरी को लेकर डोला में बिठा कर भेजदी वहाँ मुसलमान नाई भी ब्याडवाल कहवाते हैं राव बांदा के समय पर उस वक्त दिल्ली से निगारा निसान इनको बखसीस में मिला था और चाँदजी बिगड़वाल आसलगढ़ बसाया गांव इनको जागीर में मिला था ॥६॥

गांव कांखवाड़ी में मोजत किला में मौजूद है मेवाल मीना राजपूत मौजूद है इनको राव की पदवी थी ये शूर बीर कहलाते थे इनको बलवान जानकर टाल के मीना मेवाला में से बादशाह के जमाने में बहुतसों को मुसलमान बना लिये थे वो अभी मेवाल गोत्र से मेवाती मुसलमान कहाते हैं ॥७॥

पहले बसवा काकिलवाल मीना राजा की राजधानी ककरोंडा मीना की थी और बसवाके इरद गिरद काँकरवाल गोत्र के मीना मौजूद हैं ॥८॥

जूना खेड़ा नेहडा में राजोर गढ़ नाम से प्रसिद्ध है वहां पहले राजा मेवाल मींना राजपूत राज करते थे उनके निशान अभी तक दरवाजा आसावारी नाम से मौजूद हैं नीलकंठ महादेवजी इनका अस्थापन किया हुआ भी मौजूद नोगजा नोगजी स्त्री पुरुष मीना मोनी मौजूद थे दोनां चोर डाकुवों को मार कर भगादेते थे ॥९॥

माची नगर राय नाथु का मेदा जी मीना राजा का मौजूद अब रामगढ़ के नामसे महलातबी मौजूद सीरा गोत के मौजूदी में ये जमुवा रामगढ़ कहलाती हैं किलागढ़ गढ़ा एक देवी मंदिर एक ठाकुर मंदिर मौजूद है ॥१०॥

गांव सरजोली गांव में माँदड गोत के मीणा राजपूतों की बसावत है और हाड़ा मादड़ ऐसा प्रसिद्ध हुवा कि अपनी लड़की की शादी में परनाल में होकर धीरत भवाया जिसकी राणा दुमवा गाते हैं और सरजोली हिगवाला श्रीनगर माचाडी दललावरपुरा में माद डई मादड मौजूद है मीणा राजपूतों में दो गालबी भी विकायत है ।११।

गांव बुजमे माणनवाल देवड़वाल मीणा गजपूतों ने वसाया था वहाँ पुराने गढ़ के निसान हाथियों की ठाप के निसान पाये जाते हैं गढ़पति जागरीदार राव कहलाते थे सूरवीर थे ।१२।

गांव धयावण गढ़ में ध्यावण मीणा हुआ इनकी ध्यावण नाम से मशहूर हैं और इस गोत में ध्याला भीव मशहूर हुआ इन्होंने मेदा जी सीरा की मौजूदी हालत से माच नगर से झगड़ा किया उसमें मेदा जी की जीत हुई ।१३।

गांव काकरेल में माडया मीणा राजपूतों का बसाया हुआ है इनको बादशाह से राव पद्वी मिली थी अब ढंड बादयाला में बहुत हैं ।१४।

पहले उसारामीणा की राजधानी गुदो बुन्दी में थी और ये चित्तौड़ की लड़ाई में राजपूतों में शामिल थे। ढोंडा मीणा का जो मौजूदी हालत में कहलाता है वहां भी उसारा राजपूत रहते थे जिनके निशान अभी भी मौजूद हैं पांचभडयो के नाम पांच गोत के होने से पचवारा का नाम का कहा गया जो आजकल पचवारा के नाम से प्रसिद्ध है ।१५।

जुण वाल मीणा राजपूत निजामत हिण्डोन के परगने में मशहूर है पहले ज़माने में राज की तरफ से काफी मुर्तबा हासिल कर चुके हैं जों खानदान के बगदाव में मशहूर हैं ।१६।

बामणोंस में लोंदवाल काण्डे गोत के मीणा राजपूत रहते है और इनको अभी भी राज की तरफ से अच्छे मुर्तबा में शामिल किये जाते हैं पाँच नाम-पाच के गोत के राजपूतों को वादशाही जमाने से पालकी कडवाइ की मंजूरी हुई ।१७॥

लालगढ़ में बालोन गोत के मीणो की राजधानी थी लालगढ़ रामसिंह पुरा आदि में अब भी वहाँ बालोत कितने ही मौजूद बसे हुए है ।१८॥

गांव समेल में लांडला गोत के सीगा राजपूतों की राजधानी थी। गेटोर में भी नाडला ही राजा राजपूत थे जिनके ढोल डका जयपुर में उरसा अब तक लेते हैं। गेटो में गेटोजो राजा राजपूत था ।१६।

पुराने ज़माने में चान्दा और बड़ गूजर गोत के मीणा राजपूत दोंसा में मर्तबा रखते थे जिसके अब भी निशान पाये जाते हैं राजा सेवा शंभु और उसके साथ में बड़गूजर और मेवासी दिल्ली इजलास में जाया करते थे और अच्छा मुर्तबा रखते थे ।२०॥

गढ़ चपडेर में राजधानी थी उनके साथ में जगरवाल गोयली गोम लाडु गोय के मीणा साथ में रहते थे और बादशाह की फौज मारी गई थी वहां गढ़ चपड़या गाँव अभी मौजूद है और पीर की पूजा होती थी ।२१॥

चान सैण और चानसैण के खेड़ा मे चीता मीणा रहते हैं इन चीतों में से बहुत से औरंगजेब बादशाह के जमाने में मुसलमान होगये हैं जो आजकल अजमेर के आस पास बसे हुए हैं ।२२॥

मोराखाम गाँव में पपलाज देवी मीणा राजपूतों ने प्रगटाई थी और उसने सहायता दी थी और आजकल भी मीणा ही पूजते हैं । मोहम्मद शाह बादशाह के ज़माने में पाबुजी ने मुकाबिला किया था उस वक्त उन्होंने इनको बैठक दी थी जो आजकल चीता महर को चारखान नाम से मौजूद थी अजमेर राजधानी में मौजूद है ।२३॥

खुशालगढ़ की लड़ाई में ककरोड़ा गोती मीणा राजपूतों को जागीर मिली थी रावहरदर्मा में मीणा की राजधानी थी वहा आजकल जुणवाल मीणा राजपूत बसे हुए हैं कई मीणों का गाव नाम भी बदल गये हैं ।२४॥

गांव बोली मलाणा के परगने में गुसींगा सतावन काएठा जगरवाल मझाया बौत गोत के मीना रहते हैं इनको नर्वदेश्वर महादेव का बरदान है महाराजा आलणसिंह चांदा के दरवार में ब्याडवाल और सोगण और बारा मेवासी हमेशा सलाहगीर रहते थे सोगणाके भवानी बासे थी अब भी रायसर में फाडके ऊपर बांकी माता के नाम से प्रसिद्ध है और सोगण ही पुजारी है ॥२५॥

मीणा जागीरदार बारा गाँवों का अब भी जयपुर रियासत में कहलाते हैं और जागीर भी है मीना राजपूतों का बारह गांव वर्तमान समय में मौजूद हैं जो राजकी बाकायदा नौकरी देते हैं पहले बारा मेंवासी कहवाते थे अब बारा गावों का नाम से विख्यात हैं बारा गाँव और बारा बास कहवाते हैं यह चौबीस पचीसवीं खास करके आमेर राजधानी सबकी एकताई सिलामसारा कानुन्न तैयार किया करते थे और दुष्टों को मारने वाली जाति बीर थी अनार्य देत्यों का बध करने वाले विष्णु भगवान और उनके अंश स्वरूप प्राचीन क्षत्रीय जाती ही मीणा थे मीणा शब्द निपातन से सिद्ध है । और दुष्टों को मार कर गौ ब्राह्मणों का रक्षण करने वाली वीर क्षत्रिय जाति में इसको प्रयोग माना जाता था बहुत बलवान दुष्टों को मारने के कारण इस मीणा जाति को मारण भी कहते थे यह बात प्रसिद्ध है ।

आज भी हमारी स्त्रियों से सुनने में आता है इन शब्दों में गाती हैं

भारण के मीणायो बैठाछो २ इक दाई अगसार थाकी ढाला सोंतो कटे छे जादम भवानी की कोर थाके सेलों सेतों ढबेछे गजगीरीका चोवतरा राई है।

इन वीर पुरुषों की क्योंकर नष्ट होगई बुरा शब्दों करके। देखो मीणा क्षत्रियों के कोई उत्सव विवाह शादी सगाई में प्रेमी जन आता है तब बहुत ही बुरे शब्दों में गाली गाती हैं, इन शब्दों से ही नष्ट भ्रष्ट हो गया, उन शब्दों को सुनकर ग्लानि होती है। उन शब्दों को सुनकर भी लज्जा आती है अतः यहां उनको लिखा नहीं गया है।

॥ चावलया ॥

धौला धौला चावलया परोस दिया भात जी ॥ टेक ॥ चावलया परोस दिया ऊपर बुरा सार जी ॥ आयो जी सगायो थैहतो काँसे घालो हाथ जी। कांसे घालो हाथ बतायो थाको जात जी ॥ आओ जी बियाई जी थैह तो काँसे घालो हाथ जी। कासे घालो हाथ बताओ थाकी जात जी ॥ राम झारो जल को लाई मल मल धोयो हाथ जी। हाथ धोआ मुखने धोओ मुरचां ताही पाँव जी ॥ आसण माले बैठ जाओ जीमो बूरा सार जी। जीमण लागो भात बतायो थाकी जात जी ॥ बाप थाको ओम् निरंजन माई आदि भवानी जी। तीनों भाई देवता है भहण शक्ति नारीजी ॥ आयो जी थे कृष्ण मुरारी जीमण लागो भात जी। जीमण लागो भात बतायो असली जात जी ॥ बाप थाको राजा जी छे माइ छे पट राणी जी। थे तो दिखो गाय चरया जात थाकी काई जी ॥ धौला धौला चावलया परोस दिया भात जी। भगवान गिरि ने गाय सुणाया पहिले की है चाल जी ॥

इस बावत के बुरे शब्दों में गाना गाली गीत गाणे से ही और करमगती से ही अस्त व्यस्तता से कुल का विध्वंस कराने वाला फौरम नाश करने के लिए भगवान किसी नाम रूप भेद से कुल को नष्ट कर देता है। देखो इस कुल में प्रसिद्ध हुए दूलेराय जी सबको नष्ट कर दिया है बारा मवासों के कानून नियम फिर आगे कहूंगा पहले दूलेराय जी का आणा देखो।

दुलैराय जी का आणा— १ सम्वत् १०२३ की कार्तिक बदी १० को अपने पिता के राज्य के मालिक हुए। इनके विषय में अनेक इतिहासों में अनेक बातें लिखी हैं उन्हीं का साराँश यहां दिया गया हैं 'मदनकोश' पृष्ठ ६४ में लिखा

है कि ढोला ने संवत् १०२४ में धौसा का राज्य स्थापित किया १ और इनकी स्त्री मारुणी १ थी। ये दोनों बातें अस्त व्यस्त हैं टाड के जैपुर इतिहास अ० १ में लिखा है कि धोला ने दोसा पर कबजा किया था। यह धोला Dhola अंग्रेजी अक्षरों में होने से मदनकोश में ढोला बना दिया और लोक प्रसिद्ध मारुणी को उनकी राणी मानली। 'वीरविनोद पृष्ठ ४५ में लिखा है कि दुलैराय ने बाप का हुकम मान कर दौसा में अमल किया। वंशावली पृष्ठ १५० में लिखा है कि राजा दुलैरायजी राजगद्दी पर नहीं बैठे थे कुंवर पदवी में ही रहे थे धौसा डूंगर के ऊपर था उसको उन्होंने भूमि पर शहर के रूप में बसाया था कि वंशावली पृ० ४ में लिखा है कि धौसा आये पीछे सोढदेवजी ने अपनी मौजूदगी में ही दुलैरायजी का राजतिलक कर दिया था। और ख वंशावली पृष्ठ ६ में लिखा है कि सोढदेवजी ने शुभ मुहूर्त में दुलैरायजी को युवराज बनाये और राज बढ़ाने की आज्ञा दी अस्तु।

(२) पिता की आज्ञा के अनुसार दुलैरायजी ने सर्व प्रथम मांची पर चढ़ाई की इतिहास राजस्थान पृष्ठ ८८ में लिखा है कि माचो के मीणे इस बात को जानते थे कि दुलैरायजी ने दौसा * और भाण्डारेज के मीणों को कितने जल्दी हराये थे। यह सोच कर उन्होंने अपने समीप के मीणों को इकट्ठे करके लड़ाई छेड़ दी। इस में मीणे ज्यादा थे अतः दुलैरायजी को सफलता नहीं मिली। इस बात से हर्षित होकर मीणों ने मांचीगढ़ में मदिरा की मतवाल की और जीत का जलसा किया। फल यह हुआ कि दुलैरायजी ने दुबारा चढ़ाई कर के उनको हरा दिया।

(३) वंशावलियों में लिखा है कि मांचो की पहली लड़ाई में दुलैराय जी मूर्छित हो गए थे तब वहां की बुढ़िया माता ने सपने में कहा कि डरो मत दुबारा चढ़ाई करो मरी हुई सेना सजीव हो जायगी और तुम जीतोगे। यह सुनकर दुलैराय चैतन्य हुए और दारू पिए हुए मीणों को मारकर माची में अधिकार किया। बीच में धौसा के बड़ गूजरों ने अपने भाई (देवती के राजा) की मदद लेकर धौसा पर फिर चढ़ाई की थी लेकिन दूरदर्शी दुलेराय जी ने उनको दूर ही से घेर लिया और हताहत करके हरा दिया था।

मांचो विजय की यादगारी में दुलैराम जी ने माँची से ३ कोस पर नाके में देवी का नवीन मन्दिर बनवाया था और उसको बुडवाय के बदले जमवाय नाम

से विख्यात किया था इसको चांदा मीणा की रानी बताते हैं। इस अवसर तक दुलैराय जी धौसा में ही रहे किन्तु मांची में अधिकार हो जाने से वहाँ रामचन्द्र जी के नाम पर रामगढ़ बसाया और वहीं रहने लगे।

(४) रामगढ़ रहने के कुछ दिन बाद दुलैराय जी आमेर की तलैटी के तीन ठिकाने और दबाये इनमें वर्तमान जयपुर से पूर्व में २॥ कोस खोह में चांदा मीणा था उत्तर में १ कोस गेटोर में गेटा मीणा था और पश्चिम में १॥ कोस झोटवाड़ा में झोटा मीणा था ये सब अपने अपने ठिकाणों के राजा थे और राव कहलाते थे समय पाकर दुलैराय जी ने इन पर भी चढ़ाई को और उनके फौजी बल को तोड़ कर यथा क्रम तीनों ठिकानों पर अधिकार किया। जिसमें विजय के साथ धन भी हाथ में आगया तब दुलैराय जी ने उस धन से वहां एक मजबूत किला बनवाया और रामगढ़ के बदले उसी में रहने लगे। इतिहास राजस्थान पृष्ठ ८९ में लिखा है कि सोढदेव जी उस समय तक साथ रहे थे और खोह में गए पीछे उनकी मृत्यु हुई थी। खोह एक प्रकार से आमेर का ही अंग है और सम्भव है अंगीभूत अंश मान कर ही ईश्वरीसिंह चरित्र पृष्ठ २ में सोढदेव जी का आमेर बसाना लिखा है।

(६) आयुष्टा के अंत में दुलैराय जी ग्वालियर के राज की अर्जी आने पर वहां गये और दक्षिण से आये हुए शत्रुओं को परास्त करके ग्वालियर के जयसिंह को सहायता दी। 'क' वंशावली में लिखा है कि दुलैराय जी ग्वालियर से गहरे घायल होकर आये थे और खोह में आये पीछे संवत् १०९३ में मरे थे। यही हाल उनके सहगामी शूर वीरों का हुआ। किन्तु 'ग' वंशावली पृष्ठ ११ में लिखा है कि दुलैराय जी ग्वालियर के युद्ध में विजयी हुए थे और वहीं मरे थे। वीर विनोद पृ० ४९ में भी उनके ग्वालियर में ही मरने का उल्लेख है। इन तीनों के सिवाय टाड राजस्थान में पृष्ठ ५६५ में लिखा है कि एकबार दुलैराय जी जमवाय के दर्शन कर घर जा रहे थे। साथ में सगर्भा मारुणी रानी भी थी। उसी अवसर में ११ हजार मीणों ने हमला किया। तब वह क्रोधित सिंह की भाँति उन पर झपटे और बहुतों का विनाश किया किन्तु अन्त में आप खुद भी उसी में खेत रहे। यहां उनकी राणी को मारुणी लिखने में भूल की है और उसे संग भी

मान कर आगे काँकिल जी का जन्म दुलैराय जी के मरने पीछे बतलाने में भी भूले हैं।

(७) दुलैरायजी की उपरोक्त जीवन घटनायें सभी इतिहासों में यथा सम्भव मिलती जुलती हैं। परन्तु इनके विषय में टाड राजस्थान (पृष्ठ ५६२ से ५६५) तक जो पीछे लिखा है वह सर्वथा विपरीत और विचित्र है। जयपुर इतिहासकारों के लिए उसका सारांश मात्र यहां दिया गया है। टाड साहब ने लिखा है कि सोंढ देवजी के मरे पीछे बालक दुलैरायजी को उसके काका ने गद्दी से उतार दिया। तब प्राण नाश के विचार से माता ने उसे टोकरे में रख दिया और अलक्षित होगई वह वहां से चलकर उपरोक्त खोह के पास इक बड़ वृक्ष की छाया में बैठ गई और उसके फल गोल बीन कर खाने लगी। उसी अवसर में एक भयंकर सांप ने फन फैलाकर बालक के सिर पर छाया की जिससे रानी डरगई किन्तु एक ब्राह्मण ने धीरज बंधा कर कहा कि डरो मत यह बालक राजा होगा। तब रानी उसको लेकर होस विचार करके खोह में चली गई और वहां के मीणा राजा की धर्म बहिन होकर रही। वहाँ १४ वर्ष में दुलैराय सब प्रकार के राजोचित रहन सहन शिक्षा व्यवहार और युद्धादि विषयों में निपुण हो गये और मीणा राजा की ओर से बादशाही कर देने को दिल्ली चले गये। वहां एक चारण के प्रबोध करने पर कई कर अदा कराने वास्ते राजपूतों के साथ वापिस खोह आया करते थे और वहां के मीणों को मार कर खोह (आमेर) के राजा होगये। जन श्रुति में यह कथा इस प्रकार है कि सोढेदेवजी के मरे पीछे उनकी गर्भवती रानी देवर के भय से इस देश में चली आई। यहाँ उपरोक्त बड़ के नीचे उसके उदर से दुलैराय ने जन्म लिया। पास ही एक हिरनी का बचा था अतः वह उसको भून कर खागई और आगे उपरोक्त प्रकार से खोह में रह कर जाकर राजा महाराजा होने का अवसर प्राप्त किया। दुलैराय जी के आने से पहिले सब जगह पर मीणा क्षत्री ही राज्य करते थे।

Proprietor— Shri 108 Maharaja Mansingh Bahadur

Shri 108 Swami Bhagwan Giri Updashak

मीणा क्षत्रिय महासभा के सदस्यों की नामावली।

रकम नाम गोत गांव रियासत

५) ग्यारसीरामजी लोदवाल बामडो जयपुर
५) भालारामजी सांहोरा लालवास ,,
५) पाचुरामजी श्रमर उलुपुरा भरतपुर
२) गोपीरामजी बालोत अइलपुर जयपुर
१) पाचुरामजी बालोत पनायण अलवर
१) हरफूलजी नाई मानपुरो अलवर
१) श्योपालजी मचोया कालोखानो जयपुर
२) ग्यारसीरामजी लेखणुना दिदरोली ,,
१) तुलसारामजी घावणा सांयो जयपुर
२) धर्मसिंहजी मीमरोट कोठान ,,
२) लादुरामजी बागडी अजबगढ़ अलवर
१) चेतरामजी देवडवाल ढांडा मेहरमती
१) कनयालालजी बयेदांडा खोरो अलवर
१) भोरालालजी बणवत झारेढो जयपुर
२) भोरीलालजी महर धवानघोलेढ़ा जयपुर
१) पुनीरामजी गुसांधा सेहरो अलवर
१) नानगरामजी महया झाडोटा भरतपुर
१) कनयालालजी याटोया कन्वपुर अलवर
१) किशनसिंह घुसीगा उलुपुरा भरतपुर
१) मुकन्दसिंह बारबाल उलुपुरा ,,
१) सोनपालजी देवडवाल उलुपुरा भरतपुर
१) रंगलालजी लोदवाल बांमडोल जयपुर
१) हट्टलालजी कांदया खोकरा जयपुर
१) मुनीरामजी चोटोस्या सोट्टको जयपुर
१) रामजीलालजी श्रमर साहापुर ,,
१) भूथारामजी धयाबणा दादनपुर ,,
१) चन्दरसिंहजी बमणावत झहारेडा ,,
१) रेखारामजी गुलाथोमाडवल गुलाणा जयपुर

रकम नाम गोत गांव रियासत

१) चन्द्रीजी थैंदाड़ा टोडा बिलोत जयपुर
१) सुकदेवजी मेथाल दुमेडो अलवर
२) रणजीतसिंह डोबवाल उदेपुरो जयपुर
१) रामदेवजी ब्यफलावत पेमपुरो ,,
१) अठालारामजी टांटु बडया ,,
२) भोंरीरामजी मांडा चावाला ,,
१) प्रभातसिंहजी माणतवाल राजणुता जयपुर
१) मंगलसिंहजी देवडवाल मानपुरसिकराई ज०
२) धन्नारामजी जौरवाल मन्डावरो ज०
२) हरीरामजी सीहोरा निठोयारो अलवर
४) धवलुसिंहजी जारवाल ढांगारिया ज०
१) रामदेवजी मिमराटे पाटोली भजेडा ज०
५) ग्यारसीरामजी सीरा निठारी अलवर
१) नहनुजी सीरा निठारी अलवर
१) जैरामजी सोहरा सिगणोया ज०
१) ग्यारसीरामजी टाट्टु धोरावाला अलवर
१) मंगलजी महर तमायो जयपुर
१) रामसायजी घुसीगा भूतपुरो अलवर
१) बुदारामजी सारा तमायो ज०
१) भोरीलालजी महर सेखुपुरा ज०
१) रामचन्द्रजी कोटवाल्या रौत ज०
१) केसुरामजी बमणावत गाजीपुरकीरी ज०
१) मांगीलालजी घुसोगा सांता ज०
१) रामप्रसादजी घुसोगा सांता ज०
५) मूलचन्दजी घुणावत साकवडा ज०
२) जावणजी पवडो मुडया भद्दरथपुर
१) दुलीचन्दजी सेवरया गुरावडा गुडगांव
१) दुलेरायजी ब्याडवाल दातलोभावणो ज०

रकम नाम गोत गांव रियासत

१) पुरोजी बारवाल रामथला ज०
१) मंगलोजी बागडी सीतापुर ज०
१) छोटु जी धावणा बीतांडो ज०
१) श्योरामजी ढोबवाल बांगोलाडा ज०
१) भूरोजी बासणवाल आगर नागल अलवर
१) गेन्दोजी डोबवाल लायडोकाबास पुसा ज०
५) बिरदोजी बालोत रामसिंहपुरा ज०
१) महादेवजी बांसखोवा टोडावसो ज०
१) रामनारायणजी खोड़ो बिलोत ज०
१) कानसिंहजी गुमलाडु लालगढ ज०
१) रामनाथजी बालोत रामसिंहपुरा ज०
१) घन्नोजी बांसखोवा टोडाभाटाला ज०
१) महादेवजी धयावण पीपल्यो ज०
५) रामचन्द्रजो बालोत लालगढ़ ज०
१) प्रभातीजी खोडो बीलोत ढोडो ज०
१) गुल्लोजी बालोत रामसिंहपुरा ज०
१) मूलारामजी डोबवाल लायडोकाबास ज०
१) श्योरामजी कंवल पीपल्योबिसनपुरा ज०
१) नाथुरामजी खोडा बिलोतका जयपुर
५) नानगरामजी ब्याडवाल सुजाणपुरा ज०
१) धौकलजी डोबवाल डदेपुरया ज०
१) शरवणजी डोबवाल डदेपुरया ज०
१) ग्यारसीजी देवडवल ठीकरया सनीवास ज०
१) गेदांजी डोबवाल लायडोकाबास ज०
१) घन्नोजी बकलावत खोरी ज०
१) रायलजी बांसखोवा टोंडाभाटाला ज०
१) धौकलजी बांसखोवा टोंडा ज०
१) ग्यारसीजी मेवाल गोठडा ज०
१) पांचुरामजी डोबवाल देवुरया ज०
१) भूवानीजी ब्याडवाल टोड भाटावाला ज०
२) महादेवजी बालोत गढ़ चपडया ज०
२) बीरदोजी बालोत लालगढ़ ज०
१) पाचूरामजी सोगल गोवन्दगढ़ अलवर
१) बीरदारामजी ब्याडवाल दौलतपुरा ज०

रकम नाम गोत गांव रियासत

१) गंगारामजी रांकला दादीयो जयपुर
१) भौरीलालजी बडगोती घुला ज०
१) रतनसिंहजी बडगोती बीसखो ज०
२) महादेवजी गुमलाडु रामनगरछोटी ज०
१) चन्दारामजी छोडवाल राणीवास ज०
१) ग्यारसोजी बकलावत पयारीवास जयपुर
२) नानगरामजी धयावण रामगढ़ ,,
१) छीतरजी डोबवाल लारडीकाबास ,,
१) सुखरामजी मेहर पीपल्यां ,,
१) रामकुवारजी गुमलाडु रामनगर ,,
२) गुलारामजी धयावण निरानपुर अलवर
१) छाजूरामजी बैकलावत नवाबास जयपुर
१) भूरोंजी बैकलावत कीसोरपुरा ,,
२) रामलालजी देवडवाल नेवरखेड़ा ,,
१) नानगरामजी मंडावत दौसा ,,
१) बालोरामजी गुमलाडु रामनगर ,,
२) कानारामजी घुणावत डाबडरोपुरा ,,
१) फुलारामजी देवडवाल सिकरोद ,,
१) परसादोलालजी मेहर रौणीजाकाबास अ०
१) श्रीरामजी मिमरोट पाटोलो भजंडा जयपुर
१) भौरीलालजी लोदवाल पहनेहडा ,,
२) भूथारामजी नारडा नागलजटवाडो ,,
१) जलधारो बरणावत भारेडा ,,
१) गंगाधर बरणावत भारेडा ,,
२) भैारीरामजी मीमरोट घाट पाडली ,,
२) घुड़मल छाडवाल सुजाणपुरो ,,
१) फुलारामजी देवडवाल सिकरोदा ,,
१) परसादीजी मेहर रोणीजाकावास ,,
१) श्रीरामजी मिमरोट पाटोलीभन्डा ,,
१) भौरोलालजी लोदवाल पहानेहडा ,,
१) परसादीसिंहजी नारेड़ाखेडलीबामणोकी ,,
१) किशनलालजी गुसीगा बालाहेड़ी ,,
१) रामचन्द्रजी फोकरीय मोजपुर अलवर
१) रामचन्द्रजी फोकरीय मोजपुर अलवर

रकम नाम गोत गाँव रियासत

२) पौलीरामजी बेसर हरणोटी ,,
१) बरदुजी बारवाल रोडोहरीपुरो ज०
१) मुलीरामजी थालांत पारवास ,,
१) लट्ठरसिंहजी ज्यरवाल मलावली अलवर
२) रतनलालजी महर थांदेरा ज०
२) छोटुरामजी बारवाल गुरयानागल अलवर
२) कनैयालालजी घुसीगा अमरपुर ,,
२) भगवानजी बारवाल हिन्दुपुरा ज०
२) श्योपालजी मीमरोट भेदाडो ज०
२) रेवड़रामजी घुसीगा पाखेरसायपुर अलवर
४) बसन्तरामजी टांटु हलधीणा ज०
१) रामपालजी जारवाल इटोली अलवर
१) गंगासाईजी बियाडवाल भह्दरी ,,
१) छोटुरामजी देवडवाल करेलेकाबाड ज०
१) मंगलाजी क्येदांडा भांवतो ,
१) शौजीरामजी डोबवाल उदेपुरो ,,
१) फुलारामजी देवडवाल सिकरोदा ,,
१) परसादीजी रोणीजाकाबास मेहर अलवर
१) श्रीरामजी मिमरोट पाटोलीभजेडा ज०
१) भौरीलालजी लोदवाल पहानेहडा ,,
१) परसादीजी नारडा खेडलीबामणोकीड ,,
१) मंगलजी घावणा घुढों ,,
१) किसनोंजी गुसीगा बालाडी ,,
१) सरवणजी नोगाढा खोरोरवासा ,,
२) गणेशजी सयावन पाटणकाबास अलवर
१) भारीरामजी वयफलावत मलवास ज०
१) रमलाजी बेनाडा ढडावड ,,
१) घमन्डी मेहर तमावा ,,
१) मागीरामजी मेहर तमावो ,,
१) कनैयालालजी कोटवाल्य कमालपुरा अलवर
१) शौजीरामजी कोटवाल्या कमालपुर ज०
१) परसादीरामजी मेहर संकरपुर ,,
१) श्योनोंजी मेहर संकरपुर ,,
१) सुनदररामजी बड़गोती नागलसुलतानपुर
१) भौरीलालजी मेहर सेखुपुरा ,,

रकम नाम गोत गाँव रियासत

१) रामचन्दजी बड़गोती नागलसुल ,,
१) रामचन्दजी बड़गोती नागलसुलता० ,,
१) किशनलालजी खोकल माचड़ी ,,
१) लहीढेरामजी नारेड़ा गांवड़ी ,,
१) स्यालुरामजी सीहरा डूंडा बसेडी ,,
१) किलाणजी कांयटया बामनवास ,,
१) बलदेवजी व्यडवाल काणीखोर ,,
१) भोरीरामजी बफलावत मलवास ,,
१) सरवणजी व्याडवाल पनाण अलवर
५) मौहरालजी सीहरा डैड़ाबसेड़ो ज०
२) मनफूलजी देवांदां बैरको अलवर
१) सुलतानसिंहजी जाखीवाल निठारी ,,
१) भौरीलालजी छापोला बड़ोको ,,
१) गोबिन्दरामजी मारीग गठवाड़ो ,,
१) भगतरामजी बागड़ी अमरोल ज०
१) मनसारामजी बासखोवा हरड़ी ,,
१) तानौजी पवड़ी भीड़ो ,,
१) नथुरामजी मेहर पाड़ली ,,
१॥=) हठुजी जमादार बामड़ीस ,,
॥) दामोदर नदोजी दोंकानाम ,,
॥) बिशनजी जींवसीजीं बिलवा खोलवाल ,,
।॥) मुलींरामजीं श्रींरामजीं खींड़खींड़ी कांपुर
।॥) घुड़ींरामजी गंगारामजी घौलेटो देवाच्यों
॥) रामधनजीं जामडोल गावका ,,
।॥) भौरींलालजीं लोजबाहर ,,
॥) रामदेवजी पयारींवासका ,,
॥) शंकरजी गड़का ,,
॥) कनह्यालालजी सींरा ड़ेड़ा चिसेड़ी ,,
१) रामधनजीं बड़गोतीं जौलदो ,,
१) भौंरींलालजी मांदड़ श्रीनगर हींगवाला ग्राम
१) गोबिन्दरामजी खोड़ा बीलोत टोड़ा ,,
१) तानारामजी पवड़ीं कालींकाड़ी ग्राम ,,
२) मनफूलजी देंवादा बेरका ग्राम अलवर
१) सुलतानसिंहजीं जाखोवाल निठारींग्राम ,,
१) भौंरींरामजी छापोला बड़ोका ,,

रकम	नाम	गोत	गांव	रियासत
१)	गोविन्दरामजी	मारवा	गोट	पालड़ी ,,
१)	भगतरामजी	बागड़ी	मांड़ोता ग्राम	ज०
१)	मंसारामजी	बांसखोवा	हरड़ी ग्राम	,,
१)	हरनारायणजी	मांदड़	खुरी ग्राम	,,
१)	मथूराम जी	ढोबवाल	राणोली	,,
२)	गोकलरामजी	उसारे	जयबक्ष	,,

रजिस्टर सभासद बाकी ।

हरचन्दज घणावत अलवर तिजकी १)
बुदरामजी कागेत साजापुर अंग्रेजी १)
फैलीराम जी गुसींगा जयपुर १)
रेवड़राम जी जंगाड़ा पोलवा जयपुर २)
सुखराम जी जाखाल डेंडा ब० ,, १)
संडुराम जी मीमरोट न्यालपरा ,, १)
कलाणो जी धावणो नागलनटाटो ,, १)
महादेव जी सीरा बड़वा ,, २)
मंगलसिंह गोठवाल देहालो बा० ,, १)
मोलीराम जी बैंकलावत मलवार ,, २)
फैलीराम जी उसारा जौण ,, १)
हरभजनजी छांडवाल इंटोली अलवर २)
चन्द्रसिंह जयोखाल खेडीया जयपुर १)
मथुराम जी मीमरोट ढीगारीया ,, १)
हरलाल जी मिमरोट पाटोली भ०,, १)
श्रीलाल जी गहलोत सातापलेड़ा ,, १)
भोरीलालजी खोकल मांवड़ी ,, १)
कनैयाल्लालजी महर पोटनबुजेट ,, ५)
ग्यारसीराम जमादार निठारी म० ,, ६)
रामसहायजी मन्डावता टीकरयाका,, १)
डुगारामजी बेकलावत मलवास ,, २)
सखण जी गोठवाल राणीवास ,, १)
महादेवजी देवडवाल घुराणी अलवर १)
सोनीरामजी खोडा जयतपुर ,,
बुदराम जी ब्याडवाल खुरमा ,, २)
रामदेव जी मांदड रायालो ,, २)

रकम	नाम	गोत	गांव	रियासत

रूपसिंह झाडवाल गोविन्दपुरा जय० १)
जंगलरामजी मीमरोट बैंजुपाड़ा ,, १)
मोहरपालजी जमादार की मजत०,, ५)
भोमारामजी घयावणा घुढाण्याव ,, ५)
गयरसो जी मरमट मोरां ,, १)
मूलीराम जी वाखाल बागपुर ,, १)
कालाराम जी बेकलावत बिहारी ,, १)
भूराराम जी सीहरा मन्दोरपुरया ,, १)
किसनो जी बेकलावत खानवास ,, १)
नानगरामजी बेकलावत बिहारीपुरा,; १)
गोरधनजी डोबवाल राणीवास ,, ५)
बीरदाराम बैफलावत किशोरपुरा ,, १)
कल्याणजी माणतवाल नेवरखेड़ा ;, १)
सुखदेव बागड़ी बरहटो ,, १)
किशनलाल बफलावत किसोरपुर ,, २)
जयनसिंह ध्यवल झालेटालो अलवर १)
मीहोश्री टांटु धोराला अलवर १)
रामनारायण कालोत काश्रा भरतपुर १)
मुलीराम पवडी कालीकाड़ी जयपुर १)
महनपुराम पवड़ी भींहो ,, १)
सुखराम बगराणा बामलास ,, १)
प्रभुराम कागोत सांजापुर

बांहर से आने वाले सभासदों के नाम

रामदेव चपरासी जयपुर, भौरसिंह जयपुर, सोनाथ छाबेला, बिरधीचन्द राम बाग, लछमनसिंह अमरोल, मांगीराम पालनपुर, धूंद्द मुलकपर, सुलतानसिंह कोटपुली, रामबकश जमुआ रामगढ़, श्रीकृष्ण दताला लछमीनारायण भिंड, दुर्गाप्रसाद यू० पी० भगवानसिंह कुग झालावाड़, बोधन सूबेदार, पेमू पटेल लछमन सिंह अलवर, रामजीवन दानपुर, भौंरीलाल बसवा आदि सब जगह से

पधारने की हम आशा में थे ॥

नीचे लिखे अनेक स्थानों पर भी मीणा क्षत्रिय महासभा के उत्सव हो चुके हैं:-

अखिल भारत वर्षीय मीणा मारण क्षत्रिय महासभा जमवा रामगढ जयपुर राजपूताना में स्वर्गवासी धनाराम जो ने कराई उसके बाद प्रथक २ जगह पर बहुत जगह हो चुकी कई जगह जलसे होते हो रहते हैं अब हर जगह जागृति होती जा रही है अब पिछड़ी हुई मूल संप्रदाय भी मीन भगवान की सृष्टि को सबहो धन्यवाद देते हैं। कि अब तक कहां छिपे हुए थे अब पृथिवी से ही निकलते हैं! धन्यवाद है जागो जागो सुर्य उदय हो गया उठो समस्त मारण क्षत्रियों को विदित हो कि मेरी आप सब सरदारों से प्रार्थना करता हूं कि अपने २ चारण भाट जगायों को पूछ कर बृढ अपने २ पूर्वजों की वंशा वलियें पढ़िये और कुर्शी नामा पूरे २ पते से ग्राम, नाम ठाम दान मान गोत्र प्रसिद्धी और गुण गोत आदि सम्पूर्ण हकीकत शुद्ध हिन्दी अक्षरों में लिख कर स्वामी मगन सागर जी महात्मा के पास भेजैं व स्वामी भगवान अदुतानन्दगीरी के पास भेजें वा युपी बरमा सम्पादक दुर्गाप्रसाद के पास भेजें शीघ्रही भेजने की कृपा करें क्योंकि आप अपनीं अपनीं प्रसिद्धी लिख कर भेजोगे तो सब ही प्रकाशित कर दी जायगीं देर मत करो आप और जिस २ गोतों का किसी भी सरदार का हमारे को कहीं भो लेख मिलेगा उसकी हम खुद प्रकाशित करते रहेंगे आप भी कृपा करें इस समय का प्रकाशित किया हुआ तुम्हारा प्रकाशित नाम जब तक धरती आसमान रहैंगे जब तक थर बना ही रहेगा पीछे कोई सरदार ऐसा न कहें कि हमारा तो कोई नाम निसान ही नहीं आया नाम निसान तो तुम्हारे हाथ में है हम आपका नाम पूरे पते पर लिखते हैं कि पीछे भी प्रकाशित हो सकता है इस लिखणे से डरपो मत तुम छुपते क्यों हो वहा वहा दबते कु हो भाजो मत २ मेरे पास आओ मैं आप का पूरे पते पर नाम लिखता हूं उस का मतलब समझाया जायगा आयों २ तुम्हारी उत्पत्ति सुरूसें सुणावें मीणा का राज बिस्तार बताता हूं सुणो कान लगाके साधु टाड साहब का इतिहास का प्रमाण स्वामी मगनसागर जी ने मीने मीन पुराण भूमिका में पृष्ठ १४ में लिखा है कि आदिनाथ आदिश्वर असिहीश बाघेश मानु मनु मीनेश। मिन और नूह ये सब एक ही मानव पिता के भिन्न २ नाम विष्णु भगवान के ही हैं। मीणां जातो के चारंण और भाटों की विरुदावलीयों में मिणा शब्दावली में लिखा है प्रथम मीणायां की ही उत्पत्ती शास्त्रकारों ने बताई है मीणों की मूल उत्पत्ति विष्णु भगवान से विष्णु भगवान की नाभ कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई ब्रह्मा की भुजायों से मनु की उत्पत्ति हुई मनु स्वायंभुव मनु जो के दो पुत्र सतरूपा राणी से जन्म लिया स्वामी मगम सागर जो का लेख प्रमाण से मीन पुराण स्कंध १ अध्याय ८ पृष्ठ ६६ में लिखा है कि समेरु से दक्षिण हिम नामक देश में और हेमकुट नामक देश

में और सुमेरू के मध्य का देश में और नील देश में और शवत देश और यूरोप देश में और अमरिका देश में और उत्तर का शृंगवत देश में और माल्यवंत देश में और गन्धमादन देश में और केतु माल देश आदि में मोणयों का ही राज्य प्रफुल्लित शोभायमान था और मान सब मानदड गोत से ही मीणों की मूल उत्पत्ति विष्णु भगवान से ब्रह्मा और ब्रह्मा से मनुजी स्वायंभुवमनु से दो पुत्र हुआ प्रियव्रत प्रियव्रत से अग्निध्र अग्निध्र से नाभी नाभी से श्री ऋषभ देव जो ऋषभ देवजी से भरत भरत से सुमति सुमती से तेजस तेजस से इन्द्रद्युम्न इन्द्रद्युम्न से परमेष्ठी परमेष्ठो से प्रमिहा प्रमिहा से से प्रतिहार प्रतिहार से प्रतिहर्ता नाम पुत्र हुआ प्रतिहर्ता के उन्नेता उन्नेता से भुपन्पुत्र भुपन से उद्गीथ उद्गीथ से प्रस्तावि प्रस्तावि से विभु और विभु से पृथु पृथु से नक्त नक्त से नर नर से विराट विराट से सम्राट, सम्राट से मरीचो मरोचो से विंदुमान विंदुमान से मधु मधु से वीरव्रत वीरव्रत से धोमान धोमान से मथु मथु से महान महान से धीमत महत महत से भौवन भौवन से त्वष्टा त्वष्टा से विरजा विरजा रजा रजा से शतजित शतजित से एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए जिन्होंने अलग अलग एक सौ देशों पर राज्य किया उन सौ पुत्रों में राजा विश्वज्योति सर्व श्रेष्ठ था उन्हों ने सौ देशों में प्रजा की वृद्धि की है सर्व पाप वर्जित मुनिजनों सहित उन्हीं की समस्त मनुष्य सृष्टि मीन मन नाम से कही जाती सब ही माननेये पुजमान मांदड गोत को शुरू मादड मानव एकताई है सौगण, रायक, राजको- राजपुत आदि नामों से मीणा प्रसिद्ध हु राजावत, राजपूत । कई साका से प्रगट हुए।

मनुजी के दो पुत्र थे प्रियव्रत और उत्तानपाद प्रियव्रत की तो सृष्टि [illegible] अब उत्तानपाद की कहता हु उत्तानपाद के ध्रुवजी ध्रुवजी के पुष्टि पुष्टि के रिपु रिपु के चाक्षुस चाक्षुस के चाक्षुषमनु चाक्षुषमनु मांदड गोती के नांडला गोत और मादड उस मादड के अंग अंग के वेन वेन के पृथु पृथु के विजिताश्व विजिताश्व के हविर्धान हविर्धान के हविषद हविषद के प्रचेता प्रचेता के १० पुत्र दसों की एकही स्त्री थीं उन दसों के बीच में दक्ष नाम पुत्र हुवा यह वही दक्ष है जिन्हों ने महादेव का निरादर स्कन्द पुराण शुक-सागर अ० ४ श्रीमद्भागवत में भी लिखा है।

महाराजा आलनसिंह का मीनपुराण में लेख है कि जयपुर के चन्द्रवंशीय राजाओं में सबसे पिछले राजा महाराजा आलनसिंह थे जिनके वंश को समुलसे दुलेराय जो ने नष्ट कर दिया समय २ पर बसमे करके जीत कर और स्थान स्थान पर छोटे २ मोणयो का राज्य को जीत कर हरा दिया गया । ग्वालियर में एक शिला लेख में लिखा है कि सं० १०३४ (६७७ ई०)में वज्रदामन कछवाह ने कन्नोजपति से यह नगरी छीन ली थी। वज्रदामन के आवें वंसधर तेजकरण उपनाम दुलहराय ने सं० ११८५ (११२८ ई०) में ग्वालियर छोड़ा। कहा जाता है कि इनके

बाबा ने उससे ग्वालियर छीन लिया था। इसकी पूरी कथा मीनपुराण भूमिका में अ०३ पृष्ठ ४० से लेकर पृष्ट ६१ तक लिखी है। और मीणाओं को मित्र भाव एकता का अर्थ मित्रकी मित्रता और मीणा मैना शब्दों का बारामेवासी मीणायों के समब्द परमीणा अर्थ रहस का प्रश्न उत्तर परतन्त्र और स्व-तन्त्र सत्संग में आप सरी में उत्तर प्रश्न करणा बारे मवासी मीणा क्षत्रिय सरदार आपसरी मेतत्वमइ प्र० उ० देहली बादसयाई दरबार में प्रश्न किया करते थे प्रश्न किया कि आप कोण सरदार हो उत्तर कि मैं मिणा प्रश्न मिणा शब्द का प्रमाण क्या है उत्तर विराट रूप प्रमाण हैं प्रश्न विराट का वरण क्या है उत्तर रक्त वर्ण है प्रश्न रक्त वर्ण की अवस्था क्या है उत्तर जागरत प्रश्न जागरत या शब्द वाचा क्या है उत्तर वेखरी मानी सचाई प्रश्न वेखरी का गुण क्या है रजोगुण प्रश्न रजोगुण की मातरका क्या है उत्तर ओंकार मात्रिका प्र० ओंकार मात्र क्या को स्थान क्या है उ० त्रिकुटी स्थान प्र० त्रिकुटी कि मोक्ष क्या है उ० सालोक प्र० सालोक कि गायत्री कोण सो है उ० प्रथम पद गायत्री प्र० वाचक कोन है उ० ब्रह्म वेद बखाणी प्र० ब्रह्मा वेद बखाणी का तत्व कोनसा है उ० पृथ्वी तत्व खेचरी मुदरा मंगपपील घट आकाश प्र० मगपपील घट आकाश का निरणे क्या है उत्तर क्षरनिरणे बहवा अग्नी दसौ इन्द्रिया देवचतुर दसवासा प्र० क्षरनिरणे बहवा अग्नी दसौ इन्द्रियाँ देवचतुर दसवासा का अर्थ क्या है। उ० देहसरीर के कुल अंगों का मेल मित्रताई प्र० शरीर के मेल मित्रताई का रहस क्या है उ० पांच तत्व पचीस प्रकृति और पाँच यत्र इन्द्रियां सब की मित्रता और ऐकताई प्र० सबकी एकताई मेल होने पर क्या बणता है उ० इन चालीसौ की एकताई होने पर मनुष्य देह मीणा नाम से कहलाती है और इन चालीसों का मिर जुड़ने पर ही मनुष्य शब्द मीणा नाम बणता है इन चालीसु को मीलने पर स्थुल देह मीणा नाम से कहाती है।

और इस से आगे सूक्ष्म देह मैना नाम से कहाती हैं और उससे आगे कारण देह मारण नाम से कहवाती हैं। इन तिनो में मित्रता एकताई अलग माया ब्रह्म जीवतो तिनुको जुदाई होते ही शरीर मरतक है और मित्र भाव में अति दुख दाई होतो है।

चौपाइ—जेन मित्र दुख होत दुखारी।
तिनहिं बिलोकत पातक भारी॥
मित्र विपत्ति में होत सहायक।
मित्र सदा उर आनन्द दायक॥
मित्र समान और को दूजा।
ताते करहि मित्र की पूजा॥

मेरे मितरों का लक्ष सरूप मैंने गुरु से यह सुना है कि धैर्य १ इन्द्रियदमन २ सत्य धर्मानुष्ठान द्वारा ३ हृदय की सब ग्रन्थि छेदन करके जो दुख सुखको समान जानता है उसको ज्ञानी समझना। यदि कोई पुरुष आपको शर्पा उच्चारन करे तो उसको प्रीति शा ं न देवे क्योंकि क्षमा करने वालेका क्रोधई उस शार्प देने वाले को जलाता है और क्षमावान उसके पुण्य को पाता है ॥६॥ और

जो कोई क्रोध को त्यागता है और दूसरे का अपमान नहीं करता ७ मित्रद्रोह नहीं करता ८ और नीचन की सेवा १ अभिमान २ दुष्ट-स्वभाव ३ और क्रोधयुक्त बचनों को त्याग कर ४ अति कठोरता वाक्य ५ असुध पुरुष का संग कर्म ६ अस्थि हृदय ७ और प्राणों को दग्ध करता है इस लिये धार्मिक पुरुष कार्कश और मर्म भेदी वाक्य किसी को नहीं कहते हैं या अब इन दोनो पोंसे जैसी संगति होती है वैसाही गुण उत्पन्न होता है साधू की संगति करने से साधू होता है और मूर्ख की सगति से मूर्ख हो जाता है और चोरों की संगति से चोर जो जिसकी संगति करता है वसाई हो जाता है । जैसे वस्त्र रंग के वश में है श्वेत वस्त्र को जैसे रंग में डालोगे उसी प्रकार का रंग चढेगा यह सही समझो ।

दुलेरायजी इस मीणा अर्थ का सिद्धान्त बारेट कबीश्वरसे सीखा था और कुल मीणयों को समय समय पर जीत कर हरा दिया था मीणा मना माण इन तीनो शब्दयों का अर्थ किसी किसी तत्वेता महात्मा के पास वेदान्ती रहस को जानने वाले के पास इस ही मीणा मना मारण का वेद सिद्धान्त में भरा है क्षेत्र क्षेत्रे क्षेत्रज्ञ इन्हीं तीनों देह का नाम है स्थुल सूक्षम कारण मीन पुराण में भी स्वामी मगन सागर जी ने मीणा मीना मारण शब्दयों का रहस दरसाया है दूसरी तीसरी अ० में और स्वामी भगवान अदुतानन्द गिरि ने शक्ति प्रचण्डा मीणा रागनी के नाम से खुलासा कर दिया है अगर नहीं समजेगा कोई तो जैसे दुलेरायजी आगे मीणा कहने वालों को मौत के घाट उतार दिया था इन तीनो शब्दों को समजो जागो जागो । चेत करो ।

आपने मीणा शब्द को पकड़ तो लिया परन्तु मीणा शब्द भगवान का विराट रूप का नाम ही है । विराट रूप में सारा जगत अन्दर है तीनों दीन भी भगवान रूपमें है मुसलमान अग्र भाग हिन्दु मध्य भाग ईसाई अन्त भाग तीनों भाग जुड़ कर भगवान का विराट रूप मीणा शब्द नाम से बनता है और अन्त धर्म साका इस मीणा से निकलती है ।

सूचना—कुरीतियां नष्ट करने का उपदेश १ से १० अपील द्वारा कई नियमादि सुना चुके हैं कई कुरीतियां छुड़ाने का प्रण करा चुके हैं स्वामी भगवान अदुता नन्द गिरि के साथ में भगवानसिह नावावत डिग झालावाड़ का और दुर्गाप्रसाद यूपीवाला और नारायणसिह साजापुर वाला यह साथ में पृथक २ कई गावों में घूम २ कर उपदेश दसवीं अपील तक का नेम सुनाया और ज्ञानमाला मीनपुराण धर्म पुस्तक जिन २ गाँवों में सभा उपदेश जलसा कराया नाम जयपुर नारगढ़ सागर आमेर सीसावास बड़ागाँव भाटिया बिशनगढ़ बगवाड़ाभिपुरया कचेराला छापराड़ो सांगाला कांट चताणी पुठकावास मांगल्य नटाटा बावाला बाराखला गाढ़िसिर जमवा रामगढ़ में माथासुला जोरड़ावाला मेंहगी कूटा दताला मेजोड़ टोडी चुराणी भांकड़ी अंगारी गौरालांका बावड़ी गोपालगढ़ किसोरी

विक्रमपुरा गोपालपुरा सोली बावड़ी आदि कई गांवों में उपदेश कर चुके हैं। प्रथम अपील से लेकर दसवीं अपील तक भिन्न २ जो मीणा क्षत्रिय महासभा के उद्योग नेम सुना कर सब कुकरमों के त्याग कराने का इन सब गांवोंमें व रियासतोंमें नेमकराचुके हैं।

अखिल भारतवर्षीय मीणा क्षत्रिय महा सभा देहली महासभा हिन्दू महासभा भवन में सोमवार ता० १६-१७-१८ मार्च १६४२ को हुई इस से पहले इसे स्वामी भगवान अदुता नन्द गिरि जी सन् १६-१६ ई० स्थापित कर गये थे इस से लेकर चतुर्थ अधिवेशन हो चुका है केन्द्र देहली हैड आफिस देहली है आज ता० १७-३-४२ के वर्किंग कमेटी के सदस्य कि अन्तरंग मिटिंग जाति धार्मिक सुधार हुआ प्रातःकाल १०॥ बजे से २ बजे तक जिस में निम्न लिखित जाति बंधु व प्रान्तिक सभाओं के दूर २ तक के सदस्य उपस्थित थे और सब उपस्थित सदस्यों ने शुरू अधिवेशन को अखिलभारतवर्षीय मीणा क्षत्रिय महासभा का चतुर्थ अधिवेशन शुमार किया अपने २ हार्दिक इच्छाओं से घोषित भी किया और इन मेम्बरों ने जो ऊपर से सबको नामावली छप चुकी है उन सब की सम्मति देने से चुनाव निम्न है अखिल भारत वर्षीय मीणा क्षत्रिय महासभापति श्री श्री१०८ श्री स्वामी भगवान आदुना नन्दगिरी उपदेशक की शिक्षा पर आम मानने को तयार है जिन जिन नियमों पर चलावेंगे उन पर आरूढ रहेंगे सब ने मंजूर है और देहली में पाचूराम जी पनयण वाले पटल गोत्री बालोत और ग्यासीलाल बामडोस बडी बटोवाला गोती लोदवाल और भोलारामजी लालवासकागोती सोहरा और पाचूरामजी उल्लूपुरा का गोती आमट और रेवडरामजी पोलवा का गोती जंघला और सेरसिंह जी जमवा रामगड सौंरा यह सब हो सज्जन जाती सेवा में स्वामी जी के साथ रात दिन नियत रहे तन मन से अति सर्दी कष्ट उठाया सुवामीजी इनको धन्यवाद देते हैं और आशा है कि आगे करते रहेंगे और जाती सेवा के वास्ते जिन जिन का नाम प्रकाशित है वे सब ही हैं परन्तु तन मन धन तीन रूप से सेवा करने को और आरूढ है सो सबको सम्मती देने से चुनाव निम्न है श्रीमान पाचूरामजी पनयण वाला सभापती और श्रीमान ग्यारसीलालजी बामडोसवाला उपसभापति और श्रीमान गोरधन जी राणोवासवाला प्रधान मन्त्री और श्रीमान लादूराम जो अजबगढ़वाला उपमन्त्री श्रीमान भोंलाराम जी लालवास वाला खजानची और श्रोमान सुलतानसिंहजी कोटवाला निरीक्षक और श्रीमान प्रभूसिंह जो सांजापुर वाला प्रबन्ध कर्त्ता और वर्किङ्ग कमेटी के मेम्बरान यह हैं श्रीमान मुलचन्दजी और घूणावत साकवाडा और श्रीमान ग्यासीरामजी सींहरा निठारोका और श्रीमान रतनलाल जी मेहर चांदपुर का और श्रीमान् छौंदूराम जी बारवाल और श्रीमाम मोहरपाल जी सोरा डेढावसेडीका श्रीमान बरदुराम जी बालोत और श्रीमान रामचन्द्र जो बालोत और श्रीमान नानगराम जी बोशनो जी सुजाणपुरा का और श्रीमान

दामोदरजी देवड़वाल और श्रीमान हरचन्द जी चान्दपुरका और श्रीमान गोकलराम जी ऊसारा जयचलका यह बड़ी महासभा के कार्य कर्ता चुने गये और यह अखिल भारत-वर्षीय मीणा क्षत्रिय महासभा केन्द्र देहली की प्रान्त देहली की सभा और हर जाति बन्धुओं को इस महासभा की सेवा में तन मन धन से करती रहेगी आज तारीख १९ मार्च सन् १९४२ को देहली प्रान्त सभा का चुनाव देहली जनता मीणा गणकी सर्व सम्मति से चुनाव निम्न लिखित किया गया श्रीमान पद आरूढ़ मान भाई हर आदिमियों का परसव नाम नोट। श्रीमान पांचुराम जी आमट उलुपुराका सभापतिजी और श्रीमान ग्यारसीरामजी बेफलावत उपसभापतिजी और श्रीमान गोपीराम जी बालोत बिड़ला मन्दिर प्र० मन्त्री और श्रीमान रामजीलाल जोरवाल उपमन्त्री और श्रीमान रेवड़राम जी भंगाल। खजानची और श्रीमान सोनलालजी धिवावणा निरीक्षक और श्रीमान महादेवजी गोमलाडु प्रबन्धक और चुने हुए मुख्य २ कार्य कर्ता मेम्बर श्रीमान श्योपाल जी मच्छा, श्रीमान छोटूराम जी बालोत, श्रीमान भंवर लालजी बेफलावत, श्रीमान रामलालजी बेदाड़ा, श्रीमान गुल्लाराम जी घयावणा, श्रीमान मंगलाराम जी बागड़ी, श्रीमान ग्यारसीरामजी लखनोता, श्रीमान श्रीरामजी जारवाल, श्रीमान हरपाल जी बड़नाई श्रीमान ग्यारसीराम जी टांटू, श्रीमान गणेश जी सतावन, श्रीमान नानगरामजी घयावना, श्रीमान बालूराम जी गोमलाडु, श्रीमान दाना जी स्येदाड़ा, श्रीमान चन्द्रोजी बेदाड़, श्रीमान बलदेवजी बियाड़वाल यह जगह उगाई उपदेश कुकर्मों से जाति भाइयों को बचाना वास्तव में सभी भाई सरीकत हैं और साल भर में अच्छा काम कोई भी सरदार करके दिखावेगा सोही ऊंचा पद का अधिकारी होगा कोई भी शपथ करके देखले तन मन धन से जुटजाव श्रीमान् नाम तो सभी चाहते हैं मानको कौन नहीं चाहता सब चाहते हैं मान के वास्ते देव मंदिर धर्मशाला पाठशाला स्कूल क्षेत्र आदि बनवाते हैं मान के वास्ते धर्म विवाह और नुकता यज्ञादि करते हैं मान के वास्ते कुवा बावड़ी तलाव पियाऊ कराते हैं मान के वास्ते बाग बगीचा सड़कों आदि लगवाते हैं मान के वास्ते बड़े बड़े सूर.वीर रण भूमि में सिर कटवाते हैं राजा महाराजा मान के वास्ते युद्ध संग्राम कराते हैं श्रीमान नाम तो धरानेवाले तो कोई कोई जन्मता है देखिये आप श्रीमान नाम पर क्या क्या उन्नति करके दिखाते हैं। देखिये अपना आपको मीणा और मेना मारण कहने वालों को मुखीस्द हम मीणा मेना मारण शब्द का अर्थ समझाने के वास्ते बहुत दूर तक बुलाये बरन्तु बुलाने से दूर २ तक के आये भी परन्तु देहली में समीप रहने वाले लोग नहीं आये क्योंकि अपना नाम गाम गोत और सभा में दान देना भी मंजूर किया था अपना नाम भी लिखवा कर इधर उधर भाग गये उनका नाम भी छुप गया अगर यातो जाति धर्म नेम पर खड़ा होना ठीकहै जिनने अपना नाम पर दान लिखवाया है और जिन जिन

उसका सभापतिग्रो से
...बरों से चुनावट वालों से पाई
का हिसाब लेवे और अकरम कर्मों को
त्यागन करते चले जावें नियम पर चलें और
सुनने में आया है कि कुकरम करने वालों की
एक पारटी बननी शुरू हुई है देहली में से ही
एक शक्स मीणों में से अकरम पारटी
का गुरु प्रकट हुआ है जिसने डबल फाटक
आदि कईजगह में और आगे एक कारखाना है
जिसमें भूथा जमादार है वहां तक उस कुकर्मी
ने कितने ही का बिगाड़ किया है उसकी
तहकीकात कर के बदमास पारटी का
आदमीयों को अपीलों द्वारा प्रकाशित कर
देंगे या तो गोल २ बात में समझ ही जायेंगे
नहीं तो आगे देखेंगे कि बदमास पारटी
कहां तक बढ़ती है अच्छे २ आदमियों की
निंदा करनी कलंक लगाना अच्छा काम करने
वालों के वास्ते सूत बहुत खड़े हो जाते हैं
परन्तु अच्छे का फल अच्छा होता है और
बुरे का बुरा होता है हमारा तो कहना है कि
बेबिचार तम करो खून मत करो जबरदस्ती
मत करो किसी के हक पर कबजा मत करो
किसी की निन्दा चुगली मत करो अपने
पड़ोसी से मेल रखो विद्या पढ़ो पढ़ाओ ऐलम
सीखो सिखाओ और किसी की बहण बेटी
ने मत बिगाड़ो उड़ावो हमारा तो यही
उपदेश है।

आगे भिन्न २ के मेम्बर और भगति अंगी अधिकार।

२) भोंरसिंह महासभा चौड़ा रास्ता जयपुर
१) गणेशजी गुजैटा नोरंगपुरा ज०

१) ...
१) छाटुराम...
१) कानारामजी के...
१) ग्यारसीरामजी डोबवा...
२) सोहनलालजी धावणा सा...

सोनलालजी तुलसीराम जी का सुपु
सभासद चुनाव मेम्बरों की एक रोज ...
जाफत ऐसीं रेहस की बनवाकर भोजन
जमाये देवता के अनुकूल भोजन करवाये।
१) चुन्नीलालजी हिराहवर कोटा का खास...
१) हेतरामजी चौधरी बुलन्दशहर यू० पी०
१) लोहड़ीरामजी डोबवाल चुड़ासु जयपुर

लोहडेराम ने एक हठऐसा किया उस हठ
से सभा के आदमियों ने सर्दी में अति कष्ट
उठाया सराय रोहल्ला का सब इन के ऊपर
गेर दिया था लेकिन लोहडेराम ने ...
बहुत उत्तम रक्खी ...
तीन दफा चावल बूरा ...
किया सब को खुश ...
सभा में सरीकत हागये
१) नत्थूबाई बाजोत अमर...
१) कलयान गोमजड्डू १) रा...
१) भोंरीलाल चुड़ासका १) कि...
१) श्योनारायण २) पेथीप्रसाद ज...

र

पुर

त

का

स रहते हुए मीणा

जो मीणा जाति ने

और उन के सुपुत्र रामचन्द्रजी

जाति जागृत करने का बीज

था और रामदेव कमाला टोटेवाला इन

दोनों ने बारा मवासियों का नाम लिख कर

छोड़ गये आप स्वर्गवास कर गये उन का

लेख प्रकाशित ऊपर लिख कर दिया है और

उन के बाद सभापति स्वामी भगवान गिरि

जयपुर मीणा महासभा रजिस्टर्ड इन के नाम

से है और इस वर्तमान में रामदेवजी बंदाड़ा

जयपुर सभापति आरूढ़ हैं और स्वामी

भगवान अदुतानन्दगिरि महात्माजो श्रीनगर

हिगवाला के जन्म भूमि सटावट टहला के

पास है अखिल भारतवर्षीय माने गये हैं ।

द्दावत में जोड़ कुवादि

है भगवान भगती अंग

करने वाला है ।

द्दावत अंगारी में भेड़

वान भगत तन मन धन से

अंग है । संत सेवक हैं ।

पाछुराम पटेल भगत जो स्वामी

न आप पुस्तक बिर

छूड़ातक पहुंचाने गया ।

१) भुरापटेल मेवाल बावड़ी में भगवान

भगत जो आया हुआ साधु महात्मा

भैंट सेवा आदि देते हैं ।

जयपुर में श्योनाथजी आपोलो खजानची और भोंरसिंह जो छाड़वाल मन्त्री और रामदेव जो बेनाड़ा सभापति जी और बृद्धीचन्द जी प्रबन्धक बरदू जी बंदाड़ा टोडा विभीषण के तुल्य हैं यह जयपुर सभा के भगवान भगत और स्वामी सेवा में अति निपुण इनकी सेवा का वरणन कर नहीं सकता तन मन धन से सेवा करने वाले हैं । और टोड़ा विलोत में १ माई टोड़ा में घटाई नामसे भगवान भगत मसहूर है जिसको कौन नहीं जानता होगा उसका प्रेम भायो को और जयपुर लक्ष्मी बाई उस ही माई की बेटी तन मन सेवा धन से सेवा करने वाली भगवानकी भक्ति अंग वालीहै । इनकी भगती की कोई मैं उपमा नहीं कर सकता भोजनादि से कोई साधु खाली नहीं गया । गोरा लांका में १ देवी प्रगट हुई है हमेशा मेला लगता है ।

हिन्दू महासभा भवन में

ये नियम सब की सम्मति से पास हुए हैं ।

मीणा क्षत्रिय महासभा अखिलभारतवर्षीय का चतुर्थ अधिवेशन हिन्दू महा सभा भवन, नई देहली में श्रीमान पूज्यवर श्री स्वामी भगवान अदुतानन्द गिरि के सभापतित्व में ता० १६ मार्च सन् १९४२ से ता० १८ मार्च सन् १९४२ तक बड़ी धूम